DHRAM DOOT 1952 G.K.V.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११३४२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

Digitization-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

धर्मदूत

जुलाई

१९५२

स्वर्गीय बोधानन्द महास्थविर

वर्ष-१७
अङ्क-३

वार्षिक-मूल्य-३)
एक अङ्क का-।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

	विषय		पृष्ठ
१	बुद्ध-वचनामृत	...	६९
२	महन्त बोधानन्द महास्थविर—श्री चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु	...	७०
३	पीड़ित तथा शोषित वर्ग के नेता--भिक्षु धर्मरक्षित	...	७५
४	दो चरण चले ! (कविता) —श्री श्रीहरि	...	७८
५	बुद्ध गया और सारनाथ—भदन्त आनन्द कौसल्यायन	...	७९
६	शाल तरुओं की छाँह में—श्री देवदत्त शास्त्री	...	८२
७	भगवान् और गौतम बुद्ध (कविता)—श्री रामचरण लाल	...	८४
८	दया का अधिकार (एकांकी नाटक)—श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	...	८६
९	बौद्ध जगत्	...	८९

पालि वाङ्मय का अनुपम कथा-साहित्य

जातकट्ठकथा

पठमो भागो : मूल पालि

(सम्पादक—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित)

बढ़िया कागज, मनमोहक छपाई, सजिल्द मूल्य—९)

जिस 'जातकट्ठकथा' के प्रकाशन की बहुत दिनों से प्रतीक्षा की जा रही थी, उसका प्रथम भाग नागराक्षरों में छपकर प्रकाशित हो गया। यह ग्रन्थ पालि वाङ्मय की एक अनुपम निधि है। कथा-साहित्य की दृष्टि से यह संसार का सर्वश्रेष्ठ एवं विशालतम ग्रन्थ है। यही नहीं, विश्व के कथा-साहित्य में यह प्राचीनतम संग्रह भी है। इसमें न केवल भारतीय ही, प्रत्युत एशियायी प्राचीन राजनीति, कला, दर्शन, इतिहास, धर्म, संस्कृति, व्यवसाय, भूगोल आदि सभी प्रकार की ज्ञान-परम्पराओं का समावेश है। इसे बिना पढ़े भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

इस ग्रन्थ की थोड़ी ही प्रतियाँ छपी हैं। पालि के प्रेमियों, विद्वानों, इतिहास के विद्यार्थियों, पुस्तकालयों एवं विद्या-संस्थाओं को इसे शीघ्र लेना चाहिए। ऐसे ग्रन्थ बार-बार नहीं छपते। शीघ्रता करें, अन्यथा पछताना पड़ेगा।

मिलने का पता :—

व्यवस्थापक, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113429

...३५२१

जाते हुए लखनऊ में ... दर्शन

धर्मदूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १७ | सारनाथ, जुलाई | बु० सं० २४९६ / ई० सं० १९५२ | अङ्क ३

बुद्ध-वचनामृत

सन्त-धर्म पुराना नहीं होता

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। तब कोसलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् के साथ सम्मोदन कर आवभगत के शब्द समाप्त कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ कोसलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—"भन्ते! क्या ऐसा कुछ है जो जन्म लेकर न पुराना होता हो और न मरता हो?"

"महाराज! ऐसा कुछ नहीं है जो न पुराना होता हो और न मरता हो। महाराज! जो बड़े-बड़े ऊँचे क्षत्रिय-परिवार के हैं—धनाढ्य, बड़े मालदार, महाभोगवाले, जिनके पास सोना-चाँदी अफरात है, वित्त, उपकरण, धन और धान्य से सम्पन्न—वे भी जन्म लेकर बिना बूढ़े हुए और मरे नहीं रहते। महाराज! जो बड़े ऊँचे ब्राह्मण-परिवार के हैं, वे भी जन्म लेकर बिना बूढ़े हुए और मरे नहीं रहते। महाराज! जो अर्हत् भिक्षु हैं—क्षीणाश्रव, जिनका ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया है, जिनने जो कुछ करना था, कर लिया है, जिनका भार उतर चुका है, जो परमार्थ को प्राप्त हो चुके हैं, जिनका भव-बन्धन कट गया है, परम ज्ञान प्राप्त कर जो विमुक्त हो गये हैं—उनका भी शरीर छूट जाता है और बेकार हो जाता है।

बड़े ठाट-बाट के राजा के रथ भी पुराने हो जाते हैं,
यह शरीर भी बुढ़ापा को प्राप्त हो जाता है,
सन्तों का धर्म पुराना नहीं होता,
सन्त लोग सत्पुरुषों से ऐसा कहा करते हैं॥

113429

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महास्थवि

भदन्त बोधानन्द महास्थविर

श्री चन्द्रिकाप्रसाद 'जिज्ञासु'

श्रीमत् भदन्त बोधानन्दजी महास्थविर उन तत्त्व-दर्शी महापुरुषों में से थे जो समय-समय पर कोई सन्देश देने के लिए संसार में आया करते हैं।

जन्म और जीवन का आरम्भ

उनका जन्म चुनार में, वारेन्द्र-श्रेणी के एक ब्राह्मण-कुल में, सन् १८७४ ई० में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री दीनबन्धु लाहिड़ी सार्वभौम और माता का नाम श्रीमती सुवर्णा देवी था। शैशव अवस्था में ही उनके माता पिता का देहान्त हो गया था। अतः वह अपनी मौसी के पास, जो विधवा होने के कारण काशी-वास करती थीं, बनारस चले आये और वहीं रहने लगे। पूर्वजन्म के संस्कार के कारण वह स्वभावतः सत्य के खोजी और जिज्ञासु थे। इसी के फल से उन्हें विद्वानों का संसर्ग तथा साधु-महात्माओं का सत्संग-लाभ हुआ। वह आरम्भ से ही साधु-महात्माओं, विद्वानों और योगियों की सेवा में रहकर विद्याध्ययन और ज्ञानार्जन करते रहे। उन्होंने हिन्दू संस्कृति, हिन्दू धर्म, हिन्दू शास्त्रों और दर्शनों का बड़े प्रेम और उत्साह से अध्ययन किया, किन्तु उन्हें शान्ति न मिली। उनका करुणापूर्ण हृदय हिन्दू धर्मानुमोदित ऊँच-नीच के पोषक, जन्ममूलक जाति-भेद से अत्यन्त व्यथित हो गया। उन्होंने देखा कि इस जाति-भेद के कारण भारत की विशाल-संख्यक दबी पिछड़ी जातियों की दशा बहुत ही करुणाजनक है। वे लोग उच्चवर्णस्थ हिन्दुओं के द्वारा निर्दयतापूर्वक दबाये गये हैं तथा धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी सभी क्षेत्रों से वंचित रखे गये हैं। दबी जातियों अर्थात् हरिजनों (अछूतों) को तो यहाँ तक दबाया गया है कि वे जीवन में उन्नति—विकास करने की क्षमता तथा अन्याय के प्रति विरोध करने की भावना तक को गँवा चुके हैं। उच्चवर्णस्थ हिन्दू लोग वंशानुक्रम से हजारों वर्षों से जन्मगत वर्णव्यवस्था द्वारा उनके श्रम से अनुचित लाभ उठा रहे हैं।

बौद्ध धर्म-ग्रहण

इस प्रकार चिन्तित, दुःखित, खिन्न और उपराम होकर वह भारतीय ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, सन्तसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी एवं क्रिश्चियन मिशनरी सोसाइटी आदि विविध धार्मिक संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करके तथ्यानुसन्धान करने लगे। कहना न होगा कि इस धर्मानुसन्धान में उनके हृदय पर मसीह की करुणा का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। सन् १८९६ में, बनारस में, जब वह क्रिश्चियन मिशनरियों के साथ दुर्भिक्ष-पीड़ित, दुर्दशाग्रस्त मानवों की सेवा सहायता में निरत थे, सौभाग्य से उन्हें सिंहल देशवासी कुछ बौद्ध भिक्षुओं का संग-लाभ हुआ जो इसी कार्य के लिए थियोसोफिकल सोसाइटी की ओर से बनारस आये हुए थे। उन्होंने इन भिक्षुओं से अपनी मानसिक व्यथा का वर्णन करके अन्यायपूर्ण हिन्दू-धर्म को त्यागकर क्रिश्चियन धर्म स्वीकार करने के अपने संकल्प को प्रकट किया। उनका यह संकल्प सुनकर उन बौद्ध महात्माओं ने कहा—"जिस व्याधि के कारण तुम क्रिश्चियन होने की इच्छा कर रहे हो उस रोग की औषधि तुम्हारे ही देश में विद्यमान है। मसीह से छः सौ वर्ष पहले भारतभूमि में जन्म ग्रहण कर भगवान् गौतम बुद्ध उस रोग का इलाज बता गये हैं।" यह कहकर उन्होंने 'वृषलसूत्र' की एक प्रति देते हुए उनसे कहा—"इसे पढ़ो और इस पर विचार करो।" उसे पढ़ने पर उनके चित्त को बड़ी शान्ति मिली और बौद्ध शास्त्रों के विशेष अध्ययन की रुचि उत्पन्न हुई। वह बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन और मनन करने लगे और ज्यों-ज्यों वह अध्ययन करते गये, बौद्ध धर्म में उत्तरोत्तर उनकी श्रद्धा और प्रीति बढ़ती गयी, और वह इस परिणाम पर पहुँचे कि भारत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११३५२१

वास्तविक सनातन धर्म बौद्ध धर्म ही है तथा बौद्ध धर्म के द्वारा ही हिन्दू समाज की विषमता और बुराइयों को दूर किया जा सकता है और भारत पूर्णता को प्राप्त कर संसार का एक शक्तिशाली और आदर्श देश बन सकता है। इस विश्वास के कारण उन्होंने संकल्प किया कि बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ सबसे पहले उन्हें स्वयं बौद्ध धर्म में दीक्षित होना चाहिये। अतएव वह कलकत्ता गये और वहाँ ४ अक्टूबर, १९१४ को बहूबाजार-स्थित "बौद्ध धर्मांकुर विहार" के संस्थापक श्रीमत् भदंत कृपाशरण महास्थविर, भदंत गुणालंकार महास्थविर के उपाध्यायत्व व आचार्यत्व में, बौद्ध पद्धति के अनुसार प्रव्रज्या और सन्यास ग्रहण कर विधिवत् भिक्षुसंघ में सम्मिलित हुए।

लखनऊ को प्रचार-केन्द्र बनाकर बुद्ध-विहार की स्थापना

इसके पश्चात् बौद्ध धर्म के निगूढ़ रहस्य समाज को बोध कराने तथा बुद्ध की शिक्षा का सर्वसाधारण में प्रचार करने के लिए उन्होंने सन् १९१६ में, लखनऊ में 'भारतीय बौद्ध समिति' की स्थापना की और उसके द्वारा लखनऊ तथा उत्तर प्रदेश के अन्य नगरों व ग्रामों में प्रचार-कार्य करते रहे। कहना न होगा कि स्वामी जी एक प्रखर आलोचक थे, उन्हें लगी-लिपटी और लीपापोती की नीति पसन्द न थी। जो बात जैसी होती उसे वैसा ही कहने-समझने की उनकी आदत थी। अतः वे लोग, जिनके स्वार्थ में उनके स्पष्ट प्रचार से धक्का लगता था, प्रायः उनके विरोधी बन उन पर नाना मिथ्या आरोप लगाकर उन्हें कष्ट पहुँचाने की चेष्टा करते थे, और दूसरों के स्थानों में वह स्वतन्त्रतापूर्वक रह न पाते थे। इसी कारण कई बार उन्हें अपने निवासस्थानों को बदलना पड़ा और प्रचार में बाधा उपस्थित हुई। अतएव सन् १९२५ में उन्होंने अपने प्रिय उदार मित्रों और प्रेमी शिष्यों की सहायता से, रिसालदार पार्क में, एक प्लाट खरीदकर एक सुन्दर बुद्ध-विहार का निर्माण कराया जिसे केन्द्र बनाकर वह लखनऊ व आस-पास के जिलों में बौद्ध धर्म और संस्कृति का प्रचार करते थे। यह विहार अब बौद्धों की विश्राम-शाला के भी काम आता है, विभिन्न देशों के बौद्ध यात्री, जो बौद्ध तीर्थों में जाते हुए लखनऊ में उतरते हैं, यहाँ आते और बुद्ध-मूर्ति का दर्शन पूजन करते और ठहरते हैं।

बौद्ध अनुसन्धान पुस्तकालय की स्थापना

विहार में स्वामीजी ने एक बौद्ध अनुसंधान पुस्तकालय की भी स्थापना की है जो बौद्ध धर्म से सम्बन्धित पालि, संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी के उत्तमोत्तम ग्रंथों तथा विविध धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, पुरातत्विक एवं सामाजिक खोजपूर्ण पुस्तकों का एक विशाल संग्रहालय है। इस पुस्तकालय का उद्देश्य बौद्ध, जैन, हिन्दू और फारसी आदि के धर्मग्रन्थों का तुलनात्मक, निष्पक्ष अध्ययन तथा वैदिक पूर्व और वैदिक इतर भारतीय संस्कृति, सभ्यता, कला एवं पूर्वकालीन विदेशी यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्तों व भारतीय पुरातत्व की खोजपूर्ण रिपोर्टों का गवेषणापूर्ण अध्ययन है।

उद्देश्य और कार्य

किसी महापुरुष का आन्तरिक परिचय उसके उद्देश्यों और कार्यों से सहज में हो जाता है। स्वामी जी ने जो बौद्ध समिति स्थापित की उसका उद्देश्य है मनुष्य-जाति में भगवान् बुद्ध प्रदर्शित उस लोकोत्तर धर्म का संप्रसार करना जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन में करुणा, मैत्री, समता, संयम, सेवा, सहानुभूति आदि पवित्र भावों का विकास करे तथा अपने सबके दोषों और दुखों का अत्यंत विरोध करे, इस व्यक्तिगत जीवन के बाद निर्वाण अर्थात् एक अचिन्त्य, सर्वोपरि, नित्य और पूर्ण शान्ति का लाभ करे। समिति के कार्य हैं—

१. प्रत्येक प्राणी के सुःख-दुख को अपने सुख-दुःख के समान समझकर उसकी भलाई के लिए यत्न करना।

२. जाति-भेद के ऊँच-नीच भावों को दूर कर जनता में समता और सहयोग का प्रचार कर मानवता की चेतना जाग्रत करना।

३. बौद्ध धर्म के विविध दर्शन एवं सिद्धान्तों का समन्वयात्मक अनुशीलन करना।

४. अबौद्ध धर्मदर्शन तथा वर्तमान विज्ञान के साथ बौद्ध धर्म का संतुलनात्मक अध्ययन करके बौद्ध धर्म की विशेषताओं को प्रकाश में लाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. पालि, प्राकृत, संस्कृत आदि के प्राचीन ग्रन्थों तथा आधुनिक खोजपूर्ण रचनाओं और अनुवादों को प्रकाशित करना।

६. भारतीय बौद्ध समाज को संगठित कर उसमें भाईचारे का प्रचार करना तथा उनके हितों एवं सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा करना।

७. योग्य बौद्ध उपदेशकों और प्रचारकों को तैयार करना।

८. बौद्ध शिक्षण और सांस्कृतिक केन्द्रों की सहायता करना।

९. सामान्य उद्देश्य और कार्य मिलने पर दूसरी बौद्ध संस्थाओं से सहयोग करना।

दबी-पिछड़ी हिन्दू-जातियों में आत्मचेतना

स्वामीजी के हृदय में दबी-पिछड़ी हिन्दू-जातियों के लिए बड़ा दर्द था, क्योंकि वह मूल में स्वयं हिन्दू थे और हिन्दू शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करके उन्होंने इन १६ करोड़ मानवों का आदि मध्य सब देख लिया था। जिस समय स्वामीजी ने इन जातियों में कार्य आरंभ किया, इनकी दशा विचित्र थी। हिन्दू समाज में इनका वर्ण अनिश्चित था और तुलसीदास की रामायण के अनुसार इनमें कई जातियाँ वर्णाधम समझी जाती थीं। एक ओर इन जातियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बनने का आन्दोलन छिड़ा हुआ था और ये द्विजातियों का चिह्न जनेऊ पहन रही थीं, ब्राह्मण पण्डित प्रभूत धन लेकर इन्हें क्षत्रिय, वैश्य आदि होने के व्यवस्था-पत्र दे रहे थे; दूसरी ओर ग्रामों में बलवान् ब्राह्मण, क्षत्रियादि द्वारा ये पीटे जाते थे, इनके जनेऊ तोड़े जाते, इनका सामाजिक व्यवहार बन्द किया जाता और मुकदमे चलते। अतः स्वामीजी ने इन्हें इनके गौरवपूर्ण विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान कराकर इनमें वर्गचेतना और आत्मगौरव उत्पन्न करने के विचार से सन् १९२८ ई० में, लखनऊ में, एक नवरत्न कमेटी की स्थापना की जिसमें इन जातियों के कई वकील और दूसरे समझदार लोग थे। अन्त में यह कमेटी विस्तृत होकर "हिन्दू बैकवर्ड क्लासेज़ लीग" अथवा "मूल भारतवासी समाज" नाम से एक संस्था बन गई, जिसके प्रवर्तक श्री स्वामीजी महाराज थे, आर्गनाइज़र इन पंक्तियों के लेखक, प्रेसीडेन्ट परलोक-प्राप्त रायसाहब रामचरण एडवोकेट, एम. एल. सी., प्रधान मन्त्री श्री शिवदयाल सिंह चौरसिया ऐडवोकेट तथा मन्त्री श्री गौरीशंकर पाल एम. ए., एल. एल. बी. इत्यादि थे। इस प्रकार सामाजिक आन्दोलन आरम्भ करके उन्होंने प्रायः सभी दबी-पिछड़ी जातियों में आत्मचेतना उत्पन्न की, किन्तु जिन हिन्दू जातियों में उन्होंने विशेष रूप से कार्य किया उनमें प्रमुख हैं कलवार, तेली, बरई, तम्बोली, गड़रिया, कहार, मल्लाह और कुम्हार आदि। यही कारण है कि इन्हीं जातियों में उनके शिष्य भी अधिक हैं। लीग के विचारों के प्रचारार्थ श्री स्वामीजी महाराज ने 'मूल भारतवासी और आर्य" नाम का अपना सुविख्यात ग्रन्थ भी प्रकाशित किया, जिसने दबी-पिछड़ी जातियों में बड़ी जाग्रति पैदा कर दी। इस ग्रन्थ की भूमिका में हिन्दू राष्ट्रवादियों को लक्ष्य करके श्री स्वामीजी महाराज ने लिखा है।

हिन्दू राष्ट्रवादियों को चेतावनी

इस समय सारे संसार में स्वाधीनता और स्वाभिमान की लड़ाई छिड़ी हुई है। हरएक राष्ट्र और हरएक जाति अपने पूर्वजों का गौरव और अपनी सभ्यता-संस्कृति का बोलबाला रखना चाहती है। ऐसी स्थिति में माननीय हिन्दू नेता लोग हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू जाति के संगठन की भी अत्यन्त आवश्यकता बतलाते हैं और उसके लिए यथाशक्ति प्रयत्न भी कर रहे हैं। किन्तु इस प्रयत्न में लोकतन्त्र-सिद्धान्त के विरुद्ध "लबड़धोंधों" होना दिखाई देता है। "लबड़धोंधों" कहने से हमारा प्रयोजन यह है कि जब यह सिद्ध हो ही चुका है कि—

१. इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से मूल भारतवासियों की सभ्यता आर्यों की सभ्यता से अधिक पुरानी है, मौलिक है और उससे किसी तरह कम नहीं है।

२. हिन्दू शास्त्रों की दृष्टि से असुरों की सभ्यता देवों की सभ्यता से प्राचीन है, ब्राह्मण ही देववर्ण हैं और असुर शूद्रवर्ण। देव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः असुरो वर्णः शूद्रः। तैत्तिरीय ब्राह्मण १. २. ९. ७। और शूद्र मूलतः शिल्पकर्मी हैं। शिल्पवृत्तिश्च शूद्रः। शत० ४ : ४. ३. १ व २४. ४. १. २२। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. जैनों और बौद्धों की दृष्टि से उनकी अपनी सभ्यता वैदिक सभ्यता से बहुत अधिक पुरानी और मौलिक है और वैदिक धर्मावलम्बियों ने समयानुकूल बहुत-सी बातें उनसे लेकर अपने धर्म और दर्शनों की परिपुष्टि की है।

तो हम पूछते हैं कि इन सब प्रमाणों और दावों के रहते हुए यह कहना कि वैदिक सभ्यता सब सभ्यताओं की जननी और मूल सभ्यता है तथा उसी से सब धर्म और सब सभ्यतायें निकली हैं, कहाँ तक न्यायसंगत है? यों तो कहने के लिये हिन्दू महासभा आर्य, अनार्य, बौद्ध, जैन, सिख, सनातनधर्मी, आर्यसमाजी आदि सभी को अपनी परिभाषा के अनुसार 'हिन्दू' कहकर संगठन करती है, किन्तु वह उनकी स्वतन्त्र गौरवपूर्ण सभ्यता और संस्कृति की मौलिकता को मिटाकर उन्हें श्रुति-स्मृति से निकला हुआ कहकर उनको ब्राह्मणी धर्म में घुला लेने की आन्तरिक चेष्टा करती है और वैदिक सभ्यता तथा वर्णव्यवस्था का बोलबाला रखना चाहती है। यह नीति तो अत्यन्त घातक है। इस प्रपंच की रचना का तो साफ मतलब यह है कि हिन्दू राष्ट्रवादी लोग यहाँ वैदिक हिन्दू राज्य कायम करके ब्राह्मणी वर्ण विधान द्वारा देश पर शासन करना चाहते हैं। यदि देश का संविधान हिन्दू संस्कृति के अनुरूप बन गया तो उस दशा में यदि कोई हिन्दू धर्म से त्रस्त और दुःखित होकर अपने को 'अहिन्दू' कहेगा, तो वह 'देशद्रोही' समझा जायगा और देशद्रोह के दण्ड का भागी होगा और यदि हिन्दू रहता हुआ वर्णव्यवस्था के विरुद्ध अपनी आवाज उठावेगा, तो बहुमत प्राप्त न होने से देश के संविधान में कोई परिवर्तन या सुधार न करा सकेगा। परिणाम यह होगा कि मुट्ठीभर उच्चजातीय हिन्दुओं के भोग, ऐश्वर्य, सुख और स्वार्थ के लिये बहुसंख्यक मानव प्राणी सेवक और दास बनकर, दुःख, दारिद्र, अभाव-ग्रसित हो श्रम की चक्की में पिसते रहेंगे। शायद मुसलमान इन सब चालों को समझ गये हैं और 'इसलाम खतरे में है' का नारा लगाकर वे हिन्दुओं के साथ कोई समझौता करना नहीं चाहते।..."

इस गम्भीर आलोचना में स्वामीजी की सूक्ष्म सामाजिक बुद्धि सूर्य की भाँति प्रकाशित है। यह चेतावनी सन् १९३० की है, आज सन् ५२ है। इन २२ वर्षों में देश में जो कुछ हुआ, आँखवाले उसे प्रत्यक्ष देखते हैं।

हिन्दू धर्म-कथाओं में बुद्ध-प्रदर्शन

स्वामीजी का तुलनात्मक धार्मिक अध्ययन कितना गम्भीर एवं दृष्टि कैसी सूक्ष्म और तत्त्वग्राहिणी थी, वह हिन्दू धर्म-कथाओं के अन्तर्गत भगवान् बुद्ध के स्वरूप को किस प्रकार देखते और दिखा देते थे, इसका केवल एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। 'भारत के आदि निवासी' पुस्तक की पांडुलिपि पढ़कर उस पर अपना आशीर्वाद देते हुए स्वामीजी ने लिखा है—

'यद्यपि इस पुस्तक का विषय और इसके गम्भीर विचार हमारे विचारों के अनुकूल ही हैं, वरन् यह कहना अनुचित न होगा कि यह उन्हीं का सुविकसित और परिमार्जित रूप है, तथापि लेखक की एकाध बात से हमारा मतभेद है। जैसे कि लेखक ने इस बात को तो बड़े बलपूर्वक सिद्ध किया है कि प्राकृत भाषा, प्राचीनता की दृष्टि से संस्कृत भाषा से अधिक गौरव और महत्त्व की वस्तु है, किन्तु उसी प्राकृत और पालि में वर्णित अर्हत्, जिन और बुद्धको लेखक ने सीधे-सीधे ग्रहण न करके उनके विकृत ब्राह्मणीरूप 'शिव' और 'महादेव' की जो आदिदेव के रूप में प्रतिष्ठा की है, उससे हमें सहानुभूति नहीं है। हमारे विचार में आजकल जिन्हें संत नाम से स्मरण किया जाता है, प्राचीन प्राकृत और पालि साहित्य में उन्हीं को 'जिन', 'अर्हत्' और 'बुद्ध' के नाम से स्मरण किया गया है तथा पिछले तान्त्रिक बौद्धकाल में उन्हीं को शिव और महादेव के नाम से सम्बोधित किया गया है, बाद में ब्राह्मणी संस्कृत साहित्य में उन्हीं शिव और महादेव को देव-विशेष के रूप में ग्रहण करके उन्हें वैदिक रुद्र देवता के साथ मिला दिया गया है। बुद्ध के कपाल के उष्णीय शीर्ष को शिव का जटाजूट बनाया गया, बुद्ध के ललाट पर दोनों भवों के बीच स्थित ऊर्ण को शिव का तीसरा नेत्र बनाया गया, बुद्ध के मुखारविन्द की सौम्य शीतल द्युति को शिव के मस्तक का अर्धचन्द्र बनाया गया, बुद्ध की अहिंसा-प्रतिष्ठा के परिचय में शिव को सर्पों का आभूषण बनाया गया और बुद्ध के मस्तिष्क से निकले हुए ज्ञान-प्रवाह ने जो जगत् के अगणित प्राणियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतार्थ किया उसे शिव के जटाजूट से तरनतारिणी गंगा की धारा बहाने की कल्पना की गई। यहाँ तक जो कुछ किया गया उसमें कोई विशेष आपत्ति की बात नहीं रही, पर इसके आगे जो कुछ बनाया गया वह बड़ा ही खेद-जनक और अद्भुत है। ब्राह्मणी साहित्य के लेखकों ने वीतराग, कामभोग-रहित, परमयोगी, ज्ञानस्वरूप शिव महादेव की गोद में शक्तिरूपा गौरी को बिठाकर ही सन्तोष नहीं किया, वरन् उनको गँजेड़ी, भँगेड़ी, बौरहा और तमोगुण के बीभत्स व भयानक देवता बनाकर अन्त में उनकी छाती पर महाकाली को खड़ा करके मानो ज्ञान-वैराग्य को पशुबल से पददलित कर दिया है। अतएव हमें संदेह है कि इस प्रकार और अधिक गँजेड़ी, भँगेड़ी, मद्यपी, प्रमादी व आलसी होकर और अधिक नीचे न गिर पड़ें तथा सच्चे ज्ञानलोक से वंचित हो कहीं अपने अभ्युदय और निःश्रेयस के ध्येय को एकदम न खो बैठें। हमारी यह हार्दिक कामना है और आशीर्वाद है कि हमारे भारत के आदि मूलवासी गण इस उपयोगी पुस्तक का यथार्थ मर्म समझें और इससे लाभ उठावें।"

शिव के स्वरूप में बुद्ध का कैसा प्रंचल और विशुद्ध दर्शन है, इसे तो सहृदय और तत्वदर्शी ही समझ सकते हैं।

अध्ययन और मननशीलता

स्वामीजी को यूनिवर्सिटी की कोई डिग्री प्राप्त न थी, किन्तु वह बड़े अध्ययन और मननशील थे। हिन्दी, बंगाली, संस्कृत और पालि चार भाषाओं में उनकी गति थी। बंगाली उनकी मातृभाषा थी, शेष का उन्होंने अभ्यास किया था। वह तुलसीकृत रामायण के मर्मज्ञ पण्डित थे, इतनी गम्भीर और अद्भुत व्याख्या करते थे कि सुनकर दंग रह जाना पड़ता था। सारी रामायण उनके कंठ में थी। जायसी के पद्मावत की भी वह अपूर्व व्याख्या करते थे। संत साहित्य में कबीर साहब के शब्द साखी, गुरु ग्रन्थ साहब, तुलसी साहब, दादूदयाल साहब, सुन्दरदास, निश्चलदास, राधास्वामी, पल्टू साहब, जगजीवन साहब, मीराबाई, सहजोबाई आदि के ग्रन्थों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। आर्यसमाज के सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदभाष्य-भूमिका, यजुर्वेद-सामवेद-भाष्य, सर रमेशचन्द्र दत्त के ग्रन्थ व उनका ऋग्वेद-भाष्य, राजाराम शास्त्री के उपनिषद्-भाष्य, शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ श्रीपाद दामोदर सातवेलकर के रामायण महाभारतादि ग्रंथ, महाभारत समालोचन, चिंतामणि विनायक, वेद की महाभारत, मीमांसा, रघुनन्दन शर्मा की वैदिक सम्पत्ति, लोकमान्य तिलक का गीतारहस्य, महात्मा गांधी का सत्य के प्रयोग और आत्म कथा इत्यादि सहस्रों ग्रंथों का उन्होंने मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया और प्रत्येक में उनके टिक्के और मार्क लगे रक्खे हैं। वह सारा दिन प्रायः अध्ययन ही करते रहते थे। अध्ययन करते समय लाल पेंसिल उनके हाथ में रहती और टिक्के पास में। पेंसिल से विशेष स्थानों पर निशान लगाकर टिक्का रख देते थे। उनके पुस्तकालय में कई हजार ग्रंथ हैं और प्रायः सभी उनके पढ़े हुये। कोई भी उत्तम ग्रंथ निकला और उन्हें खबर मिली तो उन्होंने अवश्य मँगाया और अवश्य पढ़ा। अध्ययन ही उनका व्यसन था और अध्ययन सार्वभौमिक था। सभी उत्तम विचारों का वह स्वागत करते और उनका तत्व निकालते थे। उत्तम रचना की सराहना करते थे, चाहे वह उनके मत के नितांत विपरीत ही क्यों न हो। पर उन्हें अनुसंधान और खोजपूर्ण ग्रन्थों से विशेष प्रीति थी।

स्वामीजी के कुछ विशेष गुण

स्वामीजी व्यवहार में बहुत खरे थे। मिजाज बहुत सफाई-पसन्द था। उनकी रहनगति में भी बड़ी सफाई थी। कूड़ा-कर्कट के नाम से एक तिनका भी उनके आस-पास पड़ा न रह सकता था। उनकी हर चीज शुद्ध साफ और बाकायदा नियत स्थान पर रखी होती थी। वह स्थापत्य कला के भी शौकीन थे। इमारत बनवाने का काम विधिवत् करते थे। लखनऊ में उनका बुद्ध विहार तथा गौतम बुद्ध-मार्ग-स्थित बोधिसत्वविहार दोनों ही इमारतें उनकी सूझ-बूझ से बनी हैं। मकान बनवाने में लोग प्रायः उनसे सलाह लिया करते थे। कुछ लोग कहते हैं कि स्वामीजी स्वभाव के क्रोधी थे, किन्तु वह न्यायाशील थे, अकारण उन्हें क्रोध नहीं आता था और अन्याय व अविवेक पर क्रोध करना एक गुण है, उनका हृदय करुणामय और कोमल था तथा उनका चरित्र विशुद्ध व निष्कलंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। लोग उन्हें झक्की-मिजाज भी कह देते हैं, पर यह उनका स्वभाव था कि बिना पुष्ट प्रमाण के वह किसी बात को न स्वीकार करते थे, न लिखते थे। यही कारण है कि वह जो कुछ लिखते या बोलते थे, सब अकाट्य होता था।

परमधाम-गमन

इस प्रकार ज्ञान का अनुशीलन, गिरे, पड़े, दबे, पिछड़े, अभाव ग्रसित मानवों में ज्ञानोपदेश द्वारा आत्मचेतना उत्पन्न करके उन्होंने बुद्धोपदिष्ट मार्ग को ग्रहण करने के लिये प्रोत्साहन देते हुए महास्थविर बोधानन्दजी ने लखनऊ के बोधिसत्व विहार तथा बुद्ध-विहार में २६ पवित्र त्रैमासिक वर्षावास व्रतों का उद्यापन किया। अपने जीवन के अन्तिम दो मासों में वह 'कैंसर' रोग से पीड़ित रहे और उसके चिकित्सार्थ वह कलकत्ता के 'चितरंजन कैंसर हास्पिटल' में गये जहाँ कैंसर तो अच्छा हो गया, किन्तु उससे प्रबल उन्हें निमोनिया हो गया जिसकी चिकित्सा के लिये उन्हें 'हाबड़ा हास्पिटल' में स्थानान्तरित कर दिया गया। इसी हास्पिटल में, रविवार, ता० ११ मई १९५२ को, प्राक्:काल ६॥ बजे, अपनी ७८ वर्ष की आयु में, लखनऊ के प्रशांत साधक, महाज्ञानवान्, कर्मवीर भदंत बोधानन्द महास्थविर अपनी जीवन-लीला से निवृत्त होकर परमधाम को सिधार गये। उनके पश्चात् उनके एकमात्र भिक्षु श्री प्रज्ञानन्दजी एवं उनके बहुत से भक्त शिष्य वर्तमान हैं जो, आशा है, उनके अपूर्ण कार्य की पूर्ति करते हुए उनकी कीर्ति बढ़ावेंगे।

भदन्त बोधानन्द महास्थविर की स्मृति में

पीड़ित तथा शोषित वर्ग के नेता

भिक्षु धर्मरक्षित

पीड़ित तथा शोषित वर्ग को विविध यातनाओं से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न करने में जिन लोगों ने अपना सारा जीवन लगा दिया, जन्मगत जातीय अभिमान के उच्छेद के लिए जिन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया और नाना प्रकार के कष्टों को सहते हुए अपने जीवन को समाज में ही घुला-मिला दिया जिससे शत-शत व्यक्तियों की अज्ञानता दूर हुई, वे अपने अधिकार को समझने लगे और उच्च स्वार्थी वर्ग के चंगुल से निकलने का यत्न करने के लिए बाध्य हुए, उन महारथी मनीषियों में से भदन्त बोधानन्द महास्थविर भी एक थे।

भदन्त बोधानन्दजी का जन्म सन् १८७४ ई० में चुनार में हुआ था। बचपन में ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया और वे अनाथ होकर इधर-उधर घूमने लगे। इस घुमक्कड़ी से इतना लाभ हुआ कि साधु सन्तों से उनका सम्पर्क बढ़ा और वे उन्हीं की सेवाओं में रहते हुए स्वयं भी साधु हो गये। उन्होंने अपने जीवन के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है—"मैंने हिन्दू-शास्त्रों और हिन्दू-संस्कृति का बड़ी गवेषणा के साथ अध्ययन किया, किन्तु मुझे शान्ति न मिली और यह मालूम हुआ कि हिन्दू-धर्म में एक अतिभीषण जन्मगत वर्ण-व्यवस्था है, जिसके कारण एक विशाल मानव-समूह अर्थात् शूद्रों व अछूतों की अवस्था बड़ी दयनीय है। उन्हें धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी जीवन के उन्नति-विकास के सभी क्षेत्रों में नीचे गिराया गया है। उनके जन्म-सिद्ध मानवीय अधिकारों और उच्च आकांक्षाओं को बड़े कौशल और निर्दयता के साथ कुचला गया है। उच्च जाति के हिन्दू लोग वंशानुक्रम से हजारों वर्षों से जन्मगत वर्ण-व्यवस्था द्वारा उनके श्रम से अनुचित लाभ उठा रहे हैं। इसे देखकर मेरा हृदय अत्यन्त चिन्तित, दुःखित और द्रवित हो गया।[1]"

सन् १८९६ में भारत दुर्भिक्ष-पीड़ित था। महास्थविर जी काशी में दुर्भिक्ष-पीड़ितों के सेवा-कार्य कर रहे थे, उसी समय सारनाथ के दर्शनार्थ आये हुए लंका के कुछ भिक्षुओं से उनकी भेंट हुई। उनके सत्संग से उन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। अध्ययन से उन्हें ज्ञात हुआ

१. भारत के आदिनिवासी, पृष्ठ २६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वर्तमान हिन्दुओं में जितने सार्वजनिक लोकहितकारी तत्वों का समावेश है, उन सबका मूल स्रोत बौद्ध धर्म है। बौद्ध धर्म भारतवर्ष का मौलिक और सनातन धर्म है एवं हिन्दुओं को सामाजिक विषमता तथा बुराइयों से मुक्त करके उन्हें एक सुसंगठित और समुन्नत राष्ट्र बना देने की शक्ति उसमें मौजूद है। अतः उन्होंने उनमें ही परम कारुणिक भगवान् बुद्ध की कल्याणकारी शिक्षा का प्रचार करने का निश्चय किया और हिन्दू साधु के वेष को त्यागकर ४ अक्तूबर, सन् १९१४ को कलकत्ता के धर्मांकुर विहार के संस्थापक भदन्त कृपाशरण महास्थविर से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा (भिक्षुदीक्षा) ग्रहण की। तबसे वे अपने निश्चय के अनुसार बौद्ध धर्म का प्रचार करने में जुट गये।

सन् १९४१ में जब मैं घरबार छोड़कर निकला था और काशी, प्रयाग, कानपुर, कन्नौज का पैदल परिभ्रमण करते हुए लखनऊ से होकर गुजरा था, तब मुझे यह मालूम नहीं था कि ऐसे दृढ़व्रती महास्थविरजी वहीं रहते हैं। जब लौटकर सारनाथ आया और पूज्य आनन्दजी से मिला तब यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि महास्थविरजी मुझ जैसे कुछ नवयुवकों को अपने उक्त कार्य के लिए चाहते हैं। एक वर्ष बाद जब मैं बुद्धपुरी (कानपुर) से कुशीनगर जा रहा था, तब सर्वप्रथम महास्थविरजी का दर्शन किया। महास्थविरजी से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी एक-एक बात से ज्ञान और विद्वत्ता टपकती थी। किसी भी बात के दृष्टान्त के लिए तुलसीकृत रामायण की चौपाइयाँ सहसा ही उनके मुख से निकला करती थीं। उन्हें सारी रामायण कंठस्थ थी। उत्तरी भारत के हिन्दू साधुओं का एकमात्र शास्त्र-ग्रन्थ तो रामायण ही है, अतः साधु-जीवन में उन्होंने पूरी रामायण ही कंठ कर ली थी। वे उपनिषद्, वेद आदि संस्कृत-ग्रंथों के भी अच्छे ज्ञाता जान पड़े, किन्तु मुझे यह कहते हुए संकोच होता है कि वे बात की बात में तुनक उठते थे, उनकी वाणी इतनी तेज हो जाती थी कि मुझे बिलकुल शान्त हो जाना पड़ता था। महास्थविरजी के इसी स्वभाव के कारण कितने ही लोगों से उनका मनमुटाव हो गया और उन्होंने उनके पास आना जाना भी छोड़ दिया, किन्तु यथार्थ में जो वे तुनक उठते थे और उनकी वाणी तेज हो जाती थी वह किसी व्यक्ति के लिए नहीं, केवल ब्राह्मणशाही के विरुद्ध। वे ब्राह्मणशाही को इस जगत् में देखना ही नहीं चाहते।

महास्थविरजी बड़े ही सफाई-पसन्द थे। वृद्ध होते भी वे मेज-कुर्सियों को सदा साफ किया करते थे। जो भी नया भिक्षु वहाँ आता था उसे बैठने, सोने से लेकर पाखाना जाने, पानी लेने, हाथ धोने तक को बतलाते थे। वे इन सब बातों को बतलाते समय तनिक भी हिचकिचाते नहीं थे। साफ साफ बतलाते थे कि पाखाना होते समय अमुक स्थान पर पानी छोड़ना, ताकि वह अन्दर न जाने पावे आदि। यद्यपि ये छोटी-मोटी बातें हैं, पहली बार गये हुए किसी भी भिक्षु को ये बातें बुरी लगती थीं, किन्तु यथार्थ में देखा जाय तो यह अत्यन्त उत्तम है, ऐसा करने से गन्दगी नहीं बढ़ने पाती।

अन्तिम दिनों में महास्थविरजी अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। कहीं आने-जाने की शक्ति उनमें नहीं रह गई थी किन्तु जब तक उनके शरीर में शक्ति रही तब तक सदा भिक्षाटन से ही जीवन-यापन किया। उन दिनों सात घरों का क्रमशः एक-एक दिन का भाँजा बँधा था। महास्थविरजी समय पर नहा-धोकर पात्र ले उनके घर चले जाते थे और भोजनोपरान्त कुछ उपदेश देकर वापस आते थे। आगन्तुक भिक्षु के लिए ही भोजन का प्रबन्ध विहार में होता था।

महास्थविरजी की शिक्षा किसी कालेज या विश्वविद्यालय में नहीं हुई थी, किन्तु वे बड़े ही शिक्षा-प्रेमी एवं ज्ञान-पिपासु थे। हिन्दी, संस्कृत, पालि और थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी जानते थे। बँगला तो उनकी मातृभाषा ही थी। उन्होंने सन् १९२५ में रिसालदार बाग, लखनऊ में एक बुद्ध-विहार की स्थापना की और उसके साथ ही एक "बौद्ध धर्मानुसन्धान पुस्तकालय" की भी। जिसमें अब तक विभिन्न धर्मों और दर्शनों की लगभग पाँच हजार पुस्तकें हैं, जिनमें पालि, प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, बँगला और अंग्रेजी भाषाओं की पुस्तकों की प्रधानता है। इन पुस्तकों के संग्रह में महास्थविरजी ने बहुत ही धन एवं समय लगाया था। उनकी सुरक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए भी उनका ध्यान सदा बना रहता था। वे कहा करते थे कि ज्ञान-भण्डार इन पुस्तकों को सदा सम्हाल कर रखना चाहिए, क्योंकि एक-एक पुस्तक एक-एक विद्वान् से बढ़कर काम देनेवाली हैं। विद्वान् से हम जिस बात को बहुत तर्क-वितर्क के पश्चात् जान सकेंगे, उसे इन पुस्तकों द्वारा थोड़ी देर में घर बैठे ही ज्ञात कर सकेंगे।

महास्थविरजी को ब्राह्मण नामधारियों से बड़ी चिढ़ थी। वे ऊँच-नीच के जातीय वर्गवाद को सुनना भी पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने अपने विचारों का जनता में प्रचार करने के लिए सन् १९२८ में एक "नवरत्न कमेटी" की स्थापना की, जिसमें दबी-पिछड़ी हिन्दू जातियों के कई वकील और समझदार लोग थे। अन्त में वह कमेटी विस्तृत होकर "संयुक्त प्रान्तीय मूल भारतवासी समाज" (यू० पी० हिन्दू बैकवर्ड क्लासेज लीग) के रूप में एक संस्था बन गई। पददलित और शोषित जनता के उद्धार के लिए उन्होंने अपनी शक्ति भर उठा न रखा। उन्होंने सदा द्विजातीय-वर्ग से मुठभेड़ ली एवं अछूतों के साथ न्याय करने की माँग की। उनके विचार में जब तक द्विजाति हिन्दू समाज के सर्वेसर्वा रहेंगे, जब तक अपनी सभ्यता पर अनन्य भक्ति रखेंगे, वर्ण-व्यवस्था पर अटल श्रद्धा बनाये रहेंगे और अबोध हिन्दू जनता उनकी अनुगामिनी बनी रहेगी तथा वे ही उसके संरक्षक रहेंगे, तब तक १६ कोटि पीड़ित एवं शोषित जन-समाज का सच्चा हित कभी और किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता। जाति-पाँति, छूआछूत आदि की विषमताओं के नाश के बाद ही उनका हित हो सकता है। उन्होंने एक जगह तथाकथित शूद्रों एवं अछूतों को सम्बोधित करते हुए कहा है—

"तुममें से प्रत्येक को उचित है कि तुम इस ब्राह्मण-शाही वर्ण-व्यवस्था को तोड़कर पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करो। याद रखो, वर्ण-व्यवस्था एक अत्यन्त भयानक विष है, जिसने १६ करोड़ मानव-प्राणियों को शूद्र और अछूत बना डाला है। यह मनुष्य-समाज में किसी तरह भी रखने योग्य नहीं है। इसे तो एकदम मिटा ही देना चाहिए।"

महास्थविरजी ने हिन्दी में कई पुस्तकें भी लिखी हैं। उनकी (१) 'मूल भारतवासी और आर्य' नामक पुस्तक काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है, जिसने दबी-पिछड़ी हिन्दू जातियों में अजीब जागृति पैदा कर दी। (२) 'भगवान् गौतम बुद्ध' नामक पुस्तक अपने नाम से ही स्पष्ट है। इसमें भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित तथा उनके उपदेश सरल और सुबोध भाषा में बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णित हैं। (३) "बौद्ध चर्या पद्धति" में बौद्ध गृहस्थों के नित्यप्रति आचरणीय कृत्यों का विधिवत् वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ सबसे पीछे (१९४२ में) लिखा गया था, किन्तु बड़ा ही उपयोगी है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त समय समय पर उनके लेख विभिन्न पत्रों में प्रकाशित होते रहे हैं, जिनमें प्रामाणिक तर्कपूर्ण एवं अकाट्य विचारों तथा शोधपूर्ण अनुभवों का समावेश होता रहा है।

महास्थविरजी बड़े सरल-हृदय एवं दयालु प्रकृति के महात्मा थे। उन्होंने जितना ज्ञानार्जन किया था और उनकी जैसी विद्वत्ता थी, यदि उन्हें साधन प्राप्त हुए होते तो वे अपने जीवन के उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफल हो गये होते, किन्तु अर्थ और सहयोगियों के अभाव में अपनी इच्छा की पूर्ति करने का उन्हें अवसर नहीं प्राप्त हुआ। अन्तिम दिनों में भी उन्हें इसी की चिन्ता रहती थी कि शोषित वर्ग किस प्रकार सुखी और स्वतन्त्र होगा।

मैंने जब पूज्य महास्थविरजी को पत्र लिखा और उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातों को पूछा तब उन्होंने मेरे पत्र का उत्तर देते हुए जो पत्र भेजा, उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

"मेरा जीवन अत्यन्त दुःखपूर्ण रहा है। मैंने जब से होश सम्हाला, तब से भारत के बहुसंख्यक, अधिकार-वंचित शूद्र और अछूतों के अभ्युत्थान के लिए, उनमें आत्म-चेतना और आत्म-गौरव के लिए विविध भाँति के प्रयत्न और सेवाएँ करता रहा हूँ। आज जो शूद्र और अछूतों में जागृति दिखलाई देती है, उसके मूल में मेरा ही रक्त सिंचन हुआ है। मैं बौद्ध धर्म में भी इसीलिए सम्मिलित हुआ कि शायद इसके द्वारा कुछ उपकार कर सकूँ, परन्तु दुःख है कि मुझे इस काम में सहायता और सहयोग देनेवाला कोई लक्ष्मीपति या सरस्वती-पुत्र नहीं मिला। और मिलते भी तो कैसे? क्योंकि सब लक्ष्मी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति शूद्र और अछूतों के भ्रम से आवाहन-काल से अनुचित लाभ उठाते आये हैं और सरस्वती-पुत्र लक्ष्मीपतियों के आश्रित हैं। अगर लक्ष्मीपतियों को वे सन्तुष्ट न रखें तो उनके लिए बड़े-बड़े मठ और मन्दिर कौन बनवायेंगे और उनके लिए उत्तम-उत्तम भोजन, वस्त्र और सवारियाँ कहाँ से मिलेंगी? अतएव सरस्वती-पुत्रों का तो यही कर्त्तव्य होगा कि लक्ष्मीपतियों के लिए समाज में शान्त वातावरण बनाये रखें जिससे कि शूद्र और अछूतों में आत्मचेतना जागृत होकर संगठित रूप में कोई क्रान्ति या आन्दोलन न कर बैठें और यदि पाश्चात्य शिक्षा के द्वारा सुविधा पाकर शूद्रादिकों में से किसी समुदाय में कुछ जागृति या आत्मचेतना हुई तो उसे जनेऊ देकर और ब्राह्मण-क्षत्रियादि होने की व्यवस्था देकर बीच में ही लटका रखा, जिसमें कि वह अपने विशाल बहुजन-समुदाय के हित के लिए किसी संगठन और आन्दोलन में भाग न ले सकें।" (३१ अक्तूबर, १९४९)

इस प्रकार हम देखते हैं कि महास्थविर बोधानन्दजी के जीवन में सामाजिक संघर्ष, सुधार एवं उत्थान के प्रयत्नों का एक अद्भुत सामंजस्य था। वे भारतीय बुद्ध शासन के हित के लिए एक क्षेत्र तैयार करने में सदा लगे रहे जिसमें उन्हें काफी कष्ट सहना पड़ा, कटु अनुभव करने पड़े, किन्तु वे कभी भी पीछे नहीं हटे। अपने उद्देश्य की पूर्ति में सदा ही आगे बढ़ते रहे। उनका जीवन भारतीय नव-तरुणों के लिए उच्चादर्श से ओतप्रोत था। उन्हें उनके जीवन से समाज-सेवा और आत्मोत्थान की प्रेरणा प्राप्त होगी।

दो चरण चले!

श्री श्रीहरि

आगे-आगे दो चरण चले, पीछे-पीछे इतिहास चला!
उन दो चरणों के चिह्न अमर,
उन दो चरणों की रज पावन,
जिनके वरदानों से बदली
युग की आत्मा, युग का तन-मन,
जब त्याग-तपस्या-संयम का वैभव देकर संन्यास चला!
दो चरण चल पड़े, समय रुका,
दो चरण अड़ गये, काल रुका,
दो मन्त्र अहिंसा-करुणा के,
हिंसा का भीषण व्याल झुका,
दानवता का विष पी लेने मानवता का विश्वास चला!
महलों का मधु यौवन विस्मित,
सत्ता की लिप्सा मूक-मौन,
पीड़ा उल्लसित हुई, बोली—
निर्वाण लिये आ गया कौन?
जब कायाकल्प विकृतियों का कर देने नवल विकार चला!
फिर हँसो आज ओ कपिलवस्तु!
मंगल गाओ ओ वैशाली!
फिर लहराओ ओ बोधिवृक्ष!
धीरज धर अरी आम्रपाली!
फिर जर्जर युग के पतझर को जीवन देने मधु-मास चला!
आगे-आगे दो चरण चले, पीछे-पीछे इतिहास चला!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धगया और सारनाथ

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

यूँ तो बौद्ध-शिल्पकला और चित्रकला के प्रतिनिधि हैं साँची और अजन्ता; किन्तु भारतीय संस्कृति के प्रतीकों में जिन दो स्थानों की गिनती होनी ही चाहिए वे हैं बुद्धगया और सारनाथ।

सिद्धार्थ का जन्म लुम्बिनी में और बुद्ध का जन्म बुद्धगया में हुआ था, इसी प्रकार तथागत के धर्म का जन्म सारनाथ में और उनका परिनिर्वाण कुशीनगर में हुआ। यह लुम्बिनी, बुद्धगया, सारनाथ और कुशीनगर ही बौद्धों के चार प्रधान तीर्थ हैं। संस्कृति के इन चार प्रतीकों में से हम आज केवल दो की चर्चा कर रहे हैं।

सिद्धार्थ ने २९ वर्ष की आयु में गृह-त्याग किया। छः वर्ष साधना के थे। ३५ वर्ष की आयु में वह जिस स्थल पर वज्रासन लगाकर बैठे और जहाँ उन्हें बुद्धत्व लाभ हुआ उसी पुण्य-भूमि का प्राचीन नाम बोधि-मण्डप और आधुनिक है बुद्धगया। सिद्धार्थ का दृढ़ संकल्प था—

"कामं तचो च नहारु च अट्ठि च अवसिस्सतु, उपसुस्सतु सरीरे मंसलोहितं, यं तं पुरिस थामेन पुरिस-विरियेन पुरिस परक्कमेन पत्तब्बं न तं अपापुणित्वा विरियस्स सन्तानं भविस्सतीति।"

"चाहे शरीर का सारा मांस और रक्त सूख जाय और शेष रह जायँ केवल चमड़ी, नसें और हड्डियाँ ही, जो कुछ पुरुष सामर्थ्य से, पुरुष के वीर्य से, पुरुष के पराक्रम से प्राप्य हैं, मैं वह सब कुछ बिना प्राप्त किये अपने प्रयत्न को कभी शिथिल न होने दूँगा।"

जिसका ऐसा दृढ़ संकल्प हो उसका कौन-सा उद्देश्य असिद्ध रह सकता है?

ई० आई० आर० के गया स्टेशन से कुल छः मील की दूरी पर बुद्धगया स्थित है। बौद्ध यात्रियों के लिए तो बुद्धगया पूजनीय स्थान है ही, यह संसार भर के पुरातत्वविदों, इतिहासज्ञों और सामान्य पर्यटकों के लिए भी बड़ा भारी आकर्षण है।

यूँ तो बुद्धगया की चप्पा-चप्पा जमीन भारतीय इतिहास की उपादान-सामग्री की एक अनमोल कड़ी है, किन्तु यहाँ चार चीजें विशेष महत्व की हैं—

१—महाबोधि मन्दिर

२—बोधि वृक्ष

३—वज्रासन

४—विहार के गिर्द प्रस्तर-वेष्टनी

भारत के मन्दिरों में महाबोधि विहार अथवा बुद्धगया मन्दिर एक अत्यन्त प्रभावोत्पादक तथा असाधारण शिल्प-प्रासाद है। न केवल भारत में, किन्तु विदेशों में भी इसकी नकलें की गई हैं। १३ वीं शताब्दी में बर्मा के नगर में एक छोटे-मोटे बुद्ध-गया मन्दिर का निर्माण हुआ।

महाबोधि विहार के नीचे एक चतुष्कोणी-रचना है। ऊपर की ओर बढ़ते-बढ़ते अपनी गर्दन के पास पहुँचकर यह गोलाकार हो गया है। चारों कोनों पर मुख्य शिखर के सदृश चार शिखर हैं, जो इस सारे शिल्प-प्रासाद को अद्भुत सौन्दर्य प्रदान करते हैं।

विहार का मुख्य द्वार पूर्व की ओर है। द्वार तक पहुँचने से पहले यात्री को पत्थर की सीढ़ियों से उतरना पड़ता है। मन्दिर के मुख्य प्रवेशद्वार के दोनों ओर के ताकों में छोटी-छोटी बुद्ध-मूर्त्तियाँ हैं, जिन्हें तिब्बत-यात्रियों की श्रद्धा ने स्वर्णिम बना दिया है। विहार का केन्द्रिय-गर्भ सबसे नीचे तल पर है। दरवाजा और खम्भे दोनों ही पत्थर के। ज्यों ही दर्शनार्थी मन्दिर में प्रवेश करता है, ऊँचे आसन पर उसे बुद्ध की एक विशाल-प्रतिमा के दर्शन होते हैं। इसे भी तिब्बती यात्रियों ने अपनी श्रद्धा से स्वर्णिम बना दिया है। मूर्त्ति पूर्वाभिमुख है। ठीक वैसे ही जैसे किसी समय तथागत वज्रासन लगाकर बैठे थे। मूर्त्ति सचमुच एक सुन्दर कलाकृति है। चारों ओर जो थोड़ी जगह है वह इतनी साफ और स्वच्छ रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही चाहिए कि अनायास ही योगाभ्यासियों के उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हो सके।

बुद्धगया विहार का ऊपरी तल्ला भी है। इस तक दोनों ओर की सीढ़ियों से पहुँचा जा सकता है। छत पर पहुँच कर मुख्य शिखर की परिक्रमा भी की जा सकती है। चारों कोनों पर बने हुए चार शिखरों से पश्चिम की ओर के दोनों शिखरों में बोधि सत्वों की मूर्त्तियाँ हैं और पूर्व के दोनों शिखरों में से होकर सीढ़ियों का रास्ता है। इन सीढ़ियोंवाले शिखरों में भी एक-एक बुद्ध-मूर्त्ति विराजमान है। खेद का विषय है कि इन सभी मूर्त्तियों के गले में गेरुए रंग के चिथड़े पड़े हैं। न जाने अनजान हाथों ने क्या सोचकर मूर्त्तियों के सौन्दर्य और श्रद्धालुओं की श्रद्धा पर एक आघात किया है।

विहार के भूमितल से लगभग १५ फुट ऊँची विहार के चारों ओर की भूमि विहार की यथार्थ ऊँचाई और उसके प्रभाव को बहुत कुछ ढँक लेती है। विहार का भूमितल ४८ वर्गफुट है और ऊँचाई १७० फुट। साहने चूने का प्लस्तर है, जिसमें असंख्य ताक हैं, उत्कीर्ण मूर्त्तियाँ हैं, बेल-बूटे हैं। मन्दिर का सुन्दरतम दर्शन उत्तर से ही होता है। यह एक ऐसा दृश्य है जिसे कोई श्रद्धालु कभी भूल ही नहीं सकता—अपनी प्रभावोत्पादक प्रकृति के कारण और चारों ओर की शान्ति तथा गाम्भीर्य के कारण।

बोधि-वृक्ष—वैशाख-पूर्णिमा की रात्रि को तथागत ने जिस पीपल के वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया था उसी वृक्ष को श्रद्धालुओं ने बोधिवृक्ष कहा है। ठीक वह वृक्ष तो अब अपने स्थान पर नहीं ही है। इतिहास ने उसे दो-दो बार—एक बार अशोक की ईर्ष्यालु रानी तिष्यरक्षिता के हाथों और दूसरी बार ससांक के हाथों - कटते देखा है। लेकिन वह अपनी कटी हुई जड़ों में से फिर-फिर उग आया। १८७० में जब जरनल कनिंघम विहार की मरम्मत के कार्य में संलग्न थे, वह पुरातन वृक्ष गिर पड़ा। उन्होंने उसकी एक शाखा लेकर ठीक उसी स्थान पर लगवा दी। आज का बोधिवृक्ष यही कोई ८० वर्ष पुराना बोधिवृक्ष है। अपने महान पूर्वज का उत्तराधिकारी होने से वह अपने पूर्व के बोधि-द्रुमों की भाँति ही पूज्य है।

ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी में अशोक-पुत्री संघमित्रा उस पुरातन बोधिवृक्ष की ही एक शाखा सिंहल ले गई। वह वहाँ के पवित्र ऐतिहासिक नगर अनुराधपुर में लेजाकर रोपी गई। सिंहल के बौद्ध पिछले दो हजार वर्ष से प्राणपण से उसकी सेवा और पूजा करते चले आ रहे हैं। संसार भर में उससे पुराना ऐतिहासिक वृक्ष दूसरा नहीं ही है।

वज्रासन—जिस आसन से अथवा जिस आसन पर बोधिसत्व ने विराजमान होकर मार-विजय के अनन्तर बुद्धत्व प्राप्त किया, उसी स्थल पर बुद्ध के उस अविजित संकल्प का मूर्त रूप वज्रासन विद्यमान है। पत्थर का एक आसन। सुन्दर रंग से उत्कीर्ण। ७ फुट ६ इंच लम्बा। ४ फुट १० इंच चौड़ा और ३ फुट ऊँचा। यह मन्दिर और बोधिवृक्ष के बीच एक ऊँचे प्लेटफार्म पर स्थित है।

विहार के गिर्द की प्रस्तर-वेष्टनी—इस समय इस प्रस्तर-वेष्टनी का एक हिस्सा ही शेष बचा है। यह साधारणतया अशोक-कालीन समझी जाती है। किन्तु इस पर उत्कीर्ण लेख ही इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं। यह वास्तव में बहुत बाद की शुँग कालीन रचना है। ब्राह्मी अक्षरों में कई दाताओं के नामोल्लेख भी इस पर जहाँ तहाँ उत्कीर्ण हैं। अशोक के समय की प्रस्तर-वेष्टनी बहुत चिकनी और पालिश की हुई-सी है और यह है सामान्य। उनमें कहीं कुछ भी उत्कीर्ण नहीं है और वे अनेक कलाकृतियों से अलंकृत हैं।

बुद्धगया-मंदिर के दो हजार वर्ष के इतिहास ने बहुत ऊँच-नीच देखा है। पाँचवीं शताब्दी के फाहियान और सातवीं शताब्दी के ह्यूनसांग के यात्रा-वृत्तान्त उस इतिहास के दो महत्त्वपूर्ण परिच्छेद हैं। उसका सबसे अन्तिम परिच्छेद सबसे अधिक दुःखद है।

अब हम बुद्धगया से सारनाथ चले। एक दृष्टि से हमारे लिए सारनाथ बुद्धगया से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि बुद्धगया में तो सिद्धार्थ को ज्ञान प्राप्त हुआ था और सारनाथ से हम सबको ज्ञान प्राप्त होना शुरू हुआ। लिखा है कि "वाराणसी में, ऋषिपतन में, मृगदाय में, तथागत ने वह धर्मचक्र प्रवर्तित किया जो न कोई (दूसरा) श्रमण ही कर सके, न ब्राह्मण ही कर सके, न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई देवता ही कर सके, न मार ही कर सके और न स्वयं ब्रह्मा ही कर सके।"

'सारनाथ' नाम की एक से अधिक व्याख्यायें की गई हैं। आश्चर्य है कि किसी प्राचीन ग्रन्थ में 'सारनाथ' नाम ही नहीं आता। पालि वांमय में इस पुण्य-भूमि का उल्लेख 'इसिपतन' तथा 'मिगदाय' नाम से ही होता है।

बुद्धगया से क्रमशः चारिका करते-करते जिस समय बुद्ध वाराणसी पहुँचे तो यहाँ पहले से पहुँचे हुए उनके किसी समय के पाँच शिष्यों ने उन्हें मार्ग-भ्रष्ट समझ उनका आदर-सत्कार नहीं किया। सिद्धार्थ ने समझाया कि गौतम मार्ग-भ्रष्ट नहीं है। उन्होंने उन पंच वर्गीय भिक्षुओं को उपदेश दिया—

"भिक्षुओ, साधु को इन दो सिरे की बातों से बचना चाहिए। कौन-सी दो बातों से? एक तो इस हीन, ग्राम्य, सामान्य मनुष्यों के योग्य, अनार्य-जन सेवित, अनर्थकारी काम-वासनाओं से युक्त जीवन से और दूसरे दुःखमय, अनार्य-जन-सेवित, आत्म-क्लेशमय जीवन से। इन दोनों ही अतियों में न जाकर तथागत ने मध्यम मार्ग खोज निकाला है जो कि आँख देनेवाला है। वह मध्यम मार्ग जो तथागत ने खोज निकाला है? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग—सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-प्रयत्न, सम्यक्-जीविका, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि। यही है भिक्षुओ, मध्यम मार्ग।"

सारनाथ या ऋषिपतन-मृगदाय में ही भगवान् बुद्ध के साठ अर्हत्—शिष्य हो गये थे। उन्हें सम्बोधित करते हुए भगवान् ने उपदेश दिया था—

"भिक्षुओ, जितने भी दिव्य अथवा मानुष बन्धन हैं, मैं उन सबसे मुक्त हूँ। तुम भी सभी दिव्य अथवा मानुष बन्धनों से मुक्त हो। भिक्षुओ, बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, सुख के लिए, हित के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओ, आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अन्त में कल्याणकारक धर्म का उपदेश करो।"

वर्तमान सारनाथ के प्राचीन और आधुनिक रूप में विभाजक रेखा खींचना सरल कार्य नहीं। पुस्तकालय, धर्मशाला, महाबोधि विद्यालय, महाबोधि डिसपैंसरी, आदि संस्थाएँ आधुनिक सारनाथ का प्रतिनिधित्व करती हैं, और अनेक स्तूप, धर्मराजिक स्तूप के ध्वंसावशेष, प्राचीन विहारों के खण्डहर तथा कुमारदेवी के बनवाये हुए जिन-चक्र-विहार के अवशेष प्राचीन सारनाथ के प्रतीक हैं। मूलगन्ध कुटी विहार और म्युजियम प्राचीन और आधुनिक दोनों का सम्बन्ध स्थापित करनेवाली और दोनों के बीच की कड़ियाँ हैं।

धमेक स्तूप अन्दर से एकदम ठोस है। नीचे तक खोजने पर भी इसके अन्दर से कुछ हाथ नहीं लगा। सम्भावना यही है कि भगवान् बुद्ध का प्रथम उपदेश यहीं हुआ। तथागत का प्रथम उपदेश धर्मचक्र के नाम से प्रसिद्ध है। यही धर्मचक्र इस समय स्वतन्त्र भारत के राजकीय चिह्न के रूप में अपनाया गया है। धर्मचक्र = धम्मचक्क = धम्म + एक = धमेक। इसी क्रम से इस स्तूप का धमेक नाम पड़ा प्रतीत होता है। इसकी गोलाई कोई १०० फुट और ऊँचाई कोई डेढ़ सौ फुट होगी।

इसकी आरम्भिक रचना अशोक-कालीन और बाद की गुप्तकालीन तक चली गई है।

विहारों के खँडहरों में धर्मराजिक स्तूप और अशोक-स्तम्भ मुख्य हैं। धर्मराजिक स्तूप तो अब एक प्रकार से नामशेष रह गया है, किन्तु अशोक-स्तम्भ एक बार खण्डित होकर भी फिर अपने जुड़े हुए रूप में यथास्थान विद्यमान है। उसका चार सिंहोंवाला प्रसिद्ध सुन्दर ऊपरी भाग पास के म्युजियम में सुरक्षित है। अशोक-स्तम्भ का ब्राह्मी लेख उसके अशोक-स्तम्भ होने का अमिट साक्षी है।

प्राचीन विहार के ध्वंसावशेषों में कुमार देवी का बनवाया हुआ मन्दिर ही कदाचित् बारहवीं शताब्दी की अन्तिम रचना है। उसके बाद प्रतीत होता है, सारनाथ में फिर कोई और विहार बना ही नहीं। इस समय सारनाथ में जो नया जीवन और नया जागरण दिखाई देता है वह पूरे आठ सौ वर्ष तक एक प्रकार से सारनाथ के मूर्छित रहने के बाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारनाथ और उसके आस-पास से प्राप्त अनेक कला-कृतियाँ सारनाथ म्युजियम में संग्रहीत हैं।

सारनाथ स्टेशन से मूलगन्ध कुटी विहार की ओर आगे बढ़ते हुए सड़क के किनारे चौखण्डी स्तूप है। हुमायूँ की याद में अकबर की बनवाई हुई ऊपर की इमारत के बारे में स्थानीय जनता का कथन है कि लोरी नाम का अहीर लगभग आधी मील दूर स्थित धमेक स्तूप से दूध लेकर इस चौखण्डी स्तूप पर कूद जाया करता था।

इसमें क्या सन्देह हो सकता है कि यह किसी बहादुर अहीर की सूझ है।

भारतीय संस्कृति के दो बड़े प्रतीकों, बुद्धगया और सारनाथ को हमारा नमस्कार है।

शाल तरुओं की छाँह में

श्री देवदत्त शास्त्री

इक्ष्वाकुवंशी महाराज सुजात के अवपार आदि पाँच पुत्रों को उनकी विमाता ने जब वनवास दे दिया, तो वे पाँचों राजकुमार महर्षि कपिल के आश्रम में जाकर रहने लगे। कपिल ने उन्हें शिक्षा-दीक्षा देकर हिमालय की तराई में बस्तियाँ बसाकर राज-संचालन करने का आदेश किया।

इसके अनुसार पाँचों राजकुमारों ने मिलकर एक नवीन राज्य की नींव डाली, जो कपिलवस्तु के नाम से विख्यात हुआ। जैसे अवध के इक्ष्वाकुवंशी नरेश कालान्तर में रघुवंशी कहलाने लगे उसी प्रकार कपिलवस्तु के इक्ष्वाकु वंशी भी बाद में शाक्यवंशी कहलाने लगे। इसी वंश में महाराज शुद्धोदन बड़े पुण्यात्मा और प्रतापी राजा हुए।

महाराज शुद्धोदन की पटरानी महामाया रूप, गुण, शील और यौवन-सम्पन्न होकर भी सन्तान-सुख से वंचित थीं और यही उनके जीवन में एक ऐसा अभाव था जो उन्हें सदैव चिन्तित किये रहता था। किन्तु ईश्वर की इच्छा! जब वे जीवन की ४४ सीढ़ियाँ पार कर गयीं और पैंतालीसवीं सीढ़ी पर उन्होंने चरण रक्खा तो वे गर्भवती हुईं! शाक्य दम्पति को मुँहमाँगा-सा वरदान मिला। धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने लगा। रानी महामाया ने यह इच्छा प्रकट की कि यह सन्तानोत्पत्ति उनके मातृ-गृह में ही हो। अतएव महाराज ने महारानी महामाया को उनके मातृ-गृह, देवदह, पहुँचाने की सारी तैयारियाँ कर दीं।

इस यात्रा के बीच में महारानी को लुम्बिनी कानन में ठहरना पड़ा। उसी समय दैवात् उन्हें प्रसव-वेदना होने लगी। उस दिन वैशाखी पूर्णिमा थी, लुम्बिनी कानन के शाल-देवदारु-तरुओं की अपूर्व छटा धरती का शृंगार बन रही थी।

उधर महामाया की प्रसव-वेदना बढ़ने के साथ-साथ प्रकृति भी अधिकाधिक उत्फुल्ल और पुलकित होती जा रही थी। यही नहीं, प्रसव-काल में विचित्र घटनाएँ भी होने लगीं। शाल-तरुओं की शाखाओं में विचित्र रंग-विरंगे पत्रों के साथ कमल-पुष्प खिल उठे। जगह-जगह पर पृथ्वी को फोड़-फोड़कर जल के फौव्वारे ताड़ वृक्षों के बराबर ऊँचे उठ रहे थे। शंख, आनक, मृदंग, मर्दल आदि मंगलवाद्यों की ध्वनियाँ अज्ञात दिशाओं और आकाश से सुनायी पड़ रही थी। गंभीर घोष करते हुए बादल बिना समय के ही बरस रहे थे।

ऐसे आश्चर्यजनक दृश्य देखकर ज्योतिषियों ने बताया कि देवी के गर्भ से किसी दिव्य शक्ति का अवतार होनेवाला है। इस भविष्यवाणी के साथ ही महारानी की प्रसव-वेदना तीव्र हुई और तथागत बुद्धदेव का जन्म हुआ। आचार्य ने नवजात शिशु का नाम सिद्धार्थ रक्खा, जो सर्वथा सार्थक था।

छठी हो जाने के बाद सातवें दिन माया देवी परलोक सिधार गईं। शिशु सिद्धार्थ का पालन-पोषण उनकी विमाता और मौसी रानी प्रजापती ने किया।

\+ \+ \+

कुमार सिद्धार्थ ने आचार्य-कुल में जाकर अगणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रों का अध्ययन किया और समावर्तन के बाद वह राजभवन में रहने लगे।

राजकुमार सिद्धार्थ बचपन से ही चिन्ताकुल और विरक्त से रहा करते थे। उनकी ऐसी अवस्था देखकर महाराज शुद्धोदन ने देवदह की राजकुमारी यशोधरा (गोपा) से राजकुमार सिद्धार्थ का विवाह कर दिया, किन्तु यह विवाह-बन्धन सिद्धार्थ को न बाँध सका। उनकी वैराग्य-भावना अपरिवर्तनीय बनी रही। नव-यौवना सुन्दरी यशोधरा का रूप-लावण्य, राजमहल का रंगमय वातावरण, राजसी-ठाट और ऐश्वर्य की चमक-दमक राजकुमार को किंचिन्मात्र आकर्षित न कर सकी।

इसी कशमश में जीवन के २८ वसन्त बीत गये। जब सिद्धार्थ २९ वर्ष के हुए तो गोपा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यही अवसर सिद्धार्थ को संन्यास के लिए उचित भी जान पड़ा। उन्होंने अपने पिता से अपने विचार व्यक्त किये। पिता ने बहुतेरा समझाया-बुझाया, संसार से अनुराग करने के अनेक उपाय किये गये, किन्तु सिद्धार्थ का कहना था कि मैं संन्यास लेने से तभी रुक सकता हूँ, जब कोई मुझे यह विश्वास दिला दे कि मैं आजीवन रोग-ग्रस्त न होऊँगा, वृद्धावस्था मुझे पीड़ित न कर सकेगी, मृत्यु मेरे पास न आ सकेगी।

राजकुमार के इस तर्क का उत्तर कौन दे सकता था? उनका संकल्प सत्य था और वह उसी पर दृढ़ रहे। अन्त में एक दिन निस्तब्ध निशा में पत्नी गोपा और पुत्र राहुल को अकेला छोड़कर अपने सारथि छन्दक के साथ रथारूढ़ हो सिद्धार्थ ने महानिष्क्रमण किया। कपिलवस्तु से ६ योजन चलकर अनोमा नदी के तट पर रथ से उतर पड़े। अपने सभी वस्त्राभरण छन्दक को देकर उसे कपिलवस्तु लौट जाने की आज्ञा दी। चलते समय उन्होंने कहा—"छन्दक! तुम पिताजी से जाकर कहना कि वह मेरे लिए शोक न करेंगे। मैं बुद्धत्व प्राप्त कर शान्त चित्त होकर लौटूँगा।"

छन्दक लौटकर जब कपिलवस्तु पहुँचा तो यशोधरा ने उसे उलाहना देते हुए कहा—

"छन्दक, तुम उनके प्रियपात्र थे, हितचिन्तक थे, तुम समय पर कार्य करनेवाले थे। इसीलिए तुम्हारी सहायता से मेरे पति कभी न लौटने के लिए चले गये। अब तुम आनन्द मनाओ! तुम्हारा श्रम सफल हुआ!"

यह कहकर यशोधरा भभक कर रोने लगी। इसके क्रुद्ध भाव से वह छन्दक से फिर कहने लगी—'मूर्ख और अवसर न समझनेवाले मित्र की अपेक्षा बुद्धिमान शत्रु अच्छा होता है। मित्र कहलानेवाले मूर्ख छन्दक, तुमने मेरे वंश का नाश कर दिया। और यह कन्थक घोड़ा भी अवश्य ही मेरा शत्रु है जो रात में सब लोगों के सो जाने पर मेरा सर्वस्व चुरा ले गया।'

\+ \+ \+

इधर राजकुमार सिद्धार्थ ब्रह्मचारी वेष धारण कर वैशाली पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने रुद्रक पण्डित और आचार्य आलार कालाम के साथ रहकर शास्त्राभ्यास किया, किन्तु उनकी ज्ञानपिपासा शान्त न हुई। फलतः वहाँ से वे चल पड़े। उनके साथ पंचवर्गी ब्रह्मचारी गण भी ज्ञान की खोज में निकल पड़े।

अन्ततोगत्वा पाँचों ब्रह्मचारियों के साथ सिद्धार्थ गया पहुँच कर घोर तप करने लगे। तपश्चर्या और व्रत-उपवास से जब शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया तो एक दिन उन्होंने सोचा कि शरीर को कष्ट देकर बुद्धत्व नहीं प्राप्त हो सकता। तपस्या तो साधन मात्र है। उन्होंने यह विचार जब ब्रह्मचारियों से प्रकट किया तो वे उनके विचारों से असहमत हो गये और सिद्धार्थ का साथ छोड़कर काशी चले गये।

अब सिद्धार्थ वहीं बोधिवृक्ष के नीचे समाधि लेकर बैठ गये। समाधि में ही उन्हें वैशाखी पूर्णिमा के दिन चार आर्यसत्यों का ज्ञान हुआ। संसार का सूक्ष्म रहस्य उन्होंने जब जान लिया तो उन पाँचों ब्रह्मचारियों की खोज में वे काशी आये। इसिपत्तन (सारनाथ) में उन्होंने आर्यसत्यों की व्याख्या करते हुए प्रथम भाषण किया। पाँचों ब्रह्मचारियों ने भी उनका बुद्धत्व स्वीकार किया।

इसके बाद बुद्ध राजगृह आये और शाक्यवंशी राजाओं को भी उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। साधारण जनता से लेकर राजवंशों तक ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। बौद्ध धर्म का प्रचार करते हुए गौतमबुद्ध चातुर्मास्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रावस्ती (सेहतमेहत) में ही बिताते थे। पैंतालीसवाँ चातुर्मास्य बिताकर भगवान् बुद्धदेव राजगृह पहुँचे और वहाँ पर वे गृद्ध-कूट पर्वत पर ठहरे।

\+ + +

—उस समय मगधनरेश अजातशत्रु वृजिवंशियों पर आक्रमण करने जा रहे थे। उन्होंने जय पराजय के सम्बन्ध में बुद्धदेव से पूछने के लिए वर्षकार ब्राह्मण को भेजा। ब्राह्मण के पूछने पर बुद्धदेव ने कहा—

"ब्राह्मण, जबतक वृजिवंशियों में एकता है, सार्वजनिक सम्मतियों और सेवाओं को मान्यता है, कुलांगनाओं और कुलकुमारियों में सदाचार है और जब तक उनमें बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना है, तब तक उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी। उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता।"

इसके बाद बुद्ध पाटलिपुत्र, पावा, वैशाली आदि स्थानों के भिक्षु संघों के उपदेश देते हुए कुशीनगर की ओर चले। तथागत का स्वास्थ्य क्रमशः क्षीण हो रहा था। कुशीनगर पहुँचते-पहुँचते उनके पेट में दर्द शुरू हुआ। रास्ता छोड़कर एक वृक्ष के नीचे अपने शिष्य आनन्द को वस्त्र बिछाने का आदेश किया और फिर वह वहीं लेट गये। तथागत ने पानी माँगा। पास में बहती हुई नदी में जाकर आनन्द ने देखा कि बैलगाड़ियों के आने-जाने से नदी का पानी कीचड़ हो गया है, वह लौट आये। भगवान् ने फिर पानी माँगा किन्तु पीने योग्य पानी न होने के कारण आनन्द ने टालमटोल किया। जब चौथी बार पानी माँगने पर आनन्द विवश होकर नदी में गये तो उन्होंने देखा कि नदी का पानी दूध की भाँति स्वच्छ हो गया है। कमण्डल में जल भर कर उन्होंने भगवान् बुद्ध को पानी पिलाया।

वहाँ से चलकर भगवान् हिरण्यवती नदी को पार कर कुशीनगर पहुँचे। उनका रोग विकार बढ़ता ही जा रहा था। नगर के बाहर दो शालतरुओं की छाँह में भगवान् की अन्तिम सेज दूर्वा पर बिछ गई। दाईं बाँह मोड़, ओठों में कोमल हँसी दबाकर आँखों को मुकुलित कर जब प्रभु लेट गये तो शिष्य समुदाय अनाथ बालकों की भाँति रो उठा। उनका अन्तर्रोदन सुनते ही करुणासागर ने खोले अपने नयन व्यथित हो उनके दुःख से, अन्तिम बार धीर गम्भीर स्वरों में रुक-रुक कर कहा—

"उठो आनन्द! हृदय को चंचल मत करो। अब मेरे जाने का समय आ गया है। मेरी जीर्ण देह इस जीवन के रथ को अब आगे पृथ्वी पर तिल भर भी न खींच सकेगी। देखो अपने चारों ओर अन्धकार में पड़े प्राणी कराह रहे हैं। इनके मंगल का यत्न करो, इनके पथ के दीप बनो और अपनी मुक्ति स्वयं ही खोजो तुम्हें सफलता प्राप्त हो।"

यह कल्याणवाणी कह दुर्बल हाथ थोड़ा उठा, मन्द-मन्द हँसी हँसकर अन्तिम बार शिष्यों को देख प्रभु ने अपनी आँखों के नीचे जीवन-शिखा बुझा दी।

भगवान् गौतम बुद्ध

श्री रामचरण लाल

गौतम कहा रहे हो
भू कपिलवस्तु जाया, सिद्धार्थ नाम पाया;
पत्नी यशोधरा से राहुल-पिता कहाया।
माया से जन्म पाकर माया नसा रहे हो॥
साधन सभी सुद्धोदन संसार-सुख जुटाये;
तू विरत तुष्टि पाने तप-हेतु-वन सिधाये।
जनतंत्र-शाक्य-कुल की शोभा बढ़ा रहे हो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप-तप्त किया काया, कुछ भी न हाथ आया ;
अश्वत्थ-तरु-तले जा आलोक-ज्ञान पाया।
निज बोध से गया को तरु को बता रहे हो ॥
तप-क्लिष्ट-देहनासी-निस्तत्व तू बताया ;
अति-काम-भोग-लिप्सा कह व्यर्थ कर दिखाया।
अति छोड़ मध्य-स्वर्णिम-मारग सजा रहे हो ॥
प्रज्ञान-रवि-किरण से अज्ञान-तम नसाया ;
तू जाग बुद्ध बनकर पुनि जगत् को जगाया।
जग-बोधिसत्व बनकर सब-दिशि समा रहे हो ॥
धुरि-बौद्ध-धर्म वरुणा-घाटी में आ धँसाया ;
शुभ-धर्मचक्रपवत्तन शिव-धाम में जगाया।
कर-धर्म-दीप ले ऋषिपत्तन जला रहे हो ॥
शुभ-सिंहनाद समता का सत्य का सुनाया ;
शुचि-शंखध्वनि-अहिंसा स्वर-सप्त में बजाया।
ले दुन्दुभी-दया की नभ में बजा रहे हो ॥
बलि-यज्ञ-जीव-हिंसा इह लोक से हटाया ;
धर्मान्ध-स्वार्थलोलुप-द्विज-धर्म धर दबाया।
तू वर्ण-वर्ग शोषण-शासन मिटा रहे हो ॥
"संसार-क्षणिक-दुखमय", 'समुदय निदान दुख है' ;
'दुख-अन्त भी सही है', 'अवसान-पंथ-दुख है'।
चत्वारि आर्यसत्यों को तुम सिखा रहे हो ॥
सब लोक में अविद्या को कष्टमूल जाना ;
आवागमन का बन्धन अज्ञान कह बखाना।
अष्टांग मुक्ति-जग-हित-मारग दिखा रहे हो ॥
अस्तित्व-सृष्टिमूलक विधि-कर्म को बताया ;
सब-कर्मबन्धमोचन पुनि ज्ञान भू पै लाया।
निर्वाण सकल-नारी-नर-हेतु ला रहे हो ॥
सुरवाणि छोड़ शिक्षा जनवाणि में सुनाया ;
अंकित-अशोक-पर्वत-पत्थर-अमर बनाया।
मर्याद पालिभाषा भारत बढ़ा रहे हो ॥
परमात्म-आत्म-विषयक, नहिं वाद को बढ़ाया ;
निश्चित जरा-मरण-दुख, यह जीव को सुझाया।
दुख-मुक्ति-विश्व में तन-मन-धन लगा रहे हो ॥
सर्वार्थ सिद्ध होकर सिद्धार्थ तू कहाया ;
पुनि विश्व-बोध करके तू बुद्ध नाम पाया।
जग को जगा के भगवन् गौतम कहा रहे हो ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दया का अधिकार

श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पात्र

सिद्धार्थ—राजकुमार

शुद्धोदन—कपिलवस्तु के राजा सिद्धार्थ के पिता

देवदत्त—सिद्धार्थ का चचेरा भाई

सत्यव्रत—सिद्धार्थ का मित्र

चन्द्रसेन देवदत्त का मित्र

(राजकुमार सिद्धार्थ की बाल्यावस्था। वह अपने मित्र सत्यव्रत के साथ राजोद्यान में पुष्पों और पक्षियों की शोभा देखकर आनन्दित हो रहे हैं।)

सिद्धार्थ—सत्यव्रत, तुम तो इस पुष्पलता पर ही मुग्ध हो गये। जरा सिर ऊपर उठाकर तो देखो।

सत्यव्रत—क्या है, राजकुमार!

सिद्धार्थ—ऊपर, ऊपर; आकाश में।

(आकाश मार्ग से जाते हुए हंसों की पंक्तियों की ओर इशारा करता है।)

सत्यव्रत—अरे ये तो राजहंस हैं!

सिद्धार्थ—हाँ, देखो कितने सुन्दर लगते हैं। अपने श्वेत पंख फैलाये नील गगन में तैरते हुए चले जा रहे हैं।

सत्यव्रत—मैंने सुना है कि ये पक्षी कई कई सौ योजन उड़कर ऋतु-परिवर्तन में एक स्थान से दूसरे स्थान को चले जाया करते हैं।

सिद्धार्थ—आगेवाला राजहंस इनका राजा होगा। देखो, कितने स्नेह से इस मार्गहीन विशाल आकाश में इनका पथ-प्रदर्शन करता हुआ इन्हें सुख और शान्ति के स्थान पर लिए जा रहा है।

सत्यव्रत—ये लोग रात्रि को तो कहीं विश्राम करते होंगे?

(उद्यान के दूसरे कोने से एक बाण छूटता है और हंसों के नायक के समीप से सनसनाता हुआ निकल जाता है।)

सिद्धार्थ—अरे, इनपर यह बाण किसने चलाया? इनका नायक धरती पर आ गिरा होता।

सत्यव्रत—उधर कुमार देवदत्त धनुष-बाण लिये घूम रहे थे।

सिद्धार्थ—वही होंगे। (इतने में दूसरा तीर छूटता है और हंसों का नायक चोट खाकर गिरने लगता है। उसके पंखों में तीर चुभा हुआ है।) हाय-हाय, मार ही दिया निर्दय ने। ये...ये...ये...यह गिरा। इसी झाड़ी में। चलो देखें। (दोनों दौड़कर जाते हैं। सिद्धार्थ धीरे से पक्षी को झाड़ी से बाहर निकालता है।) पक्षी अभी जीवित है, सत्यव्रत! बाण ने केवल इसके पंख को ही वेधा है। तुम मेरी कँधावर चीरकर एक पट्टी बनाओ, तबतक मैं इसके शरीर से यह बाण खींचकर बाहर निकालता हूँ। (सिद्धार्थ पक्षी को गोद में लेकर पालथी मारकर इस तरह बैठता है जैसे बाद में भगवान् बुद्ध बैठा करते थे। सत्यव्रत पट्टी बनाता है और सिद्धार्थ पक्षी के पंखों से बाण निकालकर कुछ दूर फेंक देता है। देवदत्त का मित्र चन्द्रसेन दौड़ता हुआ आता है।)

चन्द्रसेन—यहाँ कोई आहत हंस गिरा है? (सिद्धार्थ के हाथ में हंस देखकर) अरे, यही तो है। अच्छा हुआ जो आपने पकड़ लिया, नहीं तो किसी झाड़ी में घुस जाता तो हाथ आना कठिन था।

सिद्धार्थ—और इसका जीवित बचना भी। अब भी इसके प्राण बच जायँ तब जानो। सत्यव्रत, तुम उस जीवनदा बटी का थोड़ा रस तो निकालो।

चन्द्रसेन—यह क्या, राजकुमार? इसे कुमार देवव्रत ने बाण मारकर गिराया है। उन्होंने मुझसे इसे ढूँढ़ लाने के लिए कहा है।

सिद्धार्थ—उनसे कह दो कि हंस अभी जीवित है और अब उन्हें नहीं मिल सकता। (चन्द्रसेन कुछ कहना चाहता है) खड़े मत रहो, जाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रसेन—मैं कुमार देवदत्त को ही भेज देता हूँ।

सिद्धार्थ—जाओ भेज दो। (चन्द्रसेन का प्रस्थान) सत्यव्रत, देखो यह किस तरह भय से काँप रहा है।

सत्यव्रत—पीड़ा के कारण इसे मूर्छा आ रही है, राजकुमार।

सिद्धार्थ—क्या इसे बहुत ही पीड़ा हो रही होगी?

सत्यव्रत—जी हाँ, बहुत। किन्तु आप इसके विषय में कुछ भी न सोचें। मुझे महाराज का आदेश है कि मैं आपका ध्यान किसी दुःखद विषय की ओर न जाने दूँ।

सिद्धार्थ—मुझे बताओ सत्यव्रत, इसे कितनी पीड़ा हो रही होगी!

सत्यव्रत—जिसने पैरों में काँटा चुभने की पीड़ा भी नहीं जानी, उसे मैं एक तीक्ष्ण बाण से आहत पक्षी की पीड़ा का ज्ञान कैसे कराऊँ?

सिद्धार्थ—सत्यव्रत, जरा वह बाण उठा दो।

सत्यव्रत—बाण क्या कीजिएगा?

सिद्धार्थ—उठा तो दो।

सत्यव्रत—लीजिये। (बाण उठाकर देता है।)

सिद्धार्थ—आज मैं इस पक्षी की पीड़ा का अनुभव करूँगा। देखूँ, यह बाण कैसी पीड़ा देता होगा?

सत्यव्रत—(घबराकर) यह क्या कर रहे हैं, राजकुमार?

(सिद्धार्थ अपनी भुजा में बाण चुभो लेता है और पीड़ा से चीख पड़ता है। फिर हंस को अत्यधिक करुणा से अपने कपोलों से लगा लेता है।) अरे, यह क्या किया आपने? आपने बाण अपनी भुजा में क्यों चुभो लिया?

सिद्धार्थ—(करुणा से अधीर होकर) इस मूक पक्षी की पीड़ा समझने के लिए। इतने नन्हें-से जीव को इतनी गहन पीड़ा, सत्यव्रत?

सत्यव्रत—(घबराकर) यह आपने अच्छा नहीं किया, राजकुमार! महाराज सुनेंगे तो मुझे दण्डित करके आपकी सेवा से पृथक् कर देंगे। लाइए, इस पर पट्टी तो बाँध दूँ। (पट्टी बाँधता है) वह देखिए, कुमार देवदत्त झपटते हुए चले आ रहे हैं। यह हंस उन्हें सौंपकर सब झगड़ा यहीं समाप्त कर दीजिए, राजकुमार!

सिद्धार्थ—तुम चिन्ता न करो, सत्यव्रत! उन्हें आने दो।

(देवदत्त का प्रवेश)

देवदत्त—सिद्धार्थ, तुमने चन्द्रसेन को मेरा हंस क्यों नहीं ले जाने दिया?

सिद्धार्थ—आपका?

देवदत्त—हाँ-हाँ। यह हंस। इसे मैंने गिराया है। तुम मेरा बाण नहीं पहचानते?

सिद्धार्थ—आकाश मार्ग से सुख-शान्ति-पूर्वक जाते हुए इन निपराध अबोध सुन्दर पक्षियों पर जब पहला बाण छूटा तभी मैं समझ गया था कि उन्हें कौन मार रहा होगा।

देवदत्त—मैं तुम्हारी कविता सुनने नहीं आया हूँ सिद्धार्थ! लाओ, हंस मुझे दो।

सिद्धार्थ—किन्तु हंस तो अभी जीवित है। मैं इसका उपचार कर रहा हूँ। यदि फिर से स्वस्थ हो गया तो मेरे पास रहेगा; यदि मर गया तो आपकी सेवा में भेज दूँगा।

देवदत्त—तुम व्यर्थ की रार मत करो, सिद्धार्थ! यह पक्षी मैं अभी लेकर जाऊँगा।

सिद्धार्थ—यह किसी आततायी के अत्याचार से पीड़ित प्राणी के समान अपनी जीवन-रक्षा के लिए मेरी शरण में गिरा। मैं इसे फिर उसी आततायी के हाथ में नहीं सौंप सकता।

देवदत्त—क्या कहा? आततायी?

सिद्धार्थ—हाँ-हाँ।

सत्यव्रत—(घबराया हुआ) राजकुमार, आप लोग व्यर्थ झगड़ रहे हैं। वह देखिए, महाराज उद्यान में घूमने निकले हुए हैं। कहीं घूमते-घूमते इधर आ गए और सब बातें सुनीं तो मेरी कुशल नहीं।

सिद्धार्थ—क्या आततायी के सिर पर सींग होती हैं? वह भी इसी प्रकार निरपराध प्राणियों को सताता फिरता है।

सत्यव्रत—कुमार देवदत्त, आप ही जाने दीजिए। आप इस धनुष-बाण से न जाने कितने पक्षी गिरा सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। समझ लीजिए, वह राजहंस कहीं झाड़ी में लुप्त हो गया।

देवदत्त—तुम चुप रहो जी। हंस मेरा है और मैं इसे लेकर जाऊँगा।

सिद्धार्थ—हंस मेरा है और आप इसे नहीं ले जा सकते।

देवदत्त—केवल तुम्हारे समीप गिरने से हंस तुम्हारा हो गया?

सिद्धार्थ—नहीं, इस पर मेरी करुणा और सहानुभूति का अधिकार है। यह पक्षी उन असंख्य प्राणियों में पहला प्राणी है जिनको मैं अपनी दया और प्रेम के अधिकार से अपना समझूँगा।

देवदत्त—मैं तुम्हारा प्रवचन सुनना नहीं चाहता। इस प्रकार समझाने से न मानोगे, तो मैं इसे अब बल-पूर्वक छीन ले जाऊँगा।

सिद्धार्थ—तो अब इसमें विलम्ब क्यों कर रहे हैं? धनुष-बाण हाथ में है ही। चला दीजिये एक बाण मेरे हृदय पर भी! बिना ऐसा किए तो आप इसे पा नहीं सकते।

सत्यव्रत—लीजिए, महाराज तो इधर ही घूम पड़े। अब क्या होगा?

देवदत्त—अब मैं उनसे ही इसका निर्णय कराऊँगा। मैं जाकर उन्हें स्वयं बुला लाता हूँ। (प्रस्थान)

सत्यव्रत—अब क्या होगा, राजकुमार? देवदत्तजी बड़े क्रोध में गए हैं। मेरे विरुद्ध भी कहेंगे।

सिद्धार्थ—तुम्हारे विरुद्ध कहेंगे तो असत्य कहेंगे, पाप के भागी होंगे।

सत्यव्रत—आप अपनी भुजा में बाण चूभो लेने की बात महाराज से न कहिएगा।

सिद्धार्थ—वह तो संभवतः कहना पड़ेगा, किन्तु तुम डरो मत।

सत्यव्रत—वे लोग आ गए। (देवदत्त तथा महाराज शुद्धोदन का प्रवेश)

देवदत्त—यही है वह हंस, यह देखिये मेरा बाण। इसीसे मैंने यह पक्षी गिराया है।

शुद्धोदन—क्या झगड़ा है, सिद्धार्थ?

सिद्धार्थ—इस समय तो कोई झगड़ा नहीं है, महाराज! झगड़ा तो उस समय होता जब यह मूक पक्षी बोल सकता। उस तीक्ष्ण बाण को देखिये और इसके कोमल लघु शरीर को देखिए। मैं नहीं, यह पक्षी आप से न्याय का याचक है।

देवदत्त—सुन ली न आपने इनकी बातें।

सिद्धार्थ—मैं महाराज से केवल इतना पूछना चाहता हूँ कि इस जीवित पक्षी पर किसका अधिकार होना चाहिए? इसके प्राण लेने का प्रयत्न करनेवाले का, या इसके प्राण की रक्षा का प्रयत्न करनेवाले का?

शुद्धोदन—तुम ठीक कहते हो, सिद्धार्थ! यह पक्षी यदि बोल सकता तो वह मुझसे तुम्हारे ही अधिकार में रहने दिये जाने की प्रार्थना करता। तुम इसे रख सकते हो। देवदत्त, तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारे लिए दूसरा हंस मँगा दूँगा।

(देवदत्त महाराज के साथ चला जाता है। सिद्धार्थ प्रसन्न होकर स्नेह और करुणा से हंस को अपनी छाती से लगा लेता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध जगत्

बुद्ध जयन्ती महोत्सव

सारनाथ—गत ९ मई को प्रातः मूलगन्धकुटी विहार में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सभापतित्व में बुद्धजयन्ती समारोह मनाया गया। सभापति ने अपने भाषण में कहा कि भगवान् बुद्ध संसार के महामानव थे। उन्होंने एक नई ज्योति दी। भारतवर्ष में बौद्ध धर्म के ह्रास की चर्चा कर आपने कहा कि हमने बौद्ध धर्म की बहुत-सी बातें खो दी हैं। स्वर्गीय प्रसाद और रवीन्द्र के साहित्य बौद्ध प्रेरणा से अनुप्राणित हैं।

सभा में भिक्षु ऊ कित्तिमा, जापानी भिक्षु फूजी योशी, श्री महेन्द्रकुमार, श्री ए० सी० बनर्जी तथा श्री कृष्णदास के भाषण हुए। भिक्षुओं द्वारा सूत्रपाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

प्रातःकाल भिक्षुओं द्वारा मंगलाचरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध विद्यार्थियों द्वारा शीलादि ग्रहण हुआ। दोपहर में भिक्षुओं को भोजन तथा स्थानीय क्षय रोग के अस्पताल के रोगियों एवं गरीबों को अन्न-वस्त्र बाँटा गया। सायंकाल मन्दिर, स्कूल आदि के चारों ओर प्रदीप जलाये गए। रात में अन्तर्राष्ट्रीय सभा हुई, जिसमें भिक्षु संघरत्न, लामा अंगरूप, श्री विजय श्रीवास्तव ने भाषण दिये।

बुद्धगया—गत ९ मई को माननीय डा० अनुग्रह नारायण सिंह के सभापतित्व में बुद्ध जयन्ती महोत्सव मनाया गया। मंगलगान के पश्चात् महोत्सव के अध्यक्ष श्री विभूतिनाथ झा द्वारा स्वागत भाषण हुआ। श्री राम-बिहारी लाल ने देश-विदेश से आये हुए संदेशों को पढ़ा। तदुपरान्त अनेक प्रमुख वक्ताओं के भाषण हुए। रात्रि में कन्या हाई स्कूल की छात्राओं द्वारा 'जय' नामक ऐति-हासिक नाटक के कुछ अंशों का प्रदर्शन हुआ।

कलकत्ता—गत वैशाख पूर्णिमा की पुण्य तिथि पर कलकत्ते में महाबोधि सभा के तत्वाधान में धर्म-राजिक विहार में बड़ी धूमधाम के साथ बुद्धजयन्ती महोत्सव मनाया गया। सभा के प्रधान मन्त्री ब्रह्मचारी श्री देवप्रियवलि सिंह ने महोत्सव का बड़ा भव्य आयो-जन किया था।

लखनऊ—वैशाख पूर्णिमा के अवसर पर लखनऊ में बौद्ध धर्मांकुर विहार तथा बुद्ध मन्दिर रिसालदार पार्क की ओर से बड़ी धूमधाम से बुद्धजयन्ती महोत्सव मनाया गया। प्रातः ६ बजे भगवान् बुद्ध की मूर्ति के साथ एक भव्य जुलूस निकला जो लगभग दो घण्टे तक नगर के विभिन्न मार्गों से होता हुआ रिसालदार पार्क के बौद्ध विहार में आया। सन्ध्या समय एक विराट् सभा हुई, जिसमें श्री जी० सी० लाल, श्री सन्तोष कुमार देव, श्रीमती लीला विद्यान्त, भिक्षु शान्तरक्षित और डा० रमा कमल मुकर्जी के भाषण हुए। दोपहर में बुद्ध पूजा और सन्ध्या को प्रदीप पूजा की गई। ९ बजे रात में श्री सन्तोष कुमार देव ने मैजिक लैंटेन से बुद्ध-जीवन के छात्राचित्र प्रदर्शित किये। प्रसाद-वितरण के पश्चात् सभा समाप्त हुई।

बम्बई—महाबोधि-सभा की ओर से बम्बई में भी गत ९ मई को बहुजन विहार में डा० बी० जी० गोखले के सभापतित्व में बुद्धजयन्ती मनाई गई। जिसके लिए पहले से ही काफी प्रचार किया गया था। बुद्धजयन्ती मनाने के लिए बम्बई की मानवतावादी लीग ने भी जनता से अपील की थी। वक्ताओं में श्री मुरारजी देसाई, भिक्षु एच० धम्मानन्द, श्री एम० वी० डोन्डे, श्री डी० एस० देवेन्द्र उल्लेखनीय हैं। बम्बई के मुख्य मन्त्री श्री मुरारजी देसाई ने कहा कि बौद्धों को चाहिए कि वे अपने देशवासियों की सेवा करें और इस प्रकार भगवान् बुद्ध के उपदेशों पर चलें। आपने कहा कि यदि हम किसी का हित नहीं कर सकते, तो कम से कम किसी की हानि न करें।

मद्रास—गत १० मई को महाबोधि-आश्रम, पेरेम्बूर में भारतीय महाबोधि सभा की ओर से बुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयन्ती मनाई गई। आश्रम पूर्ण रूप से अलंकृत किया गया था। पंचशील ग्रहण से कार्य प्रारम्भ हुआ। भिक्षु सोमानन्द की अध्यक्षता में सभा का कार्य-क्रम सम्पन्न हुआ। भिक्षु मैत्रीमूर्ति, श्रीमती जी० एस० कुलकर्णी, और श्री बी० डी० आर० जयसेन के बौद्ध धर्म पर भाषण हुए।

कुशीनगर—गत ९ मई को कुशीनगर में ससमारोह बुद्धजयन्ती महोत्सव मनाया गया। ३ बजे अपराह्न में भगवान् बुद्ध का जुलूस निकला, जो परिनिर्वाण मन्दिर और स्तूप की प्रदक्षिणा करते हुए झुंगवा गया और वहाँ से पक्की सड़क से होकर खँडहर में आया। जुलूस में बर्मा, चीन, नेपाल आदि देशों के बौद्धयात्री, पड़रौना का श्री महावीर सेवादल, स्थानीय स्कूलों के छात्र और जनता सोत्साह सम्मिलित हुई थी। रथयात्रा और हाथियों की पंक्ति भी देखने योग्य थी।

सायंकाल ५ बजे भारतीय बौद्ध संघ के अध्यक्ष श्री चन्द्रमणि महास्थविर के सभापतित्व में सभा हुई। स्थानीय प्राइमरी स्कूल के छात्रों के बुद्ध-वन्दना और स्वागत-गान के पश्चात् त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित का स्वागत-भाषण हुआ। तदुपरान्त भारतीय बौद्ध संघ के प्रधान मन्त्री भिक्षु ऊ चन्दिमा, देवरिया के जिलाधीश श्री चन्द्रमोहन निगम और नेपाल के प्रतिनिधि श्री अयोध्याप्रसाद के भाषण हुए। सब वक्ताओं ने बौद्ध धर्म पर प्रकाश डाला तथा अपनी श्रद्धांजलि भगवान् बुद्ध को अर्पित की।

श्री निगमजी ने अपने भाषण में कहा—"कुशीनगर के महत्व को देखते हुए हमें इसे आदर्शस्थान बनाने का प्रयत्न करना है। भगवान् बुद्ध के समय में यहाँ शालवन था, अतः हमें शीघ्र ही इसे शाल वृक्षों से भरा देखना है। जंगल विभाग ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया है और वर्षा-काल में यह कार्य प्रारम्भ हो जायगा। बिजली और सफाई का प्रबन्ध शीघ्र ही होगा। हम एक अच्छा डाकबंगला भी यहाँ बनाने जा रहे हैं। ग्रामोत्थान सम्बन्धी योजना के अन्तर्गत हमने कुशीनगर को केन्द्र बनाया है। इनके आसपास के ३३ गाँवों को पहले हाथ में लिया जायेगा और कुशीनगर से रामभार तक पक्की सड़क का निर्माण होगा। हम इस प्रयत्न में भी हैं कि देवरिया का नाम बदल कर कुशीनगर कर दिया जाय।

श्री निगमजी के भाषण के समय वाक्य-वाक्य पर तालियाँ बज रही थीं। जनता प्रसन्नता के मारे फूली न समाती थी। सभा में तीन प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए—(१) कुशीनगर में शीघ्र ही पुलिस चौकी बने, (२) कुशीनगर से रामभार तक एक पक्की सड़क का निर्माण हो और (३) यात्रियों के कष्टों को दूर करने के लिए बसों के आने जाने की समुचित व्यवस्था की जाय।

अन्त में सभापति का भाषण हुआ। आपने अपने भाषण में बौद्ध धर्म की विशेषताओं का विवेचन करते हुए वर्तमान जगत् के लिए उसके प्रचार की आवश्यकता पर जोर दिया। त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित के धन्यवाद देने के साथ सभा समाप्त हुई।

रात्रि में श्री महावीर सेवादल पड़रौना के खेलाड़ियों ने ८ बजे से १२ बजे तक अपने विभिन्न खेल दिखाये।

अन्य स्थान—बुद्ध सोसाइटी नागपुर श्री चम्बल भारती उज्जैन, वर्डीफालिया सूरत, चन्द्रनगर, कानपुर, धर्मोदय सभा नेपाल आदि के तत्वावधान में बुद्धजयन्ती महोत्सव मनाने के समाचार प्राप्त हुए हैं, जो स्थानाभाव के कारण नहीं दिये जा रहे हैं।

धर्मचक्र प्रवर्तनोत्सव—७ जुलाई को डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के सभापतित्व में सारनाथ में महाबोधि सभा की ओर से धर्मचक्र प्रवर्तनोत्सव मनाया गया। प्रातः बुद्ध पूजा हुई। दोपहर में भिक्षु संघ को भोजन-दान दिया गया। मूलगन्धकुटी विहार झंडी-पताका से भलीभाँति सजाया गया।

४ बजे सायंकाल 'धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त' के पाठ के बाद सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। भिक्षु सद्धातिस्स ने पर्वके महत्व को बतलाते हुए सभापति का परिचय दिया। तदुपरान्त भिक्षु धर्मरक्षित, श्री जगन्नाथ उपाध्याय, श्री अद्रीशचन्द्र बनर्जी तथा श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री के भाषण हुए।

श्री जगन्नाथ उपाध्याय ने अपने भाषण में मनुष्यत्व के मूल्यांकन की दृष्टि से बौद्ध धर्म का विकास दिखाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए उसकी नैतिक देन का विश्लेषण किया। श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने बौद्ध धर्म का एशिया में विस्तार बताते हुए कहा कि यह धर्म आज भी एशिया को संबद्ध कर सकता है। सभापति ने भगवान् बुद्ध की मुद्राओं की लोककल्याणकारी व्याख्या बताते हुए कहा कि महापुरुषों को देवकोटि में बैठाकर उनकी केवल पूजा करना हमारे समाज की सबसे बड़ी गलती है। अन्त में महाबोधि सभा के मन्त्री भिक्षु संघरत्न ने अभ्यागतों को धन्यवाद दिया। रात्रि में प्रदीप पूजा हुई।

नामकरण—लेफ्टिनेंट कर्नल श्री० एल० के० छिब्बर ने अपने नवजात शिशु का नाम 'चक्रवर्ती अशोक छिब्बर' रखा है। हम आशा और प्रार्थना करते हैं कि बालक चक्रवर्ती अशोक छिब्बर में वे सद्गुण होंगे जो सम्राट् अशोक में थे।

साँची विहार का उद्घाटन—आगामी ३० नवम्बर को नव निर्मित साँची विहार का उद्घाटन भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल द्वारा होगा। उन्होंने महाबोधिसभा के निमंत्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया है। इसी नव-निर्मित विहार में अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ रखी जायेंगी।

सारनाथ में वर्षावास—इस वर्ष सारनाथ में भिक्षु संघरत्न, भिक्षु सद्धातिस्स, भिक्षु वज्रबुद्धि, भिक्षु धर्मरक्षित और लामा वर्षावास कर रहे हैं।

सारनाथ का उत्सव—साँची-विहार के उद्घाटनोत्सव के कारण इस वर्ष मूलगन्ध कुटी विहार का वार्षिकोत्सव १ नवम्बर को ही होना तय पाया है।

सारनाथ में वेधशाला—उत्तर प्रदेशीय सरकार ने सारनाथ में गणित ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन के लिए वेधशाला खोलने का निश्चय किया है।

सरकार ने स्थान निश्चय के लिए एक समिति संघटित की थी जिसकी बैठक हाल में ही बनारस में हुई थी। समिति ने सभी स्थानों के निरीक्षण के बाद सारनाथ को चुना। इस समिति में डा० ए० एन० सिंह, डा० ए० सी० बनर्जी, डा० अकबरअली तथा श्री मुरारीलाल शर्मा थे।

ज्ञात हुआ है कि वेधशाला के लिए १ लाख रुपये का सामान खरीदा जा चुका है।

श्री शरणपाल महास्थविर—लंका के दण्डगमुवे श्री सद्धर्मोदय परिवेण के अधिपति आभिधम्मिक डे० श्री शरणपाल महास्थविर के देहावसान का दुःखद समाचार प्राप्त हुआ है। आप लंका के प्रसिद्ध विद्वान् थे। आप अनेक ग्रन्थों के लेखक भी थे। गत १६ जुलाई को लम्बी बीमारी के पश्चात् आपका देहावसान हो गया! भिक्षु सद्धतिस्स आपके ही प्रधान शिष्य हैं।

अनिच्चा वत सङ्खारा!

महास्थविर बोधानन्द का देहावसान!!
भारतीय बुद्ध-शासन का अनमोल रत्न खो गया!!!

यह समाचार लिखते हुए हमें अत्यन्त मार्मिक दुःख हो रहा है कि पूज्य भदन्त बोधानन्द महास्थविर अब इस संसार में नहीं रहे। आप इस युग के भारतीय भिक्षुओं में सबसे वृद्ध एवं ज्ञानी महास्थविर थे। गत ११ मई को प्रातः ६॥ बजे कलकत्ता में आपका देहान्त हो गया! आप 'कैंसर' रोग से पीड़ित होकर लखनऊ से वहाँ ले जाये गये थे। 'कैंसर' के अच्छा होते ही निमोनिया का आप पर ऐसा आघात हुआ कि आप फिर उठ न सके! आपके देहावसान के समाचार से सारा बौद्ध-जगत् शोक कर रहा है! हम भारतीय महाबोधि सभा एवं धर्मदूत-परिवार की ओर से आपकी सद्गति की प्रार्थना करते हैं।

चीनी बौद्ध उपासक थैनकिन का देहान्त—गत १४ अप्रैल को बुरायल (मुक्तेश्वर, जिला नैनीताल) के चीनी बौद्ध उपासक श्री थैनकिन, लेब्रोटरी असिस्टेंट का ४० वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया! आप २२ वर्ष से आई० वी० आर० आई० में नौकरी कर रहे थे। आपकी धर्मपत्नी का देहान्त पहले ही हो चुका था। आप अपने पीछे दो पुत्रियों को छोड़ गए हैं जिनकी अवस्था क्रमशः ११ और १० वर्ष है। वे दोनों स्थानीय स्कूलों में शिक्षा पा रही हैं। आपकी इस अकाल मृत्यु से हम दुःख का अनुभव कर रहे हैं और आपकी शान्ति की प्रार्थना करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धचर्या

भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों के सम्बन्ध में, भारतीय भाषाओं में जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें विशालता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'बुद्धचर्या' सभी से बढ़कर है। त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन-चरित्र सम्बन्धी जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, 'बुद्धचर्या' में उस सारी सामग्री का वैज्ञानिक संकलन कर, अविकल अनुवाद दिया गया है। 'बुद्धचर्या' को यदि समस्त सुत्तपिटक और विनयपिटक का सार कहा जाय तो इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

बीस वर्ष पहले उसका प्रथम संस्करण छपा था। बहुत दिनों से उसकी माँग रहने पर भी इस व्यय-साध्य ग्रन्थ का दूसरा संस्करण न हो सका। ग्रन्थ की विशालता और कागज आदि के दुर्लभ होने के साथ-साथ आज के प्रकाशक और पाठक की 'रुचि' भी इस विलम्ब के लिए उत्तरदायी है।

महाबोधि सभा ने ग्रन्थ के महात्म्य का ख्याल कर हिन्दी पाठकों की प्रामाणिक साहित्यप्रियता के भरोसे ही इसके प्रकाशन का व्यय भार वहन किया है।

किसी भी पुस्तकालय में और विशेष रूप से बौद्ध-साहित्य प्रेमी किसी भी भाई-बहन के पुस्तकालय में 'बुद्धचर्या' रहनी ही चाहिए।

बड़े आकार के छः सौ तीस पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८) है। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

मिलने का पता:—

१. महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ (बनारस)
२. महाबोधि पुस्तक भण्डार, ४ ए बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता १२
३. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धविहार, रीडिंग रोड, नई दिल्ली
४. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धगया (बिहार)

"गाँव"

[सचित्र मासिक पत्र]

आजाद भारत में गाँवों का नया निर्माण हो रहा है। हमें जानना चाहिये कि इस सम्बन्ध में कहाँ क्या हो रहा है? और हमें क्या करना चाहिये? 'गाँव' इस विषय का बिहार में एकमात्र पत्र है। इस पत्र में गाँव सम्बन्धी सभी विषयों पर अच्छे-अच्छे लेख और कविताएँ छपती हैं। खास कर नीचे लिखे हुए विषयों पर लेख छपा करते हैं :—

१-गाँव का सामाजिक और सांस्कृतिक विकास, २-गाँव की सफाई और ग्रामीणों का स्वास्थ्य, ३-गाँव के शिक्षक और स्कूल, ४-खेती का सुधार, ५-खाद और उनके बनाने के तरीके, ६-ऊख और चीनी, ७-गोपालन तथा अन्य पशुपालन, ८-सहयोग समिति, ९-ग्रामीण उद्योग-धन्धे।

वार्षिक मूल्य सिर्फ ५) रुपया। शीघ्र ही मनिआर्डर द्वारा ५) रु० भेजकर आप इसके ग्राहक बन जायँ। वी० पी० मँगाने पर व्यर्थ पाँच आना ज्यादा खर्च हो जायगा।

पता:—व्यवस्थापक 'गाँव'
बिहार को-आपरेटिव फेडरेशन, लिमिटेड,
बुद्धमार्ग, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित त्रिमासिक "इतिहास" का

नया आयोजन

"दक्षिण भारत विशेषांक"

१ अगस्त सन् १९५२ को प्रकाशित हो रहा है—१२५ पृष्ठों की सुपाठ्य सामग्री—अनेकानेक चित्रों से सज्जित, आकर्षक मुखपृष्ठ, मूल्य केवल बारह आने।

"वृहत्तर भारत विशेषांक" (जुलाई सन् १९५०), "पेशवा विशेषांक" (जनवरी सन् १९५१), "स्वातन्त्र्य संघर्ष विशेषांक" (जुलाई सन् १९५१), "गणराज्य विशेषांक" (जनवरी सन् १९५२) के समान प्रस्तुत विशेषांक भी गणमान्य विद्वानों के लेखों से सज्जित रहने के कारण स्थायी साहित्य की सामग्री से परिपूर्ण होगा।

अतः वार्षिक शुल्क ३) रु० प्रेषित कर शीघ्र ही अपना नाम स्थायी ग्राहकों की सूची में दर्ज करावें। अभिकर्ताओं एवं विज्ञापनदाताओं के लिए स्वर्णिम अवसर है।

भारत की सांस्कृतिक एकता को चिरस्थायी रखने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि इसके विविध भागों के बारे में पर्याप्तजानकारी हो—इस समय दक्षिण भारत के विषय में सर्वसाधारण जनता में बहुत कम ज्ञान है—यहाँ तक कि वहाँ बोली जाने वाली भाषाओं के नाम तक का बहुत कम व्यक्तियों को पता है। इसी उद्देश्य से "दक्षिण भारत विशेषांक" के प्रकाशन का निर्णय किया गया है।

तामिलनाड़, आन्ध्र, कर्णाटक, केरल—दक्षिण में भाषानुसार चारों प्रान्तों की ऐतिहासिक भूमिका, भूगोल एवं सीमाएं, जनसंख्या, साहित्य, सामाजिक जीवन (भोजन, वस्त्र, खेल, सामाजिक संस्थाएं एवं रिवाज), जनता की आर्थिक स्थिति, राजनीतिक समस्यायें, सांस्कृतिक संघर्ष, विगत एवं वर्तमान शती के महापुरुषों की जीवन-झाँकियां तथा अन्यान्य रोचक एवं महत्वपूर्ण जानकारियों से यह अङ्क परिपूर्ण होगा।

पत्र व्यवहार का पता—

"इतिहास" कार्यालय, कटरा बड़ियान, दिल्ली–६

अनुभूत योगमाला

आयुर्वेद पत्रिका, मासिक पत्रिका

यह पत्रिका आज ३० वर्ष से आयुर्वेद के उत्थानार्थ, उसके विलुप्त साहित्य को प्राप्त कर प्रकाशित करती रहती है। इसके सिवाय भारतीय प्रसिद्ध वैद्यों के गुप्त योग, चमत्कारी साधुसन्तों के योग प्रकाशित कर वैद्यों और गृहस्थों का उपकार करती हैं। वे इसके योगों से मालामाल बनते हैं। निराश रोगियों के प्रश्नरूप से उनके रोग का हाल छाप प्रसिद्ध अनुभवी वैद्यों के योग सविस्तार उत्तर रूप में छाप प्रकाशित कर रोग दूर करती है। वैद्य समाज की खबरें, नवीन साहित्य की सूचना, आलोचनास्तम्भ से देती है। एक बार देख कर परीक्षा करें। वार्षिक मूल्य ४) रु०। एक वर्ष समाप्ति पर विशेषांक मूल्य २) का देती है मुफ़्त। इस वर्ष "चिकित्साक्रमकल्पवल्ली" प्राचीन ग्रन्थ दिया गया है।

अनुभूत योगमाला,

बरालोकपुर, इटावा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय— राहुल सांकृत्यायन	६)	भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्रसाद	-)
मज्झिम निकाय— ,, ,,	८)	बुद्धदेव— शरत् कुमार राय	१।।।)
विनय पिटक— ,, ,,	८)	थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१।।)
सुत्तनिपात— भिक्षु धर्मरत्न	२॥)	बुद्ध और बौद्ध साधक— ,,	१॥)
खुद्दकपाठ— ,,	।)	तथागत का प्रथम उपदेश— भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मपद— अवधकिशोर नारायण	१।।)	कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२॥)
जातक— भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १,२ ७॥),	७॥)	पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
,, ,, (भाग ३.)	१०)	जातिभेद और बुद्ध— ,, ,,	॥)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५॥)	ब्राह्मण धम्मिय सुत्त — ,, ,,	=)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)	तेलकटाह गाथा — ,, ,,	।)
तथागत— भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१॥)	बौद्ध शिशु बोध — ,, ,,	।)
बुद्ध और उनके अनुचर— ,,	१।।।)	सारनाथ दिग्दर्शन — ,, ,,	।)
बौद्धचर्य्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१॥)	कुशीनगर-दिग्दर्शन — ,, ,,	।)
पञ्चशील और बुद्ध वन्दना— ,,	=)	लंका-यात्रा— ,, ,,	१॥)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१॥)	पालि जातकावली - बटुकनाथ शर्मा	२)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)	बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	॥)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)	बुद्ध शतकम्— ,, ,,	।)
बुद्धार्चन— ,, ,,	।)	महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)	बुद्ध-अर्चना (कविता) कुमारी विद्या	≡)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	।॥)	तिब्बत में बौद्ध धर्म - राहुल सांकृत्यायन	१॥)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित	६)	चरियापिटक – डा० विमलाचरण लाहा	५)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३॥)	सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
नवनीत टीका— ,, ,,	२॥)	खुद्दकपाठ — ,,	।)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,,	२॥)	धम्मसंगणी—श्री वापट	८)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)	अत्थसालिनी— ,,	८)
[illegible] ह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)	पातिमोक्ख— ,,	१)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,,	।)	सिङ्गाल सुत्तं—भिक्षु ऊ कित्तिमा	॥)
पालि-पाठ-माला— ,,	१)		

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महा बोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक— ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल कांगड़ी

धर्मदूत

सारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

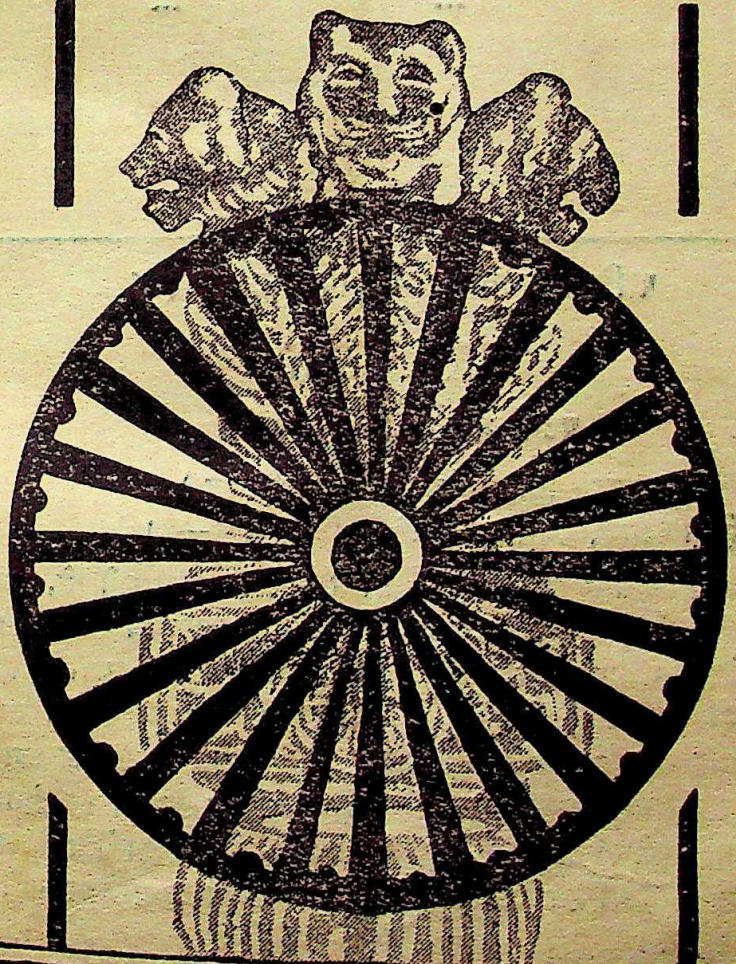

अगस्त

१९५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

	विषय		पृष्ठ
१.	बुद्ध-वचनामृत	...	९३
२.	मेरे लिये बौद्धधर्म का क्या अर्थ है ?—माननीय श्री बी० जी० खेर	...	९४
३.	नालन्दा का सन्देश—डा० अ० स० अल्तेकर	...	९७
४.	एडविन् आरनाल्ड (जीवन-चरित)—श्री एमसन् आरनाल्ड	...	९८
५.	दैत्यों से रक्षा (कहानी)—श्री यशपाल जैन	...	१००
६.	मार का ऐश्वर्य प्रदर्शन (कविता)—श्री रामकिंकर भगवान् बल्लभ पाण्डेय	...	१०३
७.	शोषितों का प्रिय चला गया !—श्री सन्तराम बी० ए०	...	१०४
८.	चार आर्य सत्य—भिक्षु प्रज्ञानन्द	...	१०५
९.	सम्पादक के नाम पत्र	... ...	१०९
१०.	नये प्रकाशन	... ...	११२
११.	बौद्ध जगत्	... ...	११५

पालि वाङ्मय का अनुपम कथा-साहित्य

जातकट्ठकथा

पठमो भागो : मूल पालि

(सम्पादक—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित)

बढ़िया कागज, मनमोहक छपाई, सजिल्द मूल्य—९)

जिस 'जातकट्ठकथा' के प्रकाशन की बहुत दिनों से प्रतीक्षा की जा रही थी, उसका प्रथम भाग नागराक्षरों में छपकर प्रकाशित हो गया। यह ग्रन्थ पालि वाङ्मय की एक अनुपम निधि है। कथा-साहित्य की दृष्टि से यह संसार का सर्वश्रेष्ठ एवं विशालतम ग्रन्थ है। यही नहीं, विश्व के कथा-साहित्य में यह प्राचीनतम संग्रह भी है। इसमें न केवल भारतीय ही, प्रत्युत एशियायी प्राचीन राजनीति, कला, दर्शन, इतिहास, धर्म, संस्कृति, व्यवसाय, भूगोल आदि सभी प्रकार की ज्ञान-परम्पराओं का समावेश है। इसे बिना पढ़े भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

इस ग्रन्थ की थोड़ी ही प्रतियाँ छपी हैं। पालि के प्रेमियों, विद्वानों, इतिहास के विद्यार्थियों, पुस्तकालयों एवं विद्या-संस्थाओं को इसे शीघ्र लेना चाहिए। ऐसे ग्रन्थ बार-बार नहीं छपते। शीघ्रता करें, अन्यथा पछताना पड़ेगा।

मिलने का पता :—

व्यवस्थापक, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

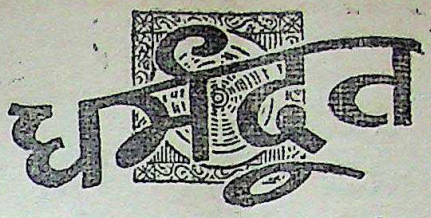

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं साथं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १७	सारनाथ, अगस्त	बु० सं० २४९६ / ई० सं० १९५२	अङ्क ४

बुद्ध-वचनामृत

सह लेना उत्तम है

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे। असुरेन्द्रक भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना—भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया है। क्रुद्ध और खिन्न होकर वह जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर खोटी-खोटी बातें कहते हुए भगवान् को फटकार बताने और गालियाँ देने लगा। उसके ऐसा कहने पर भगवान् चुप रहे। तब असुरेन्द्रक-भारद्वाज ब्राह्मण बोल उठा—"श्रमण! तुम्हारी जीत हो गई!! तुम्हारी जीत हो गई!!" भगवान् ने कहा—

"मूर्ख अपनी जीत समझ लेता है, मुँह से कठोर बातें कहते हुए,
जीत तो उसी की होती है जो ज्ञानी चुपचाप सह लेता है।
उससे उसी की बुराई होती है जो बदले में क्रोध करता है,
क्रुद्ध के प्रति क्रोध नहीं करने वाला अजेय संग्राम जीत लेता है।
दोनों को लाभ पहुँचाता है अपने को भी और दूसरे को भी,
दूसरे को गुस्साया जान जो सावधान होकर शान्त रहता है।
दोनों की इलाज करने वाले उसे, अपनी भी और दूसरे की भी,
लोग 'बेवकूफ' समझते हैं, जिन्हें धर्म का कुछ ज्ञान नहीं॥"

—सं० नि० ७. १. ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लिए बौद्ध धर्म का क्या अर्थ है ?

माननीय श्री बी० जी० खेर, एम० पी०, भूतपूर्व मुख्य-मन्त्री, बम्बई

मेरा विश्वास है कि बौद्ध धर्म हिन्दुत्व के विकास की प्रक्रिया का एक अंग है। जब बुद्ध ने अपनी तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि द्वारा देखा कि तत्कालीन हिन्दू धर्म भौतिक कल्पनाओं तथा विधि-विधानों में पूर्णतः विजड़ित हो गया है तो उन्होंने धर्म की अनुभूति की और उसकी शिक्षा दी। उन्होंने विचार और व्यवहार की विशुद्धता तथा उसके प्रतिदिन के कार्यों में व्यवहार पर बल दिया। आध्यात्मिक विचार उन्हीं प्राणियों में विकसित हो सकता है, जिन्होंने नैतिक पूर्णता अधिक मात्रा में प्राप्त कर ली है। यदि हम इनपर दृष्टि न रखकर केवल "ईश्वर-ईश्वर" रटते जायँ, तो आत्म-प्रवंचना करेंगे। यह सत्य बुद्ध के पूर्व भी ज्ञात हो चुका था, किन्तु यह विस्मृत हो गया और उन्होंने अपने जीवन तथा शिक्षाओं द्वारा इसपर बल दिया।

मेरे विचार से हमारे समस्त ईश्वर-दूतों तथा ऋषियों में बुद्ध हम भारतीयों के लिए अत्यन्त ठोस तथा विश्वास-पूर्ण हैं। वे हिन्दुओं के सबसे अन्तिम अवतार हैं। प्रत्येक भक्त हिन्दू आधुनिक काल को बुद्धावतार कहता है। बुद्ध के अनेक स्मारक भारत में ही नहीं, विदेशों में भी देखे जाते हैं।

सबसे प्राचीन प्राप्त विवरणों में उन्हें अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्वपूर्ण ऐसा सुन्दर पुरुष बतलाया गया है, जिसमें अटल गौरव, अत्यन्त कोमल भावना एवं सहिष्णुता तथा सहानुभूति थी, जो केवल मानवों के ही प्रति नहीं, वरन् समस्त प्राणियों के प्रति उद्बुद्ध थी। उनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक गाथायें हमें ज्ञात हैं। उनके प्रथम उपदेश से, जो उन्होंने बनारस के निकट ऋषिपत्तन के मृगकुञ्ज में 'औचित्य चक्र की गतिशीलता" पर दिया था, उनकी मृत्यु-शय्या के निकट शोक-सन्तप्त शिष्यों के सम्मुख दिये गये महत्वपूर्ण अन्तिम उपदेश तक उन्होंने सचेष्ट रहकर अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहने पर बल दिया और अत्यन्त उच्च स्थान पर पहुँचने को कहा। उनके शब्दों में एक जीवित व्यक्तित्व की विश्वसनीय ध्वनि पायी जाती है, जो हमारे मनों में झंकृत हो उठती है। भगवान् बुद्धकी मूर्ति के दर्शनमात्र से हम शान्ति, पवित्रता तथा करुणा से परिपूर्ण हो जाते हैं।

श्रीमती राइस डेविस का कथन है, "गौतम हिन्दू के समान ही उत्पन्न, परिपालित, जीवित तथा मृत हुए। गौतम के सिद्धान्तों में ऐसी कोई भी बात नहीं है जो किसी न किसी परिवर्तनवादी हिन्दू-प्रणाली में न पायी जाय। और प्राचीन अथवा नवीन हिन्दू-ग्रन्थों में उनकी नैतिकता की समानता पायी जाती है।" मैं इस विषय पर अधिक कुछ नहीं कहूँगा। मैंने पढ़ा है, और आपमें से अधिकांश डा० बी० एम० कैकिनी के लेख "भगवान् बुद्ध तथा उनके उपदेशों के सम्बन्ध में कुछ प्रसिद्ध भ्रान्तियाँ" से परिचित हैं। उन्होंने अत्यन्त योग्यतापूर्वक उन भ्रान्तियों का विश्लेषण कर उनका निराकरण किया है।

प्राचीन-पन्थी हिन्दुओं में ऐसी भावना है कि बौद्ध हिन्दू-धर्म का खण्डन करनेवाला और उसका विरोधी है। यदि हम हिन्दुत्व के विकास पर सावधानी के साथ विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि बौद्ध-धर्म हिन्दू-विचारों के विकास की एक अवस्था थी, इसीलिए हमने बुद्ध को एक अवतार मान लिया है। हम उन्हें अस्वीकार कैसे कर सकते हैं ? बुद्ध ने अपने समय की आवश्यकता की पूर्ति की। यद्यपि उन्होंने उस समय प्रचलित अनेक विचारों के प्रति विद्रोह किया जैसा प्रत्येक सुधारक करते हैं और करना चाहिए। उनके जीवन का कार्य उन महान् नैतिक सत्यों का प्रचार था, जिन्हें उन्होंने सार्वकालिक पाया। उनका कार्य केवल उच्च श्रेणी को ही नहीं, वरन् जनता की अधिक संख्या को उनसे प्रभावित करना था।

उन्होंने धर्म को पुरोहितों तथा विद्वानों की व्यवस्था बनाने के स्थान में उसे जनता के दैनिक जीवन का विषय बना दिया। उन्होंने प्रेम, पवित्रता, त्याग तथा सेवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता पर बल दिया। जो अपने को हिन्दू कहता है उसके लिए यह अत्यन्त कृतघ्नता की बात है कि बौद्ध-धर्म हिन्दू-धर्म का विरोधी है। इसके विरुद्ध हिन्दू-धर्म की निन्दा तथा बौद्ध-धर्म की प्रशंसा भी निन्दनीय है। स्वाभाविक विकास द्वारा हिन्दू-धर्म के विकसित होने से बौद्ध-धर्म उत्पन्न हुआ है और यह हमारे उन्नति का परिचायक है। इसलिए बौद्ध-धर्म के पुनर्जागरण की आवश्यकता है और ऐसा बौद्ध-धर्म के समुचित अध्ययन एवं उसकी शिक्षाओं को अपने जीवन में दृढ़तापूर्वक कार्यान्वित करने से ही हो सकता है।

इस पद्य में बुद्ध की शिक्षाओं का तत्व संग्रहीत है—

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥

"समस्त पाप-कर्मों से विरत होना, उत्तम आचरण की चेष्टा तथा मन पवित्र रखना।" यही बुद्ध की शिक्षा है और बौद्धों को इसके पालन की चेष्टा करनी चाहिए। बुद्ध का विचार था कि उनका धर्म व्यावहारिक बने, जो प्रत्येक के दैनिक जीवन में कार्यान्वित हो। उन्होंने प्राणियों की एकता की शिक्षा दी, उन्होंने मानवों में भ्रातृत्व की ही शिक्षा नहीं, वरन् समस्त प्राणियों को एक जीवित ईकाई का अंग बतलाया। जो इस सिद्धान्त में विश्वास रखता है वह जाति-गत पक्षपात तथा अस्पृश्यता में विश्वास कैसे कर सकता है? इस एकता में विश्वास, दया, द्वेष-हीनता, सभी प्राणियों में एक ही जीवन का भाव उत्पन्न होता है। इसका अर्थ है कि अपने प्रति प्रेम समस्त प्राणियों के प्रति सच्चा प्रेम है, जो इसमें भेद करना चाहता है वह कष्ट उत्पन्न करता है, वह धर्म के विरुद्ध कार्य करता है। अतएव स्वार्थपरता के सम्पूर्ण रूप—जो इस ईकाई के अन्य अंग को हानि पहुँचा कर आत्म-सन्तोष चाहते हैं—त्याज्य हैं।

इसकी अनुभूति स्वयं बुद्ध के महान् त्याग का कारण रही होगी, जिसके लिए वे साम्राज्य, नवयुवती पत्नी तथा बालक को त्यागकर सत्य की खोज में भिक्षुक की भाँति निकल पड़े। इस प्रकार के त्याग के पश्चात् आत्म-समर्पण आता है।

बुद्ध ने "बुद्ध, धम्म एवं संघ" के प्रति समर्पण की शिक्षा दी। इससे संकीर्ण "स्व" में बढ़कर क्रमशः कुछ उच्चतर एवं श्रेष्टता की ओर अग्रसर हुआ जाता है। प्रेम जान-बूझकर अर्जित किया जाता है। बुद्ध ने शिक्षा दी कि घृणा घृणा द्वारा जीती नहीं जाती, यह प्रेम द्वारा विजय की जाती है। "अक्कोधेन जिने कोधं।" इस शिक्षा का परिपालन उनसे दो शताब्दी पश्चात् उनके महान् शिष्य सम्राट् अशोक द्वारा उत्तमतापूर्वक हुआ। ऐसे प्रेम का सदुपयोग मानवता की सेवा में होना चाहिए। उनके प्रथम उपदेश के, जिसका उद्धरण मैं इतिपूर्व कर चुका हूँ, कुछ दिन पश्चात् बुद्ध ने अपने कुछ शिष्यों को संसार में भेजते हुए कहा था—"हे भिक्षुगण! तुम अनेक के लाभ, अनेक के हित तथा संसार के प्रति दया-भाव से जाओ। उस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की घोषणा करो जिसमें पवित्र, पूर्ण तथा धर्ममय जीवन का उपदेश हो।"

बुद्ध ने यह भी शिक्षा दी कि किसी प्रकार की अति से बचना चाहिए। उन्होंने मध्यम मार्ग का उपदेश दिया। अर्थात् प्रत्येक कार्य में मध्यम मार्ग ग्रहण करना चाहिए। उन्होंने कहा कि इस मार्ग से दृष्टि प्राप्ति होती है, इससे मानसिक शान्ति मिलती है और उच्चतर ज्ञान प्राप्त होता है। द्वन्द्वों के मध्य यह आत्म-विकास का मार्ग है, इसमें समस्त अतियों का परित्याग किया जाता है। मनुष्य मन पर पूर्ण अधिकार चाहता है और इसके लिए इन्द्रिय-परायणता का परित्याग आवश्यक है। आत्म-सन्ताप भी ऐसा ही हानिकारक है। इससे भयंकर अहंकार उत्पन्न होता है।

क्या गीता ने भी नहीं कहा है—

नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चात्यन्तमनश्नुतः।
युक्ताहारविहारस्य योगो भवति दुःखहा।

"अति त्यागकर आत्म-नियन्त्रण करो।"

बुद्ध ने इसपर बार-बार बल दिया कि किसी को इस प्रकार के बुद्ध्यात्मक विवादों में अपनी शक्ति का अपव्यय न करना चाहिए कि किसने सृष्टि का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, किस प्रकार इसका निर्माण हुआ और यहाँ सब दुःख तथा कष्ट हम क्यों सहन कर रहे हैं। उन्होंने उपदेश किया कि वस्तुओं को उनके वास्तविक रूप में लेना चाहिए और आत्म-विकास के लिए कठिन प्रयत्न करना चाहिए उन्होंने उन्नति के लिए व्यक्तिगत प्रयत्नों पर बल दिया। उन्होंने कहा कि चार उत्तम सत्यों के द्वारा हमें अपनी अज्ञानता दूर करनी चाहिए।

१—अस्तित्व के दुःख

२—ऐसे दुःख का कारण—तृष्णा

३—उस इच्छा का नाश

४—उस विनाश की प्राप्ति का साधन—अष्टधा मार्ग।

अतः हमें चेष्टा करनी चाहिए और अपनी अज्ञानता दूर करनी चाहिए।

बुद्ध ने अष्टधा मार्ग बतलाया है—सत् विचार, सत् लक्ष्य, सत् भाषण, सत् कार्य, सत् जीविका, सत् उद्योग, सत् ध्यान और अन्तिम सत् समाधि। इनसे पूर्ण प्रकाश प्राप्त होता है। साधारण जनता के लिए भगवान् बुद्ध की शिक्षा का सार इस कथन में है—"बुरा करना त्याग दो। अच्छा करना सीखो और मन पवित्र रखो।"

एक महान् प्राणि-शास्त्रवेत्ता का कथन है—"विकास की उन्नततर प्रक्रिया का, जो करोड़ों वर्षों से चल रही है, लक्ष्य ऐसे नैतिकतापूर्ण पूर्ण प्राणियों की अनुभूति है जो अहंकार, लोभ, अधिकारकी कामना से मुक्त तथा उच्चतर उद्देश्यों से पूर्ण हो।" उसके विचार में आजकल जो विकास चल रहा है, वह मनोवैज्ञानिक अथवा शारीरिक नहीं है, वरन् आध्यात्मिक एवं नैतिक है। कभी-कभी हम उचित मार्ग से हट जाते हैं। उस समय ऐसा नेता अवतरित होता है जो हमें मार्ग पर ले जाता है और उचित मार्ग प्रदर्शित करता है। मानवता ने अतीत में कुछ ऐसे व्यक्ति उत्पन्न किये हैं, जिन्होंने अपने आदर्श एवं कथन से उच्चतर उद्देश्यों की एक झलक दिखलायी है। बुद्ध उनमें एक थे। ईसा दूसरे थे। और इनके अतिरिक्त अन्य भी थे। हमें अपने जीवन तथा व्यवहार में उनके उपदेशों के अनुसरण की चेष्टा करनी चाहिए। उनके उन कार्यों को अग्रसर करना चाहिये, जिनके लिए उन्होंने अनवरत चेष्टा की थी।

एक विख्यात वैज्ञानिक का कथन है कि नैतिक नियम युगों तक एक समान रहते हैं। उनमें केवल रंच-मात्र परिवर्तन होता रहता है। इसको ऐसे कुछ ही नियमों में संक्षिप्त कर सकते हैं जो संसार के चारों कोनों में विभिन्न समयों में प्रकट हुए थे। "उन नियमों को अपरिवर्तनशील होना चाहिए और उसके प्रतिपालन द्वारा इनकी उन्नति हो सकती है।"

इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता, वे क्रमशः प्रसार करते हैं और अनवरत प्रसारित हो रहे हैं। यद्यपि उन्नति बहुत मन्द है, किन्तु यह निश्चित रूप से हो रही है और यही समस्त धर्मों का लक्ष्य है। "अपने संस्थापकों के उत्तम उद्देश्यों के होते हुए भी उन्हें सफलता नहीं मिली। और कभी-कभी उनके नेता ऐसे मनुष्य रहे हैं, जिन्होंने पारस्परिक संघर्ष में अपना समय नष्ट किया और अनेक भूलें कीं।" मानव-जाति का सुख कुछ अंशों में धार्मिक विचारों की एकता पर निर्भर करता है। प्रत्येक शिक्षित पुरुष का कर्तव्य ऐसी एकता को स्थापित करना है और जिन्होंने बुद्ध के सिद्धान्तों को समझा है वे इससे भिन्न कुछ नहीं कर सकते। हम इनका सारांश ईसा के "पर्वत के उपदेश", भगवद्गीता की यम-नियम की शिक्षा, पतञ्जलि की मैत्री, करुणा, मुदिता आदि और जैनियों के पंच महाव्रत में पाते हैं। ये एक ही नैतिक सत्य पर बल देते हैं। इस समय इनको जन-साधारण के जीवन में व्यवहृत करने की अत्यन्त आवश्यकता है और इस प्रकार ऐसी धार्मिक एकता स्थापित हो सकती है। हम सबको इसी दिशा में यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नालन्दा का सन्देश

डा० अ० स० अल्तेकर

श्री नालन्दाविहार या विश्वविद्यालय प्राचीन भारत के बहुमुखी गौरव का एक देदीप्यमान उदाहरण था। प्राचीन भारत में शायद ही दूसरी संस्था होगी जो भारत के गौरव से हमें इतनी अच्छी तरह से परिचित करायेगी। आध्यात्मिकता व धार्मिकता भारतीय संस्कृति की नींव थी। धार्मिकता का अर्थ अपने धर्मके प्रति श्रद्धा रखना और दूसरे धर्म की निन्दा करना नहीं था। जो मनुष्य इस तरह का बर्ताव करता है वह अपने धर्म का सबसे बड़ा अहित-चिन्तक है, ऐसा पुण्यश्लोक अशोक ने बताया है। भारतीय धर्मिकता का सच्चा अर्थ अपने धर्म के तत्त्व का अवगत करना और पीछे दूसरे धर्मों के भी सिद्धान्तों को ठीक तरह से समझना था।

नालन्दाविहार ने भी इसी तत्त्व को अपनाया था। वह एक बौद्ध धर्म की संस्था थी। किन्तु उसके सबसे बड़े सहायक प्रथम कुमारगुप्त, बुद्धगुप्त, बालादित्य इत्यादि राजा हिन्दू ही थे। थेरवाद, महायान, जैन, हिन्दू इत्यादि सब पन्थों के ग्रन्थों का निष्पक्षतया अध्ययन किया जाता था। प्रसिद्ध चीनी यात्री युआन् च्वांग को वेद पढ़ानेवाले शिक्षक भी नालन्दाविहार के बौद्ध भिक्षुओं में थे। युआन्-च्वांग ने लिखा है कि नालन्दा में न केवल हीनयान या महायान-ग्रन्थों का अध्ययन किया जाता था, किन्तु वेद-वेदान्त, सांख्य, पुराण आदि का भी। यहाँ न केवल आदिबुद्ध, बुद्ध, बोधिसत्वों की पूजा की जाती थी, किन्तु विष्णु, शिव आदि हिन्दू देवताओं की भी। अब भी यहाँ बौद्ध-विहारों के बीच में एक हिन्दू-मन्दिर के अवशेष मौजूद हैं जहाँ इन देवताओं की प्रतिमाएँ देखी जा सकती हैं। हमारा प्राचीन समाज और राजसत्ता धर्मातीत न थी, किन्तु सर्वधर्मोत्कर्षवादी थी। इसलिए हिन्दुस्थान में हिन्दू, बौद्ध, जैन, खिटी और मुहम्मदी धर्म ग्यारहवीं सदी तक प्रेम से रहते थे। नालन्दा इसका प्रतीक था।

भारतीय संस्कृति व्यष्टि को प्रधानता देती है, न कि समष्टि को। संघटनात्मक कार्य करने में हम सफल नहीं होते—ऐसा एक आक्षेप किया जाता है और उसमें तथ्य भी पर्याप्त है। किन्तु नालन्दाविहार सफल कुशल-संघटना का एक आदर्श उदाहरण था। यहाँ करीब-करीब दस हजार भिक्षु विद्यार्थी रहते थे और उनके आवास, खान-पान एवं अध्ययन का प्रबन्ध करना आसान नहीं था। खुदाई में जो हमें मुद्रिकाएँ मिली हैं उनसे नालन्दाविहार की संघटना की कुछ कल्पना की जाती है। नालन्दा में अनेक गगनचुम्बी विहार एवं चैत्य थे और वे एक विशिष्ट पूर्व-योजना के अनुसार बनाये जाते थे। इसका कारण यह था कि विश्वविद्यालय की एक नवनिर्माण-समिति थी। इसकी मुद्राएँ हमें मिली हैं जिनपर "श्री नालन्दामूलनवकर्मवारिक-भिक्षूणां" यह अभिलेख है। खान-पान का प्रबन्ध भी जो अच्छा था, इसका कारण यह था कि उसकी व्यवस्था करने के लिए एक समिति थी। उसकी मुद्राओं पर "श्री नालन्दा-सत्रकसमवारिक-भिक्षूणां" यह अभिलेख पाया जाता है। आजकल कोई व्यक्ति पार्लामेण्ट, संसद, लोक-सभा, म्युनिसिपैलिटी इत्यादि का मेम्बर चुना जाय तो यह समझने लगता है कि वह उन स्थानों पर हमेशा के लिए रहता। इससे अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। किन्तु नालन्दा में इन समितियों के जो सदस्य रहते थे वे बारी-बारी से चुने जाते थे। 'वारिक-भिक्षुणां' शब्द से इसका संकेत मिलता है। भिक्षुओं को चीवर देने के लिए जो समिति थी उसकी मुद्रा पर "श्री नालन्दाचीवर-कोष्ठिकायतन आर्यभिक्षु संघस्य" यह लेख मिलता है। आधुनिक भारत को संघटनात्मक कार्य के बारे में नालन्दा-विहार बहुत कुछ सिखा सकता है।

नालन्दा विश्वविद्यालय एक अन्तर्राष्ट्रीय कीर्त्ति का विद्या-मन्दिर था। यहाँ के स्नातक तिब्बत, चीन, जावा, सुमात्रा, स्याम, लंका आदि देशों में धर्म और ज्ञान के प्रसार के लिए जाते थे तथा इन देशों के विद्यार्थी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नालन्दा में पढ़ने के लिए काफी संख्या में आते थे। चीन, जापान, तिब्बत, जावा, सुमात्रा, स्याम आदि देश जो आज भी हिन्दुस्थान के साथ एक विशेष आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक एकता का अनुभव करते हैं उसका बहुत कुछ श्रेय नालन्दा विश्वविद्यालय को ही देना उचित है। नालन्दा विश्वविद्यालय को विदेश से भी आर्थिक सहायता मिलती थी। जावा के बलपुत्रदेव राजा ने नवीं सदी में यहाँ एक विशाल छात्रालय बनवाया था जिसका विस्तृत वर्णन देवपाल के एक ताम्रपत्र में मिलता है जो नालन्दा की खुदाई में प्राप्त हुआ है। हमें यदि एशियाई देशों का नेतृत्व करना है तो नालन्दा जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विश्वविद्यालयों का निर्माण करना आवश्यक है।

अन्त में हमें यह ध्यान रखना है कि नालन्दा विश्वविद्यालय का गौरव न उसके विशाल मन्दिर में था, न विस्तीर्ण पुस्तकालय में, न उसके अपार साम्पत्तिक वैभव में, न विद्यार्थियों की प्रचण्ड संख्या में। उसके श्रेष्ठत्व की कुंजी उसके सच्चरित्र अध्यापक एवं विद्यार्थियों की ज्ञान-पिपासा, ज्ञानार्जन और ज्ञानोपासना में थी। नालन्दा का वातावरण कितना पवित्र एवं उच्च था, इसकी कल्पना युआन च्वांग ने वहाँ के अध्यापकों का जो वर्णन किया है उससे सम्यक्तया होती है। वे कहते हैं—"प्रतिभाशाली विद्वानों का नालन्दा एक आगर था। उनमें धर्मपाल व चन्द्रपाल थे, जिन्होंने भगवान् बुद्ध के उपदेशों को भी अधिक सुगन्धित किया था, स्थिरमति और गुणमति थे जिनकी कीर्त्ति-दुन्दुभि सर्वत्र सुनाई देती थी। विशुद्ध तर्कशैली के लिए प्रभामित्र, उदात्त सम्भाषण के लिए जिनमित्र और आदर्श चरित्र के लिए जिनबन्धु प्रसिद्ध थे। नालन्दा के कुलपति जो शीलभद्र भिक्षु थे वे सर्व सम्भाव्य गुणसम्पन्न थे, किन्तु उनकी महत्ता का पता किसी को आसानी से नहीं लगता था।"

इसमें सन्देह नहीं कि भारत के वर्त्तमान विश्वविद्यालयों का वातावरण भी यदि नालन्दा के समान उच्च एवं पवित्र हो और उनके अध्यापक और स्नातकों की कीर्त्ति उतनी ही सच्चरित्रता के लिए हो जितनी ज्ञानोपासना के लिए तो भारत का भविष्य अवश्य उज्ज्वल हो। परमेश्वर करे कि यह स्वप्न सत्य सृष्टि में आ जाये।

एड्विन् आरनाल्ड

श्री एमसन् आरनाल्ड

एड्विन् आरनाल्ड का जन्म सन् १८३२ में १० जून को ग्रेव्सेन्ड् (इगलैंड) में हुआ था। उनके पिता—रोबट कोलस एक मजिस्ट्रेट थे और एड्विन् अपने पिता के दूसरे पुत्र थे। उनका कहना था कि उनका अपना कला-प्रेम जहाँ तक परम्परा का सम्बन्ध था, अपनी माता की ओर से प्राप्त था। उनके शरीर में इटालियन रक्त का मिश्रण था। जो हो, बाल्यवस्था में ही उनकी कवित्व-प्रतिभा प्रकट होने लगी। एक छात्रवृत्ति पाकर वे आक्सफोर्ड में गये और १८५६ में 'बेलशजारस फीस्ट' की कविताँ पर उन्हें मशहूर 'निव्गेट' पुरस्कार मिला। उनकी कृतियों में इस कविता का अपना स्थान है और वह 'निव्गेट' के सुन्दरतम प्रकाशनों में से एक है।

१८५७ में वे पूना संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल होकर आये और यहाँ उन्हें अपने अनुकूल धार्मिक वातावरण मिला।

मेरे पिता थोड़े ही दिन भारत में रह सके। माता के रोगी होने के कारण पाँच वर्ष से भी कम समय यहाँ रहने के बाद इस्तीफा देकर उन्हें इंगलैंड लौटना पड़ा। इतने अल्प काल में उनका जीवन भारतीय संस्कृति तथा वातावरण से ओत-प्रोत हो गया। चिर-निवास के बाद ही किसी दूसरे विलायती पर इतना प्रभाव पड़ सकता था। यह उनके जीवन के विषय में एक विशेष बात थी।

वे लन्दन में 'डेली टेलिग्राफ' के सम्पादक बन गये और परिस्थिति के वशीभूत होकर चालीस वर्ष उसी पद पर रहे। लेकिन उनका मन भारत में ही रह गया था। जब-जब काम से छुट्टी मिलती थी, वे भारतीय भाषा, धर्म तथा दर्शन का अध्ययन करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे जैसे लोग, जो कि भारत में रहे हैं और भारतीय जीवन से सुपरिचित हैं, भारत-सम्बन्धी उनकी पुस्तकों को पढ़ते समय उनमें लिखित वर्णनों की यथार्थता को अच्छी तरह समझ सकते हैं। एक प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक ने, जिनसे मिलनेका सौभाग्य मुझे मिला था, मुझे कहा कि मेरे पिता की कृतियों को पढ़ते समय उनको यह अनुभव होता था कि मानों वे किसी भारतीय की ही लिखी हुई हैं, क्योंकि उनके वर्णन उतने स्वाभाविक थे और विचार भारतीय थे। सचमुच जब हम भारतीय जीवन और दृश्य-सम्बन्धी उनके शब्द-चित्रों को पढ़ते हैं तो अनायास ही हमारी आँखों के सामने वे असली दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। कदाचित् ही किसी दूसरे विलायती ने भारत के विषय में इतने सुन्दर, सजीव और स्वाभाविक चित्र अंकित किये हों।

दुबारा वे भारत और लंका आये थे जहाँ बड़े सम्मान के साथ उनका स्वागत हुआ था। लंका में कुछ समय के लिए भिक्षु बननेकी भी बात हुई थी। यह 'लाइट आफ् एशिया' के लिखने के कई वर्ष बाद की घटना है।

मेरे पिता का पौर्वात्य दर्शन-सम्बन्धी ज्ञान अपूर्व था। मेरे जैसे थियासाफि तथा पूर्वात्य दर्शनों के विद्यार्थियों को इन घटनाओं का एक विशेष महत्त्व है।

इन बातों के आधार पर मैं मानता हूँ कि पूर्वजन्म में वे भारतीय ही रहे होंगे। यद्यपि मेरे पिता की देश-भक्ति में कोई कमी नहीं थी और बहुत सी बातों में ब्रिटिश ही थे, लेकिन रहन-सहन, आचार-विचार और यहाँ तक कि आकृति में भी भारतीय ही थे। मेरा विश्वास है कि जो थोड़े दिन उन्होंने भारत में बिताये थे उसी समय उनके पूर्वजन्म के संस्कार जागृत हो गये। यही कारण है कि पौर्वात्य जीवन के प्रति उनका उतना प्रेम और आकर्षण था और उसके दर्शन में उतनी रुचि और गति थी।

जब मैं उन्हें एक विभूति बताता हूँ तो स्नेह की भावुकता में आकर वैसा नहीं करता। यथार्थतः वे वैसे थे ही। उन्होंने अपने जीवन में चित्रकारी-सम्बन्धी एक भी पाठ किसी से नहीं सीखा था लेकिन अनायास ही वे तरह-तरह के सुन्दर चित्र बनाते थे जिन्हें कला के जगत में उच्चस्थान प्राप्त होता था। वे अनायास ही गद्य और पद्य दोनों में अपनी रचनायें करते थे। अपने सारे जीवन में उनका कोई 'स्टडी' अर्थात् अध्ययन के लिए विशेष कमरा नहीं था। उनकी चित्तैकाग्रता अद्भुत थी। ऐसे हल्ले-गुल्ले के वातावरण में जो किसी साधारण लेखक को पागल बना देता, वे बड़ी सुगमता से अपना काम करते थे। 'लाइट आफ् एशिया' के कुछ हिस्से उन्होंने एक ऐसे कमरे में बैठकर लिखे थे जहाँ उनके बच्चे दिन भर खेलते-कूदते थे। लेकिन उसके बाकी हिस्से तथा अन्य पुस्तकों को डेलिटेलिग्राफ के दफ्तर में जाते समय रेल गाड़ी पर बैठ कर कागज के टुकड़ों पर घसीटा या लिख डाला था।

वैसे टुकड़ों पर से उनके अमूल्य साहित्य को उतारने का सौभाग्य मुझे प्रायः मिलता था। मैं उनका सबसे छोटा लड़का था। मुझे बुला कर कहते, "बेटा! इसकी नकल कर दो" और मैं गन्दे कागजों के टुकड़ों पर अंकित उनकी स्वर्ण पंक्तियों को साफ कागजों पर बड़े गर्व के साथ उतारता था।

उन्होंने कभी समय बर्बाद नहीं किया। छोटेपन में ही संस्कृत-वर्णमाला का एक चार्ट बनाकर अकेले ही उसे सीखा था। वे सदा हमें आदेश देते, "जीवन के दस मिनटों का सदुपयोग करो।" जब कभी दूसरी जगह जाने के लिए परिवार के साथ स्टेशन पर गाड़ी के इन्तजार में उन्हें रहना पड़ता और जब कि और लोग फालतू बातों में समय काटते थे तो आप ग्रीक, लैटिन, संस्कृत या पालि के ग्रन्थ में जिनसे उनके जेब भरे रहते थे, तल्लीन दिखाई देते। रोचक बातों को वे कभी भूलते नहीं थे। एक ओर वे छोटी-छोटी बातों को सहज ही भूल जाते थे और दूसरी ओर बचपन में याद की हुई सुन्दर कविताओं का आरम्भ से अन्त तक पाठ कर सकते थे। उनका मन सदा प्रसन्न रहता था। वे कहते, "अपने मन को 'धूप-घड़ी' बनाओ और जीवन की सुन्दर घड़ियों की छाप उसपर पड़ने दो।" उन्होंने अनेक भाषाओं में विश्व-साहित्य का अध्ययन किया था। उनका ज्ञान-भाण्डार विशाल था और उनके वार्तालाप से विशेष आनन्द मिलता था। वे ओजस्वी वक्ता भी थे और ललित भाषा में और मधुर स्वर में उनकी वाग्धारा प्रवाहित होती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, इन सबके होते हुए भी वे पण्डितमानी नहीं थे। उनका स्वभाव बच्चों की तरह सरल था और वे हास्य रस में भी आनन्द लेते थे। वे तुरन्त अपनी उच्च भावनाओं तथा विचारों के शिखर पर से उतरकर भोले-भाले हास्यों में भाग लेते थे।

सज्जनता उनका सबसे बड़ा गुण था और उसका प्रभाव अब भी मेरे मन पर ज्यों का त्यों बना हुआ है। मैंने अपने पिता को कभी रुष्ट नहीं देखा और न उनके मुँह से कुशब्द निकलते सुना। हाँ, उनकी भी कुछ न कुछ या बहुत कुछ कमियाँ रही हैं, लेकिन बातचीत और व्यवहार में वे सज्जन थे, दयालु थे और विनीत थे। वे जानवरों को प्यार करते थे और बचपन में ही हमें सिखाते थे कि उन्हें अपने छोटे भाई जैसा समझो।

उनके विचार बड़े ही उदार थे। यद्यपि वे अपने को किसी खास मजहब का अनुयायी नहीं बताते थे, फिर भी उनका जीवन तथागत के धर्म से प्रभावित था और यही कारण है कि सबसे अधिक उनका प्रेम उन्हीं के प्रति था। जीवन के अन्तिम समय में जापान के प्रति उनका आकर्षण था और उस महान् देश के लोगों की विनीत रीतियों से उन्हें बड़ा प्रेम था।

सज्जनता ही उनके चरित्र का मुख्य गुण था। यह अत्युक्ति नहीं है कि उनका जीवन मन्द समीर की तरह आनन्ददायी था। सबके प्रति उनकी मैत्री-भावना थी। जिन्हें नित्यप्रति उनके सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त था उनपर उनके आध्यात्मिक जीवन का प्रकाश पड़ता था।

आक्सफोर्ड में युनिवरसिटी कालेज के गिरजाघर में उनका भस्मावशेष सुरक्षित है।

लण्डन के कौण्टि कौन्सिल ने, केलिण्डन के जिस मकान में उन्होंने अपना अन्तिम समय बिताया था और जहाँ उनका देहावसान हुआ था, एक स्मृति-चिह्न बनाकर उनका सम्मान किया है। लेकिन मेरा यह कहना गलत नहीं होगा कि 'लाइट आफ् एशिया' ही उनका यथार्थ और सनातन स्मारक है। यह इसलिए नहीं कि काव्य-कला और भाषा-लालित्य के कारण उसे उच्च कोटि के अंग्रेजी साहित्य में स्थान प्राप्त हुआ है, बल्कि इसलिए कि उसमें तथागत के अमर सन्देश के सनातन सत्य सन्निहित हैं।

जिस दिन पाश्चात्य जगत् के लोग तथागत के अनुयायी बनेंगे उसी दिन वहाँ से रक्तपात दूर होगा। 'लाइट आफ् एशिया' में तथागत की महान् जीवनी तथा उनके अमृत उपदेशों का अलौकिक वर्णन है।

एक जातक-कथा

दैत्यों से रक्षा

श्री यशपाल जैन

कोई व्यक्ति दस-बीस वर्ष में भगवान् नहीं हो जाता। भगवान् होने के लिये बुद्ध को भी अनेक जन्म धारण करने पड़े थे। जातकों में उनके ५४७ जन्मों का उल्लेख है। बोधि का अर्थ है बुद्धत्व और सत्व का अर्थ है प्राणी। अर्थात् बुद्धत्व के लिये प्रयत्नशील प्राणी। बोधिसत्व बुद्ध बनने के लिये प्रयत्न कर रहे थे इसलिये उन्होंने अपना नाम बोधिसत्व रखा। जातक-कथायें बहुत पुरानी और सैकड़ों की संख्या में हैं। हमारे रहन-सहन, खान-पान से लेकर कला-कारीगरी, व्यापार, हमारे समाज का संगठन, अर्थनीति, राजनीति, जल और स्थल-मार्गों की चर्चा, देशकी प्राचीन व्यवस्था आदि अनेक तत्कालीन बातों का उल्लेख इन कथाओं में मिलता है। इन्हीं कथाओं में से एक रोचक कथा नीचे दी जाती है।

बहुत दिनों की बात है कि काशी देश में बनारस नाम का एक नगर था। उसमें ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व उसके राज्य में एक बंजारे के घर में पैदा हुये। जब वह बड़े हुये तो उन्होंने व्यापार करना शुरू किया। बहुत सा सामान लेकर वह इधर-उधर के प्रान्तों में जाते और माल को मुनाफे से बेच कर घर लौट जाते। एक बार उन्होंने सोचा कि सामान बेचते-बेचते बहुत साल हो गये हैं, इस बार क्यों न दूर देश में जाऊँ। माल बेचने के साथ-साथ घूमना भी हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सोच बोधिसत्व ने तरह-तरह का सामान खरीदा, पाँच सौ गाड़ियों पर उसे लादा, और एक बड़ा काफिला लेकर काशी देश से यात्रा आरंभ की। संयोग की बात कि उसी समय बनारस से एक और बंजारे के लड़के ने पाँच सौ गाड़ियों पर सामान लादकर दूर देश जाने की तैयारी की। बोधिसत्व को मालूम हुआ तो उन्होंने सोचा कि अगर हम दोनों साथ साथ चलेंगे तो एक ही रास्ते में एक हजार गाड़ियों का चलाना कठिन हो जायगा। दूसरे, इतने आदमियों के लिये लकड़ी, पानी और बैलों के लिये चारा भी नहीं मिल पायेगा, इसलिये या तो वह आगे जाय या मैं।

उन्होंने उस आदमी को सब बात समझाई और कहा कि भाई, या तो तुम आगे चले जाओ या हम लोग चले जायें। जैसी तुम्हारी मर्जी।

आगे जाने में लाभ

बंजारे के बेटे ने सोचा कि आगे जाने में बहुत लाभ हैं। साफ रास्ता मिलेगा, बैलों को हरी घास मिलेगी, आदमियों को स्वच्छ पानी मिलेगा, और उस सबसे बड़ा लाभ यह है कि मनमाने दामों पर माल बेचूँगा, ये सब बातें सोचकर उसने बोधिसत्व से कहा कि आगे मैं जाऊँगा।

बोधिसत्व ने देखा यह आदमी अनुभवी नहीं है। पीछे जाने में जो लाभ है वह आगे जाने में कहाँ। ऊबड़-खाबड़ रास्ते आदमियों और बैल-गाड़ियों के चलने से समतल हो जायेंगे, जहाँ रास्ता नहीं होगा वहाँ बन जायगा, बैल पक्की घास खा जायेंगे, पीछे जानेवाले बैलों को नई कोमल घास खाने को मिलेगी। जहाँ पानी नहीं होगा, इन लोगों को कुँए खोदने पड़ेंगे और उनका लाभ पीछे जाने वालों को सहज ही मिल जायेगा, फिर चीजों का सूबय निश्चित करना एक बड़ी मुसीबत है। पीछे जाने से उस झंझट से हम लोग बच जायेंगे।

ये सब लाभ देखकर बोधिसत्व ने कहा—"अच्छा मित्र, तुम ही आगे जाओ।"

बंजारे का बेटा अपना काफिला लेकर खुशी-खुशी चल दिया। एक देश से दूसरे में सामान बेचता और सैर करता हुआ वह एक रेगिस्तान के पास पहुँचा। उसे पार करके उसे दूसरे देश में जाना था। इस रेगिस्तान में

पानी का नाम निशान भी नहीं था। उससे भी बड़ी मुसीबत यह कि वह भूत-प्रेतों का देश था।

ऐसे प्रदेशों में खाने-पीने को कुछ भी नहीं मिलता और हर घड़ी जान का खतरा रहता है वह अलग। बंजारे के बेटे ने बड़े-बड़े मटकों में पानी भरवाकर गाड़ियों पर लदवा दिया। और उस मरुभूमि में प्रवेश किया। चलते चलते वह काफिला रेगिस्तान के बीच में पहुँचा। उसी समय वहाँ रहनेवाले दैत्यों ने उन्हें देखा और सोचा कि किसी तरह इनके मटके फुड़वा देने चाहिए। बिना पानी के ये लोग कमजोर पड़ जायेंगे, और न आगे बढ़ सकेंगे, न पीछे हट सकेंगे। फिर हम इन्हें आसानी से हड़प कर सकेंगे।

दैत्यों की चाल

तब दैत्यों के सरदार ने बढ़िया बैलों को जुतवाकर गाड़ियाँ तैयार कराईं। धनुष, ढाल, तलवार आदि अस्त्र लिये, नीले और सफेद कमलों की मालायें गले में पहनीं और अपने बाल और कपड़े भिगो लिये। उसके साथियों ने भी ऐसा ही किया। सबके बालों और कपड़ों से पानी टपक रहा था, चलते २ वे लोग बंजारे के पास आये और उन्होंने अपना रथ और गाड़ियाँ रुकवा दीं। सरदार ने बंजारे के बेटे से पूछा—"कहो भाई, कहाँ जा रहे हो?"

बंजारे के बेटे ने उन सबको देखा तो असमंजस में पड़ गया। अजीब रूप उनका था! बोला, "जी, हम लोग इस मरुभूमि के उधर सौदा बेचने जा रहे हैं। आप लोग तो इतने भींग रहे हैं, क्या उधर पानी बहुत पड़ रहा है?" सरदार ने कहा—"जी हाँ, वह जो दूर हरे हरे पेड़ दिखाई दे रहे हैं उनके उस तरफ बड़े जोर की वर्षा हो रही है। जगह-जगह पर तालाब भरे हैं, जिनमें कमल खिल रहे हैं।

फिर कुछ रुककर वह बोला—"इन गाड़ियों में क्या लिये जा रहे हो।" बंजारे के बेटे ने उत्तर दिया—"बहुत-सी चीजें हैं, किसी में काशी के वस्त्र हैं, किसी में खाने पीने का सामान, पिछली गाड़ियों में तो बड़ा भारी सामान लदा है, पीने का पानी।"

"पानी? पानी का क्या करोगे? अब तक तो ठीक था। अब आगे जब इतना पानी है तो फेंको इसे और हल्के होकर चैन से यात्रा करो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना कहकर दैत्यों का सरदार चला गया, उसके संगी-साथी भी। बंजारे का बेटा उसकी बातों में आ गया। उसने सब मटके फुड़वा दिये और आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर आदमियों को प्यास लगी, लेकिन पानी वहाँ कहाँ। और आगे चले फिर भी पानी नहीं। सूरज डूबने तक वे बराबर चलते रहे, लेकिन पानी की एक बूँद भी नहीं मिली। अब प्यास के मारे आदमियों और बैलों का बुरा हाल होने लगा। रात हुई तो हारकर उन्होंने गाड़ियाँ रोकीं और बैलों को खोलकर पहियों से बाँधकर प्यास से तड़फते सो गये। उनमें इतनी हिम्मत न बची थी कि जागकर रात को पहरा देते। उन्हें सोता देख दैत्य आये और सब आदमियों और बैलों को मारकर खा गये। हड्डियाँ वहीं छोड़ गये। इस प्रकार बंजारे का पुत्र अपनी मूर्खता से अपना सब कुछ नष्ट कर बैठा। उन सबकी हड्डियाँ इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं और पाँच सौ गाड़ियाँ ज्यों की त्यों लदी खड़ी थीं।

बोधिसत्व भी पहुँचे

बंजारे के चले जाने के एक महीने बाद बोधिसत्व भी अपने काफिले को लेकर चले और चलते-चलते इसी रेगिस्तान में पहुँचे। वहाँ रुककर उन्होंने बड़े बड़े मटकों में पानी भरवाया और अपने साथियों को इकट्ठा करके कहा—"देखो, बिना मुझसे पूछे एक बूँद भी पानी काम में न लाया जाय और न किसी ऐसी फूल-पत्ती को जो पहिले इस्तेमाल में न आई हो, मुझ से बिना पूछे खाया जाय।"

इस प्रकार का आदेश देकर बोधिसत्व ने काफिले के साथ रेगिस्तान में प्रवेश किया। जब वे मरुभूमि के बीच में पहुँचे तो दैत्यों ने देख लिया और वही चाल चलनी चाही, जो बंजारे के लड़के के साथ चली थी। बोधिसत्व के सामने जैसे ही वे लोग भींगे बालों और कपड़ों में आये तो उन्हें देखते ही बोधिसत्व सोचने लगे कि यह रेगिस्तान तो बिना पानी का मशहूर है, फिर ये लोग ऐसे निश्चिन्त क्यों दिखाई देते हैं। इनकी आँख लाल हैं। इन्होंने अवश्य ही अपनी चालाकी से बंजारे के लड़के का पानी फिकवा दिया होगा, और उन्हें कमजोर करके खा गये होंगे।

इतने में पास आकर दैत्यों के सरदार ने बोधिसत्व से पानी के बारे में पुरानी बात कही। बोधिसत्व ने कहा, हम लोग व्यापारी हैं। भाई, जब तक दूसरा पानी देख नहीं लेते, पहला नहीं फेंकते। जैसे ही दूसरा पानी दिखाई देगा, इसे फेंक देंगे और गाड़ियों को हल्का कर लेंगे।

दैत्य चले गये। उनके जाने पर बोधिसत्व के साथियों ने पूछा, आर्य, ये लोग कह रहे थे कि आगे दूर पर जो हरे-हरे वृक्ष दिखाई दे रहे हैं, उनके उस ओर मूसलधार वर्षा हो रही है। वे लोग कमल की मालायें पहिने हुये थे, जिससे पता चलता है कि कहीं पास में सरोवर है। बालों और कपड़ों से पानी टपक रहा था, इससे साफ है कि वर्षा हो रही होगी। हम लोग पानी फेंककर गाड़ियों को हल्का कर लें।

पानी की बूँदें भी नहीं

बोधिसत्व ने उनकी बात सुनकर सब गाड़ियाँ रुकवाईं और लोगों को इकट्ठा करके पूछा, "क्यों भाई, तुम में से किसी ने भी इस प्रदेश में कोई तालाब होने की बात पहिले सुनी है?"

लोगों ने कहा, नहीं आर्य, इस प्रदेश के बारे में तो यही सुना है कि इसमें कहीं पानी की बूँद भी नहीं है।

"तो सुनो, ये मनुष्य नहीं, दैत्य थे। वे हमारा पानी फिंकवाकर हमें दुर्बल कर खाने आये होंगे। तुम देखोगे कि आगे जाने वाले बंजारे को वे उसका पानी फिंकवाकर अवश्य खा गए होंगे। उसकी पाँच सौ गाड़ियाँ जैसी की तैसी भरी खड़ी होंगी। वह बंजारे का पुत्र उपायकुशल नहीं था। आज तुम उसे रास्ते में देखोगे। इसलिए चुल्लू भर भी पानी बिना फेंके गाड़ियों को हाँको।"

आगे पहुँच कर बोधिसत्व ने पाँच सौ गाड़ियों को जैसी-की तैसी पाया। बैलों तथा आदमियों की हड्डियाँ इधर-उधर बिखरी देखीं। उससे कुछ दूर बोधिसत्व ने गाड़ियाँ खुलवा दीं। गाड़ियों के चारों-गिर्द घेरे में तम्बू तनवा दिये। दिन रहते ही आदमियों और बैलों को शाम का भोजन खिलाया। मनुष्यों के घेरे के बीच बैलों को बँधवाया कुछ मनुष्यों के साथ हाथ में खंजर लिए स्वयं रात्रि के तीनों याम पहरा देते खड़े रहे। तड़के बैलों को खुलवाया। कमजोर गाड़ियों को छोड़ उनकी जगह पहले बंजारे की मजबूत गाड़ियाँ लीं। कम कीमत का सौदा छोड़ उसकी जगह अधिक दाम वाला सौदा लिया। तब बैलों को गाड़ियों में जोत कर आगे चले। सामान को दुगुने-तिगुने पर बेचकर सारी मंडली के साथ खुशी-खुशी अपने नगर लौट आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार का ऐश्वर्य-प्रदर्शन

श्री रामकिंकर भगवान्वल्लभ पाण्डेय

संगीत ताल पर चला वृदुल हिलता-सा।
वनवैभव से स्वागतसमेत मिलता-सा॥
शतशत सहस्र सुर वारवधू अभिरामा।
अनुकूला केलिरता स्वभावतः वामा॥
कोई स्वर पर बनकर बहार मन हरती।
कोई उभार लय-तान मधुरतर भरती॥
धरती पग कोई नृत्यनियन्त्रित करती।
दृग से कोई संसार निमन्त्रित करती॥
प्रत्येक अंग अभिनव तरंग भरते थे।
प्रत्यंग और भ्रू-भंग विवश करते थे॥
सब मग्न हुईं, संलग्न हुईं क्रीड़ा में।
आ गई नम्रता वहाँ स्वयं व्रीड़ा में॥
संचार निम्नगा कलामयी काया का।
संसार चकित करता उभार छाया का॥
दश-नख प्रभा अमिताभ प्रकृति ने पाई।
दश श्रोतवती, दशदिशामयी कहलाई॥
आलोक! एक आनन्द! एक सुषमा-सी।
क्षिति में समा गई, बिखरा गई क्षमा-सी॥
कामुकता का साम्राज्य स्वयं प्रगटा हो।
शशि में सुहास बरसाती छविच्छटा हो॥
सिद्धार्थ! तुम्हारे लिए मार मरता है।
यह कर-विहीन-सब कर्म स्वयं करता है॥
पर खुलीं नहीं पलकें सिद्धार्थ! तुम्हारी,
सामर्थ्य अरे! तुमसे हारी, अब हारी!
अब अन्तिम बल प्रयोग काम की कृति का।
शर सावधान संधित छूटा रतिपति का॥
पाकर संकेत मनोगत विचक्षणी का।
रममाण भाव साकार हुआ रमणी का॥
उमड़े स्वर सागर से सरोज घन काले।
विद्युत विलास-सा हास लिए मतवाले॥
जो पग-न्यास पर थिरक-थिरक चलते थे।
छलना के साथी बने स्वयं छलते थे॥
निर्घोष विजय का यह प्रमाण भर लाया।
पग के घुँघुरु से उठ सर्वत्र समाया॥
छाया कटि किंकिणि की मीठी तानों में।
कण वही मींड़ बनकर बरसा गानों में॥
उमड़े तब प्रबल पयोद महा अभिमानी।
उभरे पयोधरों की गति जब पहिचानी॥
वय में, विलास में, रूप-रंग में राते—
घन घुमड़ चले सादृश्यतया मदमाते॥
अवनी सकाम, अम्बर सकाम, जग कामी।
साधना काम, गन्तव्य काम, मग कामी॥
स्मर से प्रेरित वह घिरी हुई घन-श्रेणी।
या खुली दामिनी की मनोरमा वेणी॥
अथवा असंख्य पादार्घ्य झुके चरणों में।
या सुधा द्रवित हो बही सदुपकरणों में॥
बरसे घन, अति बरसे, अत्यतिशय बरसे।
बरसे-शशि कर से, और शूर के शर से॥
उद्दाम वेग से बढ़ी हुई जलधारा—
जलरूप कर गई सरिता और किनारा॥
पग कहीं किसी के परसे, नयन भिगोये।
अभिषिक्त कहीं कच किये, कहीं तन धोये॥
रुचिराभरणा रति स्वयं सुधा सरिता-सी।
सुषमा-सारा-सी, क्रिया समाचरिता-सी॥
उमँगी अनन्त रमणीय ऊर्मियों द्वारा।
बन सुख-सारा, मधुधारा, युग दृगतारा॥
कंदर्प गिरा गूँजी,—अदभ्र बढ़ धाओ—
घुमड़ो घन, उमड़ो नीर शिखर चढ़ जाओ॥
रे! द्रुत हो-गिरिमेखल गजराज गुमानी!
तू पुंज नहीं है गर्व! आज सेनानी!
हे दर्प! तथा हे विजय! बढ़ो सब आगे।
श्रम त्यागे, क्रम त्यागे, भय-विभ्रम त्यागे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सिद्धार्थ! सम्हालो-पंचबाण प्राणों से।
तप से, समाधि से या कठोर बाणों से॥
अथवा तुम करुणा से इस ओर निहारो।
मेरे विचार से सारासार विचारो॥
हाँ-कहो'-बनो इस वसुधा के अभिलाषी।
यह सब विभूति समझो चरणों की दासी॥
पर प्रत्युत्तर था-'नहीं! नहीं यह होगा!
यह भार अभिष्टों ने ही केवल भोगा॥
वह स्वयं शुद्ध, जगती प्रबुद्ध करने को।
आये हैं—तेरा मार्ग रुद्ध करने को॥
जा! और कहीं दिखला वैभव बल अपना।
मुझ जागरूक के लिए समझ सब सपना'॥
स्थिर बोधिसत्व की काया में दृढ़ता का।
आभास मिला कामुकता को जड़ता का॥

शोषितों का प्रिय चला गया!

श्री सन्तराम, बी० ए०

कोई सोलह सत्रह वर्ष की बात है, जातपाँत तोड़क मण्डल, लाहौर के प्रचारक श्री भूमानन्द जी के साथ मैं लखनऊ गया था। हम दोनों लाटूश रोड पर श्री दुलारेलाल जी भार्गव के यहाँ ठहरे थे। वहीं पहली बार मुझे भदन्त बोधानन्द महास्थविर के दर्शन हुए थे। उनका शरीर दुबला पतला था। रंग साँवला, दाढ़ी-मूँछ मुंडी हुई, सिर नंगा, आयु कोई साठ के लगभग जान पड़ती थी। काषाय वस्त्रधारी थे। देह में चुस्ती और नेत्रों में अद्भुत तेज था।

स्वामी जी श्री दुलारेलाल जी से बातचीत कर ही रहे थे कि इतने में एक और सज्जन उनसे मिलने आ गये। दुलारे लाल जी ने नवागत महाशय का परिचय देते हुए मुझसे कहा कि ये हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार हैं। इस पर मैंने आगन्तुक सज्जन से उनका नाम पूछा। वे बोले—"मेरा नाम श्रीराम शर्मा है।" यह सुन मेरे मित्र श्री भूमानन्द जी झट बोल उठे—"श्रीराम तो हुआ यह 'शर्मा' क्या बला है?" इस पर "शर्मा" जी झुँझला उठे और लगे वर्ण व्यवस्था का स्तोत्र गान करने। बोले देखो जहाँ जहाँ बौद्ध धर्म के नाम से वर्ण-व्यवस्था टूट गई या शिथिल हो गई थी। वहीं वहीं इस्लाम का अधिक प्रचार हुआ। उत्तर प्रदेश में यद्यपि आगरा जैसे स्थान मुसलमानों की राजधानी रहे, पर वर्ण-व्यवस्था की मर्यादा ठीक होने से लोग उतने अधिक मुसलमान नहीं हुए जितने कि पंजाब और बंगाल में हुए हैं। इस पर श्री भूमानन्द जी ने कहा कि बौद्ध धर्म का सबसे अधिक प्रचार बिहार प्रान्त में था। वहाँ के लोग मुसलमान क्यों नहीं हुए? पंजाब के मुसलमान होने का कारण बौद्ध धर्म और उत्तर प्रदेश के बचे रहने का कारण वर्ण-व्यवस्था को मानना भारी भूल है। बात असल में यह है कि उत्तर प्रदेश तक पहुँचते पहुँचते मुस्लिम आक्रामकों का जोश ठण्डा पड़ गया था। तब उनको अधिक प्रदेश जीतने की उतनी अभिलाषा न थी जितनी कि जीते हुए प्रदेश में अपने शासन को स्थिर करने की। इसके लिए उन्हें धार्मिक सहिष्णुता के द्वारा प्रजा के मन पर अपनी विशालता का संस्कार डालना आवश्यक था। दूसरी बात यह थी कि हिन्दू वर्ण-व्यवस्था के अनुसार केवल क्षत्रियों को ही शासन और शस्त्र धारण करने का अधिकार था। वे ही मुसलमान आक्रमणकारियों के विरुद्ध लड़े। शूद्र प्रजा के लिए तो हर एक हिन्दू क्षत्रिय राजा भी उतना ही गैर था जितना कि विदेशी मुगल शासक के हाथ में था। बाँके राजपूत मुसलमानों से हार गये और मुसलमानों ने वहाँ की शूद्र जातियों को इस्लाम ग्रहण करके सामाजिक समता को अपनाने के लिए निमन्त्रण दिया तो आत्म संयमी शूद्रों ने हिन्दू समाज में नीचों से भी बदतर जीवन बिताने की अपेक्षा मुसलमान बनकर मानवता का अधिकार और शासकों के धर्म-बन्धु होने का गौरव प्राप्त करना हितकर समझा। वर्ण-व्यवस्था द्वारा शोषित उत्तर प्रदेश के शूद्रों को ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुयोग नहीं मिल सका और न तो द्विजशाही ने उनमें अपने शोषकों तथा उत्पीड़कों के विरुद्ध क्रान्ति करने की शक्ति ही रहने दी थी। इसीसे वे मानवता को खोकर हिन्दूधर्म-सेना के गहरे हानि में ही पड़े रहे।

महास्थविर जी यह सब वाद-विवाद सुन रहे थे। वे शान्त न रह सके। उनमें करुणा एवं क्रोध का उद्रेक हो आया। वे काँपने लगे और बड़े ही हृदय द्रावक स्वर में बोले —

"इस द्विजशाही ने शूद्रों की आत्मा को कुचल डाला है। उनके आत्म-संयम को मिट्टी में मिला दिया है। यहाँ लखनऊ में दुर्गा-दुर्गा नाम की एक कहारिन रहती है। वह मन्दिर में जाकर भगवान् से यही प्रार्थना करती है कि हे प्रभु, मुझे अगले जन्म में भी कहारिन बनाना और वह भी किसी दूसरे की नहीं, वरन् इन्हीं भार्गवों की, इस प्रकार इस वर्ण-व्यवस्था ने शूद्रों की रनह में जोंकें लगा रखी हैं। अंगरेजों की दासता तो शूद्रों के शरीर को ही दुःख देती है। पर इन द्विजों की दासता ने उनकी आत्मा को ही आहत कर डाला है।"

स्वामी जी के इन शब्दों का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने अनुभव किया कि स्वामी जी परमकारुणिक भगवान् बुद्ध के सच्चे अनुयायी हैं। इनके हृदय में भारत की शोषित प्रजा के लिए अगाध सहानुभूति है। हमारे जात-पाँत तोड़ने के साथ में वे हमारे बड़े सहायक हो सकते हैं। तब से मेरा उनका सम्पर्क बराबर बना रहा। कुछ वर्ष बाद मुझे एक बार फिर लखनऊ जाने का अवसर मिला। तब मैंने रिसालदार पार्क में बनाये उनके बुद्ध विहार को देखा और उनसे हृदय खोलकर विचार विनिमय किया। स्वामी जी ने कहा कि अछूतों के उद्धार के लिए तो गाँधी जी के अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण विवश होकर कुछ न कुछ करना पड़ा है। पर हम स्पृश्य शूद्रों की कौन सुधि लेगा? इन शोषितों का कौन उद्धार करेगा? इनको द्विजों की दासता से कौन मुक्त करायगा? स्वामी जी दीन-दुःखी, दलित, शोषित, स्पृश्य शूद्रों की दशा को उन्नत करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे। उन्होंने इनमें नवजीवन का संचार करने के लिए कई उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखे थे। श्री चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु तथा श्री गौरीशंकर पाल प्रभृति कई सज्जनों के सहयोग से उन्होंने शूद्रों की दशा सुधारने के लिए एक संगठन भी तैयार किया था। वे जात-पाँत को देश के लिए उतना अधिक घातक समझते थे कि एक बार आवेश में आकर वे मुझसे बोले—"दुनिया महात्मा गाँधी को भारत का सबसे बड़ा नेता और उद्धारक समझती है। पर मैं आपको ही भेष से महान और सच्चा नेता मानता हूँ, क्योंकि आपने भारत के रोग का मूल कारण यह काम किया है, और उसी को—जात-पाँत को—समूल नष्ट करने के लिए अपना जीवन अर्पित किए हुए हैं।"

भिक्षु प्रज्ञानन्द जी के पत्र से स्वामी जी के परिनिर्वाण का समाचार जानकर मुझे हार्दिक दुःख हो रहा है। उनकी मृत्यु से शोषित वर्ग का एक सच्चा मित्र संसार से चला गया।

चार आर्य सत्य

भिक्षु प्रज्ञानन्द

भगवान् बुद्ध के धर्म को समझने के लिये चतुरार्य सत्य को समझना बहुत ही आवश्यक है। चतुरार्य सत्य क्या है? 'दुःख, दुःख का समुदय, दुःख-निरोध और दुःख निरोध का मार्ग।'

दुःख क्या है? जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, मरना दुःख है, रोगी होना दुःख है, शोक, इच्छाओं की अपूर्ति, अनिच्छित की प्राप्ति, संक्षेप में कहें तो पाँच उपादान स्कंध ही दुःख हैं।

दुःख का समुदय क्या है? दुःख का समुदय अविद्या और तृष्णा है। अविद्या और तृष्णा से दुःख कैसे उत्पन्न होता है? अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम-रूप के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से षडायतन, षडायतन के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, रोगी होना, मरना, शोक, रोना, पीटना, मानसिक चिन्ता, परेशानी आदि नानाविध दुःखों की उत्पत्ति होती है।

दुःख-निरोध क्या है? जिस प्रकार दुःख-समुदय हुआ है उसी क्रम से उसका निरोध भी होता है। अर्थात् अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है। संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप का निरोध, नाम-रूप के निरोध से षडायतन का निरोध, षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से जरा, मृत्यु, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास इत्यादि सम्पूर्ण दुःखों का निरोध होता है।

बौद्ध-धर्म के अनुसार इस जगत का व्यापार कार्य-कारण-नियम के अनुसार चल रहा है। कोई भी घटना अपने पूर्व घटना के कारण से होती है और वह अपने पर-घटना का स्वयं भी कारण है। मनुष्य का व्यक्तित्व और उसका सुख-दुःख भी इसी कार्य-कारण-नियम के अधीन है। जिस कार्य-कारण-नियम के अधीन मनुष्य के व्यक्तित्व की उपलब्धि होती है, उसे प्रतीत्य-समुत्पाद-नीति कहते हैं।

प्रतीत्य-समुत्पाद का अर्थ है "इसके होने से यह होता है।" जैसे ऊपर कहा गया है कि (१) अविद्या (चतुरार्य सत्य और प्रतीत्य समुत्पाद का अज्ञान) के होने से संस्कार उत्पन्न होता है। (२) संस्कार (शुभाशुभ कर्मों का सूक्ष्म अंश) के होने से विज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् मृत्यु के बाद चित्त सन्तति जन्मान्तर में आती है। (३) विज्ञान के होने से नाम-रूप अर्थात् मानसिक और भौतिक अवस्था या जड़-चेतन की स्थिति का भेद होता है। (४) नाम-रूप के होने से षडायतन अर्थात् चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक् और मन ये छः इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं। (५) षडायतन के होने से स्पर्श अर्थात् रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म इन छः विषयों के साथ छः इन्द्रियों का स्पर्श होता है। (६) स्पर्श के होने से वेदना अर्थात् सुख-दुःखादि वेदनायें उत्पन्न होती हैं। (७) वेदना के होने से तृष्णा अर्थात् काम-तृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा उत्पन्न होती है। (८) तृष्णा के होने से उपादान अर्थात् विषयों के ग्रहण या पकड़, मोह या आसक्ति होती है। (९) उपादान के होने से भव (पुनर्जन्म के देनेवाले कर्म-चेतना या संस्कार), (१०) भव के होने से जाति अर्थात् व्यक्तित्व की सन्तति आगे को जन्मान्तर में चालू रहती है। (११) जाति के होने से जरा-मरण, दुःख-दौर्मनस्य, उपायासादि नानाविध शारीरिक और मानसिक दुःखों की उत्पत्ति होती है। इस प्रतीत्य समुत्पाद नीति के बारे में भगवान् ने कहा है—

"यो खो भिक्खवे पटिच्चसमुप्पादं पस्सति, सो धम्मं पस्सति, यो धम्मं पस्सति, सो पटिच्चसमुप्पादं पस्सति।" (दीघनिकाय पोट्ठपाद सुत्त) अर्थात् जो प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है वह धर्म को देखता है और जो धर्म को देखता है वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है। इस प्रतीत्य समुत्पाद नीति के द्वारा दुःखों की उत्पत्ति और निरोध दिखाया गया है। दुःख जैसे उत्पन्न होते हैं वैसे ही निरुद्ध होते हैं। दुःख के अत्यन्त निरोध को निर्वाण कहते हैं। निर्वाण दो प्रकार के हैं—क्लेश-निर्वाण और स्कन्ध-निर्वाण। रागादि दस क्लेशों के निर्वाण को क्लेश-निर्वाण कहते हैं जो इसी शरीर में प्राप्त हो सकता है। उस अवस्था का नाम अर्हन्तावस्था है और स्कंध-निर्वाण इस जीवन के बाद प्राप्त होता है। रागादि दस क्लेश ये हैं:—

(१) राग, (२) द्वेष, (३) मोह, (४) मान, (५) मद, (६) मिथ्या दृष्टि, (७) स्त्यानमृद्ध, (८) औद्धत्य-कौकृत्य, (९) विचिकित्सा और (१०) निर्लज्जता।

पंच स्कंध ये हैं—(१) रूप, (२) वेदना, (३) संज्ञा, (४) संस्कार और (५) विज्ञान।

क्लेश-निर्वाण का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है—इस अवस्था को प्राप्त हुआ चित्त-लाभ-अलाभ, यश-अयश, निन्दा-प्रशंसा, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के प्राप्त होने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचलित नहीं होता तथा शोक, पाप और भय से रहित परम मङ्गलमय हो जाता है।

सम्यक् ज्ञान के द्वारा जिसने राग-द्वेष के अग्नि को शान्त कर लिया है—ऐसे जीवन्मुक्तों के मन, वचन और कर्म शान्त हो जाते हैं।

उत्पत्ति-विनाश धर्मवाले मार्ग से जो निवृत्त हो गया है जो शोक रहित और सर्वथा विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रन्थियाँ क्षीण हो गई हैं, उसके लिये फिर दुःख और परिताप कुछ नहीं है।

"भिक्षुओ, जिसका हृदय राग से मुक्त है, द्वेष से मुक्त है, मोह से मुक्त है, वह ऐसी बातें नहीं सोचता, जिससे उसे दुःख हो। वह ऐसी बातें नहीं सोचता, जिससे औरों को दुःख हो, वह ऐसी बातें नहीं सोचता, जिससे उसे तथा औरों को—दोनों को दुःख हो। उसको मानसिक दुःख तथा चिन्ता नहीं होती।

इस प्रकार भिक्षुओ, आदमी जीते-जी निर्वाण को प्राप्त करता है, जो काल से सीमित नहीं, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि आओ और स्वयं देख लो। जो ऊपर उठाने वाला है, जिसे प्रत्येक बुद्धिमान आदमी स्वयं प्रत्यक्ष कर सकता है।

भिक्षु जब शान्तचित्त हो जाता है, जब बन्धनों से बिलकुल मुक्त हो जाता है, तब उसको कुछ और करना बाकी नहीं रहता है। जो कार्य वह करता है, उसमें कोई ऐसा नहीं होता, जिसके लिये उसे पश्चात्ताप हो।

जिस प्रकार ठोस पर्वत को हवा तनिक भी नहीं हिला पाती, उसी प्रकार जितने भी रूप, रस, शब्द, गन्ध स्पर्श तथा अनुकूल वा प्रतिकूल विषय हैं, वे स्थित-प्रज्ञ भिक्षु को तनिक भी नहीं हिला पाते। उसका चित्त स्थिर होता है, मुक्त होता है, उसके वश में होता है।" (अं० नि० ३,५२)

संक्षेप में स्कन्ध निर्वाण इस प्रकार है:—

"भिक्षुओ! ऐसा आयतन (अस्तित्व) है, जहाँ न पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश-आयतन है, न विज्ञान-आयतन, न अकिञ्चन-आयतन है, न नेवसञ्ज्ञानासञ्ज्ञा-आयतन है, न यह लोक है, न परलोक है, न चाँद है, न सूर्य है; वहाँ भिक्षुओ, न जाना होता है, न आना होता है, न ठहरना होता है, न च्युत होना होता है, न उत्पन्न होना होता है; वह आधार रहित है, संसरण-रहित है, आलम्बन रहित है, यही दुःख का अन्त है।" (इतिवुत्तक)

"भिक्षुओ! जात (= उत्पन्न) का अभाव है, भूत का अभाव है, कृत का अभाव है। संस्कृत का अभाव है। यदि भिक्षुओ, जात का अभाव न होता, भूत का अभाव न होता, कृत का अभाव न होता, संस्कृत का अभाव न होता, तो भिक्षुओ, जात से, भूत से, संस्कृत से मुक्ति न दिखाई देती। लेकिन, क्योंकि भिक्षुओ, जात का अभाव है, भूत का अभाव है, कृत का अभाव है, संस्कृत का अभाव है; इसीलिये जात से, भूत से, कृत से, संस्कृत से मुक्ति दिखाई देती है।" (उदान ८)

"अर्हन्तों (जीवन-मुक्तों) के पुराने सब कर्म क्षीण हो जाते हैं और नये कर्मों की उत्पत्ति नहीं होती। पुनर्जन्म में उनकी आसक्ति नहीं होती और उनकी कोई इच्छा बाकी नहीं रहती है। अतः वे सब धीरगण बुझे हुए प्रदीप की तरह निर्वाण को प्राप्त होते हैं।"

(सु० नि० १४)

"जिस प्रकार निर्वाण को प्राप्त हुआ दीपक न पृथ्वी को जाता है, न आकाश को ही, न दिशाओं और विदिशाओं को ही। केवल स्नेह (तेल) के क्षय से शान्ति को प्राप्त होता है। उसी तरह अर्हन्त निर्वाण को प्राप्त हुआ न पृथ्वी को जाता है, न आकाश को जाता है और न दिशाओं-विदिशाओं को ही। केवल क्लेश के क्षय से शान्ति को प्राप्त होता है।" (सौन्दरानन्द)

यहाँ तक दुःख आर्य सत्य, दुःख समुदय आर्य सत्य, दुःख निरोध आर्य सत्य के परिचय के बाद दुःख निरोध गामी आर्य सत्य इस प्रकार है—

(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाणी, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीविका, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि।

सम्यक् दृष्टि क्या है? (१) (i) दुःख, (ii) दुःख का कारण, (iii) दुःख निरोध और (iv) दुःख निरोध का मार्ग—इन चार आर्य सत्यों को और (२) प्रतीत्य समु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाद नीति को तथा (३) दुराचार और दुराचार के कारण तथा सदाचार और सदाचार के कारण को ठीक-ठीक समझ लेना सम्यक् दृष्टि कहलाता है।

सम्यक् संकल्प क्या है? (१) नैष्क्रम्य संकल्प, (२) अव्यापाद संकल्प और (३) अविहिंसा संकल्प अर्थात् कामतृष्णा रहित संकल्प, क्रोधभाव रहित संकल्प और हिंसाभाव रहित संकल्प को सम्यक् संकल्प कहते हैं।

सम्यक् वाणी क्या है? (१) मिथ्या वचन बोलना, (२) चुगली करना, (३) कड़वा वचन बोलना, (४) बे-मतलब बोलना इन चार वाणी के दोषों से रहित वचन बोलना सम्यक् वाणी कहलाते हैं।

सम्यक् कर्मान्त क्या है? (१) हिंसा करना (२) चोरी करना या दूसरे की वस्तु बिना अनुमति के लेना (३) व्यभिचार करना (४) नशा करना और (५) जुआ खेलना से पाँच शारीरिक पापों के त्यागपूर्वक कर्तव्य कर्मों को करना सम्यक् कर्मान्त कहलाते हैं।

सम्यक् आजीविका क्या है? (१) हिंसा या हिंसा के सहायक कार्यों द्वारा आजीविका का त्याग (२) पर-धन अपहरण के द्वारा आजीविका का त्याग (३) व्यभिचार के द्वारा आजीविका का त्याग (४) विषाक्त और नशीली वस्तुओं के व्यापार तथा जुए के द्वारा आजीविका का त्याग अर्थात् इन सम्यक् जीविकाओं के त्याग पूर्वक जीविकोपार्जन करना सम्यक् आजीविका कहलाता है।

सम्यक् व्यायाम क्या है? चार प्रकार के सम्यक् प्रयत्नों को सम्यक् व्यायाम कहते हैं—(१) ग्रहण की हुई बुरी आदतों को छोड़ना (२) न ग्रहण की हुई बुरी आदतों को उत्पन्न न होने देना (३) न ग्रहण की हुई अच्छी आदतों को ग्रहण करना (४) ग्रहण की हुई अच्छी आदतों को कायम रखना और वृद्धि करना। इन मानसिक प्रयत्न या कसरत को सम्यक् व्यायाम कहते हैं।

सम्यक् स्मृति क्या है? स्मृति का अर्थ है—जागरूकता। सम्यक् स्मृति भी चार हैं—(१) कायानुपश्यी होना अर्थात् उठना, बैठना, सोना और चलना आदि कायिक कार्यों में जागरूक रहना (२) वेदनानुपश्यी होना अर्थात् सुख-दुःख आदि वेदनाओं में जागरूक रहना (३) चित्तानुपश्यी होना अर्थात् राग-युक्त चित्त को रागयुक्त जानना, राग-रहित चित्त को रागरहित जानना, द्वेषयुक्त चित्त को द्वेषयुक्त और द्वेषरहित को द्वेषरहित जानना, मोहयुक्त चित्त को मोहयुक्त और मोहरहित चित्त को मोहरहित जानना इत्यादि चित्त की अवस्थाओं के प्रति सचेत रहना (४) धर्मानुपश्यी होना अर्थात् मन के विषयों के प्रति जागरूक रहना। मन के विषय जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, आलस्य, उद्धत्व, पश्चात्ताप और संशय आदि जो भी मन के धर्म हैं उनके प्रति जागरूक रहना, सतर्क रहना। इस प्रकार शरीर, वेदना, चित्त और धर्म इन चारों के कार्यों में जाग्रत और सतर्कतापूर्वक विहार करना सम्यक् स्मृति कहलाता है।

सम्यक् समाधि क्या है? कुशल चित्त की एकाग्रता का नाम समाधि है। चारों स्मृति-उपस्थान समाधि के निमित्त हैं और चारों सम्यक् व्यायाम समाधि की सामग्री हैं। इन्हीं आठों धर्मों के सेवन करके, भावना करने और बढ़ाने का नाम समाधि भावना है।

इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को शील, समाधि और प्रज्ञा के भेद से तीन विभाग किये जाते हैं।

१. सम्यक् दृष्टि २. सम्यक् संकल्प	प्रज्ञा
३. सम्यक् वाणी ४. सम्यक् कर्मान्त ५. सम्यक् आजीविका ६. सम्यक् व्यायाम्	शील
७. सम्यक् स्मृति ८. सम्यक् समाधि	समाधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या बौद्ध-संसार ध्यान देगा ?

श्रीमान् सम्पादक जी,

मैं एक बौद्ध होने के नाते बौद्ध-संसार का ध्यान "कुमाऊँ के अल्पसंख्यक गरीब बौद्धों की समस्याओं" की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इससे पूर्व कि मैं यहाँ की समस्याओं को आपके सम्मुख रक्खूँ, मैं यहाँ के बौद्धों का संक्षिप्त इतिहास आपको ज्ञात करा देना आवश्यक समझता हूँ जिससे कि बौद्ध-संसार को हम लोगों का पूर्ण ज्ञान हो जावे और हमारी समस्याओं का समाधान हो सके।

सन् १८४८ ई० में दो चीनी चाय के विशेषज्ञ और उनके साथ कुछ अन्य चीनी चीन के सोचाऊ जिले से भारत सरकार द्वारा यहाँ आमन्त्रित करके लाये गये। इन लोगों ने कुमाऊँ के पहाड़ों पर चाय के कई बगीचे लगवाये तथा अच्छे प्रकार की चाय बनाई, जिसकी प्रशंसा लन्दन के विशेषज्ञों ने भी की। फिर क्या था, हजारों पौंड की मात्रा में यह चाय 'फ्लावरी पीको' के नाम से भारत के बाजारों में बिकने लगी। इसी समय आसाम की चाय चल निकली, जिसके सम्मुख यह न ठहर सकी, क्योंकि आसाम की चाय बहुत सस्ती थी।*

कालान्तर में इन लोगों का चाय का व्यवसाय नष्ट हो गया और ये चीनी बौद्ध चीन न लौटकर यहाँ कुमाऊँ के पहाड़ों पर बस गये और खेती-बारी व नौकरी में लग गये। बौद्ध धर्म इन्हीं चीनियों द्वारा कुमाऊँ में आया। हम लोग इन्हीं चीनी लोगों की सन्तान हैं। यह वह समय था जब भारत से बौद्ध धर्म का लगभग लोप हो चुका था। इन चीनी बौद्धों ने बौद्ध धर्म को अपने तक ही सीमित रक्खा। इसके तीन कारण माने जा सकते हैं:—

१—यह लोग यहाँ की भाषा से बिल्कुल अनभिज्ञ थे।

२—बौद्ध धर्म यहाँ कहीं जिक्र करने को भी न था।

३—यह लोग अच्छा मोटा वेतन पाते थे, जिससे अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते थे।

कुछ समय उपरान्त इन चीनी विशेषज्ञों में से एक विशेषज्ञ की मृत्यु हो गई, जो इनमें योग्य व चीनी और अंग्रेजी भाषा का जानकार था। इस भाग्यवान् की मृत्यु के पश्चात् सब चीनी बौद्ध तितर बितर हो गये। कारण, इनकी 'स्टेट' कई अन्य निजी कारणों से बिक गई। इन्हीं चीनी लोगों ने यहाँ के कुछ आर्य-समाजी हिन्दुओं से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लिया, जिसके फलस्वरूप इनकी सन्तानों से बौद्ध धर्म लोप हो गया। धीरे-धीरे वे लोग हिन्दू रश्म रिवाजों को अपनाने लगे, परन्तु बहुत थोड़े अंशों में फिर भी बौद्ध धर्म इन लोगों में विद्यमान था। उदाहरणस्वरूप बुद्ध-पूर्णिमा में त्योहार मनाना और विवाह व नामकरण के अवसर पर बुद्ध की तस्वीर की धूप, दीप व गन्ध से पूजा करना। यह तो रहा तीसरी पीढ़ी के मध्य भाग तक का इतिहास।

तीसरी पीढ़ी के मध्य भाग तक मैं भी इस धर्म के प्रति उदासीन ही रहा, परन्तु १९३५ से १९३७ तक मैं पत्रों द्वारा भारत व चीन में बौद्ध धर्म की खोज करता रहा, क्योंकि मैं भारत-भ्रमण करने का साहस आर्थिकाभाव के कारण न कर सका। पर मैं निरुत्साहित न हुआ। अकस्मात् एक दिन समाचार-पत्र में यह प्रकाशित हुआ कि बौद्ध धर्म श्री धर्मपाल जी द्वारा पुनर्जीवित हो रहा है। मैंने शीघ्र ही वहाँ से पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया जिसके फलस्वरूप महाबोधि सोसाइटी के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रिय बलि सिंह जी ने मेरी प्रार्थना पर विचार करके सन् १९३७ में दो भिक्षु श्री एच० धम्मानन्द जी और श्री सुबुद्धि जी को बौद्ध धर्म के प्रचार व यहाँ की दशा जानने के हेतु भेजा। उन भिक्षुओं ने यहाँ बौद्ध धर्म को पुनर्जीवन प्रदान किया और महाबोधि एसोसियेशन नाम की एक संस्था खोली। इस संस्था का काम धर्म-प्रचार करना तथा बौद्ध भाइयों के कष्टों को बौद्ध जगत् के सम्मुख रखना और उनका निवारण करना था। इन भिक्षुओं ने सारनाथ लौटकर वहाँ की सोसाइटी को अपनी रिपोर्ट दी, जिसको कि "धर्मदूत" ने भी संक्षिप्त रूप में छापा था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में यहाँ के बौद्धों की सिफारिश करते हुए कहा था कि "यहाँ के बौद्ध प्रगतिशील हैं, और बौद्ध-जगत् को उन्हें अपनाना चाहिए।"

*(Vide Almora Gazetteer Vol. XXXV 1911 pp. 52)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३९ में मैंने महाबोधि एसोसियेशन की एक शाखा आइजटनगर, बरेली में खोली, क्योंकि वहाँ भी कुमाऊँ के कुछ बौद्ध नौकर थे।

सन् १९३८, नवम्बर मास के मेले में हमारे महाबोधि एसोसियेशन को सारनाथ की सोसाइटी ने आमन्त्रित किया। वहाँ मैं तथा मेरे एक सहयोगी गये। सारनाथ में महाबोधि सोसाइटी के कार्यकर्त्ताओं के सम्मुख मैंने यहाँ के बौद्ध भाइयों की निम्नलिखित तीन समस्याएँ रखीं:—

१—विद्याध्ययन के लिए आर्थिक सहायता या सोसाइटी द्वारा समुचित प्रबन्ध।

२—बौद्ध-संसार से हमारे पुत्र-पुत्रियों का विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना।

३—बौद्ध धर्म की उन्नति व प्रचार।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे प्रधान मन्त्री महोदय ने इस ओर काफी प्रयत्न किया कि हम भारत के बौद्धों के निकट सम्पर्क में आयें, परन्तु उनके सतत प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप भी ये तीनों समस्याएँ हम लोगों के सामने निरन्तर उग्र रूप धारण करती गईं और भारत के बौद्धों ने इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया। इसका हम बौद्ध भाइयों को निश्चय ही क्षोभ है। अब भी हमें हर कार्य के लिए परमुखापेक्षी होना पड़ता है, कारण कि बौद्ध-संसार ने हमें अपनाने का कष्ट ही नहीं किया। धनाभाव के कारण इस समय भी प्रतिभावान् बच्चे उच्च शिक्षा पाने से वंचित हैं।

यद्यपि ईसाई और आर्यसमाजी हिन्दू हमें हर प्रकार से सहायता देने को तैयार हैं, पर यह सहायता कितनी महँगी पड़ेगी, इसे बौद्ध-संसार अनुभव कर सकता है!

आज भारत स्वतन्त्र है। भगवान् गौतम बुद्ध के धर्म की आज भारत को जितनी आवश्यकता है, शायद उतनी पहले न थी, क्योंकि स्वतन्त्रता के साथ ही साथ जीवन पवित्र बनाना उतना ही मूल्य रखता है जितनी स्वतन्त्रता! इसलिये मैंने यह निश्चय किया कि बौद्ध धर्म के सम्मानित पत्र "धर्मदूत" द्वारा एक बार फिर बौद्ध जगत् का ध्यान हम अल्पसंख्यक (लगभग दो सौ) पिछड़े हुए बौद्धों की समस्याओं की ओर आकर्षित करूँ। आशा है, बौद्ध-संसार हम पिछड़े हुए बन्धुओं को अवश्य गले लगायेगा।

मैं हूँ आपका हितैषी सेवक,
अकौन्थैन
आई० वी० आर० आई०
मुक्तेश्वर—कुमाऊँ,
जिला—नैनीताल (यू० पी०)

महाबोधि सभा की माँग

महाबोधि सभा (सारनाथ) ने भारत सरकार से यह प्रार्थना की है कि 'भगवान् बुद्ध' नामक फिल्म चित्र प्रदर्शित करने की आज्ञा न प्रदान की जाय। यह प्रार्थना महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आवश्यकताओं के प्रतिपादन-कार्य के प्रति सरकार की अनिष्टकारी उदासीनता की ओर संकेत करनेवाली है। चाँदी के चमकते टुकड़ों की चकाचौंध पर लहालोट हमारे फिल्म निर्माता निरंकुश और बर्बर जंगलियों की भाँति निर्बाध गति से संस्कृति एवं सभ्यता की उज्ज्वलतम प्रवृत्तियों को कलुषित करते जा रहे हैं, साहित्य और इतिहास के गौरवपूर्ण अनुच्छेदों को विकृत करते जा रहे हैं, लेकिन सरकार है कि उसके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। योग-दर्शन की कल्याणकारी अनुभूतियों के प्रतीक भगवान् शंकर को जो निर्माता चाहता है, आसानी से साधारण 'नट' बनाके नचा देता है। उससे न तो कोई पूछनेवाला है, न उसके दुस्साहस को मर्दित कर मनुष्यता का पाठ पढ़ाने की चेष्टा करता ही कोई दिखाई देता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को अपने फिल्म चित्रों में 'फरहाद' और 'मजनू' के रूप में प्रस्तुत करने की खुली छूट फिल्म-निर्माताओं को मिली हुई है। युद्धभूमि में मोहग्रस्त अर्जुन को 'कर्मयोग' का पाठ पढ़ाकर उसका पौरुष जगानेवाले तथा इन्द्रिय-निग्रह के तत्व-ज्ञान की शास्त्रीय विवेचना द्वारा मनुष्य के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करनेवाले योगिराज कृष्ण को काम-क्रीड़ा-पटु अहीर के छोकरे के रूप में प्रस्तुत करने की पूर्ण स्वतन्त्रता, ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शिक्षा की दृष्टि से निकृष्ट से निकृष्टतम फिल्म-निर्माता को भी प्राप्त है। हमारी सांस्कृतिक अधोगति और साहित्य-सौंदर्य-विनाशक प्रवृत्ति का इससे बड़ा सबूत क्या और कुछ हो सकता है ?

यह इस देश का दुर्भाग्य ही है कि जो संस्कृति और सभ्यता की दुहाई देने के कारण नेता बने बैठे हैं, समाज में उच्च आसन ग्रहण किये हुये हैं, उनका भी ध्यान फिल्म-निर्माताओं की काली करतूतों के कारण हो रहे सांस्कृतिक ह्रास की ओर नहीं जाता। इनकी शक्ति नगण्य है, यह मानने के लिए हम तैयार नहीं। वास्तविकता यह है कि ऐसे लोग केवल अपना राजनीतिक उल्लू सीधा करने के उद्देश्य से ही संस्कृति और सभ्यता की रक्षा का नारा बुलन्द करते हैं। वस्तुस्थिति विपरीत न होती तो आज लक्ष-लक्ष नर-नारियों के समक्ष 'शिव-पार्वती', 'शिव-शक्ति' और 'तुलसीदास' आदि चित्र जो भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम अंश को निकृष्ट कोटि का सिद्ध करनेवाले हैं, प्रदर्शित करने का साहस फिल्म-निर्माताओं और उनके वितरकों में न होता। लेकिन यह साहस कायम है। कायम ही क्यों, अब तो यह दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता जा रहा है। धार्मिक चित्रों के निर्माण के नाम पर धर्म की हत्या करने की जघन्य प्रवृत्ति खूब मजे में फूल और फल रही है। इस विघातिनी प्रवृत्ति को उन्मूलित करने की चिन्ता न तो सरकार को है और न जनता को। ऐसे समय में महाबोधि सभा (सारनाथ) ने 'भगवान् बुद्ध' नामक फिल्म चित्र को प्रदर्शित करने की आज्ञा न देने की प्रार्थना भारत-सरकार से की है। हम इस प्रार्थना को सर्वसाधारण के लिये मार्गदर्शन मानते हैं। क्या ही अच्छा होता यदि कोने-कोने में रहनेवाले नागरिक भी महाबोधि सभा की हाँ में हाँ मिलाते हुये 'भगवान् बुद्ध' और वैसे ही अन्य सब फिल्म चित्रों के प्रदर्शन पर रोक लगाने की माँग सरकार से इतने जोरदार शब्दों में करते कि वह इसे अत्यधिक शक्तिशाली सरकार को भी जनता जनार्दन के समक्ष घुटने टेकने के लिए विवश करनेवाले प्रबल जनान्दोलन के रूप में स्वीकार करने के लिये बाध्य होकर फिल्म-निर्माताओं की निरंकुशता को रोकने के लिये तत्काल अग्रसर हो जाती।

—सम्पादक

दैनिक 'बनारस' काशी

स्नान से शुद्धि नहीं

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। उस समय संगारव नाम का एक ब्राह्मण उदक-शुद्धिक, उदक से शुद्धि होना माननेवाला श्रावस्ती में रहता था। वह साँझ-सुबह उदक में ही पैठा रहता था।

तब आयुष्मान् आनन्द सुबह में पहन पात्रचीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए पैठे। भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को यह कहा—'भन्ते ! संगारव ब्राह्मण साँझ-सुबह उदक में ही पैठा रहता है। भन्ते ! अनुकम्पा करके भगवान् जहाँ संगारव का घर है वहाँ चलें।' भगवान् ने चुप रह स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् सुबह में पहन और पात्रचीवर ले जहाँ संगारव का घर था वहाँ गये, जाकर बिछे आसन पर बैठ गये। तब संगारव ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर कुशल-प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे संगारव ब्राह्मण को भगवान् ने कहा—'ब्राह्मण ! क्या सच में तुम उदक-शुद्धिक हो, उदक से शुद्धि होना मानते हो ? साँझ-सुबह उदक में ही पैठे रहते हो ?'

'हाँ, गौतम ! ऐसी ही बात है।'

'ब्राह्मण ! तुम किस उद्देश्य से उदक-शुद्धिक हो, उदक से शुद्धि होना मानते हो और साँझ-सुबह उदक में ही पैठे रहते हो ?'

'हे गौतम ! दिन भर में मुझसे जो कुछ पाप हो जाता है, उसे साँझ में नहाकर बहा देता हूँ और रात भर में जो कुछ पाप हो जाता है उसे सुबह में नहाकर बहा देता हूँ। हे गौतम ! मैं इसी बड़े उद्देश्य से उदक-शुद्धिक हो, उदक से शुद्धि होना मानता हूँ और साँझ-सुबह उदक में पैठा रहता हूँ।'

'हे ब्राह्मण ! धर्म जलाशय है,
शील उसमें उतरने का घाट है।
बिल्कुल स्वच्छ, सज्जनों से प्रशस्त,
जिसमें परम ज्ञानी स्नान कर,
पवित्र गात्रोंवाला हो पार तर जाता है॥'

—सं० नि० ७.२.११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये प्रकाशन

स्वतन्त्रता की खोज में:—लेखक तथा प्रकाशक—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, सत्यज्ञान-निकेतन, ज्वालापुर (यू० पी०)। पृष्ठ-संख्या—५६८। मूल्य ४)।

'स्वतन्त्रता की खोज में' इसका अनुवाद लेखक ने टाईटल पेज पर 'In Search of freedom' किया है, परन्तु स्वतन्त्रता का स्पष्टीकरण करते समय लेखक कहता है:—'Not freedom we need but Self control' इसका अर्थ है 'हमें स्वतन्त्रता की आवश्यकता नहीं है, बल्कि आत्मसंयम की'। स्वतन्त्रता की खोज में निकले हुए मनुष्य को कहना कि मैं स्वतन्त्रता नहीं चाहता, जरा अनुचित सा दीखता है। हम जानते हैं कि स्पष्टीकरण में लेखक ने स्वतन्त्रता दो प्रकार की होती है ऐसा दिखाने का प्रयत्न किया है। पहले या सच्चे अर्थ में स्वतन्त्रता का अर्थ होता है आत्मसंयम और दूसरे अर्थ में स्वतन्त्रता का अर्थ होता है स्वच्छन्दता। और लेखक ऐसा बताना चाहता है कि स्वतन्त्रता शब्द का प्रयोजन पहिले अर्थ में किया गया है, न कि दूसरे अर्थ में। हम यहाँ पर इतना ही कहना चाहते हैं कि जब लेखक स्वतन्त्रता की खोज में निकला है तो पाठक जानते हैं कि वह सच्ची स्वतन्त्रता की खोज में निकला है। स्वच्छन्दता की खोज में जाने की आवश्यकता नहीं होती। उसमें तो मनुष्य फँसा है ही। उससे बाहर निकलने की तो उसकी कोशिश ही होती है। अतः ऐसा अनावश्यक स्पष्टीकरण कर लेखक ने विषय की गम्भीरता नष्ट की है। अस्तु। अब हम पुस्तक के गुण-दोष का विवेचन करेंगे। लेखक की ब्रह्मचर्य पर अटल श्रद्धा तथा प्रचारार्थ हजारों मील पैदल भ्रमण—ये पुस्तक के गुण हैं। परन्तु बहुत दुःख से हमें कहना पड़ता है कि समस्त पुस्तक संकीर्णता, जातीयता, हिंसक विचारों तथा अविवेक की दुर्गन्ध से परिपूर्ण होने से त्याज्य है।

लेखक पृष्ठ ६४ में कहता है—'और मैं समझने लगता मानों चारों वेदों के प्रचार का भार मेरे ही सिर पर आ पड़ा है।' हम यहाँ पर कहेंगे कि प्रचार होता है सचाई का, न कि किसी पुस्तक का। हम मानते हैं कि कोई ग्रन्थ सचाई का प्रतीक हो सकता है। हिन्दुओं के लिए वेद सचाई का प्रतीक है। मुसलमानों के लिए कुरान शरीफ और इसाइयों के लिए बाइबिल सचाई के प्रतीक हैं। यदि ये सब धर्म-ग्रन्थ सचाई के प्रतीक हैं तो प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हमें इन ग्रंथों पर जोर देना उचित होगा या जिस सचाई के प्रतीक ये सब धर्म-ग्रन्थ हैं उस सचाई पर? ग्रन्थ पर जोर देने से हम संकीर्णता और साम्प्रदायिकता पर जोर देते हैं और इस संसार में मनुष्य-मात्र में धर्म के नाम पर जो दीवारें खड़ी हुई हैं उनको उत्तेजन देते हैं। परन्तु सचाई पर जोर देने से हम इन दीवारों को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं और मानवता की नींव दृढ़ करते हैं। और दूसरी बात यह है कि मनुष्य का मार्गदर्शन मनुष्य ही कर सकता है, न कि ग्रन्थ। रण में तलवार हमारा नेतृत्व नहीं कर सकती, बल्कि जो मनुष्य तलवार अच्छी तरह चलाना जानता है वही हमारा नेतृत्व कर सकता है। वैसे ही जो मनुष्य वेद का सार जानता है और जिसके आचरण में यह सार ठस ठसके भरा है ऐसा मनुष्य ही हमारा मार्गदर्शक हो सकता है, न कि वेद ग्रन्थ। वैसे तो वेद शब्द का सच्चा अर्थ है जानने योग्य अर्थात् 'प्रकाश'। और वेद शब्द का दूसरा अर्थ है 'वेद ग्रन्थ', जिसमें यह प्रकाश प्राप्त करने का मार्ग बताया गया है। ये ग्रन्थ तो मनुष्य-निर्मित ही हैं। और तीसरी बात यह है कि जब तक हम जानते नहीं कि जिस ऋषि ने वेद ग्रन्थ लिखा, उसके आचरण में वेद में लिखा हुआ वचन उतरा या नहीं, तब तक उस शब्द की क्या कीमत है? यथा वेदों में लिखा है 'अहिंसा परमो धर्मः' परन्तु यदि लिखनेवाले के जीवन में अहिंसा का पालन नहीं हुआ तो ऐसे शुष्क शब्द की क्या कीमत है? यदि एक शराबी कहे कि शराब बुरी चीज है तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। अतः मनुष्य ही सचाई का प्रतीक होता है, न कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई पुस्तक। और इसी कारण हम कह सकते हैं कि जिसने 'प्रकाश' पाया है ऐसा सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुष ही वेद का प्रतीक हो सकता है और वही 'वेद' का प्रचार कर सकता है। परन्तु लेखक तो 'प्रकाश' पाने का दावा नहीं करता, तो फिर वह वेद का प्रचार कैसे कर सकता है? अन्धकार प्रकाश का प्रचार कैसे कर सकता है?

पृष्ठ ४४ में लेखक कहता है—'पंजाबी मुसलमानों से तो ईश्वर ही रक्षा करे। वे तो झट पाप का पक्ष ले लेते थे।' ऐसा कहना तो बिलकुल निराधार है कि कोई भी कौम बुरी होती है। हरेक कौम में अच्छे लोग होते हैं और बुरे भी लोग होते हैं। न कि समस्त कौम बुरी या अच्छी होती है। ऐसी एक कहावत है कि अन्धे को सारी दुनिया अन्धी होती है। स्वयं लेखक ही तो पाप का पक्ष लेता है और इसी कारण वह ऐसा समझता है कि इसी तरह दूसरे लोग भी पाप का पक्ष लेते हैं। 'महात्मा गांधी को एक हिन्दू ने क्यों मारा?' इस प्रकरण में वह तो खूनी का पक्ष लेता है। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि 'तो मैंने यही परिणाम निकाला कि जो कुछ हुआ है वह ईश्वर की इच्छा से ही हुआ है (देखो पृष्ठ ५१०)। पृष्ठ ५०८ में लेखक कहता है कि 'स्वयं महात्मा जी की इस नीति के साथ सहमत नहीं था'। तो इससे यही स्पष्ट अनुमान निकलता है कि महात्मा गांधी का मारा जाना तब लेखक की दृष्टि से अच्छी बात थी। अब हम ऐसा क्यों न मानें कि लेखक 'पाप का पक्ष झट ले लेता है?' महात्मा गांधी के प्रति लेखक का द्वेष इतना गहरा था कि गांधी जी की मृत्यु के पश्चात् जो शोक-सभा हुई उसमें वह शरीक भी नहीं हुआ। और इस शर्म की बात को वह अभिमान की बात समझता है।

लेखक हमें बार-बार बताता है कि हम सत्य और न्याय का पथ न छोड़ें (पृष्ठ ३०९ तथा ३०५), परन्तु लेखक का आचरण तो इसके बिलकुल उलटा है। पृष्ठ २५२ में लेखक कहता है—'जो लोग मेरा पीछा करते थे उन्हें चकमा देने में मुझे बड़ा मजा आता था और बहुधा यात्रा करते समय जो टिकट मैं खरीदता था वह गलत जगह का होता था। इससे स्पष्ट होता है कि लेखक स्वयं ही एक झूठ और डरपोक व्यक्ति है। 'मुख में राम, बगल में छूरी' कहावत की यथार्थता हमें पूर्णरूप से लेखक के जीवन में प्रतीत हुई है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू तो लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के प्रधान मन्त्री हैं। ऐसे लोकप्रिय नेता के भी खिलाफ लेखक ने विष-वमन किया है। शायद वह समझता है कि बड़े आदमी को गाली देने से वह स्वयं बड़ा कहलायेगा। समस्त पुस्तक आढ्यता और दुरभिमान से भरी है। लेखक का (पृष्ठ ४७४) कथन है कि भारतवर्ष की अखण्डता इस देश के कल्याण के लिए अति आवश्यक है, इस कारण हिन्दुओं को अब अखण्ड भारत का प्रोग्राम अपने सामने रखना चाहिये। मराठी भाषा में ऐसी एक कहावत है कि विधवा स्त्री को सौभाग्य-टीका की क्या जरूरत? यह प्रश्न स्वामी जी के क्षेत्र का नहीं है। जिन लोगों के गले में आम निर्वाचन के समय जनता ने विजय-माला डाली है उनके क्षेत्र का यह प्रश्न है। 'अव्यापारेषु व्यापार' करने में क्या लाभ?

हम यहाँ पर लेखक को अत्यन्त आदर के साथ इतना ही बताना चाहते हैं कि जिस रास्ते से वह भारत को अखण्ड भारत बनाना चाहता है वह सही रास्ता नहीं है। उस सही रास्ते के लिये तो उसे भगवान् बुद्ध की ओर ही झुकना पड़ेगा। भगवान् बुद्ध कहते हैं—

नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

—अनंत रामचन्द्र कुलकर्णी

शिवानन्द दिग्विजयः—ले०—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, प्रकाशक: योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय, ऋषिकेश। पृष्ठ संख्या ३७२: मूल्य छः रुपये।

यह पुस्तक शिवानन्द महाराज की अखिल भारत-यात्रा का विवरण है। पुस्तक की टाईटल से मालूम होता है कि पुस्तक इस प्रगतिशील युग में प्रतिगामी 'शंकर-दिग्विजय' की पुनरावृत्ति है। जब कोई भी मनुष्य अपने शिष्य द्वारा 'मया जितं' का शंख बजाता है तब विवेकवान् पुरुष ऐसी तथाकथित विजय से प्रभावित नहीं हो सकता। जब किसी पुरुष के सम्बन्ध में वह 'साक्षात् अवतार' होने का दावा किया जाता है तब दावा करनेवाले का आद्य कर्तव्य होता है कि उस पुरुष का चरित्र तथा उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य की रूप-रेखा का परिचय प्रथम दे। और इसी कारण हम समझते हैं कि उक्त लेखक का कर्तव्य था कि पाठकों के सामने इस 'अवतारी' पुरुष का जीवन-चरित्र रखता। इस चरित्र का पाठक भी लाभ उठाते और वे अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से देखते कि किया हुआ दावा सच है या झूठ। इस दृष्टि से पाठकों को बहुत निराशा होती है। ऐसा दीखता है कि 'शिवानन्द दिग्विजय मंडल' रामराज्य का इच्छुक है और वह राम, कृष्ण तथा बुद्ध को एक ही श्रेणी में बिठाता है। हमारे ख्याल से ऐसा करना अनुचित है। क्योंकि रामराज्य का स्पष्ट अर्थ होता है 'ब्राह्मणी राज्य'। रामायण का सार क्या है? एक समय एक ब्राह्मण की अकारण मृत्यु हुई। इस पर राम ने तहकीकात करवाया कि मेरे राज्य में ब्राह्मण की अकाल मृत्यु कैसे हुई। तहकीकात से पता लगा कि कोई शम्बूक नाम का शूद्र तपस्या कर रहा था। बस, श्री रामचन्द्र प्रभु ने फैसला दे दिया कि इस शूद्र की तपस्या के कारण ब्राह्मण की मृत्यु हुई। और राम ने उस शूद्र का सर उड़ाया। यही रामायण का सार है न? सच देखा जाय तो ब्राह्मण की मृत्यु तो शम्बूक के हाथ नहीं हुई थी, तो उसे प्राण-दण्ड क्यों? शम्बूक के शूद्र होने के कारण उसे तपस्या का अधिकार नहीं था, केवल इसी कारण उसका सर उड़ाया गया। यही रामराज्य का न्याय है न? ऐसा रामराज्य हमें बिलकुल नहीं चाहिये। रामायण में तो बुद्ध को चोर कहा है।

यथा हि चोरस्तथा हि बुद्धः।
तथागतं नास्तिकमेव विद्धि॥

तो फिर हम जानना चाहते हैं कि राम और बुद्ध एक ही श्रेणी में कैसे बैठ सकते हैं?

और दूसरी बात यह है कि राम का जीवन अहिंसक जीवन नहीं कहा जा सकता। वे तो कर्म से क्षत्रिय थे, क्योंकि उन्होंने धनुष-बाण हाथ में लेकर रावण का वध किया था। परन्तु भगवान् बुद्ध तो काया, मनसा और वाचा अहिंसक थे। वे कहते हैं—

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं॥

और इसी कारण वे ब्राह्मण थे। वे कहते हैं 'अहमस्मि भिक्खवे! ब्राह्मणो'। और इसी कारण हम कह सकते हैं कि भगवान् बुद्ध उच्च श्रेणी के पुरुष थे।

वैसे ही 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं' कहकर श्री कृष्ण ने भेद को प्रोत्साहन दिया है। परन्तु हम जानते हैं कि भेद तो नाश का मूल है। इसी कारण आज के युग में भगवान् बुद्ध ही हमारे सच्चे मार्गदर्शक हैं, क्योंकि उन्हीं की शिक्षा के अनुसार हम जाति-निरपेक्ष साम्राज्य-निर्माण कर सकते हैं। भगवान् बुद्ध तो आज हमारी स्वतन्त्रता के प्रतीक हैं। अतः वे भारत के गौरव हैं, अभिमान हैं। और इसी कारण हमारी स्वतन्त्रता अमर करने के लिए हमें भगवान् बुद्ध की शिक्षा पर ही जोर देना चाहिए। इस बात की लेखक को पूर्ण कल्पना है, ऐसा हम समझते हैं।

परन्तु हम नहीं समझ सकते कि 'रामराज्य' का अभिमानी भगवान् बुद्ध का अभिमानी कैसे हो सकता है? चित भी मेरी और पट भी मेरी, ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं। और इसी कारण हम विश्वास से कह सकते हैं कि पुस्तक में बुद्ध का नाम तो नाममात्र के लिए लिया गया है। शिवानन्द जी ने भगवान् बुद्ध के धर्मचक्र-प्रवर्तन की पुनरावृत्ति की—ऐसा पुस्तक में दावा किया गया है। परन्तु जिस आषाढ़ी पूर्णिमा को भगवान् बुद्ध ने इस धर्मचक्र को प्रवर्तित किया था उस आषाढ़ी पूर्णिमा को तो शिवानन्द जी व्यासपूर्णिमा मानते हैं और आश्चर्य की बात यह है कि उस दिन उनको भगवान् बुद्ध का स्मरण भी नहीं आता। इन सब कारणों से हम कहते हैं कि ऐसे भीषण प्रचार से हमें सतर्क रहना चाहिए।

सारनाथ —अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी
दिनांक ७-८-५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-जगत्

जापान में विश्व-बौद्ध सम्मेलन

'विश्व-बौद्ध भ्रातृत्व संघ' का द्वितीय अधिवेशन जापान की राजधानी टोकियो में होने जा रहा है। अधिवेशन २१ सितम्बर से प्रारम्भ होकर १३ अक्तूबर को समाप्त होगा। इस अधिवेशन का सारा व्यय 'जापान बुद्धिष्ट कौंसिल' करेगी। वह इस कार्य में ५ करोड़ येन (लगभग ७५०,००० रुपये) व्यय करना चाहती है।

इस अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए यूरोप, भारत, बर्मा, लंका, मलाया, सिंगापुर, थाइलैंड, इन्डोचीन चीन, फारमोसा, कोरिया, तिब्बत, मंगोलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, हवाई, कनाडा और दक्षिणी अमेरिका आमंत्रित किए गए हैं। इनमें दो प्रकार के व्यक्ति होंगे। एक वह जो बौद्धों के प्रतिनिधि होंगे तथा जिन्हें जापान सरकार निमंत्रित करेगी और दूसरे वह जो केवल बौद्धों के प्रतिनिधि मात्र होंगे। पहले प्रकार के व्यक्तियों का सारा व्यय जापान सरकार करेगी, किन्तु दूसरे प्रकार के व्यक्तियों को सारा व्यय स्वयं करना होगा।

अधिवेशन का प्रमुख ध्येय है बौद्ध देशों में सहयोग, मैत्री और यातायात-सम्बन्धी सुविधा पर विचार करना तथा संसार में बौद्ध धर्म का प्रचार-कार्य।

यह वर्ष जापान के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी वर्ष (१९५२-ई०) वह स्वतन्त्र हुआ है और सितम्बर मास में जापान में बौद्ध धर्म को पहुँचे १४०० वर्ष हो जायेंगे, जिसके उपलक्ष में जापानी जनता वार्षिकोत्सव मनानेवाली है।

इस अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये महाबोधि सभा सारनाथ के मन्त्री भिक्षु संघरत्न, भिक्षु सद्धातिस्स और त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित को भी विशेषरूप से निमन्त्रित किया गया है। उक्त अधिवेशन में भारतीय बौद्ध शासन पर विशेषरूप से विचार किया जायगा। भिक्षु सद्धातिस्स भारत और एशिया के बौद्धों की प्रमुख समस्याओं के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखने वाले हैं, जिसकी प्रतिलिपि भेजी जा चुकी है।

सारनाथ में कैम्फायर—गत ५ अगस्त को बेसेंट कालेज के स्काउट छात्र सारनाथ आये और यहाँ दो दिन तक अपना कैम्प रखा। छात्रों ने दिन में रैली की और मूलगन्ध कुटी विहार का दर्शन किया। नागपुर बुद्ध सोसाइटी के मन्त्री श्री अनन्तरामचन्द्र कुलकर्णी ने उन्हें भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित्र बतलाया तथा मन्दिर में बने चित्रों का परिचय कराया। रात्रि में छात्रों ने कैम्पफायर किया जो बड़ा ही आकर्षक रहा। इस अवसर पर सभी भिक्षु और स्थविर उपस्थित थे। त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित ने छात्रों के कार्य की प्रशंसा की और महाबोधि सभा के मन्त्री भिक्षु संघरत्न ने अच्छे खेल दिखलानेवाले २५ छात्रों को बौद्ध धर्म की पुस्तकें और भगवान् बुद्ध के रंगीन चित्र पुरस्कार-स्वरूप प्रदान किये।

सारनाथ में प्राचीन मूर्तियों का संग्रह—गत मास में जिला-निरीक्षक के आदेश पर सारनाथ, आशापुर और चिरईगाँव की प्रारम्भिक पाठशालाओं के बच्चों ने ऐतिहासिक सामग्री, बर्तन के टुकड़े, टूटी-फूटी मूर्तियाँ और ईंटें सारनाथ में एकत्र कीं। निरीक्षक महोदय ने उस सामग्री को देखकर प्रसन्नता ही नहीं प्रकट की, अपितु उसमें कालक्रम के अनुसार कुछ बर्तन के टुकड़ों, मूर्तियों और ईंटों को लेकर बच्चों को भगवान् बुद्ध की कहानी सुनाते हुए यथा-अवसर उनका प्रयोग करके दिखलाया। प्रभाव जादू जैसा बच्चों पर पड़ा। बच्चों को उस समय बड़ा ही कौतूहल हुआ जब कि आपने एक हँड़िया का टुकड़ा दिखलाते हुए कहा—"देखो यह अशोक के समय की हँड़िया का एक टुकड़ा है।"

अन्त में भिक्षु संघरत्न ने उन्हें आशीर्वाद दिया और वे स्वयं भी बहुत प्रभावित होकर लौटे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छेशु का मेला—गत २ जुलाई को गोम्पा शाशुर (लाहुल) में छेशु का मेला हुआ। जिसमें लगभग २ हजार लोगों ने भाग लिया था प्रातःकाल प्रभातफेरी हुई। दोपहर में केलांग, कार्दंग तथा विलिंग ग्राम सभा के सदस्य जुलूस के साथ शाशुर गोम्पा तक आये। जुलूस में आगे-आगे बाजेवाले चल रहे थे। उनके पीछे लगभग एक मील लम्बी बौद्ध नर-नारियों की पंक्ति थी, जो "भगवान् बुद्ध की जय" के नारे लगाती आगे बढ़ रही थी। दो बजे दिन में लामा लोगों ने अपना एक ऐतिहासिक नाटक (छम) दिखलाया, जिसमें पन्द्रह लामाओं ने बड़े प्रेम से भाग लिया था।

बुद्धगया-मन्दिर कमेटी—बुद्धगया-मन्दिर की व्यवस्था के लिए बिहार सरकार ने एक कमेटी बनाई थी और मन्दिर को अपने हाथ में लेकर उसकी सुन्दर व्यवस्था करनी चाही थी, किन्तु इसी बीच बुद्धगया-मन्दिर के महन्त ने सरकार के इस कार्य के विरुद्ध हाईकोर्ट में मुकदमा डायर किया, जिसके कारण मन्दिर की व्यवस्था का सारा कार्य ठप पड़ा है। महाबोधि सभा ने राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादजी को इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखा था, अब जान पड़ता है कि बुद्धगया-मन्दिर शीघ्र ही कमेटी के हाथ में आ जायगा।

पटना में बुद्ध-मूर्ति की स्थापना—११ अगस्त को पटना के कदमकुआँ महल्ले के सर्किल पार्क में स्थित अन्धा-पाठशाला के सामने एक बहुत बड़ी और सुन्दर भगवान् बुद्ध की अभयमुद्रा में मूर्ति की स्थापना म्यूनिसिपल्टी की ओर से की गई। उक्त अवसर पर बिहार के मुख्य मन्त्री आदि प्रायः सभी प्रमुख नेता उपस्थित थे।

लुम्बिनी का उद्धार-कार्य—लुम्बिनी के उद्धार के निमित्त नेपाल सरकार ने एक समिति बनाने का निश्चय किया है। यह भी निश्चय हुआ है कि लुम्बिनी में एक भिक्षु को रहने के लिए नेपाल-सरकार ६०) मासिक व्यय भी दिया करेगी।

महाबोधि सभा का कार्यक्रम—महाबोधि सभा के केन्द्र कलकत्ता में गत जुलाई मास में निम्नलिखित व्यक्तियों के भाषण हुए और क्लास चले—

३ जुलाई : शीर्षक 'दुःख', वक्ता श्री केशवचन्द्र गुप्त, एम. ए., बी. एल. सभापति और डा० सुनीतिकुमार चटर्जी एम. ए., डी. लिट्।

६ जुलाई : पूर्णिमा, भिक्षु शीलभद्र का उपदेश।

७ जुलाई : 'धर्मचक्र प्रवर्तन-उत्सव', सभापति ऊ. न्युन, बर्मी राजदूत।

१० जुलाई : विषय "बर्मा में बौद्ध उत्सव", वक्ता श्री जे० सी० घोष। सभापति, डा० पी० एन० बनर्जी डी. एस-सी.।

११ जुलाई : धम्मपद क्लास, भिक्षु आनन्द कौसल्यायन।

१७ जुलाई : 'बौद्ध धर्म के कुछ सिद्धान्त', वक्ता डा० आर० एल० सोनी एम. बी. बी. एस.। सभापति, डा० पी० एन० बनर्जी एम. ए., पी-एच. डी.।

२० जुलाई : धम्मपद-क्लास, भिक्षु आनन्द कौसल्यायन।

२४ जुलाई : 'नेपाल में बौद्ध धर्म', वक्ता श्री जे० एम० मजुमदार। सभापति श्री एच० एस० घोष चौधुरी।

२७ जुलाई : धम्मपद-क्लास, भिक्षु आनन्द कौसल्यायन।

३१ जुलाई : 'बौद्धकाल में जातिवाद', वक्ता भिक्षु ऊ धर्मरत्न एम. ए.। सभापति, भिक्षु शीलभद्र।

मूलगन्ध कुटी विहार का वार्षिकोत्सव—सारनाथ के सुप्रसिद्ध मूलगन्ध कुटी विहार का वार्षिकोत्सव आगामी १ नवम्बर को न होकर २ नवम्बर को होगा। पाठक नोट कर ले। यद्यपि कार्तिक पूर्णिमा १ नवम्बर को ही है, किन्तु रविवार को सार्वजनिक अवकाश दिन होने के कारण उक्त परिवर्तन किया गया है।

धर्मपाल-जन्मोत्सव—महाबोधि सभा के संस्थापक स्वर्गीय अनागारिक धर्मपाल जी की जन्मतिथि अगले सितम्बर मास में १७ तारीख को पड़ी है। उस दिन लंका और भारत में महाबोधि सभा द्वारा संचालित सभी संस्थायें 'धर्मपाल-जन्मोत्सव' मनायेंगी।

साँची का उद्घाटन—साँची के नवनिर्मित विहार का ३० नवम्बर को श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा उद्घाटन-कार्य सम्पन्न होगा और अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ उक्त विहार में स्थापित की जायेंगी। इस विहार के निर्माण में लगभग ४ लाख रुपये व्यय हुए हैं। यह स्थान भोपाल राज्यान्तर्गत भेलसा स्टेशन के सन्निकट अवस्थित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धचर्य्या

भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों के सम्बन्ध में, भारतीय भाषाओं में जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें विशालता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'बुद्धचर्य्या' सभी से बढ़कर है। त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र सम्बन्धी जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, 'बुद्धचर्या' में उस सारी सामग्री का वैज्ञानिक संकलन कर, अविकल अनुवाद दिया गया है। 'बुद्धचर्या' को यदि समस्त सुत्तपिटक और विनयपिटक का सार कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

बीस वर्ष पहले उसका प्रथम संस्करण छपा था। बहुत दिनों से उसकी माँग रहने पर भी इस व्यय-साध्य ग्रन्थ का दूसरा संस्करण न हो सका। ग्रन्थ की विशालता और कागज आदि के दुर्लभ होने के साथ-साथ आज के प्रकाशक और पाठक की 'रुचि' भी इस विलम्ब के लिये उत्तरदायी है।

महाबोधि सभा ने ग्रन्थ के महात्म्य का ख्याल कर हिन्दी पाठकों की प्रामाणिक साहित्यप्रियता के भरोसे ही इसके प्रकाशन का व्यय-भार वहन किया है।

किसी भी पुस्तकालय में और विशेषरूप से बौद्ध साहित्य प्रेमी किसी भी भाई बहिन के पुस्तकालय में 'बुद्धचर्या' रहनी ही चाहिए।

बड़े आकार के छः सौ तीस पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८) है। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

मिलने का पता :—

१. महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, (बनारस)
२. महाबोधि पुस्तक भण्डार, ४ ए बङ्किम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२
३. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धविहार, रीडिंग रोड, नई दिल्ली
४. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धगया (बिहार)

"गाँव"

(सचित्र मासिक पत्र)

आजाद भारत में गाँवों का निर्माण हो रहा है। हमें जानना चाहिये कि इस सम्बन्ध में कहाँ क्या हो रहा है? और हमें क्या करना चाहिये? 'गाँव' इस विषय का बिहार में एकमात्र पत्र है। इस पत्र में गाँव सम्बन्धी सभी विषयों पर अच्छे-अच्छे लेख और कविताएँ छपती हैं। खास कर नीचे लिखे हुए विषयों पर लेख छपा करते हैं :—

१—गाँव का सामाजिक और सांस्कृतिक विकास, २—गाँव की सफाई और ग्रामीणों का स्वास्थ्य, ३—गाँव के शिक्षक और स्कूल, ४—खेती का सुधार, ५—खाद और उनके बनाने के तरीके, ६—ऊख और चीनी, ७—गोपालन तथा अन्य पशुपालन, ८—सहयोग समिति, ९—ग्रामीण उद्योग-धन्धे।

वार्षिक मूल्य सिर्फ ५) रुपया। शीघ्र मनिआर्डर द्वारा ५) रु० भेजकर आप इसके ग्राहक बन जायँ। वी० पी० मँगाने पर व्यर्थ पाँच आना ज्यादा खर्च हो जायगा।

पता :—**व्यवस्थापक 'गाँव'**

बिहार को-आपरेटिव फेडरेशन, लिमिटेड,

बुद्धमार्ग, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)	भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्रसाद	-)
मज्झिम निकाय—,, ,,	८)	बुद्धदेव—शरत् कुमार राय	१।।)
विनय पिटक— ,, ,,	८)	थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१।।)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२।।)	बुद्ध और बौद्ध साधक— ,,	१।।)
खुद्दकपाठ— ,,	।)	तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१।।)	कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२।।)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १,२ ७।।),७।।)		पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
,, ,, (भाग ३.)	१०)	जातिभेद और बुद्ध— ,, ,,	।।)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५।।)	ब्राह्मण धम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)	तेलकटाह गाथा— ,, ,,	।)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१।।)	बौद्ध शिशु बोध— ,, ,,	।)
बुद्ध और उनके अनुचर— ,,	१।।।)	सारनाथ दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
बौद्धचर्य्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१।।)	कुशीनगर-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
पञ्चशील और बुद्ध वन्दना— ,,	=)	लंका-यात्रा— ,, ,,	१।।)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१।।)	पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१।।)	बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	।।)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१।।)	बुद्ध शतकम्— ,, ,,	।)
बुद्धार्चन— ,, ,,	।)	महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)	बुद्ध-अर्चना (कविता) कुमारी विद्या	≡)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	।।।)	तिब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित	६)	चरियापिटक—डा० विमलाचरण लाहा	५)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३।।)	सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२।।)
नवनीत टीका— ,, ,,	२।।)	खुद्दकपाठ— ,,	।)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,,	२।।)	धम्मसंगणी—श्री वापट	८)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)	अत्थसालिनी— ,,	८)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)	पातिमोक्ख— ,,	१)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,,	।)	सिङ्गाल सुत्तं—भिक्षु ऊ कित्तिमा	।।)
पालि-पाठ-माला— ,,	१)		

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—श्री प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२-५२

धर्मदूत

सारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

१६७
११-६
२००

सितम्बर

१९५२

वर्ष-१७ : अङ्क-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वार्षिक-३) एक अङ्क का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

	विषय		पृष्ठ
१.	बुद्ध-वचनामृत	...	११७
२.	बुद्धयुग का आरम्भ—श्री विनोबा भावे	...	११८
३.	बौद्धराजा जयचन्द्र देशद्रोही नहीं था—भिक्षु धर्मरक्षित	...	११९
४.	श्रद्धाञ्जलि (कविता)—श्री श्रीप्रसाद शर्मा	...	१२३
५.	यशोधरा की नारी-भावना—कुमारी कला जोशी एम० ए०	...	१२४
६.	कुशीनगर के प्रति (कविता)—एक भारतीय बौद्ध	...	१२६
७.	मुक्ति और उसका अर्थ—श्री विद्यानन्द विद्यार्थी, साहित्यरत्न	...	१२७
८.	भिक्षुसंघ का नैसर्गिक सान्निध्य—श्री विजय श्रीवास्तव	...	१२९
९.	कौशाम्बी का इतिहास तथा पुरातत्त्व देन—श्री सतीशचन्द्र काला एम० ए०	...	१३३
१०.	इच्छा का त्याग और शान्ति—श्री लालजीराम शुक्ल	...	१३५
११.	नये प्रकाशन	...	१३७
१२.	बौद्ध-जगत्	...	१३९

धर्मदूत की निःशुल्क सेवा

'धर्मदूत' के कम से कम पाँच ग्राहक बनाने वाले सज्जन की सेवा में 'धर्मदूत' एक वर्ष तक निःशुल्क जायगा। धर्मप्रेमी, उत्साही एवं अपने सभी सहयोगी बन्धुओं से निवेदन है कि 'धर्मदूत' का प्रचार कर इसकी ग्राहक-संख्या बढ़ाने में योगदान दें।

"धर्मदूत" ही क्यों पढ़ें ?

क्योंकि :–

१. यह भगवान् बुद्ध का सन्देश घर-घर पहुँचाने वाला हिन्दी का एकमात्र पत्र है।
२. यह अहिंसा के बल पर उपार्जित स्वतन्त्र भारत और उसके बाहर नेपाल, लङ्का, बर्मा, लद्दाख, पूर्वी-पाकिस्तान आदि देशों में प्रतिमास अहिंसा, प्रेम और दया के मूल सिद्धान्त को लेकर पहुँचाता है।
३. इसमें देश तथा विदेश के बौद्ध विद्वानोंके धर्म, संस्कृति, दर्शन, योग आदि विषयों पर लेख रहते हैं।
४. सारे संसार के बौद्धों की धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ पढ़ने को मिलती हैं।
५. सर्व-स्वातन्त्र्य का उपदेश देने वाले भगवान् बुद्ध का विचार-दर्शन इसी में होता है।

हम उत्सुकता पूर्वक अपने पाठकों एवं सहयोगियों की अभिरुचि जानना चाहते हैं और साथ ही यह भी प्रार्थना करते हैं कि सभी सज्जन 'धमदूत' का प्रचार कर पुण्य के भागी हों।

व्यवस्थापक, 'धर्मदूत', सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

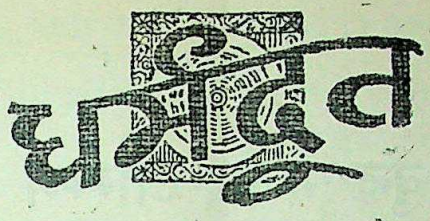

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १७	सारनाथ, सितम्बर	बु० सं० २४९६ / ई० सं० १९५२	अङ्क ५

बुद्ध-वचनामृत

अपना प्यारा कौन ?

कोसलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कोसलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते! अकेला बैठ ध्यान करते मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा—'किनको अपना प्यारा है और किनको अपना प्यारा नहीं?' भन्ते! तब मेरे मन में यह हुआ—'जो शरीर से दुराचार करते हैं, वचन से दुराचार करते हैं, मन से दुराचार करते हैं, उनको अपना प्यारा नहीं है।' यदि वे ऐसा कहें भी—'मुझे अपना प्यारा है' तो भी सचमुच में उनको अपना प्यारा नहीं है। सो क्यों? जो शत्रु शत्रु के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं, इसलिए उनको अपना प्यारा नहीं है। और जो शरीर से सदाचार करते हैं, वचन से सदाचार करते हैं, मन से सदाचार करते हैं, उनको अपना प्यारा भी है। यदि वे ऐसा कहें भी—'मुझे अपना प्यारा नहीं है' तो भी सचमुच उनको अपना बड़ा प्यारा है। सो क्यों? जो मित्र मित्र के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं, इसलिए उनको अपना बड़ा प्यारा है।

महाराज! यथार्थ में ऐसी ही बात है। जो शरीर से दुराचार करते हैं, उनको अपना प्यारा नहीं है और जो शरीर से सदाचार करते हैं, उनको अपना बड़ा प्यारा है।

जिसे अपना प्यारा है वह अपने को पाप में मत लगावे,
दुष्कर्म करनेवालों को सुख सुलभ नहीं होता॥

—संयुक्त निकाय ३. १. ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धयुग का आरम्भ

श्री विनोबा भावे

[श्री विनोबाजी ने बुद्धजयन्ती के अवसर पर गत ९ मई को लखनऊ में भगवान् बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी। यहाँ हम उनके श्रद्धांजलि-प्रवचन का कुछ अंश दे रहे हैं—सम्पादक।]

किसी दूध की परीक्षा की जाती है, तब वैज्ञानिक उसमें मक्खन का प्रमाण देख लेते हैं। उस पर से दूध का कस नापा जाता है। किसी समाज की योग्यता का जहाँ नाप लिया जाता है, वहाँ उस समाज में कितने ऊँचे महापुरुष निर्माण हुए, यह देखा जाता है। समाज के महापुरुष दूध के मक्खन की तरह होते हैं। भारत का जो काल उन्नति का और अवनति का माना गया है, दोनों समय महापुरुष दर्शन देते ही गये हैं। इतना ही नहीं, ये सौ-डेढ़ सौ साल, जब कि हम गुलामी में थे और जब एक विदेशी सत्ता हमें दबाये हुए थी तथा हमारी हालत अत्यन्त हीन थी, ऐसे अवनति के काल में भी यहाँ राममोहन राय, दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, लोकमान्य तिलक, रवि ठाकुर और महात्मा गांधी जैसे पचासों महापुरुषों के नाम, जो ऊँचाई में दुनिया के दूसरे महापुरुषों से कम नहीं हैं, गिनाये जा सकते हैं। याने भारत-भूमि ने साबित कर दिया कि उसकी पुरुषार्थ-शक्ति अब भी कायम है और प्राचीन काल से वहाँ ऐसी एक अंतर्यामी शक्ति काम कर रही थी, जिसके कारण प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद भी यहाँ महापुरुष निर्माण होते रहे हैं।

भगवान् बुद्ध के विचार अब अंकुरा रहे हैं

कल हमने जिस महापुरुष का स्मरण किया, उसे अब ढाई हजार वर्ष होते हैं। आज वैशाख शुक्ल पूर्णिमा तो है, लेकिन जहाँ बौद्ध धर्म चलता है, वहाँ यह उत्सव एक रोज पहले ही मनाया जाता है। भारत में यह आज मनाया जाता है। आज बुद्ध भगवान् की ख्याति दुनिया में फैल गयी है और दुनिया के बहुत से लोगों को उनके जीवन और उपदेशों की ओर आकर्षण हो गया है। खास कर जिस पद्धति से उन्होंने काम किया, उस पद्धति की तरफ लोग आकर्षित हुये हैं। लेकिन हम देखते हैं कि जिस जमाने में बुद्ध थे, उस जमाने में लोग उनका नाम भी नहीं लेते थे, किंतु आज उन्हींका जन्म-दिन मनाया जाता है। जिस शख्स की जयन्ती उसके जन्म के ढाई हजार वर्ष के बाद मनायी जाती है, उसकी आयु कितनी दीर्घ होना चाहिये? आज सभी हिंदू लोग किसी धर्म-कार्य का संकल्प करते समय "बुद्धावतारे वैवस्वते मन्वंतरे, कलियुगे" आदि मंत्र का स्मरण करते हैं। याने आज भी हम बुद्ध के जमाने में ही काम कर रहे हैं। बुद्ध-युग का मानो अब आरम्भ हो रहा है। मिट्टी से जैसे बीज ढँका जाता है और फिर उसमें से वह अँकुराता है, उसी तरह बीच के जमाने में बुद्ध की शिक्षा का बीज कुछ ढँका-सा रहा और अब वह अंकुरित होता दिखायी दे रहा है। बुद्ध भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि 'भाइयो! 'नहि वैरेन वैरानि सम्मन्तीध कुदाचनं'—वैर से वैर की शमता नहीं। कितनी भी कोशिश करो, अग्नि के शमन के लिए घी नहीं, पानी ही चाहिए। अदावत से अदावत मिट नहीं सकती। वैर से वैर शान्त नहीं हो सकता। दुश्मनी से दुश्मनी बढ़ती ही है। यह उनकी शिक्षा का सार है। उनके शब्दों में जो ताकत थी उसका भान आज लोगों को हो रहा है। सारी दुनिया के जीवन में आज कशमकश और असन्तोष का अनुभव हो रहा है। अनेक कठिन समस्याएँ हमारे सामने उपस्थित हैं। समाज के नेता उन समस्याओं के हल का जब चिन्तन करते हैं, तब उन्हें बुद्ध भगवान् के तरीके का ख्याल आता है और वे सोचते हैं कि अगर सम्भव हुआ तो वही तरीका आज चलाना चाहिए। ऐटम बम और हाइड्रोजन बम से दुनिया की शक्ति का क्षय होगा। वह तो शक्तिक्षय का ही कार्यक्रम होगा। इसका कुछ भान इस समय दुनिया को हो रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। दुनिया महसूस कर रही है कि हम इस तरह आगे नहीं बढ़ सकेंगे, जहाँ के तहाँ ही रह जायेंगे। गांधी जी ने यह साबित कर दिया है। लेकिन अम्बेडकर जी और नास्तिकवादी लोग भी बुद्ध में विश्वास रखते हैं। तब इससे बुद्ध की शिक्षा का और क्या परिणाम हमें चाहिये? हमको उन्होंने जो तालीम दी, उसकी अहमियत मनुष्य-समाज को महसूस हो रही है। बीच में पचीस सौ वर्ष बुद्ध भगवान् गर्भावस्था में थे। लेकिन आज उनका जन्म हो रहा है। आज भगवान् बुद्ध के विचारों को अंकुर आ रहे हैं।

जो तालीम उन्होंने दी, वह उनके जमाने में भी नयी नहीं थी। सैकड़ों सन्तों ने उसे दोहराया था। वैर से वैर नहीं शमता, यह उनकी बात नयी नहीं थी। यहाँ सब तरह का तत्वज्ञान-सैकड़ों वर्षों का अनुभव, आत्मानात्म-विवेक, वेद, उपनिषद्, सांख्य, गीता आदि निर्माण हो चुके थे और हमें इन सब ने निर्वैरता की ही शिक्षा दी थी। ऋषियों ने गाया था—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि सूतानि समीक्षंताम्
मित्रस्य अहम् चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

चेतन के सामने विशालतम जड़ भी नगण्य है

सारी दुनिया मेरी तरफ मित्र की निगाह से देखे, अगर ऐसा हम चाहते हैं तो हमें भी दुनिया की तरफ उसी मित्र-भावना से देखना होगा। दुनिया को मित्र या शत्रु बनाना मेरे हाथ की बात है। मैं चाहूँ तो मित्र बनाऊँ, चाहूँ तो शत्रु। यह सारा "इनीशिएटिव" याने "अभिक्रम" मेरे हाथ में है। वह मैं दूसरों के हाथ में नहीं देना चाहता। दुनिया को जैसा हम नचायेंगे, वह नाचेगी। दुनिया की ताकत नहीं कि मेरे प्रति वैर-भाव रखे, अगर मेरे हृदय में दुनिया के प्रति प्रेम-भाव हो। आइने की ताकत नहीं कि मेरी आँख यदि निर्मल है तो वह मलीन दिखाये। मेरी इच्छा के विरुद्ध आइने में दर्शन हो नहीं सकता। आइने की तरह दुनिया भी मेरी प्रतिबिम्बस्वरूप है। वह इतनी अनन्त, अपार और विशाल है कि किसी भी जगह देखो, तो असीम, असीम और असीम ही नजर आती है। लेकिन चेतन के सामने इतनी असीम और विशाल दुनिया भी कोई महत्व नहीं रखती। जिस प्रकार की शक्ल हम दुनिया को देना चाहें, दे सकते हैं। यह सारी दुनिया मेरे हुक्म से चल रही है। यह हिमालय मेरी आज्ञा से उत्तर की तरफ बैठा है। अगर मैं चाहूँ तो उसे दक्षिण की तरफ फेंक सकता हूँ। एक लड़के ने मुझसे पूछा कि यह कैसे सम्भव है? तो मैंने समझाया कि अगर मैं उत्तर की तरफ चला जाऊँ तो वह दक्षिण की तरफ फेंका जायेगा। फिर उसकी ताकत नहीं कि वह उत्तर की तरफ आ सके। मैं उसे हर दिशा में फेंक सकता हूँ, क्योंकि मैं चेतन हूँ। वह बड़ा है, पर जड़ है। मैं अग्नि की चिनगारी हूँ। मैं उसे खाक कर सकता हूँ। वह मुझे जला नहीं सकता। दुनिया को मैं मित्र ही बना सकता हूँ, शत्रु नहीं बना सकता, यह वेदों ने हमें समझाया था। बीच में हजारों वर्षों में इसकी कसौटी नहीं हुई। आखिर भगवान् बुद्ध ने हमें अनुभव से बताया। इसलिए जो बात बुद्ध भगवान् ने कही, वह नई नहीं थी। परन्तु वह शायद इतनी स्पष्टतापूर्वक पहले कही नहीं गयी थी। इसलिए बुद्ध भगवान् के जमाने में यह विचार फैला कि वैर से वैर मिट नहीं सकता, अक्रोध से ही वह मिट सकता है।

बौद्धराजा जयचन्द्र देशद्रोही नहीं था

भिक्षु धर्मरक्षित

काशी नरेश जयचन्द्र के नाम से प्रायः सब लोग परिचित हैं, किंतु उसके शौर्य, पराक्रम, धर्मनिष्ठा और महत्वाकांक्षा के सम्बन्ध में बहुत ही कम लोगों को ज्ञान है। काशीके इस प्रतापी नरेश को 'देश-द्रोही' 'घर-भेदिया' आदि लिखकर बहुत से लेखकों ने अपना अज्ञान प्रदर्शित किया है। भारतीय साहित्य ने भी जयचन्द्र के प्रति जो अन्याय किया है, शायद ऐसा अन्याय अन्य किसी भी व्यक्ति के साथ नहीं हुआ है। कतिपय इतिहास-लेखकों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी एकांगी दृष्टिकोण का ही अवलम्बन कर जयचन्द्र के प्रति भारतीय जनता में उपेक्षा, घृणा और अनादर उत्पन्न कर दिया है। यदि जयचन्द्र के शिलालेख और 'चन्द्रराज लेख' नामक ग्रन्थ का तिब्बती संस्करण न मिले होते तो आज भी जयचन्द्र भारत का एक कलंकित कुपुत्र ही रह जाता। हम यहाँ काशी-नरेश जयचन्द्र के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उसके महान् कार्योंका वर्णन करेंगे।

बाल्यकाल और शिक्षा

जयचन्द्र गहड़वालवंशी राजा विजयचन्द्र (ई० सन् ११५४-११७०) का पुत्र था। इसकी माता का नाम चन्द्रलेखा था। कहते हैं, जिस दिन जयचन्द्र का जन्म हुआ उसी दिन इसके दादा गोविन्दचन्द्र ने दर्शाण को जीता था, अतः उसने अपने नवजात नाती का नाम दर्शाण-विजय की स्मृति में जयचन्द्र रखा था।

जयचन्द्र की शिक्षा-दीक्षा काशी में ही हुई थी। गोविन्दचन्द्र की पटरानी कुमारदेवी ने इसके पठन-पाठन का सारा प्रबन्ध भिक्षु जगन्मित्रानन्द द्वारा कराया था। भिक्षु जगन्मित्रानन्द उस समय बौद्ध धर्म के संघ-नायक थे और वे सिद्ध माने जाते थे। यद्यपि चौरासी सिद्ध उनके पूर्व ही हो चुके थे, फिर भी तिब्बती लोग आज भी उन्हें चौरासी सिद्धों की भाँति ही मानते हैं। उनकी लिखित २० पुस्तकों के तिब्बती अनुवाद आज भी उपलब्ध हैं। उन्हीं के ग्रन्थों में 'चन्द्रराज लेख' भी है, जो जयचन्द्र के लिए लिखा गया था। इस ग्रन्थ में जयचन्द्र के शौर्य, धर्म-परायणता आदि का पर्याप्त वर्णन है। बुद्धगया से प्राप्त लेख में जयचन्द्र और जगन्मित्रानन्द का सम्बन्ध स्पष्टतः वर्णित है:—

'अस्ति त्रिलोकिसुकृतप्रसूतः
संत्रातुमामन्त्रितसर्वभूतः।
सम्बुद्धसिद्धान्वयधुर्य्यभूतः
श्रीमित्रनामा परमावधूतः ॥ ४ ॥
उदितसकलभूमिमण्डलैश्वर्य-सिद्धिः
स्वयमपि किमपीच्छन्नच्छधैर्यस्य शिष्यः।
अभवदभयभाजः श्रद्धया बन्धुरात्मा
नृपशतकृतसेवः श्रीजयच्चन्द्रदेवः॥ १०॥
श्रीमन्महाबोधिपदस्य शास्त्र-
ग्रामादिकं मग्नमशेषमेव।
काशीशदीक्षागुरुरुद्धार
यः शासनं शासनकर्णधारः ॥ १२॥
सत्राणि तिसृणां चासा-
मङ्गणेषु निरङ्गणः।
सोऽयं श्रीमज्जगन्मित्रः
शाश्वतीकृत्य कृत्स्नवित्' ॥ १४॥

इससे स्पष्ट है कि जयचन्द्र के दीक्षा-गुरु और बौद्ध धर्म के कर्णधार भिक्षु जगन्मित्रानन्द ही थे। उन्होंने जयचन्द्र को बौद्ध धर्म की शिक्षा दी थी। यही कारण था कि जयचन्द्र को भगवान् बुद्ध और बौद्ध विहारों के प्रति बड़ी ही श्रद्धा थी। उसकी दादी कुमारदेवी और वसन्तदेवी महायान बौद्धधर्म की अनुयायिनी थीं (श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवस्य प्रतापवशतः राज्ञी श्रीप्रवर-महायानयायिन्योः परयोपासिकाः)। गोविन्दचन्द्र ने श्रावस्ती, सारनाथ, काशी, कन्नौज, नालन्दा और बुद्धगया के विहारों को पर्याप्त धन, ग्राम आदि दान दिये थे और विहारों के जीर्णोद्धार कराये थे। इन सब बातों का भी जयचन्द्र पर बहुत प्रभाव पड़ा था। बचपन में वह अपनी दादी कुमारदेवी के साथ सारनाथ के विहारों के दर्शनार्थ जाया करता था।

इसके साथ ही जयचन्द्र को हिन्दू धर्म की भी शिक्षा दी गयी थी। एक पण्डित उसे धर्मशास्त्र पढ़ाने के लिए नियुक्त थे। उस समय बौद्ध और हिन्दू धर्म में कोई भेद-भाव नहीं माना जाता था। एक ही परिवार के लोग बौद्ध और हिन्दू दोनों धर्मों के अनुयायी होते थे। वे एक दूसरे के मन्दिरों में जाते और पूजा करते थे। अतः जयचन्द्र के हृदय में इन दोनों धर्मों के प्रति समान श्रद्धा थी।

जयचन्द्र को घुड़सवारी, हस्तियुद्ध आदि की बड़ी अच्छी शिक्षा दी गयी थी। वह बचपनसे ही युद्ध-प्रेमी था। पश्चिम और पूरब दोनों ओर से काशी के राजाओं को भय बना रहता था, क्योंकि पश्चिम में यवन आक्रमण-कारियों का भय था और पूरब में बंगालके सेनवंशी राजाओं का। पश्चिम में पंचाल से लेकर पूरब में मगध तक फैले हुए पिता के साम्राज्य की रक्षा का भार जय-चन्द्र पर पड़नेवाला था, इसलिए उसमें साहस, वीरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और महत्वाकांक्षा की भावनाएँ बचपन से ही उत्पन्न की गयी थीं।

राज्याभिषेक

विजयचन्द्र ने अपने जीवनकाल में ही जयचन्द्र को युवराज बना दिया था। विजयचन्द्र के यवनों पर विजय पानेवाले ताम्रपत्र (ई० सन् ११६८) में भी जयचन्द्र को युवराज लिखा गया है और प्रायः जितने भी उसके लेख मिले हैं, सबमें जयचन्द्र का युवराज के रूप में ही उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि जयचन्द्र ई० सन् ११६८ से पूर्व ही युवराज बन गया था। सन् ११७० में जब विजयचन्द्र की मृत्यु हुई, तब धूमधाम से जयचन्द्र का राज्याभिषेक हुआ। वडविह ग्राम से पाये गये ताम्रपत्र में इसके राज्याभिषेक का सुन्दर वर्णन किया गया है। उसके अनुसार जयचन्द्र का राज्याभिषेक सन् ११७० ई० में आषाढ़ शुक्ल ६ रविवार को हुआ था।

विजय

जिन यवनों एवं सेनों के भय से विजयचन्द्र ने अपने पुत्र जयचन्द्र को बचपन से ही युद्धकला की शिक्षा दी थी और अपने जीवनकाल में ही राज्यकार्य को भली प्रकार संचालित करने के लिए युवराज बनाया था, वे विजयचन्द्र की मृत्यु के बाद ही उत्पात मचाने लगे। सबसे पहले बंगाल के सेनों ने विजयचन्द्र की मृत्यु का समाचार पाकर मगध पर आक्रमण किया, किन्तु जयचन्द्र ने उनकी दाल गलने न दी। उसने सेनों को युद्ध में परास्त कर मगध को उनके हाथ में जाने से बचा लिया।

उसके पश्चात् उसने कालिंजर के चन्देल राजा मदन वर्मदेवपर आक्रमण किया और उसके पूरे राज्य पर अधिकार कर लिया। उसी समय भोरों पर भी चढ़ाई की और खोड़ को भी अपने आधिपत्य में कर लिया। इसके समय के लगभग १४ ताम्रपत्र और कुछ शिलालेख मिले हैं, जिनसे उसकी वीरता आदि का भलीभाँति ज्ञान होता है।

जयचन्द्र बड़ा प्रतापी राजा था। उसके पास इतनी बड़ी सेना थी कि लोगों ने इसका नाम 'दल पंगुल' रख दिया था। रम्भामञ्जरी नाटिका में लिखा है—'प्रचालयितुमक्षमत्वात्पगुरिति प्राप्तगुरुविरुदस्य।' अर्थात् सेना को शीघ्र चलाने में असमर्थ होने से जिसे 'पंगु' की उपाधि मिली थी। यही नहीं, जयचन्द्र की वीरता के सम्बन्ध में 'प्राकृत पैङ्गल' में भी यह पद्य आया है—

'जे किज्जिअ-भाला जिराणु णिवाला भोदन्ता पिट्टंत चले।
भंजाविअ चीणा दप्पहि हीणा लोहाबल हाकंद पले।
ओड्डा उड्डाविअ कित्ती पाविअ मोलिअ मालव राअ बले।
तेलंगा भग्गिअ पुणविण लग्गिअ कासीराआ जअण चले॥'

प्रबन्ध कोष में तो यहाँ तक लिखा है कि जयचन्द्र ने ७०० योजन पृथ्वी की विजय की थी।

सांस्कृतिक कार्य

जयचन्द्र विद्वानों और कवियों का बड़ा आदर करता था। प्रसिद्ध काव्य नैषधीयचरित का कर्ता कवि श्रीहर्ष उसकी सभा का एक कवि था। उसने बड़े गर्व के साथ अपने ग्रन्थ में लिखा है कि जब वह जयचन्द्र के पास जाता था तब उसे बैठने के लिए आसन और दो बीड़ा पान मिलते थे।

जयचन्द्र साधु-ब्राह्मणों का भी बड़ा सम्मान करता था। उसने अनेक गाँव बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान दिये थे। अनेक मन्दिरों की मरम्मत करायी थी। अपने दीक्षागुरु भदन्त जगन्मित्रानन्द को प्रार्थना कर धर्म-प्रचारार्थ नेपाल और तिब्बत भेजा था। वे सन् ११९० के आसपास काशी से नेपाल गये और कुछ वर्षों वहाँ रहे। सन् ११९७ में खो फू लोचवा के आग्रह पर नेपाल से तिब्बत के लिए रवाना हुए और वहाँ अठारह मास रहे। इनका दुभाषिया वही व्यक्ति था जो विक्रमशिला विहार के नष्ट हो जाने पर सन् ११९९ में शाक्य श्रीभद्र स्थविर को तिब्बत ले गया था।

दुर्ग-निर्माण

जयचन्द्रने अपने विशाल साम्राज्य में शान्ति बनाये रखने के लिए स्थान-स्थानपर सेना की कई टुकड़ियाँ रख दी थीं। उसने राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से अनेक दुर्गों को भी बनवाया था, जिनमें प्रधान दुर्ग कन्नौज, इटावा, असाई और गंगा के किनारे कुर्रा में। इन दुर्गों में बड़ी संख्या में सेना रहती थी, जो किसी भी समय शत्रु का सामना कर सकती थी। यही कारण था कि जयचन्द्र ने लगभग २४ वर्षों तक निष्कंटक राज्य किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी में ही राजधानी

प्रायः इतिहास-लेखकों ने गहड़वालवंशी राजाओं को कन्नौज का राजा लिखा है, किंतु इसमें एक बहुत बड़ा भ्रम है। गहड़वालवंश की राजधानी कन्नौज में भी थी, किंतु वह पीछे बनी थी, पूर्व से इस वंश की राजधानी काशी में ही थी। चन्द्रदेव ने सन् १०८० में कन्नौज को प्रतिहारों से छीना था और गोविन्दचन्द्र ने वहाँ अपनी दूसरी राजधानी बनायी थी। तबसे काशी नरेश कन्नौज नरेश भी कहे जाने लगे। गोविन्दचन्द्र के पिता मदनपाल ने अपने 'मदन-विनोद-निघण्टु' नामक ग्रन्थ में अपने को काशी-नरेश ही लिखा है:—

'रोगाम्बुधौ भवजनस्य निमज्जतो यः
प्रीतः प्रयच्छतु शुभानि च काशिराजः ॥४॥
तेन श्रीमदनेन्द्रेण निघण्टुरयमद्भुतः।
कृतः सुकृतिनां लोकहिताय हि महात्मना ॥५॥

अर्थात्—काशी के राजा मदनपाल ने रोगियों को आरोग्य प्रदान करनेवाले इस निघण्टु को बनाया।

सारनाथ के कुमारदेवीवाले शिलालेख में गोविन्द-चन्द्र को काशीनरेश कहा गया है। जयचन्द्र को बुद्धगया-वाले लेख में 'काशीश' लिखा गया है। मुसलमान लेखकों ने भी अपने इतिहास-ग्रन्थों में जयचन्द्र को बनारस का ही राजा कहा है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि जयचन्द्र की प्रधान राजधानी काशी ही थी, कन्नौज उप-राजधानी के रूप में था।

संकट-काल

अन्तिम दिनों में जयचन्द्र के साम्राज्य पर चारों ओर से संकट उपस्थित होने लगे। सन् ११९२ ई० में पृथ्वीराज चौहान के राज्यपर शहाबुद्दीन गोरी का आधि-पत्य हो जाने के पश्चात् पश्चिम में यवनों का आतंक छाने लगा। प्रजा में यवन-साम्राज्य की सनसनी फैलने लगी। सन् ११९३ ई० में यवनों का एक हल्का आक्रमण हुआ जिसे जयचन्द्र ने असफल कर दिया, किन्तु इसी बीच बंगाल के सेनों ने अच्छा अवसर आया देख मगध पर धावा बोल दिया। जयचन्द्र ने विशेष रूप से पश्चिम में भिड़े होने के कारण पूरब की ओर ध्यान न दिया। फलतः उसी वर्ष पूरे मगध पर सेनवंश का अधिकार हो गया। जयचन्द्र ने सोचा था कि पश्चिमी भाग में शान्ति स्थापित कर पुनः पूर्वी भाग को सरलतापूर्वक वापस लिया जा सकेगा, किन्तु ऐसे अवसर से लाभ उठाने के लिए शहाबुद्दीन गोरी भी अपनी संयुक्त विशाल सेना के साथ गहड़वाल साम्राज्य पर टूट पड़ा।

दोषारोपण निर्मूल

चन्दबरदाई नामक भाट के लिखे 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर अधिकांश लेखकों ने लिखा है और जनता में यह कहानी भी अत्यधिक प्रचलित हो गयी है कि जयचन्द्र के निमन्त्रण पर ही शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वी-राज चौहान पर आक्रमण किया था और अन्त में देशद्रोही जयचन्द्र पर भी हमला बोल दिया था, किन्तु इस बात का उल्लेख 'पृथ्वीराज रासो' के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं पाया जाता। रासो के अनुसार जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता एवं आबू के राजा नाहड़देव की पुत्री पृथ्वीराज पर अनुरक्त थी, उन्हें पृथ्वीराज क्रमशः भगा लाया था। रासो में यह भी वर्णित है कि मेवाड़ का राजा समरसिंह तारावड़ी के युद्धक्षेत्र में मारा गया था, किन्तु विद्वानों ने ऐतिहासिक खोजों के आधार पर इन सब बातों को काल्पनिक सिद्ध कर दिया है। समरसिंह पृथ्वीराज से डेढ़ सौ वर्ष पीछे हुआ और राजपूताना का नाहड़देव पृथ्वीराज से शताब्दियों पूर्व हो चुका था! संयोगिता सर्वथा एक कल्पित नायिका है।

रासो के लेखक ने अपने को पृथ्वीराज का समकालीन कहा है, किन्तु उसके द्वारा वर्णित सारी तिथियाँ एवं चौहानों की वंशावलियाँ तक अशुद्ध हैं। अतः इन सब बातों के आधार पर महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने सिद्ध किया है कि रासो सोलहवीं शताब्दी से पूर्व की रचना नहीं है।

प्रबन्धकोष में भी एक मनःकल्पित कथा लिखकर जयचन्द्र को दोषी ठहराया गया है, किन्तु वास्तव में इन दोनों लेखकों ने बड़ी भूल की है और जयचन्द्र पर जो दोषारोपण किया है वह निर्मूल तथा निरी काव्य-कल्पना है। पृथ्वीराज तथा जयचन्द्र में किसी प्रकार का सम्बन्ध न था और न परस्पर द्वेष ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरगति की प्राप्ति

विशेष रूप से सन्नद्ध होकर आक्रमण किये हुए शहाबुद्दीन गोरी को रोकने के लिए जयचन्द्र स्वयं एक बड़ी सेना के साथ आगे बढ़ा। इटावा के पास चन्दावर में जमकर युद्ध हुआ। हस्ति-युद्ध में निपुण जयचन्द्र अन्धाधुन्ध युद्ध कर रहा था, किन्तु अचानक उसका हाथी भड़क गया और यह भारतवर्ष का अन्तिम महाप्रतापी सम्राट् युद्धक्षेत्र में ही वीरगति को प्राप्त हो गया। उसके पश्चात् किस प्रकार कन्नौज, काशी एवं सारनाथ की लूट हुई, इन स्थानों की जनता के रक्त के फाग उड़े तथा भारत-भूमि परतन्त्रता की बेड़ियों में बँध गयी, इन्हें प्रायः सब लोग जानते हैं।

श्रद्धाञ्जलि

श्री श्रीप्रसाद शर्मा

हे बुद्ध! तुम्हारे द्रवित हृदय को—
धन्य-धन्य,
जिससे दो आँसू उमड़ नयन के स्रोतों से—
पक्षी के उर पर टपक पड़े
जब लौहायुध रक्तिम खींचा कम्पित करने।

* * *

"चोरी, मिथ्या भाषण, वंचन—
हिंसा, जीवन के अनाचार।
बस! ब्रह्मचर्य का पालन कर मानव!
जीवन का यही मोक्ष है।"
बुद्धदेव! ये वचन तुम्हारे अब भी जीवित,
अब भी पालित,
और अमर जबतक मानवता-सृष्टि सचल है।

* * *

आज हमारा उर भावी के प्रति उल्लासित,
देखें सुरभित कितने रुजक फूल खिलेंगे।
बुद्धदेव! तुमने अब तक सारे अतीत को—
सुरभि दान की।
जिससे मानव-रक्त हुआ गतिमय।
तुम उतरे चेतना-धरातल पर सुस्पष्ट,
हो आज देव!
पर निराकार, केवल स्मृति हो।
अतः फूल श्रद्धाञ्जलि के दो तुम्हें चढ़ाकर,
इतना कह—
"सब जनहिताय, सब जनसुखाय",
हम आज अलम् संतोष करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोधरा की नारी-भावना

कुमारी कला जोशी एम० ए०

युग-युग से संचित मानव-गाथा में भगवान् बुद्ध का उज्ज्वल चरित्र गौरव-गरिमा के साथ गाया जाता रहा है। उस महान् आत्मा ने समस्त संसार को 'अहिंसा परमो धर्मः' का पावन सन्देश दिया। उनका संदेश साहित्यिकों के हृदयांगण में गूँज उठा। गौतम की गुण गाथा साहित्य-गगन में बिखर पड़ी, शत-शत तारों के रूप में। उनकी झिलमिल ज्योति में विरहिणी यशोधरा की सन्तप्त सिसकियाँ विलीन हो गईं।

अमिताभ की आभा में कवि-गण गर्विणी गोपा को भूल गये। एक सतर भी किसी की कलम से प्रसूत न हुई। युग-प्रवर्तक महाकवि उस उपेक्षिता नारी की अवहेलना न कर सके। यशोधरा की मर्मभेदी अनुभूतियों से गुप्तजी का हृदय हिल उठा। कवि-कलम से निकली कारुण्यधारा जिधर बही, प्लावित करती गई। साहित्य-संसार करुणा-रस से सराबोर हो उठा और उसमें आदर्श भारतीय नारी की मूर्ति साकार हो उठी।

इस परिवर्तनशील संसार में भावनाओं और विचार-धाराओं में भी परिवर्तन होता रहा है। स्वतन्त्र-भारत के सुप्रभात में गुप्तजी की 'यशोधरा' युग से सताई नारी-जातिका प्रतिनिधित्व करती हुई समक्ष आती है। "गुप्तजी के महाकाव्य 'साकेत' की उर्मिला ने जिन्हें रुष्ट कर दिया था, यशोधरा ने उन्हें तुष्ट ही नहीं, वरन् गद्गद भी कर दिया।" भूमिका में स्वयं कवि ने लिखा है--"इसका श्रेय 'साकेत' की उर्मिला देवी को ही है, जिन्होंने कृपापूर्वक कपिलवस्तु के राजोपवन की ओर संकेत किया है।"

यशोधरा के रूप में नारी-भावनाओं का समन्वय बड़ी ही सफलता के साथ किया गया है। 'साकेत' में सुख-समृद्धि के रंगीले चित्रपट पर विषाद की धूमिल रेखा खींची गई है। किन्तु यशोधरा में विषाद की घनघोर घटा के मध्य नारी की कारुणण्मूर्ति चित्रित की गई है। कवि चाहता तो पहले गौतम-गोपा के सुखमय जीवन के सुनहले दिनों की झाँकी दिखाकर आँसुओं का संसार सजाता; परन्तु वह तो नारी-हृदय की कारुण्य-धारा में ही बह गया। वियोगिनी अबला के मातृ और पत्नी-रूप की द्वन्द्वमयी अभिव्यक्ति में वह अपने आपको भूल बैठा। काव्य का प्रारम्भ—

"अबला जीवन ! हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

जैसी मार्मिक पंक्तियों से हुआ है।

यशोधरा और उर्मिला के चित्रण में एक अन्तर और है। उर्मिला के विरह-निशीथ में ऊषा की किरण भी झलमलाती है, परन्तु यशोधरा का जीवन तो विरह-अन्धकार से पूर्णतया आच्छादित है। उसके पास तनिक भी आशा नहीं। उसके आराध्य अवहेलना कर चले गये हैं, दूर—अज्ञात देश की ओर...वह भी चोरी-चोरी। नारी का आत्म-सम्मान प्रबल आघात से आहत हो उठता है—

"सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।"

वह निराशा के अगाध-सागर के भयंकर तूफान के मध्य स्थिर खड़ी रहती है। उसे पूर्ण विश्वास है, गौतम की प्रेमाधिकारिणी एकमात्र गोपा ही रहेगी। फिर भी हृदयेश्वर क्या उस नारी-हृदय को पूर्णतया पहचान सके? वीर क्षत्राणी का अन्तर अपनी उपेक्षा न सह सकने के कारण कराह उठता है। सिद्धि-मार्ग की बाधा के कलंक का टीका वह नारीत्व पर नहीं लगने देना चाहती। उस विरहिणी को अपने प्रबल प्रेम पर अक्षुण्ण विश्वास है—

"उन्हें समर्पित कर दिये यदि मैंने सब काम,
तो आवेंगे एक दिन निश्चय मेरे राम।
यहीं इसी आँगन में।"

गौतम के लौटने पर गर्विणी गोपा स्वागत से मुकर जाती है। उसे तो आराध्य ने इतना भी सौभाग्य प्राप्त करने का अवसर कहाँ दिया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पहुँचाती मैं उन्हें सजाकर,
गये स्वयं वे मुझे लजाकर;
लूँगी कैसे ? वाद्य बजाकर—
लेंगे जब उनको सब लोग।
मिला न हा ! इतना भी योग!"

उस नारी से चलते समय बिदा भी न लेकर स्वामी ने उसे स्वागत से भी तो वंचित कर दिया। यशोधरा-सी कुसुमादपि सुकुमारी अपने को वज्रादपि कठोर बना लेती है। स्वामी के स्वागत-हेतु जाने में उसे एक बहुत बड़ी बाधा है। जहाँ जाने से उसे जगत् की कोई शक्ति नहीं रोक सकती वहीं वह नहीं जा पाती ? यदि वह समर्थ होती तो पृथ्वी का कण-कण बीन डालती। योगिन-सी शैलों में भटकती, शफरी सी जल में तैरती फिरती, पंछी बन व्योम-मण्डल का कोना-कोना ढूँढ़ डालती। अपने आराध्य को समस्त संसार में से खोज निकालती। किन्तु वह अभागी तो सागर-तट के समीप खड़ी होती हुई भी प्यासी तड़पती रह गई।

आखिर सहन-शक्ति की भी सीमा होती है। हृदय की घनीभूत पीड़ा मूर्च्छा में परिणत हो जाती है। विरह-विधुरा का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व प्रकट हो जाता है। उसकी धीरज-नौका बीच भँवर में डगमगा जाती है। मन सजग हो बोल उठता है—

"रे मन आज परीक्षा तेरी !
विनती करती हूँ मैं तुझसे बात न बिगड़े मेरी।"

वह बड़ी धीरता से हृदय-सेतु बाँध लेती है। जब प्राणेश्वर इतनी दूर चले आये, तो उनके लिए दो पग आखिर है ही कितना ?

जीवन की अन्तिम वेला में निराशा के बादल बिखर जाते हैं। आशा-शशि ओट से निकल पड़ता है। अंधकार का लहराता आँचल हट जाता है। सोये भाग्य जाग उठते हैं। स्वयं भगवान् समीप आ, मानिनी नारी के आत्म-गौरव की रक्षा कर लेते हैं।

"मानिनी, मान तजो, लो, रही तुम्हारी बान।
दानिनी, आया स्वयं द्वार पर यह वह तत्रभवान।"

इस आत्म-समर्पण को देख भावुक हृदय द्रवीभूत हो भव-भव के भगवान् का हार्दिक स्नेह-सिक्त स्वागत-गान करता है। यशोधरा गा उठती है—

"मैं थी संध्या का पथ हेरे,
आ पहुँचे तुम सहज सवेरे।
धन्य कपाट खुले ये मेरे।
दूँ अब क्या नवदान ?
पधारो! भव-भव के भगवान् !"

इस तरह गर्विणी गोपा प्रभु में एकात्मक हो जाती है। जननी के साथ ही राहुल भी कथा-लड़ी के मध्य गुँथ जाता है। मातृ-स्नेह पर कर्तव्य-भावना विजयिनी होती है। यशोधरा का प्रांगण दुःख-सुख की आँखमिचौनी से भर उठता है। वह विरह के अगाध उदधि में अपनी पतवार दृढ़ता से थाम लेती है। वियोग-विकल नारी-नयनों में अनायास ही अश्रु ढुलक पड़ते हैं। वह भोले पुत्र के प्रश्नों का उत्तर देने में अपने को असमर्थ-सी पाती है:—

"राहुल, पलकर जैसे-तैसे।
करने लगा प्रश्न कुछ वैसे।
मैं अबोध उत्तर दूँ कैसे ?
वह मेरा विश्वासी।"

फिर भी वेदना-वेग को राहुल-जननी साहस से सँजो लेती है कि कहीं उन अश्रुकणों का प्रतिबिम्ब प्यारे पुत्र-हृदय पर न पड़ जाय। रोते-रोते वह मुस्करा उठती है। लाड़ले बेटे के स्वर में स्वर मिला मातृ-स्नेह काव्य की कड़ियों में गूँथकर गूँज उठता है—

"रुदन का हँसना ही तो गान
गा-गाकर रोती है मेरी हृत्तन्त्री की तान।"

रुदन की यह हँसी हृदयों को हिला देती है, झकझोर देती है। असहाय नारी की असहनीय दशा पर बरबस ही नयन बरस पड़ते हैं। नन्हा बालक जननी से अनुरोध कर बैठता है—

"तू केवल कन्थक कसवा दे अम्ब अभी चढ़ धाऊँ।
मुक्ति बड़ी या मेरी माता, पूछ पिता से आऊँ ?"

परन्तु यशोधरा विश्व सुख के लिए अपने स्वार्थ को दृढ़ता से त्याग देती है। उसका स्वर्ण-संसार नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। सूने संसार में एकमात्र राहुल को अपना बना उसे पावन मातृ-स्नेह से सींचन कर जीव की मिलन वेलामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उसी स्नेह-बेलि को तथागत के श्रीचरणों में अर्पित कर देती है। उत्सर्गमयी नारी का इतना श्रेष्ठ उदाहरण और कहाँ मिलेगा ?

जीवन-संध्या के समय वह स्वामी से पूछती है—

"तुम भिक्षुक बनकर आये थे, गोपा क्या देती स्वामी ?
था अनुरूप एक राहुल ही, रहे सदा यह अनुगामी।"

उस आदर्श भारतीय ललना को अपने जीवन-धन के भौतिक मिलन में जरा भी विश्वास नहीं है। वह उपेक्षणीया नारी अपने-आप में ही पूर्ण है। उसका चरित्र अलौकिक है, अपूर्व है !

इस तरह महाकवि गुप्तजी ने यशोधरा की विशाल चित्रपटी पर नारी के नाना रूप, सम्पूर्णता के साथ नाना रंगों की तूलिका से बहुत ही सँजो-सँभालकर अंकित किये हैं।

भारतीय नारी का यह आदर्श यावत् चन्द्र-दिवाकरौ संसार ले महिला-समाज का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

कुशीनगर के प्रति

एक भारतीय बौद्ध

हे कुशीनगर क्या दशा हुई,
तेरी वह अनुपम छटा कहाँ ?
शायद वह वहाँ गई होवे,
भगवान् तथागत गये जहाँ ॥१॥
भगवान् तथागत की पुकार को,
तूने था अपनाया।
औ' उसी समय दुनिया में,
था उसका मर्म जताया ॥२॥
तेरे श्रवणों में गूँजी,
गुरु गौतम की गुंजारें।
सत्-पथ की है वह शिक्षा,
आश्चर्यमयी झंकारें ॥३॥
तू निराकार गौरव-अगार,
मल्लों का था मोहक विहार।
हे कुशीनगर ! है नमस्कार,
दशबल का तू निर्वाण-द्वार ॥
मल्लों के कितने बेटों ने,
तेरे वक्षस्थल पर खेला।
गुरु शाक्य देव के आते ही,
बन गए उन्हीं के सब चेला ॥१॥
निर्वाण तथागत के पीछे,
देवानां प्रिय था आया ॥
अपने को तुझमें पाकर,
जीवन की ज्योति जगाया ॥२॥
तब बौद्ध-धर्म था प्रान्तों में,
देशों में इसका नाम कहाँ ?
पर यही धर्म का सेवक था,
ले गया इसे था नहीं जहाँ ॥३॥
भगवान् बुद्ध का धर्म आज,
मानवता की वर थाती है।
'भगवान् बुद्ध ! अमिताभ बुद्ध !!'
कह जगत पीटता छाती है ॥
तब वक्षस्थल पर बसने को,
जितने कुल - दीपक आये।
गुप्त और कुषाण सुवंशज
अपना मूल्य चुकाए ॥१॥
रहने का मूल्य चुकाना क्या,
मानवता को अपनाना था।
सत्य, अहिंसा, ज्ञान, कला का—
झंडा जग में लाना था ॥२॥
उस गुप्त काल गौरव का,
साक्षी दशबल - प्रतिमा है।
लम्बी सी सुप्त दशा में,
वह संकुल कला विभा है ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी कलामय भाषा में, तेरा यश-गान सुनाया
चुन्दा के घर खा प्रभु ने निर्वाण परमपद पाया ॥
तेरी छाती पर आकर,
हूणों ने बाजी खेली–
आकर यवनों ने तेरी
सारी सुन्दरता ले ली ॥१॥
जब तुझ में नहीं रहा कुछ,
था ईंटों का ही दर्शन।
औ' अर्द्ध-निशा में होता–
था वैतालों का नर्तन ॥२॥
तब महावीर, चन्दा स्वामी ने–
तुमको फिर चमकाया।
अपने को तुझमें लाकर,
भारत का मर्म जताया ॥३॥
इन खंडहरों में कितने मिट्टी-ईंटें बिखरे हैं।
जो स्तब्ध आज दिखलाते पर तत्त्वों से निखरे हैं ॥
हे कुशीनगर! क्या कहदूँ, तू संस्मृति विश्वस्थल के।
भगवान् तथागत तुझमें, तू तारक हो भवजल के ॥

मुक्ति और उसका अर्थ

श्री विद्यानन्द विद्यार्थी, साहित्यरत्न

प्रायः लोगों की यह आम धारणा-सी हो गई है कि मुक्ति किसी देश-विशेष में है और मर जाने के बाद मनुष्य उस देश-विशेष को प्राप्त कर सुखी हो जाता है। फलतः मुक्ति की कामना में रत होकर लोग अनेक दान, यज्ञ तथा अपने पर कठिन अत्याचार (?) किया करते हैं। कितने ऐसे हैं जो तीर्थों में जाकर बड़े निर्भयता-पूर्वक अपना प्राणान्त कर अपने को मुक्ति पाने का अधिकारी बताते हैं, लेकिन ऐसे पागलपन पर हँसी आती है कि जन-साधारण में मुक्ति को लेकर कैसी भ्रान्त-धारणाएँ फैल गई हैं।

मुक्ति का यों, सामान्य अर्थ है—छुटकारा पाना।

"किससे छुटकारा ?"

"बन्धन से।"

"कैसा बन्धन ?"

"संसार का।"

"संसार का क्या बन्धन है ? जब कि इससे जीवन प्राप्त होता है ?"

"मायाजाल !"

"मायाजाल क्या है ?"

"संसार क्षणभंगुर है, नश्वर है, इसमें चिपके रहना ठीक नहीं। संसार की इस क्षणभंगुरता को समझकर सांसारिक सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि द्वन्द्वों के घात-प्रतिघात से ऊपर उठ जाना अर्थात् छुटकारा पा जाना।"

"तो क्या यों, घुट घुटकर, तिल-तिलकर अपने को स्वाहा कर देने में मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो जायगी ? क्या यह तपश्चर्या नहीं है ?"

"कदापि नहीं, कदापि नहीं।"

संसार और उसके पदार्थ क्षणभंगुर हैं—यह ठीक है और क्षणभंगुरता का कारण पदार्थों की गतिशीलता है, और कुछ नहीं। संसार की कोई भी वस्तु क्षण भर के लिए भी अपने रूपमें स्थिर नहीं रह सकती है। संसार की सारी चीजें—धन, जन, यौवन आदि में भी क्षणभंगुरता छिपी है। इन वस्तुओं के रूप का क्षण-क्षण अभाव होता जाता है, पर वस्तु का नहीं—यह सृष्टि का अटूट नियम है। कभी परिवर्त्तन नहीं होता। मनुष्य इस जग से उदासीन इसी नाते रहना चाहता है कि यह संसार और इसकी समस्त वस्तुएँ सदैव एक रूप में नहीं रहतीं; जवानी, धन-जन ये सदैव हमारे पास बने नहीं रहते, पर यह कैसे हो सकता है ? उसकी यही भावना उसके विषाद का कारण है। उस विषाद के मूल-भूत कारण को समझ जाना और फिर विषाद को दूर कर देना ही मुक्ति के लिए वास्तविक प्रयास है। भगवान् बुद्ध का तो यह तीव्र अनुभव है कि मनुष्य बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु से तभी छुटकारा पा सकता है जब कि वह इनका वास्तविक ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त कर ले। मनुष्य दुःख, शोक आदि का कारण जानकर ही सुखी हो सकता है। गीता कहती है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥
मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुख-दुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।
गीता २।१३,१४

जिस प्रकार प्राणी की इस देह में बालकपन, जवानी और बुढ़ापा रहते हैं, ऐसी ही दूसरी देह की प्राप्ति भी होती है। धीर पुरुष इसमें मोह नहीं करता। हे कुन्ती के पुत्र! भरतवंशी! इन्द्रियों के विषय तो शीत, उष्ण, सुख और दुःख देनेवाले आनी-जानी वस्तु हैं, अनित्य हैं, उनका सहन करो।

गीता के इन कथनों से पता चला कि प्रकृति के घात-प्रतिघात नित्य नहीं, अपितु अनित्य हैं, क्षणस्थायी हैं, फिर हम उनके लिए चिन्तित क्यों हों?

'चार आर्य सत्य' के अन्तर्गत दुःख समुदाय पर प्रकाश डालते हुए भगवान् बुद्ध ने बताया है कि 'तृष्णा ही मनुष्य के जन्म का कारण है।' और जब मनुष्य जन्म लेता है तब उसे सृष्टि के अटूट विधानों—आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, मिलन-विछोह आदि को समान-भाव से अपनाना ही पड़ता है। तृष्णा का अन्त नहीं, फिर भी भगवान् बुद्ध ने तीन रूपों में उसका वर्गीकरण किया है—(१) कामतृष्णा, (२) भवतृष्णा और (३) विभव तृष्णा। पहली के अन्तर्गत नाना प्रकार की ऐहिक कामनाएँ आती हैं, जैसे; स्त्री-पुत्रादि। दूसरी प्रकार की तृष्णा संसार के उपभोगों में आसक्ति दिखलाती है। इसलिए हम चाहते हैं कि संसार सदैव बना रहे। तीसरी प्रकार की तृष्णा उन भोगों को प्राप्त करने के लिए, अतृप्त लालसा की तृप्ति के लिए, सांसारिक ऐश्वर्य की इच्छा बनी रहती है। इस तरह हमारी तृष्णा ही हमारे लिए दुःखदायिनी बन जाती है। दुःख का कारण यही है कि संसार का कोई भी सुख स्थायी नहीं, क्षणभंगुर होता है, पर मनुष्य इसे ही नहीं समझता, वह समझता है कि ये सांसारिक सुख स्थायी हैं, पर एक दिन जब तथाकथित स्थायित्व का क्षणभंगुर रूप दिखलाई पड़ता है तब उसे अपनी समझ के विपरीत हार्दिक वेदना होती है। गीता सन्देश देती है—

जातस्यहिध्रुवोमृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥२।२७॥

हे अर्जुन, उत्पन्न हुए की मृत्यु अवश्यम्भावी है और मरे हुए का जन्म भी अटल है। इसलिए जिसको हटा नहीं सकते, उस विषय में तू शोक नहीं कर सकता।

हाँ, यदि उन सांसारिक भोगों की ओर विरक्ति दिखायी जाय तो अवश्य ही मनुष्य की वेदना मिट सकती है। दुःख का चिन्तन करने से दुःख की निवृत्ति नहीं होती, वरन् उसे भूल जाने में ही उसका अन्त हो जाता है। सच्चाई को अपना कर मनुष्य दुःख से छुटकारा पा जाता है। सत्य तो उसे ही कहा जा सकता है कि जो वस्तु जिस रूप में हैं उसे ठीक-ठीक उसी रूप में समझना। ठीक ठीक और उसी रूप में न समझने के कारण ही मनुष्य को सांसारिक तापों में तपना पड़ता है।

दुःख-सुख की सांसारिक भावना से ऊपर उठना ही मुक्ति है। मनुष्य दैनिक जीवन में भी मुक्ति पा सकता है। मुक्ति की भावना का निरन्तर अभ्यास करते रहने से ही वह एक दिन मुक्ति की अत्यन्तावस्था को प्राप्त कर मुक्त पुरुष बन जाता है। भगवान् बुद्ध ने दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपदा (अष्टांगिक मार्ग) के रूप में अभ्यास की रूप-रेखा खींची है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि का निरन्तर अभ्यास ही मनुष्य की तृष्णा को मार सकता है। तृष्णा गई, चाहना मिटी, चाहना मिटी और मनुष्य की चंचलता गायब हुई। चंचलता गायब होते ही स्थिरता आ जाती है। जहाँ स्थिरता है वहाँ प्रकाश है। जहाँ आत्मा का प्रकाश है वहाँ सुख और शान्ति है। शान्ति आते ही मनुष्य परमानन्द को पाकर कृतकृत्य हो जाता है।

अभ्यास आवश्यक है, क्योंकि अभ्यास में कच्चाई रहती है। अभ्यासी को सतत के अभ्यास से ही पूर्णता प्राप्त करनी होती है। बिना दैनिक अभ्यास के न मुक्ति की भावना आयेगी और न हम इस प्रकार की कल्पना ही कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति सुख-दुःख दोनों ही गर्हित हैं। दोनों ही निंद्य हैं। इनका बीच का मार्ग (मज्झिमा पटिपदा) ही मुक्ति का पथ है। आसक्ति रहित अपने जीवन के दैनिक कार्यों को सम्पन्न करना हमें मुक्ति के द्वार तक ले जाता है। यह कथन का विषय नहीं है, बल्कि दृढ़ विश्वास के साथ इसे आगे बढ़ने से ही इसका प्रत्यक्ष अनुभव होगा। विचारों का भी साक्षात्कार किया जा सकता है। अनुभव का साक्षात्कार महात्माओं ने तो किया ही है।

अनासक्ति कार्य शक्तिप्रद है। बिना दैनिक जीवन में आनन्द प्राप्त किये मुक्ति के वास्तविक अर्थ को नहीं समझा जा सकता है। आनन्द की प्राप्ति के लिए अनासक्ति कितनी अनिवार्य है—यह कहा नहीं जा सकता। अनासक्ति में तो वह बल है जो भौतिक वस्तुओं में भी नहीं। आनन्द हमें नहीं मिल पाता—इसका प्रधान कारण है—वस्तुओं के प्रति 'आसक्ति' तथा 'ममत्व' का भाव। जिस दिन मनुष्य अपने ममत्व को भूल जायेगा (केवल अपने कर्त्तव्य पर ध्यान देगा) उसी दिन उसमें अनासक्ति आ जायगी। जब आसक्ति दूर हो जायगी तब आनन्द कहीं दूर नहीं है। इस अवस्था में मनुष्य दुःख-सुख की भावना से ऊपर उठ कर तीसरी शक्ति का आनन्द प्राप्त करता है। इस तरह का दैनिक अभ्यास करना चाहिये।

हम धन में, तन में, जन में तथा उनकी भावनाओं में आसक्त से रहते हैं—यही दुःख का मूल है। अनासक्ति का अर्थ अकर्मण्य जीवन नहीं अपितु यह मार्ग तो मनस्वियों का है, कर्मठ वीरों का है। जो इसका अनुसरण करते हैं, उन्हें ही इसका अभ्यास मिल पाता है, अनभ्यासियों से तो यह कोसों दूर है।

अतः जिसकी वासना की रस्सी कट चुकी है वह तो दैनिक जीवन में भी सभी सांसारिक क्षेत्रों में मुक्ति का अनुभव कर सकता है और निरन्तर के अभ्यास से 'अर्हत्' बन सकता है। मात्र अपने दृष्टिकोण को बदलने की देरी है।

चिरस्मरणीय 'वह एक दिन !'

भिक्षुसंघ का नैसर्गिक सान्निध्य

श्री विजय श्रीवास्तव

"इतने में कई मोटरवाले निकल गये पर किसी के मन में यह क्यों न आया कि पूछ ही लेता या कृपया बैठाकर विश्रामस्थल पर उतार देता तो क्या कुछ बिगड़ जाता··· पर दो चलें आदमी मोटर की धूल फाँकते···" प्रधान जी बीच ही में हँस पड़े, बात भी वहीं समाप्त हो गयी, क्योंकि थी भी कुछ ऐसी ही बेतुकी बात। मैंने सोचा वे उत्तर ही क्या देते क्योंकि उत्तर हो भी क्या सकता था भला सिवा इसके कि वह भी समर्थन करते कि हाँ भाई, बात बिलकुल ही सही है। हम दोनों धर्मपाल-मार्ग पर चलते आ रहे थे। कुछ देर यूँ ही शान्ति रही। मैं चारों ओर से रात्रि के आगमन का दृश्य देख रहा था और साथ ही विस्मृत हो रहा था चाँद की शीतल परिधि में। कल्पना ने अपने मद भरे मदिरा का असर डालना शुरू कर ही दिया था कि कुछ परिचित-सा स्वर कानों में पड़ा, "तुम तो भाई बड़े तेज चलते हो, दुबले-पतले होने के कारण हवा में ही उड़ने लगते हो···" घूमकर देखा, प्रधान जी कुछ पीछे ही छूट गये थे।

प्रधान जी ने फिर कहना आरम्भ किया—आज सबेरे से ही श्रीगणेश कुछ विचित्र हुआ··· अच्छा ही रहा··· किसी प्रकार··· दिन बेकार नहीं गया, और रास्ते से हट कर उन्होंने पान की पीक थूकी।

मैंने भी विचार किया—क्या दिन भी बेकार जाते हैं कभी, कुछ न कुछ कार्य तो मनुष्य करता ही रहता है, लिखना, पढ़ना, खेलना, हवाखोरी, सोना, गप्पें लड़ाना, सिनेमा, घाट घूमना और कुछ न हुआ तो चाय की दूकान में बैठे राह चलनेवालों को घूरते रहना। आज-कल तो यह भी एक पेशा-सा हो गया है और तमाशा यह कि इनसे आप कुछ कहें भी तो पूरा बवाल खड़ा हो जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप ही इज्जत खतरे में पड़ जाय, यदि इज्जतवाले हैं तो।

और सबेरे की घटना फिर एक बार याद हो आई।

\+ + +

मैं पौने सात के पहले ही प्रधान जी के घर पर पहुँचा और एक ही आवाज में उत्तर भी मिला। एक ही बार में उत्तर मिलने का कारण था—कल शनिवार था न, और इसी से रविवार की तैयारी उसी दिन शाम को हो जाती है जिससे दूसरे दिन दोपहर तक के लिए कोई चिन्ता नहीं रहती। स्वप्नलोक से विरत करने के लिए अनेक उपकरण करने पड़ते हैं श्रीमतीजी को उनकी। चाय की चाह अलबत्ता यदि उमड़े तो आँखें खुल जाती हैं आठ-नौ बजे और इसी से मैं इतना पहले आ गया था। मधू आयेगी, मैं राह में सोच रहा था और अपने नन्हें-नन्हें हाथ फैलाते हुए कहेगी—आज तो मैं जरूर दो आने पैसे लूँगी क्योंकि आपलोग सारनाथ जायेंगे न, इसी लिए। और फिर यह तो उसने कल ही शाम को चैलेंज दे दिया था और वह है भी थोड़ी जिद्दी। बच्चे जिद्दी ही भले और प्यारे लगते हैं, पर यदि बूढ़ों में यह विशेषता आ जाय तो···? समझ तो गये ही होंगे आप। हमसे न कहलायें तो अच्छा। व्यर्थ की बुराई मोल क्यों लूँ। वैसे तो हम सभी वृद्ध हैं और युवा भी।

तो प्रधान जी ने कमरे में से उत्तर दिया—हाँ, आओ, तैयार ही हूँ। सुनकर जी में आया कि पूछूँ कि क्या रात नींद नहीं आई, पर फिर "यदि, मैं तो आ ही गया अपने समय से··· पर तुम्हारी गाड़ी आ जाय तो ठीक ठीक" कहते हुए दरवाजे के बाहर चप्पल उतार अन्दर दाखिल हुआ।

"देखो कहा तो है", कुरता बदलते हुए प्रधान जी ने उत्तर दिया, "पर कौन ठिकाना, साढ़े सात बजे के बदले आठ-नौ न हो जाय।" कपड़े बदल कर प्रधान जी तैयार हो गये और कुरते की बाँह ठीक करते हुए तख्त से नीचे उतरे।

सारनाथ की साप्ताहंत यात्रा तो मेरी हो ही जाती है पर इस रविवार को प्रधानजी के साथ की अपेक्षा थी, क्योंकि उन्हें भी एक जगह कुछ कार्यवश जाना था वहीं, पास के एक गाँव में और ऐसे तो अकेले ही पैरगाड़ी मुझे तथागत के मन्दिर तक ले जाती है और वापस लाती है। वह भी किसी अभिन्न मित्र से कम नहीं। हम दोनों में एक तारतम्य-सा स्थापित हो गया है।

सात बजते-बजते हम तथा प्रधानजी सड़क पर आ गये और चारों ओर आँख दौड़ाकर देख लिया गया। निगाह खाली ही वापस लौट आई। सामने ही चाय के स्टाल पर अपनी मांग रख कर पास ही में खड़े हो गये। चाय भी क्या अजीब मर्ज़ है। बच्चों को भी दूध देख कर रोना आता है पर चाय के नाम पर निहाल। बड़ों की तो कुछ पूछिए ही मत। गाँवों में सुना है, एक लोटे में चाय भरकर और साथ में एक ग्लास रखकर तब चाय का दौरा शुरू होता है। हर आदमी के साथ में यही सामान होता है। वे भला एक छोटे से प्याले में अपनी चाह क्या बुझा पायेंगे। यह भी चीन की देन है संसार के लिए। वहाँ तो शायद चाय की पत्ती में, अरक निकालने के बाद स्वाद की चीजें मिलाकर खाते हैं। सुरती खाना (खैनी) भी शायद उसी प्रथा का अपभ्रंश हो!··· आध घण्टे वहाँ भी हो गये और फिर बाबू की लकड़ी की अड़ार की ओर देखकर सोचा कि वहाँ भी थोड़ा कुछ बैठ जाय। अखबार तो होगा ही और "आज" होगा तो कुछ समय ही कटेगा। वहाँ "धर्मयुग" लेकर वे महोदय जी जान से दो शब्दों के पीछे पड़े हुए थे। नहाते-नहाते भी वे प्रायः स्नान-घर से निकल कर खिड़की से सिर निकाल प्रधान जी से पूछ लेते हैं कि अमुक शब्द का टेर पा लिया। वे दोनों आमने-सामने ही रहते है। और अन्य विशेष उलझनों को सुलझाने में कामता बाबू की श्रीमती जी से उन्हें पूर्ण सहयोग मिलता रहता है।

और···गाड़ी अभी तक न आई। ···कामता बाबू की राय हुई कि सारनाथ की यात्रा स्थगित कर शाम को एक मित्र के उद्यान में वायुसेवन तथा लस्सी का बन्दोबस्त किया जाय। प्रस्ताव तो अच्छा अवश्य था और मैंने भी अपनी सन्देहात्मक स्वीकृति दे दी। सन्देहात्मक इसलिए कि इस प्रकार की पार्टियाँ, या आमोद-प्रमोद आदि के जमघटों में दम घुटने लगता है जैसे। यह सब हो ही रहा था कि प्रधान जी के घर से खबर आई कि कोई सज्जन आये हैं। बन्द गले का गन्दा-सा कोट, काली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोपी, सुपर-फाइन धोती, चप्पल, हाथ में कुछ छोटी-सी किताब ही की तरह की कोई चीज थी, उन सज्जन के बाह्यरूप का यही वर्णन है। परन्तु हम उन सज्जन के पास तो पहुँच ही न पाये, क्योंकि उनकी किताब तक ही हम रुक गये।··· अर्थात् किसी कम्पनी के शेयर बेचने की गरज से वे आये थे और बात-चीत से लगा कि वे और भी चक्कर मार चुके थे। मैं तो चुप खड़ा हो उनकी मीठी बातों का रसास्वादन कर रहा था। पर देखा कि मेरे मित्र प्रधान जी का बुरा हाल है। सज्जन कह रहे थे—कम से कम एक तो शेयर आप ले ही लें, सुबह-सुबह मुझे लौटाइये नहीं··· मैं जानता हूँ कि आप को कठिनाइयाँ हैं और मैं यह जानते हुए भी आप से कह रहा हूँ··· इसी से आप समझ सकते हैं···। मैं तो समझ ही गया, मेरे मित्र समझ पायें हों या नहीं। उनके लौटाने के असमंजस में खुद अपने को लौटाये जा रहे थे।··· और इसी के फलस्वरूप, मेरे कारण वे खाली हाथ लौटे। शायद कुछ रुष्ट तो अवश्य ही हुए, पर यह तो उन महोदय का दृष्टिकोण था। इरादा तो ऐसा था नहीं।

धीरे-धीरे नौ बजे दिन का असर मालूम होने लगा। मन तर्क-वितर्क के चक्कर में पड़ गया। और··· अब अधिक समय न खोकर किसी एक विचार पर आना ही उचित समझा गया।··· हम अलईपुर के लिए रिक्शे पर बैठे। मन को कुछ आराम देने की गरज से अब विचार करना बन्द कर दिया और नगर के दृश्यों को देखते हम आगे को चले।··· दूकानें तो आज बन्द ही थीं इससे भीड़-भाड़ बहुत कम थी। सबके चलने-फिरने के ढंग से रविवार ही मालूम हो रहा था। हम आज शहर का एक नये आगन्तुक की हैसियत से निरीक्षण कर रहे थे। रोज तो बनारस के नागरिक की दृष्टि से तो देखते ही हैं। रिक्शा काफी तेजी से भागा जा रहा था इससे देखने की क्रिया भी उसी शीघ्रता से करनी पड़ती थी। और एकाएक झटका लगा। गिरे नहीं हम, रिक्शा उल्टा नहीं, यही गनीमत हुई। इस एकाएक चकाचौंध का कारण ज्ञात होते देर न लगी। हम टाउनहाल के सामने वाली सड़क पर थे जो विश्वेश्वरगंज को जाती है। हमने नगरपालिका को हार्दिक धन्यवाद दिया।

अभी तक हमें दोपहर तक लौट आने का पूरा हौसला था ही क्योंकि शाम तक की बात सोचकर हम इसके विपरीत कुछ विचार न कर पाते थे। मनुष्य भी कितना आशावादी होता है कि विपरीत परिणाम सोचने का साहस ही नहीं उसमें? यह क्या हमारी कमजोरी ही नहीं कि हम स्वयं अपनी कमजोरियों का सामना नहीं कर पाते अथवा ऐसा करने का साहस ही नहीं होता? क्योंकि साथ ही मन के किसी कोने से यह ध्वनि साफ सुनाई पड़ती थी—आज शाम के पहले तो लौटना असम्भव अवश्य है और फिर वहाँ पहुँचकर, वहाँ जाना··· अमुक-अमुक से भेंट करना भी··· दोपहर का समय··· इत्यादि।

अलईपुर में कुछ मिष्ठान्न, फल आदि खाया गया। दूकानदार का एक नेपाली नौकर था जो कुछ विचित्र ही लगा। शायद कविता कर रहा था, मन ही मन घर की याद सता रही थी या क्या था कि उसने दूकान के सामने कनस्तर से पानी ढरकाते समय साथ के एक बालक के झोले का उसने तनिक भी ख्याल न किया और सम्भव था कि वह छोटी-सी वस्तु को झाड़ू के चपेट में बहाकर फेंक देता यदि हम उस झोले को खींच न लेते। यहीं तक नहीं, दूकानवाले ने कहा—बाबू जी, अनाड़ी है। वह भी कुछ कम तेज न था।

सत्य कथाओं के अनुभवों का विवेचन करते-करते दस बजा। गाड़ी स्टेशन पर आ चुकी थी। लगता है कि ओ० टी० की भी गाड़ियाँ अब घड़ी के काँटों का ठीक पालन करती हैं। डब्बों में भी कुछ उन्नति दीख पड़ी। 'भारत स्वतन्त्र है' एक बार फिर याद हो आया। और ऐसे तो स्वतन्त्रता के नमूने हम राह चलते अनुभव करते रहते हैं ही।

किसी विशेष कारण से प्रधान जी के मित्र के यहाँ ही प्रथम जाना उचित समझा गया। सारनाथ का वातावरण ही शहर से सर्वथा भिन्न है। यहाँ की वायु दूषित नहीं। हृदय स्वतः पवित्र हो जाता है यहाँ के मन्द पवन का स्पर्श होने से। × × एक-एक ग्लास गन्ने के रस से हमारा स्वागत किया गया और कुछ देर बैठकर मैंने चलने का प्रस्ताव रक्खा, पर मेजबान ने—"इस समय कहाँ, थोड़ा ठहर कर जाइयेगा, जल्दी क्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है" कहकर हमें लगभग १२ बजे धूप में बाहर आने से रोका। और, मेरी जल्दी वे भला क्या समझते? प्रधान जी की ओर देखकर फिर बैठ गया—'आना अपने मन से, जाना दूसरे के मन से' का पालन करना ही उचित समझा।

लोग प्रायः पूछते हैं—कहिए कुशल है न? कैसी तबियत है···? मेरे एक मित्र ने ऐसे ही एक कुशल पूछनेवाले सज्जन से कह दिया—"क्या आप चाहते हैं कि मैं बीमार रहूँ अथवा यदि कुशल न होता तो आपसे बातें कैसे करता यहाँ पर"। वे बेचारे अपना-सा मुँह लेकर रह गये, कुछ कहते बन न पड़ा। कुछ तो हाल-चाल पूछते हैं क्योंकि ऐसा करना भी समाज के दिखावटीपन का नमूना है। न चाहते हुए भी पूछना पड़ता ही है। यथार्थ में, दिल से आई हुई बात छिपती नहीं, चाहे वह मूक अभिवादन ही क्यों न हो। मेज़बान ने अपने भरसक हमें समय-गति का भान न होने देने का प्रयत्न किया—कुछ अंग्रेजी के अखबार जैसे 'पत्रिका', 'स्टेट्समैन', 'सीलोन टाइम्स' आदि और कुछ हिन्दी की पत्रिका 'सुमित्रा', 'सरिता' आदि। सिनेमा की भी एकाध किताब सामने आयी। ग्रामोफोन भी बजाना शुरू हुआ जो प्रायः ढाई बजे तक चलता रहा। मैंने 'सीलोन टाइम्स' उठाया पन्ने उलट कर सरसरी निगाह घुमाई। मुख-पृष्ठ पर सिंहल के नव-निर्वाचित प्रधान मंत्री श्री डडले सेनानायक के दो चित्र थे—प्रथम में वे वहाँ के बौद्ध भिक्षु-गुरुओं से परामर्श ले रहे हैं तथा दूसरे में अपनी आन्तरिक पीड़ा से व्यथित जननी के सामने झुककर सिंहली ढंग से प्रणाम् कर उनका अमोघ आशीर्वाद ग्रहण कर रहे हैं। शीर्षक था—नये प्रधानमन्त्री का प्रथम कार्य। चित्र देखने के साथ ही उनकी शिक्षा तथा महान हृदय की झलक निर्मल शान्त जल में शुभ्र चाँदनी की उज्ज्वल कनक-रेखा के समान जान पड़ी। अवश्य ही सिंहल द्वीप का नया कर्णधार अपने प्राचीन देश के सम्मान की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ होगा क्योंकि वह एक उच्च माता-पिता की उच्च संतान है तथा जिसके हृदय में विराजती है अपने पूज्य जनों के प्रति अगाध श्रद्धा तथा अटल विश्वास। पता नहीं, अन्य किसी देश में यह प्रथा है या नहीं—अन्य देशों के बारे में तो कहा नहीं जा सकता। नेपोलियन के तो विषय में पढ़ा है कि वह वीर अपनी माता की पूजा के बाद ईसा की प्रार्थना करता और उसकी एक आँसू में वह समस्त संसार को डुबाने को तैयार था। सच में यह एक पवित्र देश का पवित्र आदर्श है तथा आर्य संस्कृति (भारतीय तथा सिंहली संस्कृति का स्रोत एक ही है) के उज्ज्वल इतिहास का एक पृष्ठ। श्रीमान् डडले के प्रति हृदय में स्वतः ही आदर की भावना जाग पड़ी।

३ बजा। खाने का समय हुआ जान हमें भी चलने को कहा। यह तो चाय का समय था और इस समय भोजन करने का मतलब होता कि कई दिनों तक अन्य कार्यों से छुट्टी मिल जाती। डाक्टर की शीशियाँ पीनी पड़तीं। पर प्रधान जी के—"तुम चलो तो हम भी खा लेंगे कुछ, हमें तो भूख कस के लगी है" कहने पर उठना ही पड़ा, पर मैंने अपने लिये खाना न परसने के लिये कह दिया। फिर भी किसी के यहाँ जाकर यूँ ही·····ठीक भी न था—शिष्टता के विपरीत था यह। पंडित राम नारायणजी मिश्र की पुस्तक "दैनिक शिष्टाचार" बहुत दिन पूर्व विद्यालय में पढ़ी थी, और उसकी एक एक बात अभी भी याद है। लक्ष्मीपतियों के यहाँ भोजन इत्यादि के नियम कुछ ऐसे ही समय-दे-समय हुआ करते हैं। लक्ष्मी की विशेष कृपा होने के फलस्वरूप ऐसा कैसे हो जाता है कुछ समय में न आ सका। ढाई-तीन घंटे का समय नये अनुभवों के बीच बीता। ऐसी ही अवस्थाओं में हम अपने को देख पाते हैं और अनुभवों के प्रदान करने वालों के ऋणी होते हैं।

चार बजा और हम वहाँ से छूट पाये। खेतों के बीच पगडंडियों को डाँकते-फाँकते नीम के पेड़ों के समूह के पास आ पहुँचे। पुजारी के यहाँ चाय तो तैयार थी पर प्रधान जी इतना शीघ्र चाय-पान के लिये तैयार न हुये। ऐसे तो मेरे मित्र चाय के निकट खिंचे चले जाते हैं पर इस समय की विरक्ति का भाव कुछ समझ में न आ सका। आगे बढ़े। भाई जिनदास की दुकान पर हाथ-पैर धोकर आश्वस्त हुआ। सिंहल के इस निवासी के मुँह पर उदासी के चिह्न मैंने आज तक न देखे। वह सदैव ही प्रसन्नमुख अभिवादन करता है—प्रतीत होता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारनाथ के वातावरण में व्याप्त प्रेम तथा मैत्री-भावना की प्रतिमूर्ति है वह।

तथागत के सामने प्रणाम् कर दिन भर की थकान, मलीनता उनके करुणा-स्रोत में बह गई। हृदय प्रफुल्लित हो उठा—मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सोचा, संभवतः ऐसा ही आनन्द प्रत्येक को प्राप्त होता होगा यहाँ आकर। भगवान् के चरण-स्पर्श की संजीवनी-लहर शरीर में व्याप्त हो गई। शरीर-मन-हृदय में एक प्रकार के हल्केपन का आभास हुआ।

(शेष अगले अंक में)

कौशाम्बी का इतिहास तथा पुरातत्त्व देन

श्री सतीशचन्द्र काला एम० ए०, क्यूरेटर म्युनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग

वत्स देश की राजधानी, कौशाम्बी के ध्वस्त अवशेष प्रयाग से ४० मील पूर्व यमुना के तट पर स्थित हैं। विभिन्न युगों में इस समृद्धशाली नगरी के करवट बदलने की विचित्र कहानियाँ निस्तेज होकर आज भी यत्र-तत्र साहित्य तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में बिखरी पड़ी हैं। कौशाम्बी के संज्ञाहीन भग्नावशेष आज उस शारीरिक कंकाल की भाँति पड़े हैं, जिनमें न तो रक्त है न प्राण, किन्तु जिससे यह अच्छी तरह अनुमान लग सकता है कि अमुक व्यक्ति का आकार कैसा रहा होगा। धूल में समाधिस्थ इस विशाल नगरी की प्रगाढ़ निद्रा को आज दिन हलों की टंकारें ही विचलित करती हैं। इन क्रूर झकझोरों से जमी मिट्टी, ईंटें तथा तत्कालीन समाज द्वारा व्यवहृत वस्तुएँ प्रायः ऊपर आ जाती हैं। इस सामग्री से हमें कौशाम्बी की संस्कृति का बहुत कुछ ज्ञान हो गया है।

इस नगर की कब स्थापना हुई और किस वंश ने इसकी सर्वप्रथम नींव डाली, ये प्रश्न विवादग्रस्त हैं। कौशाम्बी का उल्लेख गोपथ और शतपथ ब्राह्मणों तथा रामायण एवं महाभारत में भी मिलता है। परम्पराओं के आधार पर कहा जाता है कि जब एक भयंकर बाढ़ से हस्तिनापुर बह गया तो विचक्षु ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी घोषित किया। कौशाम्बी एक दृढ़ केन्द्रीय स्थान पर स्थित थी। उत्तर तथा दक्षिण को मिलानेवाला मार्ग इसी नगर से होकर जाता था। विदिसा, साकेत तथा श्रावस्ती को जानेवाले लोग भी इस नगर से होकर ही जाते थे।

ईसा से छठीं सदी पूर्व कौशाम्बी भारत की छः प्रमुख नगरियों में से एक थी। जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में विश्राम कर रहे थे, तो कौशाम्बी के तीन ख्यातनामा सेठ घोषित, पावारिक और कुकुट भगवान् के पास पहुँचे और उन्हें कौशाम्बी आने का निमन्त्रण दिया। तथागत ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और कौशाम्बी पधारे जहाँ पर कि इन सेठों ने उनके निवास के लिए अलग-अलग नामों के विहार तथा मठ स्थापित किये। कहते हैं कि बुद्ध भगवान् का तीन बार इस नगर में पदार्पण हुआ था। यहाँ से प्रसारित कौशाम्ब्य सूत्र बड़े महत्व का समझा जाता है। ई० पू० छठीं सदी में कौशाम्बी का अधिपति उदयन नामक नरेश था। परंपराओं में उदयन के चार उत्तराधिकारियों के नाम मिलते हैं। क्षेमक के बाद संभवतः वत्स राज्य मगध के साम्राज्य में सम्मिलित कर दिया गया। इसके पश्चात् वत्स देश की कहानी टूट जाती है। अशोक के काल में यह प्रदेश एक महामात्य के अधीन रक्खा गया। उसने यहाँ दो विशाल स्तम्भ भी स्थापित किये, जिनमें से एक मुगल काल या उससे कुछ पहिले प्रयाग लाया गया। शुंगवंशीय राजाओं का आधिपत्य भी इस प्रदेश में रहा। गत पिछले १० वर्षों में सिक्कों में अनेक ऐसे नाम मिले जिनके अंत में "मित्र" शब्द का प्रयोग हुआ है। इन नवीन राजाओं में यवघोष का नाम पहिले आता है। इसका काल अनुमानतः ई० पू० १५० है। ७५ ई० के लगभग वत्स देश कुषाणों के अधीन आया। तत्पश्चात् १५५ ई० के लगभग मघ नामक एक अन्य वंश कुषाण सम्राटों के विरोध में खड़ा हुआ। इन्होंने कुषाणों को परास्त किया और वत्स राज्य के अधिपति बने। अब तक ९ नौ मघ राजाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम प्रकाश में आए हैं। कालांतर में कौशाम्बी गुप्त, वाकाटक आदि वंशों के अधीन आई। ईसा की पाँचवीं सदी में चीनी यात्री फाहियान कौशाम्बी आया। किन्तु उस समय इस नगर की महत्ता ढल चुकी थी। दो सौ वर्ष बाद दूसरा चीनी यात्री हुयेनसांग यहाँ आया। उस समय तो कौशाम्बी नगरी अंतिम साँस ले रही थी। मुगल काल में इस नगर का महत्व नहीं के बराबर था।

कौशाम्बी जैन तथा बौद्ध धर्म का पुण्य क्षेत्र रहा है। इस नगर में जैनधर्म के छठे तीर्थङ्कर पद्मप्रभु महास्वामी ने जन्म लिया था। बुद्ध भगवान के आगमन के पश्चात् कौशाम्बी का महत्व बहुत बढ़ा। उनके अनेक शिष्य यहाँ के मठ तथा विहारों में रहे। कहते हैं कि इस नगर में एक बार बौद्ध मतावलम्बियों के बीच १८ दल उत्पन्न हो गए थे। इन दलों की फूट तथा संघर्ष से वास्तव में संघ को बड़ी हानि पहुँची थी। ब्राह्मण धर्म के उपासक भी यहाँ रहे क्योंकि कौशाम्बी में शिव, गणेश, लक्ष्मी आदि आदि देवी देवताओं की प्रचुर मात्रा में मूर्तियाँ मिली हैं।

कौशाम्बी के खंडहरों से बहुत पुरातत्व सामग्री प्राप्त हुई है। भारत के अन्य किसी प्राचीन स्थान से इतनी अधिक मात्रा में तथा सौंदर्ययुक्त वस्तुएँ नहीं मिली हैं। इस नगर के खंडहर लगभग पाँच मील के दायरे में व्याप्त हैं और रक्षा के लिये यह एक विशाल चहारदीवारी से भी घिरा था। पुरातत्व के दृष्टिकोण से कौशाम्बी में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु एक पाषाण का स्तंभ है, जिसे कि अशोक द्वारा स्थापित कहा जाता है। इस स्तंभ पर इस बौद्ध-सम्राट द्वारा प्रचारित कोई आदेश अंकित नहीं है। इसी नगर में अशोक का अवश्य एक दूसरा स्तंभ भी था, जिसमें उसने कौशाम्बी के महामात्यों को आदेश दिया कि जो भिक्षु बौद्ध संघ में फूट डालने की चेष्टा करे उसका संघ से बहिष्कार किया जाय। यह स्तंभ कौशाम्बी से उठाकर प्रयाग में अकबर के किले के अन्दर स्थापित कर दिया गया था। कौशाम्बी से मुलायम पत्थर में बनी छोटे आकार की अनेक दर्शनीय वस्तुएँ मिली हैं। इन्हें मौर्यकाल की बनी कहा जाता है। इनमें गोल छल्ले का वह खंडित भाग, जिसके अन्दर एक नग्नदेवी का चित्रण है, उल्लेखनीय है।

कौशाम्बी के सिक्कों में भी बड़ी विविधता है। कार्षयाण (पंच-मार्कड) से मुगल काल तक के सिक्के यहाँ से प्राप्त हुए हैं। इनमें अंकित चित्रों तथा चिन्हों का अध्ययन एक रुचिकर विषय है।

मूर्तियों के क्षेत्र में कौशाम्बी की कुछ अनुपम देने हैं। शुंग कालीन लघु वेदिकाओं के स्तंभ, जिन पर प्रायः स्त्री पुरुष खड़े अंकित हैं, कौशाम्बी से मिले हैं। एक खंडित द्वार के ऊपर की शिला पर लक्ष्मी चतुर्दिशाओं के पशुओं के साथ चित्रित है।

कौशाम्बी से सबसे महत्वपूर्ण मूर्ति जो अब तक मिली हैं, वह सिक्री के लाल चित्तीदार पत्थर में बनी बोधिसत्व की है। मूर्ति का सिर दुर्भाग्यवश टूटकर खो गया है। इसकी पीठिका पर एक लेख अंकित है जिससे ज्ञात होता है कि मूर्ति को, बुद्धिमित्रा नामक भिक्षुणी ने, कनिष्क राज्यकाल के द्वितीय वर्ष में कौशाम्बी में स्थापित किया था। हाल ही में प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित खुदाइयों में प्राप्त पीठिका के एक लेख से ज्ञात होता है कि उसका दान त्रिपिटक में पटु भिक्षुणी बुद्धिमित्रा ने किया था। इन खुदाइयों में गुप्तकालीन कई विलक्षण मूर्तियों के सिर भी प्राप्त हुए हैं।

मिट्टी, धातु, हाथी दाँत, हड्डी आदि पदार्थों में बनी अनेक मुद्राएं कौशाम्बी के खंडहरों से प्रयाग म्युनिसिपल संग्रहालय के लिए ली गई हैं। कुछ दिन पूर्व प्राप्त कनिष्क तथा घोषिताराम विहार की मुद्राएं विशेष उल्लेखनीय हैं। १९ ई० पू० में घोषिताराम विहार का एक लेख भी कौशाम्बी की खुदाइयों में निकला। इस लेख से, इस बात की पुष्टि हो गई है कि घोषिताराम विहार नगर से बाहर दक्षिण दिशा में स्थित था। भगवान् बुद्ध कुछ समय के लिये इस भव्य विहार में टिके थे। कालांतर में उनके प्रिय शिष्य आनंद, महामोग्गलान, सारिपुत्र तथा पिंडोल भारद्वाज भी घोषिताराम विहार में ठहरे।

कौशाम्बी से प्राप्त मनको (विड्स) की सुन्दरता देखते ही बनती है। इनके विषद आकार, रंगों द्वारा मनोहारी चित्रण, तथा विविध पदार्थों तथा रूपों में काटे जाने के ढंग, केवल उच्चकोटि के कलाकार ही कर सकते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खंडहरों से थोड़ी ही दूर पर घमोसा की गुफा है जिसके द्वार पर लिखा है कि घमोसा कौशाम्बी नगर से बाहर बसा था।

निःसन्देह कौशाम्बी के खंडहर अपने वक्ष में अतुलनीय पुरातत्व सामग्री छिपाए बैठे हैं।

इच्छा का त्याग और शान्ति

प्रो० लालजीराम शुक्ल

मनुष्य का जीवन इच्छामय है। जैसे ही एक इच्छा तृप्त होती है झट दूसरी आ खड़ी होती है। मनुष्य का व्यक्तित्व ही इच्छाओं का समुच्चय है। इच्छा के तृप्त होने से मनुष्य को आनन्द होता है। उसके तृप्त न होने से दुःख होता है। जब तक मन में एक इच्छा की दशा रहती है तब तक मन खींचाव की अवस्था में रहता है जब इच्छा का अन्त होता है तब मन के खींचाव की अवस्था का भी अन्त होता है। मन के खींचाव की अवस्था को चिन्ता कहा जाता है जिस मनुष्य की इच्छाएँ जितनी प्रबल होती हैं उसकी चिन्ताएँ भी उतनी ही प्रबल होती हैं। जब मनुष्य चिन्ता की अवस्था में रहता है तब तक यह न तो किसी काम को भली प्रकार से कर सकता है और न भले-बुरे का ही निर्णय कर सकता है। कभी-कभी चिन्ता से परेशान होकर मनुष्य अपने जीवन में ही निराश हो जाता है।

इस प्रकार इच्छा की उपस्थिति मनुष्य को सुखी न बनाकर दुःखी ही बनाती है। इच्छा अपने आप में कमी की अनुभूति कराती है। जब तक मनुष्य कमी की अनुभूति करते रहता है वह सुखी नहीं रहता। कमी की पूर्ति का सामान्य उपाय इच्छा की पूर्त्ति करना है। परन्तु उस प्रकार सभी इच्छाओं का नाश नहीं होता। एक इच्छा के जाते ही दूसरी इच्छा तुरन्त आ जाती है। जब किसी प्रबल इच्छा की तृप्ति में एकाएक रुकावट हो जाती है तो मनुष्य के मन का साम्य बिगड़ जाता है। अतृप्त इच्छा मनुष्य के आन्तरिक मन में चली जाती है। वह एक ओर हमारी चेतना से अदृश्य हो जाती है। परन्तु दूसरी ओर वह मनुष्य के सामान्य व्यक्तित्व से अलग होकर उसके प्रतिकूल षड्यन्त्र करने लगती है। इस प्रकार दबी हुई इच्छा शारीरिक और मानसिक रोगों का कारण बन जाती है।

मानसिक शान्ति का उत्तम उपाय इच्छा की पूर्त्ति करना नहीं वरन् इच्छा का त्याग करना है। सदा काम करते रहना परन्तु किसी प्रकार की इच्छा दृढ़ होने न देना मानसिक पूर्णता को दर्शाता है। काम करने से मनुष्य अपने मन को काबू में लाता है। इससे उसमें रचनात्मक आनन्द की वृद्धि होती है। उसकी कार्य-क्षमता बढ़ती है। इसके प्रतिकूल इच्छाओं के बढ़ने से मनुष्य में आत्म-नियन्त्रण की कमी हो जाती है। उसे अपने बल में सन्देह होने लगता है और उसकी योग्यता का ह्रास होता है। जिस मनुष्य की इच्छायें जितनी कम हैं उसका मन उतना ही प्रसन्न रहता है।

इच्छा का त्याग एकाएक नहीं होता। इच्छा के त्याग के लिए भगवान् बुद्ध ने अपना अष्टांगिक मार्ग दिखलाया है। जैसे-जैसे मनुष्य में ज्ञान की वृद्धि होती है वैसे-वैसे उसकी इच्छा भी कम होती जाती है। और वे व्यक्तिगत स्वार्थ से सीमित न रहकर व्यापक स्वार्थ से सम्बन्ध रखने लगती हैं। इस प्रकार मनुष्य की इच्छाओं में धीरे-धीरे विकास होता है। इच्छा का एकाएक त्याग होना सम्भव नहीं, परन्तु निम्नकोटि की इच्छा के स्थान पर उच्चकोटि की इच्छा को दृढ़ किया जा सकता है। भगवान् बुद्ध ने इच्छा के त्याग के लिये मध्यम मार्ग का अनुसरण करने का उपदेश दिया है। जो व्यक्ति इच्छा के त्याग में उतावलापन करते हैं उनकी इच्छाओं का निराकरण न होकर उनका दमन ही होता है। इच्छा का दमन मानसिक रोगों की उत्पत्ति करता है। इससे मनुष्य का व्यक्तित्व एकांगी बन जाता है। वह अनेक प्रकार के झंझटों में पड़ जाता है।

इच्छा के त्याग के लिए बाहरी वातावरण से लड़ना आवश्यक नहीं है। इच्छा का त्याग वाहन पदार्थों के प्रति आसक्ति के त्याग से होता है। जो पदार्थ जैसा है वह वैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रहे, परन्तु हमारा उसके प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है। प्रति दिन के अभ्यास से इस प्रकार का दृष्टिकोण बदल जाता है। साधारणतः हम रूपवान व्यक्ति से, स्त्री-पुरुष से और पुरुष-स्त्री से आकर्षित होते हैं; पर बार-बार रूप के दोषों पर विचार करने से रूप का आकर्षण नष्ट हो जाता है। इस प्रकार स्वाभाविक आकर्षण के स्थान पर विकर्षण की मनोवृत्ति उत्पन्न की जा सकती है।

मनुष्य की पूर्णता इच्छा की तृप्ति में नहीं है, इच्छा के त्याग में। जिस मनुष्य को किसी प्रकार की चाह है वह गरीब ही है। जब हम किसी इच्छा का भाव लेकर दूसरे व्यक्ति के पास जाते हैं तो हमारा तिरस्कार होता है। जब हम अपनी किसी प्रकार की चाह के बिना उसके पास जाते हैं तो हमारा सम्मान होता है। बिना माँगे कुछ भी मिलना भला है माँगकर अमृत भी मिल जाना बुरा है। ज्यों ही मनुष्य किसी व्यक्ति से कुछ माँगता है वह नीचे गिर जाता है। लेने वाले का हाथ नीचा तथा देने वाले का हाथ ऊपर रहता है। इच्छा का त्याग माँगने की आवश्यकता को मिटा देता है। यदि हम सम्मान के भूखे नहीं हैं और फिर हमें सम्मान नहीं मिलता, तो हमें मानसिक क्लेश नहीं होता। सम्मान के भूखे रहने पर सम्मान न मिलने पर मन में दुःख होता है। इसी प्रकार सभी प्रकार की संसार की वस्तुओं की बात है।

इच्छाओं की कमी होने से संसार का दुर्लभ पदार्थ भी हमें सरलता से ही मिल जाता है। इच्छाओं की प्रबलता होने पर साधारण पदार्थ भी दुर्लभ हो जाता है। जिस मनुष्य की इच्छायें जितनी कम हैं उसकी मानसिक शक्ति उतनी प्रबल होती है। अधिक मानसिक शक्ति रहने से कोई भी संकल्प सरलता से ही सफल हो जाता है। मानसिक शक्ति के अभाव में साधारण सा संकल्प अनेक प्रकार की चिन्ताओं का कारण बन जाता है। इच्छाओं का बाहुल्य नकारात्मक विचारों और संशयों को जन्म देता है। जैसे-जैसे इच्छाओं की कमी होती है, नकारात्मक विचार, संशय और चिंताओं की कमी हो जाती है।

इच्छाओं के अभाव में सभी परिस्थितियाँ भलाई ही भलाई देती है। इच्छाओं की उपस्थितिमें कुछ परिस्थितियाँ भली और कुछ बुरी दिखाई देती हैं। फिर जो परिस्थितियाँ एक बार भली दिखाई देती हैं वे दूसरी बार बुरी दिखाई देती हैं। इस तरह सभी समय मनुष्य का मन डाँवाडोल की अवस्था में रहता है।

जिस मनुष्य की इच्छायें प्रबल हैं वह अन्य लोगों में अनेक प्रकार की कलुषित भावनाओं की उपस्थिति की कल्पना करता है। वास्तव में इस प्रकार की कल्पना में अपनी ही कलुषित भावनाओं का आरोपण होता है। मनुष्य जैसा अपने आन्तरिक मन में रहता है वह बाह्य जगत को उसी के अनुरूप पा लेता है। भले मनुष्य में भी वह भलाई को न देखकर बुराई ही देखता है फिर उसमें बुराई भी स्वतः से उत्पन्न हो जाती है। हमारे प्रबल विचार न केवल हमारी क्रियाओं पर असर डालते हैं वरन दूसरे लोगों के विचारों एवं क्रियाओं पर भी प्रभाव डालते हैं। इस तरह हमारी आन्तरिक भावनाओं के अनुसार हमारा बाह्य जगत निर्मित हो जाता है। इच्छाओं की कमी न केवल हमारे जीवन को सुन्दर बनाती है वरन दूसरे लोगों के जीवन को भी सुन्दर बनाती है।

झोंपड़ी का भी त्याग

देवता—क्या आपको कोई झोंपड़ी नहीं ?
क्या आपको कोई घोंसला नहीं ?
क्या आपको कोई बाल-बच्चे नहीं ?
क्या बन्धन से छूटे हुए हैं ?

बुद्ध—नहीं, मुझे कोई झोंपड़ी नहीं,
नहीं, मुझे कोई घोंसला नहीं,
नहीं, मुझे कोई बाल-बच्चे नहीं,
हाँ, मैं बन्धन से छूटा हुआ हूँ।

देवता—आपकी झोंपड़ी मैं किसे कहता हूँ ?
आपका घोंसला मैं किसे कहता हूँ ?
आपके बाल-बच्चे मैं किसे कहता हूँ ?
आपका बन्धन मैं किसे कहता हूँ ?

बुद्ध—माता को मानकर तुम झोंपड़ी कहते हो,
स्त्री को मानकर तुम घोंसला कहते हो,
पुत्रों को मानकर तुम बाल-बच्चे कहते हो,
तृष्णा को मानकर तुम बन्धन कहते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये प्रकाशन

भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया—लेखक—भरत-सिंह उपाध्याय, एम० ए०। प्रकाशक—सरल साहित्य प्रकाशन, बड़ौत, मेरठ। पृष्ठ संख्या ६९, मूल्य १)

भारत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों का पुराना सांस्कृतिक सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध ऐसा है जो भारत के पराधीन होने पर भी अटूट-सा बना रहा। यद्यपि भारतवासी उस सम्बन्ध से अपरिचित से रहे, किन्तु दक्षिण-पूर्व एशियावासी सदा ही श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक भारत के साथ सम्बद्ध रहने का प्रयत्न करते रहे तथा इसे 'अपना' समझते रहे। दक्षिण-पूर्व एशिया में लंका, बर्मा, स्याम, हिन्द-चीन, मलाया और इन्डोनेशिया सम्मिलित हैं। भारत एवं इन देशों का प्राचीन सम्बन्ध जिस प्रकार दृढ़ था, आज उससे भी अधिक दृढ़ होने की आवश्यकता है, क्योंकि उक्त सभी देश स्वतंत्र हैं। अब स्वतंत्रता के वातावरण में सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि प्रायः सभी सम्बन्धों में निखरापन आने लगा है। ऐसे समय में ऐसे साहित्य की बड़ी आवश्यकता है, जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्टतः ज्ञात हो सकें।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री उपाध्याय जी ने अलग-अलग सुन्दर प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ के लिखने में उन्होंने काफी परिश्रम किया तथा सामग्री जुटायी है। कोई भी ऐसी बात नहीं है जो प्रामाणिक नहीं है। ऐसे उपयोगी ग्रन्थ-रचना के लिए श्री उपाध्याय जी धन्यवाद के पात्र हैं। हम इस ग्रन्थ का हृदय से प्रचार एवं प्रसार चाहते हैं। विद्यार्थियों के लिए भी यह ग्रन्थ परमोपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी आशा है।

—श्री अनन्त

महाकारुणिक तथागत—लेखक—बेदराज प्रसाद। प्रकाशक—मंत्री, कुशीनगर प्रकाशन, बौद्ध विहार, कुशीनगर, देवरिया। मूल्य ॥)

यह ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है। १—जीवन के छाया-चित्र २—गुणों की झाँकी ३—सन्देश। पहले भाग में तथागत की जीवन सम्बन्धी एक हल्की और धुँधली किन्तु, प्रामाणिक रेखा खींची गयी है। दूसरे भाग में उनके कतिपय गुणों की ओर ही दृष्टि डाली गयी है और तीसरे भाग में उनके केवल उन सन्देशों का संकलन किया गया है, जिनसे आज का वैज्ञानिक मानव अत्यधिक प्रभावित है।

यह ग्रन्थ लेखक की पहली रचना है। उसका प्रयास स्तुत्य है। विषय का चयन, भाषा की सजीवता एवं श्रद्धा के पुट विशेष उल्लेखनीय हैं। आशा है लेखक का उत्साह बना रहेगा और वह तथागत के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने में कभी पीछे नहीं हटेगा।

ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है। मुद्रण सम्बन्धी व्यय को देखते हुए मूल्य अधिक नहीं है।

—श्री अनन्त

जैन जागरण के अग्रदूत—सम्पादक—अयोध्या प्रसाद गोयलीय। प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस। पृष्ठ संख्या ६१९, मूल्य ५)

इस ग्रन्थ में ३७ जैनधर्मावलम्बी दिवंगत, वयोवृद्ध, जनसेवी एवं धार्मिक व्यक्तियों के जीवन चरित्र दिये गए हैं। ग्रन्थ चार भागों में विभक्त है। जीवन-चरितों के लेखक विभिन्न हैं। इन सभी जीवन-चरितों को लिखाना, संकलन करना एवं उन्हें शृंखलाबद्ध कर प्रकाश में लाना एक महान कार्य है, जिसका सम्पादन श्री गोयलीय जी ने किया है। आजकल ऐसे जीवन-चरितों की बड़ी ही आवश्यकता है, जिनसे हम ज्योति प्राप्त कर अपने अन्दर स्फूर्ति उत्पन्न कर सकें। यह ग्रन्थ क्या है? इस सदी के जैन-जगत् का जीता-जागता इतिहास है। जैनधर्म के प्रेमी सभी सज्जनों को इसे अपने पास रखना चाहिए। अन्य धर्मावलम्बियों को भी इस ग्रन्थ से एक नई दिशा का बोध होगा। सम्पादक की सफलता के लिए बधाई। छपाई, सफाई, गेट्-अप् आदि सब सुन्दर हैं।

—भिक्षु धर्मरक्षित

मिलिन्द प्रश्न—अनुवादक—भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए०,। प्रकाशक—भिक्षु महानाम, प्रधानमंत्री, धर्मोदय सभा, ४, रामजी दास जेटिया लेन, कलकत्ता—७। पृष्ठ संख्या ५१४ + ६१ = ५७५। सजिल्द मूल्य ६॥)।

बौद्धधर्म का अध्ययन करने वालों के मन में जिस प्रकार की शंकायें उठती हैं, कुछ वैसी ही शंकायें आज से कोई ढेढ़ हजार वर्ष पहले ग्रीस (यवन) देश के एक राजा मिलिन्द के मन में उठी थीं। राजा को अपनी बुद्धि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा अभिमान था वह अपने समय के विद्वानों से बहुत चकरा देने वाले प्रश्नोत्तर किया करता था। इस ग्रन्थ में महास्थविर नागसेन ने उस राजा के प्रश्नों के मुँहतोड़ उत्तर दिये हैं। सिंहल, बर्मा, स्याम आदि देशों में यह ग्रन्थ भगवान् बुद्धके अपने उपदेशों की तरह मान्य है।

पूज्य काश्यपजीने पालि भाषा के ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व किया था, जिसे भिक्षु कित्तिमा जी ने प्रकाशित किया था। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी का द्वितीय संस्करण है। प्रकाशक ने बहुत कुछ प्रयत्न किया है कि पहले संस्करण जैसी सुन्दर छपाई हो, किन्तु वांच्छित सफलता नहीं मिली है। प्रकाशक को उचित था कि वह इस संस्करण में अनुवादक से समुचित संशोधन करा लेता। इस दिशा में भी उपेक्षा की गई है, फलतः छोटे-मोटे ऐसे कई दोष रह गए हैं। प्रूफ-संशोधन सम्बन्धी भी कुछ त्रुटियाँ हो गई हैं। ऐसा मूल्यवान ग्रन्थ न्यूजप्रिंट पर छापा गया है।

ग्रन्थ के महत्व के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना नहीं है। यह तो जैसा ऊपर लिखा गया है 'बुद्धवाणी' सदृश ही माना जाता है। इसे प्रत्येक पुस्तकालय, विद्या-संस्था तथा विद्याप्रेमी के पास रहना चाहिए।

—भिक्षु धर्मरक्षित

अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सांस्कृतिक सम्मेलन

भारतीय महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती तथा साँची विहार का उद्घाटन

यह घोषणा करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है कि भारतीय महाबोधि सभा की जो हीरक जयन्ती गत वर्ष स्थगित हो गई थी, वह २९ और ३० नवम्बर को मनायी जायगी। जयन्ती के लिए साँची का स्थान चुना गया है जहाँ कि सारिपुत्र और मौद्गल्यायन अर्हन्तों की अस्थियों के स्थापनार्थ मन्दिर बनकर तैयार हुआ है। भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने विहार का उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया है। भारत के उपराष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् सांस्कृतिक सम्मेलन की अध्यक्षता करेंगे। सभा की प्रबन्धकारिणी समिति ने निश्चय किया है कि हीरक जयन्ती भी इसी ऐतिहासिक स्थान पर मनाई जाय।

प्रतिनिधियों एवं दर्शकों से प्रार्थना है कि वे समय से पूर्व महाबोधि सभा के प्रधान मन्त्री को सूचित कर दें, ताकि उनके रहने की व्यवस्था की जा सके, क्योंकि साँची में धर्मशाला या होटल नहीं हैं। टेण्ट और झोपड़ियाँ रहेंगी, जहाँ दर्शक रह सकेंगे और भोजन प्राप्त कर सकेंगे। भोपाल-सरकार यथासम्भव उत्सव को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील है। सांस्कृतिक सम्मेलन में सम्मिलित होनेवाले व्यक्तियों को रेलवे-विभाग कन्सेशन टिकट देगा।

पवित्र अस्थियाँ ट्रेन द्वारा कलकत्ता से साँची ले जाई जायेंगी, जो लोग अस्थियों के साथ साँची जाना चाहें, वे प्रधान मन्त्री से पत्र-व्यवहार करें।

कार्यक्रम इस प्रकार निश्चित हुआ है :—

२७ नवम्बर ८-४५ बजे प्रातः—पवित्र अस्थियों का कलकत्ता से साँची के लिए प्रस्थान।

२९ नवम्बर ७-५० बजे प्रातः—पवित्र अस्थियों की साँची में पहुँच।

,, ,, २ से ५ बजे तक सन्ध्या—भारत के उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् के सभापतित्व में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सांस्कृतिक सम्मेलन।

३० नवम्बर १० बजे प्रातः—श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा साँची विहार का उद्घाटन और अस्थियों की स्थापना।

,, ,, ३ बजे सन्ध्या—डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अध्यक्षता में भारतीय महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती महोत्सव।

पत्र-व्यवहार करने का पता :—

देवप्रिय वलिसिंह, प्रधानमन्त्री, महाबोधि सभा, ४ ए, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-जगत्

अग्रश्रावकों की अस्थियों के लिए कम्बोडिया से निमंत्रण

कम्बोडिया देशवासी बौद्धों तथा वहाँ के संघनायक ने भारतीय महाबोधि सभा से प्रार्थना की है कि भगवान् बुद्ध के प्रधान-शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ वहाँ ले जाई जाँय। संघनायक ने अपने पत्र में लिखा है कि हम बौद्धधर्मावलम्बी उस दिन की प्रतीक्षा उत्सुकता पूर्वक कर रहे हैं जब कि अग्रश्रावकों की पवित्र आस्थियों का दर्शन कर हम अपने जीवन को धन्य समझेंगे।

महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती—पहले के अंकों में कहा जा चुका है कि साँची विहार का उद्घाटन आगामी ३० नवम्बर को पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा होगा। निश्चय हुआ है कि उसी अवसर पर महाबोधि सभा की हीरक-जयन्ती भी मनाई जायगी। एक सुन्दर सांस्कृतिक सम्मेलन का आयोजन किया जायगा, जिसमें संसार के विभिन्न देशों के बौद्ध विद्वान् सम्मिलित होंगे। आशा की जाती है कि यह उत्सव अपने ढंग का निराला होगा और इसमें काफी संख्या में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध भाग लेंगे। जो लोग इस उत्सव में हाथ बँटाना चाहते हों, कृपया वे सभा के प्रधान मंत्री से पत्र-व्यवहार करें।

बुद्धगया-मन्दिर समिति की बैठक—बुद्धगया मन्दिर-समिति की पहली बैठक गत २१ जुलाई को पटना में हुई थी, जिसमें सभा के प्रधान मंत्री श्री देवप्रियवलि सिंह भी सम्मिलित हुए थे, जो उक्त समिति के सदस्य हैं।

कुशीनगर का विकास—भगवान् बुद्ध की परिनिर्वाण भूमि कुशीनगर के विकास के लिए आजकल अनेक कार्य हो रहे हैं। कुशीनगर के परिनिर्वाण मन्दिर से मुकुट-बन्धन चैत्य (= आदाहन चैत्य) तक जाने के लिए कोई मार्ग न था, किन्तु भिक्षु धर्मरक्षित के पाँच वर्षों के लगातार प्रयत्न से उत्तर प्रदेशीय राज्य सरकार ने कुशीनगर से मुकुट-बन्धन चैत्य तक एक पक्की सड़क बनाने के लिए ५५०००) स्वीकृत किया है। सड़क का कार्य प्रारम्भ हो गया है। आशा है अगले दो महीनोंके भीतर ही सड़क बन कर तैयार हो जायगी।

इसके साथ ही कुशीनगर-खंडहर के चारों ओर तार का घेरा लगने जा रहा है। उस प्रदेश में विकास-योजना के अन्तर्गत कुशीनगर को ही केन्द्र बनाया गया है। शीघ्र ही कुशीनगर में बिजली, डाक बँगला, और नलकूपों की व्यवस्था भी होगी।

जयन्ती स्मारक ग्रन्थ—यह निश्चय हुआ है कि महाबोधि सभा हीरक जयन्ती के अवसर पर एक स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित करेगी, जिसमें सभा के संस्थापक स्वर्गीय अनागारिक धर्मपाल का जीवन-चरित तथा अन्य प्रमुख बातों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जायगा। सम्पादक मण्डल में हैं—डा० सुनीति कुमार चटर्जी, डा० एन० दत्त, डा० ऊ० एन० घोषाल, श्री के० सी० गुप्त, डा० स्नेहमोय दत्त, भिक्षु ऊ धर्मरत्न और श्री डी० वलिसिंह।

ऋषिकेश में भूमि प्राप्त—अमेरिका के प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् डा० डब्ल्यू, वाई० एवेन्स वेन्टज ने ऋषिकेश की अपनी भूमि को वसीयतनामा द्वारा कुछ वर्ष पूर्व महाबोधि-सभा को प्रदान किया था। वह अब सभा को प्राप्त हो गई है। उक्त भूमि में एक सांस्कृतिक केन्द्र तथा अनुसन्धान विद्यालय स्थापित करने की योजना है। इस भूमि-दान के लिए सभा श्री एवेन्स वेन्टज को हार्दिक धन्यवाद देती है।

सारनाथ में धर्म-क्लास—सारनाथ में आज कल धर्म-क्लास का कार्य विधिवत् चल रहा है। धर्म-क्लास में इस समय दो तिब्बती लामा, एक अमेरिकी, एक मद्रासी, एक सिंहली तथा बहुत से भारतीय जिज्ञासु सम्मिलित होते हैं।

उत्तर प्रदेश में पालि-अध्यापन—सारनाथ के महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल में ९ वें क्लास से १२ वें क्लास तक पालि की शिक्षा दी जाती है। काफी छात्र पालि पढ़ते हैं। भिक्षु धर्मरक्षित पालि का अध्यापन-कार्य सम्हाले हुए हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पालि का अध्यापन कई वर्षों से रुका हुआ था, किन्तु वहाँ भी इस वर्ष आचार्य नरेन्द्रदेव जी के प्रयत्न से पालि-अध्यापन का पुनः प्रबन्ध हो गया है। श्री पद्मनाभ जैन अध्यापन-कार्य करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रपाल हायर सेकण्डरी स्कूल कानपुर में भी आचार्य ईश्वरदत्त मेद्यार्थी ने पालि-अध्यापन का प्रबन्ध किया है। इस समय वहाँ लगभग २० छात्र पालि पढ़ रहे हैं।

श्री बुद्ध इण्टर कालेज, कुशीनगर में पालि-अध्यापन की स्वीकृति विगत तीन वर्षों से ली जा चुकी है, किन्तु अध्यापक के अभाव में अभी तक अध्यापन कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ।

दो अँगरेज भिक्षु होंगे—यूरोप में प्रथम बौद्धधर्म का सांघिक कर्म आगामी २० अक्तूबर को लन्दन के यूस्टन रोड स्थित 'फ्रेन्डस् हाउस' में होगा, जब कि श्री जैक औस्टिन और श्री रिचार्ड रोबिनसन् भिक्षु होकर संघ में प्रवेश करेंगे।

प्रव्रज्या संस्कार न्यूयार्क के सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् भदन्त रोबर्ट क्लिफटन् द्वारा सम्पन्न होगा।

विश्वविद्यालय में बौद्धधर्म का अध्यापन—लंका विश्वविद्यालय में अन्य विषयों के साथ बी० ए० में बौद्ध-संस्कृति को भी स्थान दिया गया है। जो छात्र बौद्ध संस्कृति को लेकर बी० ए० परीक्षा देंगे, उन्हें एशिया भर के स्थविरवादी तथा महायानी सभी बौद्ध देशों का इतिहास, बौद्धकला, सभ्यता और गृह-निर्माण शिल्प का अध्ययन करना होगा। सिविल सर्विस परीक्षा में बौद्ध सभ्यता का अध्ययन करना पहले से ही अनिवार्य रहा है। विश्वविद्यालय में बौद्ध-संस्कृति के अध्यापन का नया क्रम प्रचलित हुआ है, इसमें हरेक देश के लोग सम्मिलित हो सकते हैं, किन्तु उन्हें पालि भाषा का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

लखनऊ में बौद्ध सत्संग—लखनऊ के रिसालदार पार्क स्थित बौद्ध विहार में श्री जी० सी० लाल, डी० टी० ओ० तथा भिक्षु प्रज्ञानन्द के प्रयत्न एवं लगन से प्रति रविवार को सायंकाल ७ बजे सत्संग हुआ करता है, जिसमें लखनऊ में रहने वाले सभी भारतीय बौद्ध, सिंहली छात्र एवं धर्म जिज्ञासु हिन्दू सम्मिलित होते हैं। यह सत्संग विगत दो मास से नियमतः होता आ रहा है। इससे लखनऊ के बौद्धों को बड़ा लाभ है।

धर्मदूत की सहायता—छिन्दवाड़ा के श्री डी० डी० बसन्त ने धर्मदूत के सहायतार्थ ५) भेजा है। हम इस दान का सहर्ष अनुमोदन करते हैं और आशा करते हैं कि अन्य लोग भी श्री बसन्त का अनुकरण करेंगे।

सारनाथ में विनोबा भावे—गत ९ सितम्बर को प्रातःकाल सवा छः बजे आचार्य विनोबा भावे दर्शनार्थ सारनाथ आये। भिक्षु संघरत्न ने चौखण्डी स्तूप के पास जाकर आपका स्वागत किया। सारनाथ के नष्टावशेषों को देखते हुए वे अपनी मण्डली के साथ मूलगन्ध कुटी विहार में पधारे। वहाँ महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल, महाबोधि जे० टी० सी० ट्रेनिंग कालेज तथा सचल शिक्षण दल के छात्राध्यापकों ने उनका स्वागत किया।

मूलगन्ध कुटी विहार के दर्शन के पश्चात् विनोबा जी ने उपस्थित लोगों के समक्ष प्रवचन किया। उन्होंने अपने प्रवचन में कहा—"हम लोग अपनी नित्य की पूजा में, विवाह-शादियों में, भगवान् बुद्ध का नाम लेते हैं, 'बुद्धावतारे' कह कर इस युग को बुद्ध-युग मानते हैं, किन्तु भगवान् बुद्ध को जानते तक नहीं। अब वह समय बीत गया। राम, कृष्ण के पश्चात् भगवान् बुद्ध ही ऐसे व्यक्ति हुए थे जिन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ को त्याग कर सदा ही जनसेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया। महात्मा गांधी भी उन्हीं के मार्ग पर चलने का प्रयत्न किये और मैं भी उन्हीं का एक तुच्छ सेवक हूँ। जिस काम को उन्होंने अपने दृढ़ कन्धों पर लिया था, उनका अनुगामी होने के नाते उसी काम को मैंने भी अपने इन कमजोर कन्धों पर लेने का संकल्प किया है, इसी से भारत का हित होगा। हाँ, उनके प्रव्रजित शिष्य कायाधारी होते हैं किन्तु मैं उनका अनुगामी होते हुए भी श्वेत-वस्त्र में हूँ, यदि अन्तर है तो इतना ही। बौद्ध धर्म भारतीय धर्मों में हीरा की भाँति जगमगाता रहा है, इसी से हमारी सभी समस्याओं का हल हो सकता है।"

प्रवचन के बाद महाबोधि सभा की ओर से आचार्य विनोबा भावे तथा उनकी मण्डली को—जिसमें लगभग २५ आदमी थे, जलपान कराया गया। विनोबा भावे जी ने स्थानीय संग्रहालय का निरीक्षण कर ८ बजे प्रातः काशी के लिए प्रस्थान कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धचर्य्या

भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों के सम्बन्ध में, भारतीय भाषाओं में जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें विशालता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'बुद्धचर्य्या' सभी से बढ़कर है। त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र सम्बन्धी जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, 'बुद्धचर्या' में उस सारी सामग्री का वैज्ञानिक संकलन कर, अविकल अनुवाद दिया गया है। 'बुद्धचर्या' को यदि समस्त सुत्तपिटक और विनयपिटक का सार कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

बीस वर्ष पहले उसका प्रथम संस्करण छपा था। बहुत दिनों से उसकी माँग रहने पर भी इस व्यय-साध्य ग्रन्थ का दूसरा संस्करण न हो सका। ग्रन्थ की विशालता और कागज आदि के दुर्लभ होने के साथ-साथ आज के प्रकाशक और पाठक की 'रुचि' भी इस विलम्ब के लिये उत्तरदायी है।

महाबोधि सभा ने ग्रन्थ के महात्म्य का ख्याल कर हिन्दी पाठकों की प्रामाणिक साहित्यप्रियता के रोसे ही इसके प्रकाशन का व्यय-भार वहन किया है।

किसी भी पुस्तकालय में और विशेषरूप से बौद्ध-साहित्य प्रेमी किसी भी भाई बहिन के पुस्तकालय में 'बुद्धचर्या' रहनी ही चाहिए।

बड़े आकार के छः सौ तीस पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८) है। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

मिलने का पता :—

१. महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, (बनारस)
२. महाबोधि पुस्तक भण्डार, ४ ए बङ्किम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२
३. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धविहार, रीडिंग रोड, नई दिल्ली
४. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धगया (बिहार)

पालि वाङ्मय का महान् ग्रन्थ

जातकट्ठकथा

पठमो भागो : मूल पालि

(सम्पादक— त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित)

बढ़िया कागज, मनमोहक छपाई, सजिल्द मूल्य—९)

जिस 'जातकट्ठकथा' के प्रकाशन की बहुत दिनों से प्रतीक्षा की जा रही थी, उसका प्रथम भाग नागराक्षरों में छपकर प्रकाशित हो गया। यह ग्रन्थ पालि वाङ्मय की एक अनुपम निधि है। कथा-साहित्य की दृष्टि से यह संसार का सर्वश्रेष्ठ एवं विशालतम ग्रन्थ है। यही नहीं, विश्व के कथा-साहित्य में यह प्राचीनतम संग्रह भी है। इसमें न केवल भारतीय ही, प्रत्युत एशियायी प्राचीन राजनीति, कला, दर्शन, इतिहास, धर्म, संस्कृति, व्यवसाय, भूगोल आदि सभी प्रकार की ज्ञान-परम्पराओं का समावेश है। इसे बिना पढ़े भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

इस ग्रन्थ की थोड़ी ही प्रतियाँ छपी हैं। पालि के प्रेमियों, विद्वानों, इतिहास के विद्यार्थियों, पुस्तकालयों एवं विद्या-संस्थाओं को इसे शीघ्र लेना चाहिए। ऐसे ग्रन्थ बार-बार नहीं छपते। शीघ्रता करें, अन्यथा पछताना पड़ेगा।

मिलने का पता :—

व्यवस्थापक, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)	भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्रसाद	–)
मज्झिम निकाय—,, ,,	८)	बुद्धदेव—शरत् कुमार राय	१।।।)
विनय पिटक— ,, ,,	८)	थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१।।)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२।।)	बुद्ध और बौद्ध साधक— ,,	१।।)
खुद्दकपाठ— ,,	।)	तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१।।)	कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२।।)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १,२ ७।।),	७।।)	पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
,, ,, (भाग ३)	१०)	जातिभेद और बुद्ध— ,, ,,	।।)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५।।)	ब्राह्मण धम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।–)	तेलकटाह गाथा— ,, ,,	।)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१।।)	बौद्ध शिशु बोध— ,, ,,	।)
बुद्ध और उनके अनुचर— ,,	१।।।)	सारनाथ दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
बौद्धचर्य्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१।।)	कुशीनगर-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
पञ्चशील और बुद्ध वन्दना— ,,	=)	लंका-यात्रा— ,, ,,	१।।)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१।।)	पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१।।)	बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	।।)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१।।)	बुद्ध शतकम्— ,, ,,	।)
बुद्धार्चन— ,, ,,	।)	महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)	बुद्ध-अर्चना (कविता) कुमारी विद्या	≡)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	।।)	निब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित	६)	चरियापिटक—डा० विमलाचरण लाहा	५)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	५।।)	सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२।।)
नवनीत टीका— ,, ,,	२।।)	खुद्दकपाठ— ,,	।)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,,	२।।)	धम्मसंगणी—श्री वापट	८)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)	अत्थसालिनी— ,,	८)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)	पातिमोक्ख— ,,	१)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,,	।)	सिङ्गाल सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	।।)
पालि-पाठ-माला— ,,	१)		

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

302
6
ह 2302

धर्मदूत

सारनाथ महाबोधिसभा का मासिक पत्र

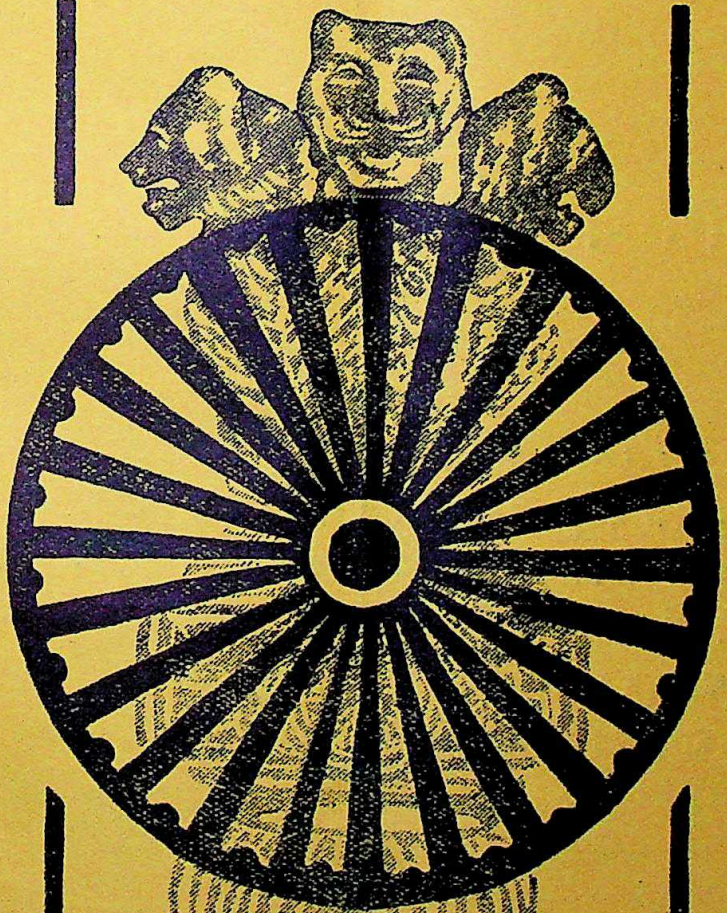

अक्टूबर

१९५२

वर्ष–१७ : अङ्क–६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वार्षिक–३) एक अङ्क

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठ
१.	बुद्ध-वचनामृत	१४१
२.	बुद्ध की शिक्षा : सार्वभौमिकता—आचार्य नरेन्द्रदेव, कुलपति, काशी हि० वि० विद्यालय	१४२
३.	भारत में बौद्ध ग्रन्थों का पर्येषण—प्रो० डा० पी० वी० वापट, एम० ए०, पी-एच० डी०	१४५
४.	प्रणय-गीत (कविता)—श्री रामन्द्रलाल	१४६
५.	कौशाम्बी की मृण्मूर्तियाँ—श्री सतीशचन्द्र काला एम० ए०	१४७
६.	लामाओं की पूजा-विधि—लामा अङ्गरूप लाहुली	१५२
७.	कन्हेरी का बौद्ध विहार—श्री भालचन्द्र जैन	१५४
८.	तथागत की करुणा (कविता)—कुमारी विद्या	१५६
९.	भिक्षु संघ का नैसर्गिक सान्निध्य—श्री विजय श्रीवास्तव	१५७
१०.	बौद्ध-जगत्	१६०

—

मूलगन्ध कुटी विहार, सारनाथ

का

२१वाँ वार्षिकोत्सव

आगामी २ नवम्बर रविवार को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव जी की अध्यक्षता में मूलगन्ध कुटी विहार, सारनाथ का २१वाँ वार्षिकोत्सव अति समारोह के साथ मनाया जायगा। इस उत्सव में प्रतिवर्ष देश-विदेश के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। आप भी पधार कर इस अवसर से लाभ उठाने का अब निश्चय कर लें। कार्यक्रम का पूरा विवरण समाचार-पत्रों द्वारा सूचित किया जायगा।

विशेष जानकारी के लिए निम्नलिखित पते पर पूछ-ताछ करें।

मन्त्री,

महाबोधि सभा,

सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १७	सारनाथ, अक्टूबर	बु० सं० २४९६ / ई० सं० १९५२	अङ्क ६

बुद्ध-वचनामृत

तृष्णा महावृक्ष है

"भिक्षुओ! कोई महावृक्ष हो, उसके जो मूल नीचे या अगल-बगल फैले हों, सभी ऊपर रस भेजते हों, इस तरह वह महावृक्ष आहार पाते रहने के कारण चिरकाल तक रह सकता है। भिक्षुओ! वैसे ही संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है।

भिक्षुओ! कोई महावृक्ष हो, कोई पुरुष कुदाली और टोकरी लेकर आवे। वह उस वृक्ष के मूल को काटे। मूल को काटकर उसके नीचे सुरंग खोद दे और वृक्ष के सभी मूल सोई को काटकर निकाल दे। वह वृक्ष को काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दे। फिर, टुकड़ों को भी चीर डाले। चीर कर छोटी-छोटी चैली निकाल दे। चैली को धूप और हवा में सुखा कर जला दे। जलाकर कोयला बना दे। कोयले और राख को या तो हवा में उड़ा दे या नदी की धार में बहा दे। भिक्षुओ! इस तरह वह महावृक्ष उन्मूल हो जाय, उसका फिर प्ररोह नहीं हो। भिक्षुओ! वैसे ही संसार के आकर्षक धर्मों में केवल बुराई ही बुराई देखने से तृष्णा रुक जाती है। तृष्णा के रुक जाने से·····सारा दुःख-समूह रुक जाता है।"

—संयुक्त निकाय १२. ६. ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध की शिक्षा : सार्वभौमिकता

आचार्य नरेन्द्रदेव, कुलपति, काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय

भगवान् बुद्ध का उपदेश लोक भाषा में होता था, क्योंकि उनकी शिक्षा सर्वसाधारण के लिये थी। बुद्ध के उपदेश उपनिषत् के वाक्यों का स्मरण दिलाते हैं। उनकी शिक्षा की एक बड़ी विशेषता सार्वभौमिकता थी। इसी कारण एक समय बौद्ध-धर्म का प्रचार एक बहुत भू-भाग में हो सका। उन्होंने मोक्ष के मार्ग का आविष्कार किया, किन्तु वह मार्ग प्राणिमात्र के लिए खुला था। जन्म से कोई बड़ा होता है या छोटा--इसे वे नहीं मानते थे। वृषल सूत्र (सुत्तनिपात) में वे कहते हैं--"जन्म से कोई वृषल नहीं होता, जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। कर्म से वृषल होता है, कर्म से ब्राह्मण होता है। हे ब्राह्मण! इस इतिहास को जानो कि यह विश्रुत है कि चाण्डाल पुत्र (श्वपाक) ने परम यश को प्राप्त किया। यहाँ तक कि अनेक क्षत्रिय और ब्राह्मण उसके स्थान पर जाते थे। अन्त में वह ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ। ब्रह्मलोक की उत्पत्ति में जाति बाधक नहीं हुई।"

आश्वलायन सूत्र में भगवान् से आश्वलायन ब्राह्मण माणवक ने कहा कि हे गौतम! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं; ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं, अन्य वर्ण हीन हैं, ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं; अब्राह्मण नहीं; ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं; उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं—आप इस विषय में क्या कहते हैं?

भगवान् ने उत्तर दिया:—'हे आश्वलायन! क्या तुमने सुना है कि यवन कम्बोज में और अन्य प्रत्यन्तिक जनपदों में दो वर्ण हैं—आर्य और दास। आर्य से दास होता है, दास से आर्य होता है?"

"हाँ, मैंने सुना है।"

"हे आश्वलायन! ब्राह्मणों को क्या बल, जो वे ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं, अन्य हीन वर्ण हैं। क्या मानते हो कि केवल ब्राह्मण ही सावद्य (पाप) से प्रतिविरत होकर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं; क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं?"

"नहीं गौतम!"

"क्या तुम मानते हो कि ब्राह्मण ही मैत्री-चित्त की भावना में समर्थ होते हैं, ब्राह्मण ही नदी में स्नान कर शरीरमल को क्षालित कर सकते हैं? इस विषय में क्या कहते हो? यदि क्षत्रिय कुमार ब्राह्मण कन्या के साथ संवास करे और उससे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह पुत्र पिता के भी सदृश है, माता के भी सदृश है। उसे क्षत्रिय भी कहना चाहिए, उसे ब्राह्मण भी कहना चाहिए। हे आश्वलायन! यदि ब्राह्मण कुमार क्षत्रिय की कन्या के साथ संवास करे और उसके पुत्र पैदा हो, तो क्या उसे क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों न कहेंगे?"

"हाँ, कहेंगे, गौतम!"

"हे आश्वलायन! मैं चारों वर्णों को शुद्ध मानता हूँ। जातिवाद ठीक नहीं है।"

सुन्दरिक भारद्वाज सूत्र में भगवान् कहते हैं कि जाति मत पूछो, आचरण पूछो—(मा जाति पुच्छ, चरणं च पुच्छ)। हवन के लिये काष्ठ से अग्नि उत्पन्न होती है। नीच और अकुलीन भी धृतिमान् और श्रेष्ठ होता है। वासेट्ठपुत्त सुत्त में वासिष्ठ और भारद्वाज दो माणवक भगवान् के समीप आते हैं और कहते हैं कि हममें जातिवाद के सम्बन्ध में विवाद है। भारद्वाज कहता है कि जन्म से ब्राह्मण होता है और वासिष्ठ कहता है कि कर्म से होता है। बताइये, हममें से कौन ठीक है? बुद्ध कहते हैं जिस प्रकार कीट, पतंग, चतुष्पद, मत्स्य, पक्षी आदि जातियों में जातिमय पृथक् पृथक् लिंग होता है, उस प्रकार मनुष्य में नहीं होता।

मनुष्यों में जिस किसी की जीविका गोरक्षा है, वह कृषक है, वह ब्राह्मण नहीं है। जिसकी जीविका व्यापार है, वह वणिक् है। जिसकी जीविका पौरोहित्य है, वह याजक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और जो राष्ट्र का भोग करता है, वह राजा है। किन्तु तप, ब्रह्मचर्य, संयम और दम से ब्राह्मण होता है, जटा से, गोत्र से, जन्म से ब्राह्मण नहीं होता है। जिसमें सत्य और धर्म है, वह शुची है, वह ब्राह्मण है। (धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग) हे दुर्मेध! तुम्हारी जटा और अजिनशाटी से क्या होता है? तुम्हारा अभ्यन्तर तो गहन है और तुम बाह्य का परिमार्जन करते हो।

भगवान् कहते हैं कि लोक में जो संज्ञाएँ प्रचलित हैं, वे भिक्षु-भाव ग्रहण करने पर लुप्त हो जाती हैं, जैसे विभिन्न नदियाँ समुद्र में मिलकर अपने नाम रूप को खो देती हैं। बौद्ध संघ में सबके लिए स्थान था। उस समय शूद्रों को तपकरने का अधिकार न था; वे वेदाध्ययन भी नहीं कर सकते थे। श्रमणों ने सब के लिए निश्रेयस का मार्ग खोल दिया। बौद्ध धर्म के प्रभाव से आगे चलकर अनेक अन्य सम्प्रदाय हुए, जिन्होंने सबको समानरूप से यह अधिकार दिया।

भगवान् की शिक्षा व्यावहारिक थी। वे दुःख के अत्यन्त निरोध का उपाय बताते थे। लोक शाश्वत है अथवा अशाश्वत; लोक अन्तवान है या अनन्तवान; जीव और शरीर एक हैं या भिन्न; तथागत मरण के पश्चात् होता है या नहीं—इत्यादि दृष्टियों का व्याकरण (व्याख्या) बुद्ध ने नहीं किया है क्योंकि उन्हीं के शब्दों में यह अर्थ संहित नहीं हैं; क्योंकि ये ब्रह्मचर्य प्रवण नहीं हैं। ये विराग, निरोध, उपशम, संबोधि, निर्वाण संवर्तनीय नहीं हैं। ब्रह्मचर्यवास इन दृष्टियों में से किसी पर आश्रित नहीं है। इन दृष्टियों के होते हुए भी जन्म, जरा, मरण, शोक-दुःख होते ही हैं, जिनका विघात इसी जन्म में हो सकता है। बुद्ध ने श्रावकों से पूछे जाने पर इन प्रश्नों का उत्तर देने में इनकार किया। भगवान् अग्निवच्छगोत्तसुत्त में पुनः कहते हैं कि ये दृष्टियाँ कान्तार, गहन, संयोजन (बन्धन) आदि हैं। ये दुःख परिदाह के हेतु हैं, ये निर्वाण संवर्तनीय नहीं हैं। इसीलिए मैं इन दृष्टियों में दोष देखता हूँ और इनका उपगम नहीं करता। तथागत सब दृष्टियों से अपनीत हैं। बुद्ध ऐसे प्रश्नों की गुत्थियों को सुलझाने में नहीं लगे थे। यह दर्शनशास्त्र का काम है। बुद्ध ने मोक्ष का उपाय बताया। इससे इन प्रश्नों का क्या सम्बन्ध है। आगे चलकर जब बौद्ध दर्शनशास्त्र संगठित हुए, तब उन्होंने इन प्रश्नों का उत्तर दिया। अन्य सम्प्रदायों से जब वाद-विवाद होता था, तब बौद्ध इन प्रश्नों का उत्तर देने के लोभ को संवरण न कर सके और बुद्ध की इस शिक्षा को वे भूल गये कि ये दृष्टियाँ अर्थसंहित नहीं हैं।

मध्यम मार्ग

भगवान् का बताया मार्ग मध्यम मार्ग कहलाता है, क्योंकि यह दोनों अन्तों का परिहार है। जो कहता है कि आत्मा है, वह शाश्वत दृष्टि के पूर्वान्त में अनुपतित होता है; जो कहता है कि आत्मा नहीं है, वह उच्छेद दृष्टि के दूसरे अन्त में अनुपतित होता है। उच्छेद और शाश्वत दोनों अन्तों का परिहार कर भगवान् मध्यमा प्रतिपदा (मार्ग) का उपदेश करते हैं। एक अन्त काम सुखानुयोग है, दूसरा अन्त आत्मक्लमथानुयोग है। भगवान् दोनों का परिहार करते हैं। भगवान् कहते हैं कि देव और मनुष्य दो दृष्टिगतों में परिपुष्ट होते हैं। केवल चक्षुमान् यथाभूत देखता है। एक भव में रत होते हैं। जब भवनिरोध के लिए धर्म की देशना होती है, तो इनका चित्त प्रसन्न नहीं होता। इस प्रकार वह इसी ओर रह जाते हैं। एक भव से जुगुप्सा कर विभव का अभिनन्दन करते हैं। चक्षुमान् भूत को भूततः देखता है, भूत को भूततः देख कर वह भूत के विराग, निषेध के लिए प्रतिपन्न होता है। वह मध्यम मार्ग अष्टांगिक मार्ग है। भगवान् यह नहीं कहते कि मुझ पर श्रद्धा रख कर बिना समझे ही मेरे धर्म को मानो। भगवान् कहते हैं कि यह 'एहि पस्सिक' 'पच्चतं वेदितब्ब' धर्म है। भगवान् सबको निमन्त्रण देते हैं कि आओ और देखो, इस धर्म की परीक्षा करो। प्रत्येक को इसका अपने चित्त में अनुभव करना होगा। यह ऐसा धर्म नहीं है कि एक मार्ग की भावना करे और दूसरा फल का अधिगम करे। दूसरे के साक्षात्कार करने से इसका साक्षात्कार अपने को नहीं होता। इसलिये भगवान् कहते हैं कि हे भिक्षुओ, तुम अपने लिये स्वयं दीपक हो, दूसरे की शरण न जाओ। धम्मपद में भगवान् कहते हैं—"अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।" भगवान् एक सूत्र में कहते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म प्रतिशरण है, पुद्गल (जीव) नहीं। प्रतिशरण का अर्थ है 'प्रमाण'। शास्ता भी प्रतिशरण नहीं है। एक ब्राह्मण आनन्द से पूछता है भगवान् ने या संघ ने किसी भिक्षु को नियत किया है, जो उनके पीछे प्रतिशरण होगा। आनन्द ने उत्तर दिया—नहीं ब्राह्मण बिना प्रतिशरण के नहीं है, धर्म हमारा प्रतिशरण है।

लोग आत्मकल्याण के लिये प्रायः कौतुक मंगल, अनेक मंगल कृत्य करते हैं, तिथि, मुहूर्त, नक्षत्रादि का फल विचरवाते हैं; नाना प्रकार के व्रतादि करते हैं और उनकी यह दृष्टि होती है कि यह पर्याप्त हैं। इन्हें 'शील-व्रतपरामर्श' कहते हैं। इनमें अभिनिवेश होने से आत्मोन्नति का मार्ग बन्द हो जाता है। गृही के लिए दृष्टि का शोध कठिन होता है, क्योंकि उसकी विविध दृष्टि होती है। इसलिए एक श्लोक में कहा है—

दुःशोधा दृष्टिर्गुणा नित्यं विविधदृष्टिना।
भिक्षुणा त्वामीव एव परेस्वायत्त वृत्तिना॥

इसी प्रकार भिक्षु के लिये आजीव पारिशुद्धि कठिन है क्योंकि उसको अपनी वृत्ति के लिये दूसरों पर आश्रित होना होता है। भगवान् महामंगल सुत्त में कहते हैं कि माता-पिता की सेवा पुत्रदारा का संग्रह, दान, धर्मचर्या, अनवद्य कर्म—ये उत्तम मंगल हैं। तप, ब्रह्मचर्य, आर्य-सत्यों का दर्शन, निर्वाण का साक्षात्कार ये उत्तम मंगल हैं।

भगवान् कहते हैं कि वह सुखी है, जो जय-पराजय का त्याग करता है। जय वैर को उत्पन्न करता है, पराजय दुःख का प्रसव करता है। अतः दोनों का परित्याग कर उपशान्त हो, सुख का आसेवन करना चाहिए। राग, द्वेष और मोह—यह तीन अकुशल मूल हैं, इनका प्रहाण होना चाहिये। 'राग के समान कोई अग्नि नहीं है, द्वेष के समान कोई कलि नहीं है, शान्ति के समान कोई सुख नहीं है।' 'अक्रोध से क्रोध को जीते, साधुता से असाधुता को जीते, कदर्य को दान से और मृषावादी को सत्य से जीते।'

इसीलिये भगवान् भावना की महिमा का वर्णन करते हैं। यह चार ब्रह्म विहारों में से एक है।

मेत्त भाव सुत्त में भगवान् कहते हैं—जितने पुण्य क्रियावस्तु हैं, वे सब मैत्री भाव की १६वीं कला के भी बराबर नहीं हैं। एक भी प्राणी में दुष्ट चित न होना चाहिए। सबके लिए मैत्री का भाव होना चाहिए। इस प्रकार आर्य प्रभूत पुण्य करता है। जिसका किसी से वैर नहीं है, जो सब भूतों से मैत्री करता है, वह सुखी होता है। रतन सुत्त में सब भूतों के कल्याण की प्रार्थना है। भगवान् इन्द्रिय-संयम का महत्व बताते हैं। वे कहते हैं कि जिसके इन्द्रिय-द्वार अगुप्त हैं, जो भोजन में मात्रा का विचार नहीं करता, उसका चित्त और उसकी काया दोनों दुःखी होते हैं। स्मृति और संप्रजन्य से आत्म-रक्षा होती है। ये द्वारपाल हैं, जो चित्तपथ की पाप अकुशल से रक्षा करते हैं। तीन अकुशल वितर्क हैं—काम, व्यापाद और विहिंसा। इनका परित्याग करना चाहिए। तीन कुशल वितर्कों का—नैष्क्रम्य, अव्यापाद और अविहिंसा का संग्रह करना चाहिए।

इसीलिए भिक्षु की आजीव शुद्धि होनी चाहिए। उसे मैत्री विहारी और मन-काय-वाक् से संयत होना चाहिए। जो भिक्षु यथार्थ भिक्षु नहीं है, जो याचनक मात्र है, जो दुःशील है, उसके लिए भगवान् कहते हैं कि यह अच्छा है कि वह तप्त लोहे के गोले को खाये, इसकी अपेक्षा कि वह असंयत राष्ट्रपिण्ड का भोग करे। पुनः कहते हैं कि इस कारण्डक (यव की आकृति का तृण-विशेष जो यवदूषी कहलाता है) को विनष्ट करो, इस कशम्बक (पूतिकाष्ठ) को अपकृष्ट करो, इस तण्डुल-विहीन व्रीहि को निष्क्रान्त करो (सुत्त निपात, २८१)। यह श्रमण होने का मान करता है।

जो भिक्षु पतनीय को आपन्न होता है, उसको भगवान् ने भिक्षुओं के साथ सब प्रकार का संयोग करने से बहिष्कृत किया है। आहार के एक ग्रास का भी परिभोग उसके लिए मना है, विहार के पार्ष्णि-प्रदेश का परिभोग भी उसके लिए वर्जित है। भगवान् आपन्न भिक्षु की उपमा मस्तकच्छिन्न ताल वृक्ष से देते हैं जो विरूढि, वृद्धि, उपचय विस्तार के अभव्य हो जाता है। यथार्थ भिक्षु वह है, जिसने क्लेशों का भेद किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में बौद्धग्रन्थों का पर्येषण

प्रो० डॉ० पी० वी० बापट, एम० ए०, पी-एच० डी०

बौद्धधर्म और बौद्ध ग्रन्थों का उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। महाराज अशोक द्वारा भेजे गए धर्म-प्रचारकों ने नाना देशों में बौद्धधर्म फैलाया तथा प्रतिष्ठित किया। उसने महामहेन्द्र स्थविर और संघमित्रा को लंकाद्वीप में धर्म-प्रचारार्थ भेजा। अन्य स्थविरों को भी सुवर्ण-भूमि में उसी कार्य के लिए भेजा। लंका से भी भिक्षु बर्मा, स्याम आदि देशों में जाकर बौद्धधर्म को प्रतिष्ठित किये। यह आश्चर्य की बात है कि भारतवर्ष बौद्धधर्म तथा बौद्ध ग्रन्थों का उत्पत्तिस्थान होकर भी सम्प्रति इनसे शून्यप्राय हो गया है। यहाँ अधिकांश लोग यह भी नहीं जानते हैं कि "बुद्ध कौन हैं? उनका धर्म क्या है? उनके धर्मग्रन्थ कौन हैं?"

ऐसा होने पर भी कुछ विद्वानों के उद्योग और परिश्रम से कतिपय संस्कृत में लिखित ग्रन्थ, जिनके नाम अवशेष थे, मुद्रित होकर प्रकाशित हुए हैं। कश्मीर-गन्धार राष्ट्र में (जो आजकल 'गिलगित' नाम से प्रसिद्ध है) कई संस्कृत भाषा में लिखे ग्रन्थ कुछ ही दिन पूर्व एक स्तूप में गाड़ी गई काष्ठ-मंजूषा से प्राप्त हुए। उस स्थान को पहले चरवाहों ने देखा, जो लकड़ी और कंकड़-पत्थर से भरा था। उस स्थान को खोदने पर एक महत्त्वपूर्ण मंजूषा प्राप्त हुई। उसके अन्दर चार छोटी-छोटी मंजूषायें थीं, जिनमें अनेक ग्रन्थ रखे हुए देखे गए।

इन ग्रन्थों में अनेक बौद्ध-ग्रन्थ भी प्राप्त हुए। उन बौद्ध-ग्रन्थों में विशेषकर एक ग्रन्थ पालि-त्रिपिटक का व्याकरण है जो अत्यन्त हितकर और अर्थकर है, जिसका नाम 'विनयवस्तु' (विनयवत्थु) है। दूसरा ग्रन्थ पालि में है और है विनयपिटक का 'खन्धक'। किन्तु इस ग्रन्थ में 'खन्धक' के स्थान पर 'वस्तु' शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ, (१) पब्बज्जावत्थु, (२) उपोसथवत्थु, (३) पवारणावत्थु, (४) वस्सावत्थु, (५) कम्मवत्थु, (६) संघभेदवत्थु, (७) भेसज्जवत्थु, (८) चीवरवत्थु, (९) कठिनवत्थु. (१०) कोसम्बकवत्थु, (११) कम्मवत्थु, (१२) पण्डु-लोहितकवत्थु, (१३) पुग्गल वत्थु, (१४) परिवासकवत्थु और (१५) उपोसथट्ठपनवत्थु खन्धक में हैं। पर्येषण करनेवालों अथवा संशोधन करनेवालों के प्रमाद से अनेक पन्ने नष्ट हो गए हैं या क्रय-विक्रय में संलग्न लोगों के हाथों लग गये हैं अथवा किन्हीं अन्य लोगों के हाथ में चले गये हैं। इन ग्रन्थों के अप्राप्य भाग से एक अंश एक सैनिक द्वारा हस्तगत कर लिया गया है, हम ऐसा समझते और जानते हैं। वह उसे बेचना चाहता है। खरीदनेवालों से बहुत धन माँगता है। इस कारण कुछ खन्धक अपरिपूर्ण ही हैं। पालि भाषा के विनय-खन्धक से ये स्थान-स्थान पर भिन्न हैं। पालि भाषा के विनय में न आई हुए बहुत-सी बातें इसमें मिलती हैं। विनय में जो कथायें संक्षिप्त में हैं, वे इसमें खूब विस्तारपूर्वक दी गई हैं। अभिधम्म के ग्रन्थों का विचार करके पढ़ना अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करता है। अनेक स्थलों पर पालि भाषा से भाषान्तर करके संस्कृत भाषा में लिखा गया है—ऐसा हमें जान पड़ता है। स्थान-स्थान पर मूलअर्थ को न जानकर प्रमाद से संस्कृत भाषा में अनुवाद किया गया है—यह मेरा अभिप्राय है। पालि में आये—'अभिक्कन्तो' शब्द के स्थान में 'अभिकान्तो' न लिखकर 'अभिक्कान्तो' अशुद्ध पाठ दिया गया है। (Vol. III, Part 3, P. 143, line 4)। 'चित्तीकरोति' शब्द के अनुवाद में 'चित्रीकरोति' अशुद्ध पाठ ही दिखाई देता है। (Vol, III. Part 1, P. 8)। पालि-ग्रन्थ से यह ग्रन्थ अत्यन्त ही नवीन जान पड़ता है। मृत्यु के समय एक भिक्षु ने अपनी सम्पत्ति को पत्र लिखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेतवन को भेजा—ऐसा एक स्थान में दीखता है (Vol. III, Part 2, P. 140)। अन्य स्थान पर बुद्ध-वचन को लिखने के लिए एक भिक्षु द्वारा मृत्यु के समय त्यागे हुए वस्तु व्यय रूप में प्राप्त हुए—ऐसा भी पढ़ते हैं।

विद्वानों ने निर्णय किया है कि यह ग्रन्थ मूल-सर्वास्तिवादी निकाय का प्रमाण-ग्रन्थ है। पालि भाषा के विद्वानों को संस्कृत भाषा के स्वाध्याय एवं बौद्धधर्म के इतिहास को जानने के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त ही पठनीय है। भेसज्ज वस्तु के अन्त में 'स्थविर गाथा' भी खण्डित है।

आश्चर्य है कि इन वस्तुओं में 'संघभेद वत्थु' में सुत्त-पिटक के अन्तर्गत दीघनिकाय में आया हुआ 'सामञ्ञ-फलसुत्त' भी दिखाई देता है। वह सुत्त इस वत्थु में अंश मात्र है। उसके अन्य भाग उक्त सैनिक के हाथ लगे ग्रन्थों में हो सकते हैं, क्योंकि उसने कुछ वर्ष पूर्व कतिपय खण्डित पन्नों को पूना के 'भण्डारकर प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर' के कोषाध्यक्ष के पास पढ़कर निर्णय करने के लिए भेजा था। उन्हें हमने पढ़कर निर्णय किया—'ये पन्ने संस्कृत भाषा में लिखित 'सामञ्ञ-फलसुत्त' के ही हैं।'

इस विषय में हमने एक को चित्र सहित प्रकाशित भी किया। * इस सुत्त के तिब्बती भाषा में एक, और चीनी भाषा में तीन संस्करण भी प्राप्त हुए हैं। इस सम्बन्ध में भी हमने दूसरा लेख प्रकाशित किया। † जानने के इच्छुक देखने के अधिकारी हैं। यह संस्कृत भाषा में लिखा ग्रन्थ ईस्वी सन् की सातवीं-आठवीं शताब्दी की अक्षरों में लिखा जान पड़ता है।

तीन-चार वर्ष पूर्व अन्य भी एक ग्रन्थ पहले कभी न देखा गया सामने आया। वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि पालि भाषा के ग्रन्थ प्रायः लंका, बर्मा, स्याम और कम्बोडिया के अक्षरों में ही लिखे मिलते हैं, किन्तु हमने सन् १९४८ में नेपाल के राज-पुस्तकालय में चार ताड़पत्रों को देखा, जिनके मुख्य और पृष्ठ भाग प्राचीन अक्षरों में लिखे हुए थे। वे भी ईस्वी सन् आठवीं या नवीं शताब्दी के होंगे। वे ताड़पत्र भी विनय पिटक के चुल्लवग्ग के थे। इस सम्बन्ध में भी हम एक लेख फोटो के साथ शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे।

('दी इन्डो-एशियन कलचर' के पालि भाग से अनूदित)

* Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. XXX, Parts iii-iv, PP. 240 253.

† Indian Culture, Vol. XV, Nos. 1-4 (July 1948-June 1949) B. M. Barua Commemoration Volume, PP. 107-114.

प्रयाण-गीत

श्री रामचन्द्र लाल

जगत गुरु कि जय जय मनाते चलेंगे,
कदम सत्य पथ पै बढ़ाते चलेंगे।
किसी जीव को कष्ट हमसे न होगा,
कोई व्यक्ति भी रुष्ट हमसे न होगा,
दिलों में सभी के समाते चलेंगे।
जगत गुरु कि जय जय मनाते चलेंगे॥

लगी आग हिंसा, घृणा की जहाँ है,
प्रथम आज हमको पहुँचना वहाँ है,
वहाँ प्रेम का नद बहाते चलेंगे।
जगत गुरु कि जय जय मनाते चलेंगे॥

जहाँ फूट के बीज बिखरे मिलेंगे,
जहाँ द्वेष औ' दम्भ उभरे मिलेंगे,
उन्हें शान्ति ही से मिटाते चलेंगे।
जगत गुरु कि जय जय मनाते चलेंगे॥

मुझे माया, ममता लुभा न सकेंगी,
न आलस्य, तृष्णा डिगा अब सकेंगी,
अभय त्याग के राग गाते चलेंगे।
जगत गुरु कि जय जय मनाते चलेंगे॥

इसी भाँति अन्तिम सफर तय ये होगी,
मुहब्बत सभी के दिलों में बढ़ेगी,
'महाभिक्षु' को यों रिझाते चलेंगे।
जगत गुरु कि जय जय मनाते चलेंगे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशाम्बी की मृण्मूर्तियाँ

श्री सतीशचन्द्र काला एम० ए०

[१]

कौशाम्बी में विस्तृत रूप से कभी भी खुदाई नहीं हुई है। पुरातत्व विभाग ने दो बार यहाँ कार्य प्रारम्भ किया, किन्तु किन्हीं कारणों से वे इसको आगे न बढ़ा सके। १९४८ ई० से प्रयाग विश्वविद्यालय के तत्वाधान में फिर से खुदाई प्रारम्भ हुई है। प्रयाग म्यूनिसिपल संग्रहालय में एकत्रित सामग्री केवल खंडहरों से ही उठाई गई है। इस कारण न तो उनके ठीक प्राप्ति स्थान का ही पता है और न स्तर का ही। इस आवश्यक सूचना के अभाव के कारण वस्तुओं के निर्माण काल को निर्धारित करना कठिन है। भारतीय संग्रहालयों में संग्रहीत मृण्कला सम्बन्धी सभी सामग्री के अध्ययन में ऐसी ही कठिनाई पड़ती है। फिर भी तत्कालीन पाषाण की मूर्तियों तथा अन्य वस्तुओं के साथ तुलना करने पर इनकी आयु का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

कौशाम्बी की मृण्यमूर्तियों के विषय अति व्यापक हैं। कलाकारों ने स्वतन्त्र रूप से लौकिक, धार्मिक तथा ग्रामीण विषयों का प्रयोग किया है। सभ्यता के इस लम्बे इतिहास में हमारे अनेक धार्मिक विश्वास उठ गये हैं और कितनों में ही विशाल परिवर्तन हो गये हैं। इन कारणों से बहुत से विषयों के वास्तविक रूप को पहिचानने में कठिनाई हो जाती है।

कुम्भकारों ने यमुना की तलहटी की सुन्दर मिट्टी का निरन्तर सदुपयोग किया है। इस महीन मिट्टी में कई मूर्तियाँ तो बड़ी ही सुन्दर निकलीं। शुङ्ग तथा प्रारम्भिक कुशाण काल की मृण्मूर्तियों पर हल्के या गहरे लाल रंग की एक परत भी है। मथुरा की भाँति, काले रंग की मिट्टी में बनी मूर्तियाँ कौशाम्बी में नहीं मिलती हैं।

ठप्पों से ऊतारी गई सैकड़ों मृण्यमूर्तियाँ कौशाम्बी में मिली, किन्तु वास्तविक ठप्पों का यहाँ सर्वत्र अभाव है। इसका कारण अभी तक समझ में नहीं आया। सम्भव है व्यापार या प्रतियोगिता के दृष्टिकोण से कुम्भकार, कार्य सम्पन्न कर, ठप्पों को नष्ट कर देते रहे हों।

कौशाम्बी की मृण्मूर्तियों का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सबसे अधिक उदाहरण शुङ्ग तथा कुषाण काल के हैं। गुप्त काल की थोड़ी सी मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं और फिलहाल यह माना जा सकता है कि इस काल में वत्स नगरी का सितारा अस्ताचल की ओर ढल रहा था। अब हम अलग-अलग शैलियों की मृण्मूर्तियों का वर्णन करेंगे।

प्रथम वर्ग में हम उन स्त्री-मृण्मूर्तियों का विवेचन करेंगे जिन्हें कि काल तथा आयु से परे माना गया है। ये मूर्तियाँ हाथ से बनी हैं। इनमें अंग प्रत्यंग बड़ी असावधानी से दिखलाये गये हैं। इनमें कुछ का आकार तो एक फुट ऊँचा तक है। अधिकतर उदाहरणों में आँखें या तो रेखाओं या मिट्टी की अलग से चिपकाई पट्टियों से दिखलाई गई हैं (६ तक १) चौड़े नितम्ब, पतली कमर, गहरी नाभि, उभरे स्तन आदि आदि गुण इस वर्ग की मूर्तियों में मिलते हैं। तारे की शकल में मानव आकृति को दिखलाने की चेष्टा भी मृण्कारों ने की है। इन मूर्तियों को मातृदेवी की मूर्तियाँ माना गया है।

ठप्पों से निकाली हुई कई स्त्रियों की मूर्तियाँ कौशाम्बी में मिली हैं। (फलक ४२) इनमें दो प्रमुख विषय हैं। एक प्रकार के पट्टकों में स्त्री, भारी शिरोभूषा पहिने खड़ी हैं। शिरोभूषा के एक ओर तो पाँच चिह्न (अंकुश, त्रिशूल आदि आदि) हैं तथा दूसरी ओर पाँच बालें दिखलाई गई हैं। ये पाँच चिन्ह अन्य कई स्थानों की मूर्तियों पर भी दीख पड़ते हैं और निःसन्देह ये देवियों के प्रतीक हैं। अनाज की बालों के वर्तमान होने से कहा जा सकता है कि वे उत्पादन की देवी की मूर्तियाँ हैं [फलक ३]। एक और अन्य प्रकार की मूर्तियों में शिरोभूषा पर लम्बी बाल लगी है। मृण्पट्टकों पर भारी आभूषणों तथा वस्त्रों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसज्जित स्त्रियों का चित्रण भी हुआ है। इनका ठीक ठीक रूप बतलाना कठिन है। किन्तु इनमें बहुतसी भद्र घरानों की स्त्रियों की जीवित प्रतिलिपियाँ मानी जा सकती हैं, कुछ तो 'गणिकाओं' की मूर्तियाँ भी हो सकती हैं। वात्स्यायन ने गणिकाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इनमें अधिकतर कला तथा साहित्यप्रवीण होती थीं और स्वागत समारोहों पर इनकी विशेष आवश्यकता पड़ती थी [फलक ४] कुछ पट्टकों में स्त्रियाँ ताड़ या पुष्पाकृति के पंखे पकड़े हैं [फलक ५-६] निःसन्देह उस कला की परिचारिकाएँ हैं। इन स्त्रियों की वेश-भूषा चित्ताकर्षक है।

कौशाम्बी से कई ऐसी मृण्मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं जिनका सम्बन्ध जादू टोने से था। एक विचित्र स्त्री मूर्ति, जिसका वक्ष से ऊपर का भाग मात्र बच सका है, दायें हाथ में एक बालक को पकड़े है। स्त्री के दाएँ बाजू पर एक बिच्छू चलता दीख पड़ता है [फलक ७]। दूसरी मूर्ति में स्त्री पूरी बाँह की अँगिया पहिने है। उसके कुंडलों पर नाग-मुद्रा प्रतीक है। स्त्री का चेहरा कुछ भयंकर-सा लगता है। एक अन्य और कुरूप उदाहरण में स्त्री का सम्पूर्ण चेहरा दागों से भरा है। उसमें न तो नाक, न आँख और न मुँह ही दिखलाने की चेष्टा की गई है। सम्भव है इस मूर्ति में 'चर्चिका' के चित्रण की कल्पना की गई हो।

प्राचीन काल में लोगों को नाग पूजा से विशेष प्रीति थी। कौशाम्बी से मिट्टी के बने अनेक नाग फण मिले हैं। इनके अतिरिक्त एक विलक्षण मूर्ति भी वहाँ से प्राप्त हुई है। इसमें शरीर तथा गर्दन लम्बी बनाकर चेहरा सर्प का जैसा बना दिया गया है। कमर से नीचे के भाग में दो लकड़ी जैसे पैर बना दिए गए हैं। वक्ष पर गोल पट्टियों या चिन्हों से स्तन भी चिपके हैं। [फलक ८] विद्वानों ने इस शैली की मृण्मूर्तियों को 'मनसा देवी' माना है। कौशाम्बी से बक्सर तथा पाटलिपुत्र [पटना] शैली की कई मृण्मूर्तियाँ मिली हैं (फलक ९-१२)। निःसन्देह कौशाम्बी और इन दो प्राचीन स्थानों के बीच आवागमन चलता रहा होगा। बक्सर के टीले का नाम तो लुप्त हो गया है और पाटलिपुत्र का अधिकांश भाग भी गंगा के बहाव से नष्ट हो गया है। अभी तक इन दोनों स्थानों से कौशाम्बी शैली की कोई वस्तु नहीं मिली है।

माता और शिशु का चित्रण कौशाम्बी के कुम्भकारों का प्रिय विषय रहा है। यहाँ इस विषय को तीन प्रकार से चित्रित किया गया है। प्रथम वर्ग में तो माता व शिशु केवल मिट्टी से साधारण रूप में निकाल कर बने हैं। दूसरे वर्ग, जो ई० पू० प्रथम सदी के लगभग के हैं, ये माता और शिशु ठप्पे से निकाले गए हैं। तीसरे वर्ग में यह विषय छिछले ठप्पे से अंकित हुआ है। इसमें माता बच्चे को गोद में थामे है। श्री वासुदेवशरण अग्रवालजी ने इन मूर्तियों को अंकधात्री नाम दिया है।

कौशाम्बी के खंडहरों से कुछ सपक्ष मानवों की मृण्मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं (फलक ९-११)। वर्षों पूर्व बसाढ़ (प्राचीन वैशाली) के खंडहरों से ढाँचे द्वारा निकली एक पंखधारी लक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त हुई थी। १९२८ ई० में डाक्टर आनंदकुमारस्वामी ने इस विषय की मूर्तियों की अभावता पर प्रकाश डाला था। इन २२ वर्षों में पुरातत्व पंडितों के अथक प्रयत्नों द्वारा अनेक स्थानों से पंखधारी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। संभव है दंत कथाओं में वर्णित गंधर्व, देवपुत्र तथा अप्सराओं के किसी रूप की ये मूर्तियाँ घोषित करती हों।

आधुनिक काल की तरह बीते युगों में भी दम्पति प्रेम की महत्ता थी। कौशाम्बी के अनेक मृण्पट्टकों पर दम्पति का चित्रण है। इनमें पत्नी बायीं तथा पति दायीं ओर खड़े दीख पड़ते हैं। इसी प्रकार "मिथुन" नामक विषय भी भारतीय कला में सदैव विशेष स्थान पाता रहा है। इनमें स्त्री दायीं तथा पति बायीं ओर खड़े चित्रित हैं। ऐसे विषय अहिच्छत्रा, मथुरा तथा सहेट महेट में भी प्रचुरता के साथ पाए जाते हैं। इस देश में आसव पान प्रत्येक युग में किसी न किसी रूप में चलता रहा है। आसव सम्बन्धी विषय प्रायः मथुरा की कुषाण कालीन मूर्तियों में ही दीख पड़ते हैं। कौशाम्बी से प्राप्त एक छोटे पट्टक में दम्पति अपने एक हाथ में सुरापात्र तथा दूसरे में सुराघट पकड़े हैं (फलक १२)।

कामकला सम्बन्धी कई दृश्य कौशाम्बी की मृण्कला में दीख पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन कुम्भकार कामसूत्र में वर्णित कुछ आसनों से परिचित थे (फलक १३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खंडहरों से स्त्रियों के कुछ ऐसे भी धड़ प्राप्त हुए जिनमें वे या तो सिर या बगल में घड़ों को दबाए हुए हैं। ये मूर्तियाँ समाज के किस वर्ग का निरूपण करती हैं, यह बतलाना कठिन है। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि शिलूशिया तथा मिस्र आदि देशों में भी ऐसे धड़ प्राप्त हुए हैं।

[२]

कौशाम्बी में गुप्त काल तक की अनेक ऐसी वस्तुएँ मिली हैं जिनका सम्बन्ध लोक-धर्म से है। बौद्ध तथा जैन धर्म सम्बन्धी सामग्री भी इस नगर के खंडहरों से प्राप्त हुई है। आश्चर्य यही है कि मृण्कला में इन दो ख्याति प्राप्त धर्मों की कोई भी मूर्ति कुम्भकारों ने नहीं बनाई। कौशाम्बी में गुप्त काल के पश्चात् भी बौद्ध धर्म वर्तमान रहा और यह आशा की जाती थी कि कुम्भकार बुद्ध भगवान् की मूर्तियों को प्रचुर संख्या में बनाते जिन्हें कि बौद्ध यात्री इधर-उधर स्मृति-सूचक प्रतीक मानकर ले जा सकते थे।

ब्राह्मण धर्म की मृण्मूर्तियों में गणेश, एक मुख शिव-लिंग, तथा लक्ष्मी उल्लेखनीय हैं। कौशाम्बी में शिव तथा लक्ष्मी की पूजा विशेष प्रचलित थी। वहाँ से पाषाण में अंकित कई एक मुख, चतुर्मुख तथा पंचमुख शिवलिंग मिले हैं। धनिकों की बस्ती होने से, लक्ष्मी की पूजा का प्रचलन स्वाभाविक ही है। कौशाम्बी में ईसा की प्रथम तथा द्वितीय सदियों में, मृण्पट्टकों पर लक्ष्मी का ४९ रूपों में चित्रण हुआ है (फलक १४)।

पट्टकों में कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो हाथ में चँवर पकड़े हैं (फलक १५)। ये शायद राजप्रासादों की दासियाँ या परिचारिकाएँ हो सकती हैं। व्यंजन धारिणी स्त्रियाँ, जिनका उल्लेख पहिले हो चुका है, भी इस वर्ग में सम्मिलित थीं।

शुक क्रीड़ा भारत में एक अति प्रिय घरेलू क्रीड़ा का साधन है। शुक, विरहणियों का सन्देशवाहक रहा है। यह पक्षी कामदेव का वाहन भी माना जाता है। मथुरा की कला में शुक-क्रीड़ा के अनेक चित्ताकर्षक दृश्य हैं, किन्तु विविधता में वे कौशाम्बी के उदाहरणों से नीचे ही आते हैं। कौशाम्बी से प्राप्त, कुएं से निकाली हुई स्त्री एक हाथ में आम्र फलों का गुच्छा थामे है और दूसरे हाथ में शुक (फलक १६)। एक अन्य उदाहरण में शुक एक स्त्री की मेखला पर बैठा है। एक मृण्वक्ष में शुक स्त्री के लाल ओठों को अनार के दाने समझ, उन्हें चूम रहा है।

कौशाम्बी की मृण्कला में कई प्रकार के बौनों की आकृतियाँ भी मिली हैं। वैसे तो अहिच्छत्रा, मथुरा तथा भीटा से अनेक बौनों तथा यक्षों की आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं, किन्तु कौशाम्बी के उदाहरणों में विशेषता है। एक प्रकार की बड़े आकार की मृण्मूर्तियों में एक बैठा हुआ दानवी पुरुष हाथ में शूकर की पूँछ को पकड़े है। इस शैली की एक मूर्ति पाषाण में भी मिली है। सम्भव है यह कौशाम्बी के रक्षक, यक्ष "अनाभोग" का ही कोई रूप हो। कुछ असाधारण वेषभूषा वाले स्त्री-पुरुष बैठकर अपने पैरों के बीच घड़ों को थामे हैं। कुछ व्यक्ति कोट पहिने तथा हाथ में पशु को पकड़े हुए भी दिखलाये गए हैं। (फलक १७)। एक विचित्र मूर्ति में एक व्यक्ति जो दाढ़ी पहने है, हाथ से अपने पेट को दबाता दीख पड़ता है। इसके चेहरे पर भय की मुद्रा अंकित है (फलक १८)। बौनों में संगीतज्ञ, चर, हाथी-घोड़े के सवार आदि-आदि की मृण्मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

उत्तर भारत के कई प्राचीन स्थलों में एक अजीब ढंग के मिट्टी के तालाब मिले हैं। इनका आकार छोटा ही है। चारों ओर की दीवार पर या तो दीपक या पशु बैठे होते हैं और भीतरी दीवार से पीठ सटाकर पुरुष एक छोटी लकड़ी से ढोलको बजाते दीख पड़ते हैं। इस शैली के तालाब सिलूशिया में भी मिले हैं और अनुमान किया जाता है कि इसी स्रोत से यह परम्परा भारत में भी पहुँची। कौशाम्बी के कुछ अन्य उदाहरणों में भी शिथिक-पार्थियन संस्कृति के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं।

मृण्मूर्तियों में पुरुषों की आकृतियाँ कम ही मिली हैं। एक प्रकार के मृण्पट्टकों पर धोती पहिने एक व्यक्ति खड़ा है। उसके गले में पुष्पों का कंठहार है। सिर के बाल भी एक माला से लिपटे हैं। वह दायें हाथ में कुछ पुष्प लिये हुए है (फलक १९)। बौद्ध जातक में 'मालाकार' वर्ग के लोगों का उल्लेख प्रायः आता है। सम्भव है यह पुरुष कोई मालाकार ही हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशाम्बी में संगीत तथा नृत्य की दृढ़ परम्पराएँ थीं। इसकी पुष्टि के लिए अनेक मृण्पट्टक प्रस्तुत किये जा सकते हैं। एक कुषाण कालीन पट्टक में एक ओर तो नृत्य करती हुई स्त्री दिखलाई गई है। दूसरी ओर वीणा वादन में मस्त एक अन्य पुरुष बैठा है। (फलक-२१)।

एक दूसरे पट्टक में नर्तकी साधारण वेश में खड़ी दिखलाई गई है (फलक-२१)। मृण्पट्टकों पर वीणा के अतिरिक्त ढोलक, मृदंग तथा बाँसुरी आदि बाजे दीख पड़ते हैं।

राजकीय समाज के विषयों की ओर प्राचीन काल के भारतीय कलाकार सदैव से उदासीन रहे हैं। जब ऐसे विषय पाषाण पर स्थान न पा सके तो मृण्कला में तो उनके लिए स्थान निकलना असम्भव ही था। किन्तु कौशाम्बी की मृण्कला में दो चार उदाहरण ऐसे हैं जिन्हें कि राजकीय विषय माना जा सकता है। एक मृण्पट्टक की पादपीठिका के ऊपर सादे वेश में कोई स्त्री खड़ी है। उसके पीछे छत्र तथा चँवर डुलाती परिचारिकाएँ हैं। सम्भव है यह उदयन की किसी रानी का चित्रण हो।

वत्स नरेश उदयन के जीवन की कई मनोरंजक घटनाएँ साहित्य में बिखरी पड़ी हैं। उदयन भगवान् बुद्ध के समकालीन थे। किन्तु वत्स राज के जीवन की घटनाएँ उनके निधन में कई सौ वर्षों तक चलती रहीं। उदयन संस्कृत भाषा के चार प्रमुख नाटकों में अभिनेता के रूप में आये हैं। कौशाम्बी के मृण्कारों ने भी इन कहानियों से प्रेरणा ली और उन्हें अपनी कला के लिए विषय चुना। कौशाम्बी से प्राप्त दो मृण्पट्टकों में उदयन द्वारा वासवदत्ता हरण का दृश्य अंकित है (फलक-२२)। प्रतिज्ञा यौगंधरायण में उदयन द्वारा अवंति नरेश महासेन की पुत्री वासवदत्ता के हरण की अनूठी कहानी लिखी है। इस हरण का बड़ा सुन्दर दृश्य इन पट्टकों पर अंकित है। पट्टक में उदयन वासवदत्ता तथा विदूषक बसंतक भद्रावती हथिनी पर सवार होकर अवंति से भाग रहे हैं। पीछे से महासेन के सैनिक उनका पीछा कर रहे हैं। बसंतक सिक्कों को बिखेर रहा है। सैनिक उनको उठाने में व्यस्त हो जाते हैं और इसी बीच उदयन अवन्ति की सीमा को पार कर लेता है। पट्टकों में जंजीर से बँधा हाथी भी प्रायः दीख पड़ता है। सम्भव है यह महासेन का पागल हाथी नालागिरि हो, जिसे कि अपनी वीणा से मुग्धकर उदयन ने वश में किया था।

कुछ पट्टकों में सपक्ष सिंह मनुष्यों के साथ लड़ते दिखाई देते हैं। सपक्ष सिंहों के चित्रण की परम्परा निःसन्देह पश्चिमी एशिया की देन है।

कौशाम्बी से विदेशी पुरुषों के अनेक सिर प्राप्त हुए हैं (फलक २३)। यह तो ज्ञात है ही कि कौशाम्बी एक व्यापारिक नगर था। दारा से लेकर वर्त्तमान काल तक भारत का विदेशों से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध रहा है। यूनानी, शक, पहलव, हूण आदि-आदि जातियों ने इस देश पर बराबर धावे किये, किन्तु ये जातियाँ केवल अंधड़ के रूप में ही इस देश में आईं। वे स्थायी रूप से कभी भी यहाँ अपने पग नहीं जमा सकीं। किन्तु उनके आगमन से कुछ विदेशी तत्व अवश्य यहाँ की संस्कृति में प्रवेश कर गये। इन सिरों की भावभंगिमा तथा शिरोभूषा सर्वथा विदेशी है। इनकी बनावट में भी बड़ी कुशलता दिखलाई गई है। दो खंडित पट्टकों (फलक २७) में घुँघराले बाल पहिने नर्त्तकों का भी चित्रण है।

इनके अतिरिक्त कौशाम्बी की मृण्कला में अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जिन पर अंकित विषयों को पहिचानना कठिन है। एक दानवी पुरुष द्वारा स्त्री को थामने का दृश्य बड़ा ही विचित्र है। यह विषय कई टुकड़ों के अध्ययन से रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत किया जा सका है। मृण्कला में लेख नहीं के बराबर है। किन्तु कौशाम्बी से दो मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। जिनमें लेख अंकित हैं इनमें एक ठिकरा तो अमेरिका के बोस्टन संग्रहालय में पहुँच गया है और दूसरा प्रयाग म्यूनिसिपल संग्रहालय में है। हमारे संग्रह के ठिकरे पर दो पंक्तियों में 'गणिक-उदयस्य' लिखा है (फलक २५)।

एक बड़ी मृण्मूर्ति के केवल पैर मात्र बचे हैं। इनके बीच वृषभ का सिर सा दीख पड़ता है। हो सकता है यह मूर्ति महिषासुरमर्दिनी की रही हो। मृण्पट्टक, जिनमें 'पूर्णघट' तथा पीठ से पीठ मिलाकर दो सिंह खड़े हैं, भी महत्वपूर्ण उदाहरण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशाम्बी के मृण्कारों ने स्त्रियों की मूर्तियाँ बनाने में विशेष कुशलता दिखलाई है। उनके आभूषणों तथा वस्त्रों को सुन्दर से सुन्दर रूप में दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। साड़ियों की परतों से ज्ञात होता है कि वत्स देश के निवासी अति महीन कपड़े का प्रयोग करते थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में वत्स देश के महीन कपड़े का उल्लेख किया है। आभूषणों में कई प्रकार के दल प्रयुक्त होते रहे होंगे। कौशाम्बी के खण्डहरों से अनेक प्रकार की गुरियाएँ तथा मनके प्राप्त हुए हैं। अंगुत्तर निकाय से भी स्पष्ट है कि कौशाम्बी में कई प्रकार के दलों का प्रयोग होता था।

कौशाम्बी के खण्डहरों से पाँसे, तोल के बटखरे, खेलने की गोलियाँ, झुनझुने आदि भी मिले हैं। जान पड़ता है कौशाम्बी के निवासी आमोद प्रमोद में यथेष्ट भाग लेते थे। उद्यान-यात्रा (पिकनिक्स) भी वे समय-समय पर करते थे। एक मिट्टी के बने रथ के ऊपरी भाग में उद्यान यात्रा का दृश्य है। इसमें गद्दा बिछा कर कुछ व्यक्ति प्रेम-क्रीड़ा, संगीत तथा नृत्य में तल्लीन दीख पड़ते हैं। साथ में विदूषक भी है। बीच में एक बड़ी थाली पर रोटियाँ, मूली, केला तथा अन्य खाद्य-पदार्थ रक्खे हैं (फलक-२६)। पशु-द्वन्द्व प्रदर्शन की प्रथा भी कौशाम्बी में प्रचलित थी। एक पट्टक में सपक्ष सिंह तथा हाथी का द्वन्द्व चित्रित है। मल्ल-युद्ध तथा अन्य कसरतें भी लोगों को पसन्द थीं। कौशाम्बी से प्राप्त एक गोल फुलके (जो पटना संग्रहालय में चला गया है) में मल्ल-युद्ध का दृश्य अंकित है। श्री जिनेश्वरदास जी के संग्रह में एक मिट्टी का बना भीमकाय पुरुष, जिसको कोई दूसरा मनुष्य भी थामे था, एक लोहे के छड़ को मोड़ता दिखलाया गया है।

मृच्छ कटिकों की तो कौशाम्बी में भरमार है। प्राचीन भारत में आवागमन के साधनों में रथ तथा बैल गाड़ियों का प्रयोग होता था। कौशाम्बी के कुम्भकारों ने इनको गाड़ियों के रूप में ही बनाया है। इन गाड़ियों में सामने की दीवार पर या तो कमल का अलंकरण है या घोड़े या बैल अंकित किये गये हैं। श्री रामचन्द्र टंडन के संग्रह में एक गाड़ी ऐसी है जिसमें दोनों ओर से घोड़े दौड़ते दिखलाये गये हैं (फलक-२५)। कुछ गाड़ियाँ भेड़ा, मगर आदि-आदि पशुओं के शरीर से ही बनाई गई हैं। एक दो उदाहरणों में तो गाड़ियों का अगला भाग तो मानव आकृति का है तथा पिछला पक्षियों की दुम जैसा। गाड़ी के पहियों में ५ प्रकार का अलंकरण प्रायः दीख पड़ता है। इनकी सुन्दरता देखते बनती है।

कौशाम्बी से अनेक पशु पक्षियों की आकृतियाँ भी मिली हैं। इनमें कुछ तो हाथ से तथा कुछ ढाचों द्वारा निकाले गये हैं। सिंह, वृषभ, मकर, कछुए, गिलहरी आदि-आदि का विशद चित्रण कौशाम्बी में हुआ है। पशु आकृति में बने झुनझुने कौशाम्बी में मिले हैं।

उपसंहार

इस छोटे से लेख में कौशाम्बी मृण्कला के सभी उदाहरणों का वर्णन करना कठिन है। इनका निर्माण काल ई० पू० ३०० से लेकर ६०० ई० तक है। काल के इस लम्बे पैमाने में इन मृण्मूर्तियों का निर्माण हुआ। इस काल में भारतीय इतिहास ने भी कई चढ़ाव-उतार देखे। रक्त का बहाव भी हुआ, षड्यन्त्रों की रचना भी हुई, शांति युग का जन्म हुआ, सुख-सम्पदा कभी लुप्त हुई तो कभी प्रकाश में आई। इस उलझी पृष्ठभूमि में हमें कौशाम्बी की मृण्मूर्तियों की परीक्षा करनी है। इस काल की ऐतिहासिक सामग्री शृंखलाबद्ध नहीं है। यूनानी लेखकों, पतंजलि के महाभाष्य, कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र, रामायण, महाभारत, बौद्ध जातकों, कामसूत्र तथा भास और कालिदास के नाटकों में इन विभिन्न युगों की कुछ छाया मिल जाती है। वात्स्यायन का कामसूत्र हमारे लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह मान्य है ही कि काम सूत्र की रचना ईसा की तीसरी तथा चौथी सदी के लगभग हुई थी। बाहरी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध होने तथा देश की तत्कालीन संमृद्धि के समन्वय से कला कौशल को नवीन प्रेरणा मिली। वात्स्यायन ने नागरिक के दैनिक कार्यक्रम या जीवन का जो विवरण दिया है उसका बहुत कुछ आंशिक प्रतिबिम्ब कौशाम्बी की मृण्मूर्तियों पर भी उतरा है। वास्तव में इस युग में गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी का जीवन अति कलामय बन चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा पिछले अध्यायों में उल्लेख किया गया है कौशाम्बी के निवासी कला प्रेमी थे। हुयेन-सांग ने भी लिखा है कि व्यवहार में थोड़ा क्रूर होते हुए भी यहाँ के निवासी कला तथा कौशल से प्रेम करते थे। पिछले वर्षों में वहाँ के खण्डहरों से इस प्रेम की साक्षी रूप कई दर्शनीय तथा अलभ्य वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। कला के उपासक विस्मृति के गर्भ में अन्तर्धान हो गए, किन्तु उनकी व्यवहृत वस्तुएँ रह गई हैं। इस दिशा में मूर्त पदार्थ मानव से अधिक स्थायित्व प्राप्त करते हैं।

महाकवि भास के नाटकों, कामसूत्र तथा ललित विस्तार में जिस समाज की कल्पना हुई है उसी का दिग्दर्शन अधिकतर कौशाम्बी की मृण्मूर्तियों में मिलता है। इन मृण्मूर्तियों में एक विशाल जन समाज के व्यक्ति राजा, महाराजा, रानी, राजकुमारियाँ, कला-कौशल विशेषज्ञ, नर्त्तकियाँ, गणिकाएँ, परिचारिकाएँ, घटिकार (कुँभकार), मालाकार, विदूषक, बौने तथा ऊँच-नीच सभी व्यवसायों के अनुगामी हैं।

अति प्राचीन काल से इस देश के निवासियों ने वेशभूषा की ओर विशेष रुचि प्रदर्शित की है। कौशाम्बी की मृण्मूर्तियों में कंठहार, बाजूबन्द, कड़े, मेखलाएँ आदि-आदि बड़ी कलात्मक हैं। पुरुष शरीर पर प्रायः धोती पहिनते थे तथा ऊपरी भाग या तो दुपट्टे से ढँका जाता था या खाली ही रहता था। सिर पर स्त्री-पुरुष प्रायः पगड़ी बाँधते थे। स्त्रियाँ भी मेखला तथा पटके से थमी साड़ियाँ पहिनती थीं। उनका वक्ष प्रायः खुला ही रहता था।

कौशाम्बी के नागरिक विभिन्न उदाहरणों से अपने शरीरों को सजाते थे। वे लोग दर्पण का निरन्तर प्रयोग करते थे। कई मृण्पट्टकों पर परिचारिकाएँ दर्पण लिए हुए हैं। बौद्ध जातकों से ज्ञात होता है कि दर्पण प्रकाशवान सुवर्ण तथा साधारण काँच के बना करते थे। केशकलापों की ओर यहाँ की स्त्रियों का विशेष ध्यान जान पड़ता है। वे प्रायः लम्बे बालों को रखती थीं। उन्हें या तो एक या दो जूड़ों में सँवारा जाता था या वे घुँघराले काढ़ दिए जाते थे।

संगीत तथा नृत्य का कौशाम्बी में विशेष प्रचार था। परम्पराओं द्वारा प्रत्यक्ष है कि उदयन वीणा-वादन में दक्ष थे और उनके राजप्रासाद में ५०० नर्त्तकियाँ रहती थीं। मृण्पट्टकों के कई दृश्यों में संगीत तथा नृत्य अङ्कित हैं। सम्भव है उस समय भी भ्रमण करनेवाली टोलियाँ यहाँ आती जाती रही हों। जातकों में गुत्तिल तथा सूसिल के बीच संगीत प्रतियोगिता का उल्लेख है। अग्निमित्र के राजप्रासाद में भी एक बड़ा संगीत भवन था। इनसे ज्ञात होता है कि उस काल में सङ्गीत की वृद्धि के लिए अनेक साधनों का प्रयोग होता था।

लामाओं की पूजा-विधि

लामा अंगरूप लाहुली

प्राचीन काल में तिब्बत छोटी-छोटी रियासतों में बँटा हुआ था। ई० सन् ५५७ में सम्राट् स्रोचनगेम्बो का जन्म हुआ। पिता के मरने के बाद तेरह वर्ष की अवस्था ही में वह एक छोटे राज्य का स्वामी हुआ। वह बालक धीरे-धीरे अपनी राज्य-शक्ति बढ़ाने लगा और अचिरकाल में ही समस्त तिब्बत का सम्राट् हो गया। सम्राट् का प्रिय अमात्य थोनमी था। जो सम्राट् के निर्देश पर तिब्बती लिपि का नवनिर्माण किया। अमात्य थोनमी के प्रभाव तथा सम्राट् की दोनों रानियों के बौद्ध होने के नाते सम्राट् को स्वयं बौद्धधर्म ग्रहण करने में देर न लगी। उसके साम्राज्य काल में तिब्बत में बौद्धधर्म बड़ी तेजी से फैला। जो उत्पन्न है वह सदा स्थिर नहीं रहता। जैसे-जैसे बौद्ध धर्म तिब्बत में फैला था वैसे-वैसे उसमें विकार भी आने लगा। इस समय तिब्बत में बोन धर्म प्रचलित था, जिसे हम दूसरे शब्दों में काला धर्म कह सकते हैं, जो समस्त तिब्बत में बड़े वेग से फैल रहा था। बोन सम्प्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाय वाले अभिचार करते थे। जैसे, अभिचार द्वारा मृत व्यक्ति का कृत्रिम रूप बना कर प्रश्न पूछना, कुछ समय के लिये रोगियों का रोग दूर करना तथा भविष्यवाणी करना इत्यादि मनुष्यों को ठगने के सारे कार्य कर रहे थे। यही समय था कि भारत से आचार्य शान्तरक्षित बौद्धधर्म प्रचारार्थ तिब्बत पहुँचे, तो बोन सम्प्रदाय वालों ने सारे तिब्बतवासियों को अपने अभिचारों के बल कठपुतली बना रक्खा था। इसलिये आचार्य शान्तरक्षित का वहाँ बहुत कम प्रभाव पड़ा। इस उपद्रव को शान्त करने के लिये भारत के महायान गुरु पद्मसंभव को तिब्बत बुलाने का परामर्श आचार्य शान्तरक्षित ने सम्राट् स्रोंचन को दिया। गुरु पद्मसंभव के वहाँ पहुँचने पर मैत्री और योगबल से सारा उपद्रव शान्त हुआ। इसलिये गुरु पद्मसंभव की तिब्बत में बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। इसी बीच महायान बौद्धधर्म का तिब्बत में सूत्रपात हुआ। जो आज भी समस्त तिब्बत, चीन, जापान, भूटान, लद्दाख तथा लाहुल में फैला हुआ है, जिसके अनुयायियों को हम भारतवासी लामा कहकर सम्बोधित करते हैं। लामा लोग जप-तप तथा पूजा-पाठ के अति प्रेमी होते हैं। वे हर समय इन्हीं कार्यों में व्यस्त रहते हैं। यहाँ तक कि चलते-फिरते भी हाथ में मानी (चक्र) या माला लिये तथा मुँह से 'ॐ मणि पद्मे हूँ' कहते हुए जाते हैं। लामाओं का पूजा विधि को देखकर प्रतीत होता है कि सचमुच लामा लोग कितने भक्त और पुण्य के इच्छुक होते हैं।

क्रमशः लामा विशेषज्ञों ने पूजा-विधि में अनेक सुधार किये। सम्प्रति इसके फलस्वरूप इतनी पूजा-विधियाँ प्रचलित हैं जिनका वर्णन करना ही सम्भव नहीं। यही कारण है कि आज तिब्बत के मठों और विहारों में विभिन्न रूप से पूजा-पाठ होता है। वास्तव में लामा नियमों के अनुसार पूजा की आठ वस्तुयें प्रधान समझी जाती हैं परन्तु सम्प्रति इनमें भी वृद्धि की गई है। जो ये हैं —अर्घ, जल, पुष्प, धूप, आलोक, गन्ध, नैवेद्य तथा आठवाँ शब्द पूजा। अर्घ पीने के जल को कहते हैं। जो पूजा के समय पूजा-वेदी पर एक शुद्ध पात्र में रखा जाता है। जल पैर पखारने के पानी को कहा जाता है जो पाँच गन्धों से युक्त होता है। पुष्प, धूप, आलोक तथा गन्ध यह सब सामग्री वेदी पर शुद्धपात्र में क्रमशः रखी जाती है। नैवेद्य भोजन सम्बन्धी पूजा सामग्री से अर्थ रखता है। अन्त में शब्द पूजा होती है जिसमें अनेक प्रकार के बाजे बजाये जाते हैं। ये बाजे केवल पूजा के समय ही बजाये जाते हैं। मोद-प्रमोद तथा नृत्य-गान के अवसर पर नहीं। वास्तव में उक्त प्रत्येक पूजा-सामग्री का कम महत्व नहीं समझा जाता, तथापि लोग आलोक की पूजा को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इसलिए लामा देशों में लोग प्रदीप-पूजा विशेष रूप से किया करते हैं। तिब्बत के बड़े-बड़े विहार जैसे लासा जोखङ्, टाशीलुन्पो, गदन तथा समये इत्यादि विहारों में निरन्तर वर्षों तक प्रदीप जलता रहता है। इन विहारों में बहुधा सोने-चाँदी के बड़े-बड़े प्रदीप पात्र में दो-दो, चार-चार मन तक घी भर दिया जाता है। तिब्बत में तेल-उत्पादन का कोई साधन नहीं है इसलिए प्रदीप घी से जलाये जाते हैं। यहाँ पर घी की अपेक्षा तेल बहुत मँहगा मिलता है।

लामा देशों में हर घर में एक कमरा मन्दिर के लिए सुरक्षित रहता है। जहाँ भगवान् बुद्ध तथा अन्य महायान की मूर्तियाँ (जैसे अवलोकितेश्वर, वज्रधर, पद्मसंभव, तारा इत्यादि) विद्यमान रहती हैं, जिसमें घर वाले नित्य पूजा किया करते हैं। घर में मन्दिर बनाने का तात्पर्य यह है कि भक्तजन अथवा घरवाले प्रतिदिन नियमतः पूजा कर सकें। लामाओं के अथवा यों कहिए कि महायानियों के विहारों में यह देखकर आश्चर्य होगा कि इन विहारों में जल की पूजा इतनी अधिक क्यों होती है? पूजा तो अपने पुण्य कमाने के लिए की जाती हैं, न कि भगवान् तथा मूर्तियों के लिए। जल में हम लोगों का लेशमात्र भी मात्सर्य नहीं रहता, अतः जल की पूजा महाफल दायक होती है। मन में मात्सर्य का भाव लेकर मोती, हीरा, मणि तथा सोना-चाँदी इत्यादि जो भी बाहरी दिखावट के लिए पूजा करेगा, उसे हम मुक्त-कंठ से कह सकते हैं कि वह पूजा व्यर्थ है। लेशमात्र भी फलदायी नहीं।

धम्मपद में भगवान् ने कहा है—

मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ;
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥

अर्थात् सहस्र (दक्षिणायज्ञ) से जो महीने-महीने सौ वर्ष तक यजन करे, और यदि परिशुद्ध मनवाले एक (पुरुष) को एक मुहूर्त ही पूजे, तो सौ वर्ष के हवन से वह पूजा ही श्रेष्ठ है।

जहाँ पश्चिमी भारत का सबसे बड़ा बौद्ध संघ निवास करता था

कन्हेरी का बौद्ध विहार

श्री बालचन्द्र जैन

भगवान् गौतम बुद्ध का मध्यम मार्ग लौकिक जीवन के लिये इतना सुगम, स्वस्थ और व्यावहारिक सिद्ध हुआ कि उनके जीवनकाल में ही और उनके निर्वाण के अनन्तर भी समस्त भारत में प्राची से प्रतीची तक उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई और बौद्धधर्म का चतुर्दिक प्रसार हो गया।

भारत के पश्चिमी प्रदेशों में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित शिल्प और स्थापत्य इतनी अधिक संख्या में प्राप्य हैं कि उनसे यह भली भाँति प्रमाणित हो जाता है कि प्राचीन समय में पश्चिमी भारत में बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार रहा है।

पश्चिम समुद्र और पश्चिमी घाट पर्वतमालाओं के बीच की भूमि को प्राचीन काल में अपरान्त वा कोकण कहा जाता था। कन्हेरी, जिसका प्राचीन नाम कृष्णगिरि है, इसी प्रदेश के अन्तर्गत है। उपरान्त में बौद्ध धर्म के प्रवेश पाने के सम्बन्ध में बौद्ध ग्रंथों में जो चर्चा मिलती है, उससे विदित होता है कि सूर्पारक (वर्तमान सोपारा) के नगरश्रेष्टि पूर्ण ने एक बार काशी के निकट से आये व्यवसायियों के मुख से बौद्ध धर्म की गाथाएँ सुनीं और उनसे वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने भगवान् बुद्ध का शिष्य बन जाने का निश्चय कर लिया। अतः वह सोपारा से चलकर श्रावस्ती पहुँचा, जहाँ भगवान् गौतम बुद्ध आवास कर रहे थे।

भगवान् बुद्ध से पूर्ण को शिष्य-दीक्षा मिल गई और अल्प समय में ही संघ में उसे उच्च स्थान भी प्राप्त हो गया। अब उसे अपरान्त वा कोकण देश में बुद्ध के उपदेशों का प्रचार करने की तीव्र इच्छा हुई और इस कार्य के लिये उसने भगवान् से आज्ञा माँगी। बुद्ध ने उक्त कार्य में उपस्थित होनेवाली समस्त कठिनाइयों से पूर्ण को अवगत कराया और कहा कि कोकण के जंगली लोगों के बीच धर्म-प्रचार करना कोई सरल कार्य नहीं है।

लेकिन पूर्ण तो हर प्रकार से कटिबद्ध हो चुका था। उसने सब प्रकार के कष्टों को सहने का वचन दिया और अन्त में गौतम बुद्ध को उसे वैसा करने की अनुमति देनी ही पड़ी। पूर्ण ने अपरान्त प्रदेश में आकर वहाँ के निवासियों के बीच धर्मदेशना की और बहुत से विहार स्थापित किये।

कन्हेरी का ऐतिहासिक महत्त्व

कन्हेरी बम्बई के उपनगर बोरिवली से ४ मील की दूरी पर स्थित वन प्रदेश है। बम्बई से बोरिवली रेल अथवा मोटर द्वारा एक घंटे में पहुँचा जा सकता है। इधर चार-पाँच वर्षों से बम्बई की सरकार ने बोरिवली से लेकर कन्हेरी की गुफाओं तक के विस्तृत वन प्रदेश को उपवन बना दिया है, जो भारत का प्रथम राष्ट्रीय उपवन कहा जा सकता है।

कन्हेरी कृष्णगिरि का अपभ्रष्ट रूप है। कृष्णगिरि अपनी विशेषताओं और पवित्रता के कारण बौद्धधर्म के प्रचार से पूर्व भी भारत में प्रसिद्धि पा चुका था। महाभारत के वनपर्व और हरिवंश पुराण के विष्णुपर्व में कृष्णगिरि का उल्लेख मिलता है। नासिक के निकट स्थित गुफासमूह की तीसरी गुफा में प्राप्त शिलालेख से विदित होता है कि कृष्णगिरि यद्यपि छोटी-सी पहाड़ी ही थी लेकिन उसे शाक्य, विंध्य और मलय पर्वतों के समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्याति प्राप्त हो चुकी थी और उसे उनकी बराबरी का स्थान प्राप्त था।

कन्हेरी का वैभवकाल

शातवाहन वंशी आन्ध्र राजाओं और उनमें भी मुख्यतः गौतमीपुत्र द्वितीय का शासनकाल कन्हेरी के वैभव का स्वर्णकाल रहा है। कन्हेरी के ५० शिलालेखों में से २० शिलालेख इस काल के हैं, जिनमें राजाओं, मन्त्रियों और व्यवसायियों द्वारा गुफाओं, कुण्डों, भूमि और नकद द्रव्य के दान किये जाने का लेखा मिलता है। कन्हेरी का मुख्य और उत्कृष्ट चैत्य, जिसे गुफा क्रमांक ३ कहते हैं, इसी काल में निर्माण कराया गया था। शातवाहन राजे ब्राह्मण थे। इन्होंने लगभग ४०० वर्षों तक दक्षिण भारत में वैभव संपन्न शासन किया तथा भारतीय कला और साहित्य की श्री वृद्धि में इनका विशेष योग रहा। बौद्ध-धर्म और बौद्ध-भिक्षुओं के प्रति ये लोग विशेष उदार थे और इन्होंने अनेक स्थानों में बौद्ध-विहार और चैत्य स्थापित करके उनके संचालन हेतु भारी धन समर्पित किया था।

ईस्वी ४ थी, ५ वीं और ६ ठीं शती में भी कन्हेरी का गौरव और वैभव पूर्ववत् चढ़ा-बढ़ा रहा। अनेक नई गुफाएँ इस काल में वहाँ निर्मित हुईं। नई गुफाएँ और नये स्तूप बनाये जाने के साथ-साथ पहले की बनी गुफाओं का जीर्णोद्धार किया जाना, इस काल की विशेषता रही।

सातवीं, आठवीं और नवीं शती में भी राजे-महराजे कन्हेरी के विहार को दान करते रहे और यह क्रम १२ वीं शती तक बराबर चलता रहा। शीलाहारों और यादवों के समय में भी, (यद्यपि ये लोग कट्टर शैवमतावलम्बी थे) कन्हेरी को कोई क्षति नहीं पहुँची, और न मुसलमानों ने ही आकर वहाँ कोई उपद्रव मचाया। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि ईस्वी सन् १५४० तक बौद्ध-भिक्षु निर्बाध रूप से वहाँ स्तूप आदि बनवाते रहे। लेकिन जब पुर्तगाली लोगों ने सन् १५३४ में वहाँ अपना अधिकार किया तो उन्होंने वहाँ निवास करने वाले साधुओं को जबर्दस्ती ईसाई बना लिया और इस प्रकार कन्हेरी का शताब्दियों से चला आया विहार समाप्त हो गया।

गुफाओं का परिभ्रमण

पश्चिम रेलवे के बोरिवली स्टेशन से ४ मील पैदल या ताँगा, बैलगाड़ी अथवा मोटर से तय कर घने जंगलों के बीच से हम कन्हेरी पहुँचते हैं। गुफाएँ पहाड़ी के ऊपरी भाग में खोदी गई हैं, इसलिये हमें ऊपर चढ़ना होता है।

बीहड़ रास्ते से होते हुए टूटी-फूटी सीढ़ियाँ चढ़कर हम गुफा क्रमांक १ के सामने जा पहुँचते हैं। यह गुफा पूरी नहीं बन पाई। निर्माता इसे चैत्य के रूप में बनाना चाहता था, लेकिन जो कुछ भी वह बना पाया, वह केवल दो खम्भे हैं और वे छत को सँभाले हुए हैं। इस गुफा की बनावट से प्रतीत होता है कि यह बहुत पुराने समय की है।

गुफा क्रमांक २, आड़ी-टेढ़ी गुफा है और वस्तुतः अनेक गुफाओं से मिल कर एक गुफा बन गई है, जिनकी बीच की दीवारें गिर गई हैं। इस गुफा में पत्थर के बने तीन स्तूप हैं। पिछली दीवार में बुद्ध की प्रतिमाएँ हैं और एक स्थान पर बोधिसत्व पद्मपाणि की आदमकद खड़ी प्रतिमा है।

गुफा क्रमांक ३ चैत्यगुहा है और कन्हेरी की समस्त गुफाओं में सबसे बड़ी, मुख्य और महत्व की गुफा है। इसकी शैली कार्ले की मुख्य गुफा से बिलकुल मिलती-जुलती है। इस गुफा की लम्बाई ८६॥ फुट, चौड़ाई ४० फुट और ऊँचाई ३७॥ फुट है। द्वार से प्रवेश करते ही एक विस्तृत आंगन मिलता है जिसके दोनों छोरों पर दो ऊँचे खंभे खड़े हैं। इसके बाद एक बरामदा पड़ता है। इसके दोनों ओर दो विशाल बुद्ध प्रतिमाएँ खड़ी हैं तथा सामने की दीवार में अनेक बुद्ध प्रतिमाएँ तथा सुन्दर यक्ष-यक्षी उरेहे हुए हैं। मुख्य द्वार से प्रवेश करके हम चैत्य में जा पहुँचते हैं जिसके पिछले छोर पर बीचोंबीच पाषाण का ऊँचा स्तूप खड़ा है। यहाँ स्तम्भों की सुव्यवस्थित पंक्तियाँ मन को मोह लेती हैं और उनके शीर्ष भाग पर के उरेहे चित्र तरह-तरह के दृश्य उपस्थित करते हैं। स्तूप पर चारों ओर चार आले हैं जिनमें कभी दीपक जगमगाया करते थे। इसके ऊपर का लकड़ी का छत्र अब नहीं रहा लेकिन उसके चिह्न लक्षित किये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक शिलालेख से विदित होता है कि राजा यक्ष श्री शातकर्णि, जिसे गौतमीपुत्र द्वितीय भी कहते हैं, के समय में सिन्ध प्रान्त के दत्तमिति नगर के गजसेन और गजवीर नामक दो व्यवसायी भाइयों ने इस गुफा का निर्माण कराया था और यह बौद्धों के भद्रायनी सम्प्रदाय को समर्पित कर दी गई थी।

गुफा क्रमांक ११, जिसका पुराना नम्बर १० है, दरबार गुफा के नाम से ज्ञात है। कन्हेरी की गुफाओं में लम्बाई चौड़ाई के हिसाब से इसका दूसरा स्थान है। इसकी बनावट सबसे निराली है।

इससे आगे चलकर कई ऐसी गुफाएँ हैं जो रहने के काम में लाई जाती रही हैं तो भी अद्भुत शिल्प से परिपूर्ण हैं। इन सब में कतार की कतार बुद्ध मूर्तियाँ हैं जिनमें बुद्ध कमल पर बैठे हैं।

गुफा क्रमांक ६७, ग्यारह नम्बर की गुफा के समान विस्तार में काफी बड़ी है पर उससे कुछ कम। इसकी भीतरी दीवारों पर बुद्ध और पद्मपाणि की बहुत्त सी मूर्तियाँ उरेही हुई हैं।

दो वस्तुएँ और कन्हेरी में विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो ११ मस्तकवाली अवलोकितेश्वर प्रतिमा और दूसरी गुफा नम्बर ५८, जिसका प्राचीन नाम वहीं खुदे शिलालेख में 'सागरप्रलोकन' अंकित है। वास्तव में यह सागर प्रलोकन गुफा है क्योंकि यहाँ से सागर का सुन्दर दृश्य अवलोकन किया जा सकता है।

कन्हेरी के ये गुफा-मन्दिर वास्तव में भारतीय स्थापत्य कला के अद्भुत नमूने हैं। दुर्भाग्य की बात है कि पत्थर के अधिक नमकदार होने के कारण ये विनष्ट होते जा रहे हैं। कहीं-कहीं तो पत्थर इतना गल गया है कि आप दीवार को हाथ लगायें तो मिट्टी के ढेलों की भाँति पत्थर के टुकड़े आपके हाथ में आ जाएँ। इधर कुछ समय से पुरातत्व विभाग का ध्यान कन्हेरी के उद्धार की ओर आकृष्ट हुआ है और राजा बलदेवदास बिड़ला ने इस कार्य के लिए १० हजार रुपये का दान भी किया है। लेकिन जो कार्य हो रहा है, उसकी गति बहुत ही धीमी और असंतोषजनक है। इतने ही से सन्तोष कर लेना उचित प्रतीत नहीं होता।

तथागत की करुणा

कुमारी विद्या

वरदान बनी उनकी करुणा,
करने आई जग का मंगल।
त्रैताप शान्त करने के हित,
बन आई थी शीतल निर्मल॥
दुख द्वेष अग्नि की लपटें,
होती जाती थीं अस्थिर।
मानव मन काँप उठा था,
भीषण ज्वाला में घिर-घिर।
निर्वासित कर जग व्यथा सकल।
बिखरी उनकी करुणा अविरल॥
लख हिंसा की हार धरा,
हर्ष मयी हो बनी रुचिर।

प्रहसित मुखरित था अंतरिक्ष,
पा मंजुल निधि सुन्दर चिर।
उन निधि की आभा सी करुणा,
पा धन्य हो गया भूतल॥

अब भी चाह रहा उसको,
व्याकुल होकर सचराचर।
पीयूष वर्षिणी वाणी,
कर दे जीवन पथ मनहर।

करुणा की शान्त लहरियाँ।
बितरें जल अविरल पल-पल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरस्मरणीय 'वह एक दिन !'

भिक्षुसंघ का नैसर्गिक सान्निध्य

श्री विजय श्रीवास्तव

[गतांक से आगे]

मोटर गाड़ियों में दस मिनट में ही सारनाथ के मनोरम आध्यात्मिक स्थान का चक्कर पूरा करके लौटनेवालों में भी कम श्रद्धा की भावना नहीं जो बरबस ही उन्हें ६-७ मील से यहाँ खींच लाती है। 'बहरी तरफ' के शौकीन अथवा 'साफापानी' के अभ्यस्त काशीवासियों के लिये भी सारनाथ का स्थान है, यह संतोष की ही बात है। तथागत के प्रथम शिष्य पंचवर्गीय भिक्षु संभवतः यहीं के निवासी रहे हों जिन्होंने सुजाता के खीर ग्रहण करते देख भगवान् का साथ त्याग कर दिया था। खीर और 'सिलबट्टे का घोल' में बहुत अन्तर है। अन्यथा शिवजी के सिर के ऊपर जल कुण्ड लटकाने का प्रयोजन ही क्या हो सकता है। द्वि-चक्र आरूढ़ अनेक संभ्रान्त लिखे पढ़े सज्जनगण को तो अपना वाहन लिये दिये प्राचीन खण्डहरों के कृश-काय को रौंदते आते जाते भी देखा है। मना भी किया है धृष्टतावश; पर सम्भवतः उनके लिये किसी के सुझाओं का कोई मूल्य नहीं। पुरातत्व विभाग का कोई आदमी अवश्य रहना चाहिये वहीं निकट में जो कम से कम साइकिलों को वहीं बाहर ही रखवा ले। या फिर लिखे हुये 'बोर्ड' इतने बड़े बनवायें कि लोगों की आँखें उन्हें दूर से ही देख सकें अथवा उन्हें देखने के लिये मजबूर करें। या ऐसा करने वाले को उचित दण्ड भी दिया जाय। अभी भी हम अपने देश की कला अथवा ऐतिहासिक स्थानों का महत्व नहीं समझ पाये हैं। यदि हममें इतनी योग्यता नहीं है कि हम इन कला के अमूल्य आगारों का यथेष्ट सम्मान कर सकें तो अच्छा है कि हम वहाँ न जायँ। दुःख होता है यह देखते हुये कि हम साधारण से नियम भी पालन नहीं कर सकते। हमें विदेशों से अभी बहुत कुछ सीखना है, ग्रहण करना है। उनके बाह्य रूप का तो हमने नकल भलीभाँति कर लिया है पर अभी उनके बाह्य आवरण के नीचे छिपा उन्नत हृदय नहीं देख पाये हैं।

मन के मूक शब्द सुनाई पड़े—सारनाथ के नैसर्गिक तथा प्रेममय वातावरण में यहाँ का भिक्षु समाज अपने जीवन को सत्य तथा प्रेम के निर्मल स्रोत में बहाकर बुद्धत्व के निकट चलता जा रहा है। हमारे कुछ क्षणों के आनन्दानुभव को सदा ही, प्रतिक्षण आस्वादन करनेवाले इन काषाय चीवर धारण किये भिक्षु-संघ के सदस्यों का जीवन सार्थक है। तथागत के प्रेम-सन्देश को आज के पीड़ित मानव समाज को शान्ति प्रदान करने के लिये अत्यन्त ही आवश्यक है। इन्हें देखकर स्वतः ही ढाई हजार वर्ष पूर्व का जीवन स्मरण हो आता है।

यह भी देखा है कि प्रायः कुछ लोग शौकिया या अन्य किसी ऐसे ही कारण से चीवर के ही रंग का वस्त्र धारण करते हैं, हो सकता है वे बौद्धधर्म से सहानुभूति रखते हों और उसकी आस्था भी कम न हो; परन्तु उन्होंने कभी विचार करने का कष्ट किया है कि 'चीवर' कोई ऐसा ही साधारण वस्त्र नहीं अथवा इसका पाना सरल नहीं जितना हम सोचते हैं। इसका महत्व है और इसे ग्रहण करने के लिये उपयुक्त अधिकारी भी बनना पड़ता है। अन्यथा दिखाने के लिये चीवर का धारण करना कुछ अर्थ नहीं रखता तथा उसका अपमान भी होता है। इसी कारण इसे 'कठिन-चीवर' भी कहा गया है। आस्था को दिखाने की आवश्यकता नहीं।

रामतीर्थ आश्रम के निकट हमने अपने सारनाथ के शुभेच्छुओं से विदा ली और हम मित्र-द्वय आगे बढ़े। स्टेशन के निकट एक रिक्शेवाला था, पर वह पाँडेपुर तक ही जाना चाहता था इससे वह हमारा अधिक सहायक न हो पाया। सात बज चला था। चाँदनी की शीतल-शक्ति का आनन्द लेते हुए पुनः निश्चेष्ट-होते-प्रायः पथ पर अग्रसर होना ही अधिक उपयुक्त जान पड़ा। राहुल जी का शब्द 'घुमक्कड़' याद आ गया। बीच में रिक्शे की भी आशा अधिक न थी। रात की उज्ज्वल चाँदनी पूर्ण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योति से चमकने लगी थी अब तक। वहीं दूकान से पान चबा हम चले रास्ते पर—घूम कर पीछे देखा—भिक्षुसंघ नित्य की भाँति सायंकालीन वायु-सेवन के लिए निकल पड़ा था। चाँदनी के प्रकाश में ऐसा लगा कि उतने ही बुद्ध-आकाश से पृथ्वी पर उतरते चले आ रहे हैं।

पास से एक मोटर निकल गई··दूसरी भी···तीसरी और चौथी भी, जो कि जीप थी जो जरा बेढंगे तौर पर सवारियों से वेष्टित थी। ख्याल आया कि कदाचित् चेतना-हीन कल में कुछ अस्वाभाविकता आ जाय तो यह चतुष्चक्रारूढ़ प्राणमय समाज बिना प्रयास अपने को आकाश की ओर टकटकी बाँधे-दशा में पृथ्वी पर फैले पायेगा। पर ऐसा सोचना भी ठीक न था और बातचीत आरम्भ करने की गरज से बोल पड़ा।

"इतने कई मोटर गाड़ीवाले....."

× × ×

चाँदनी रात में पैदल टहलना, चलना भला ही मालूम होता है जिस समय पूर्णचन्द्र की पीत सुषमा अपने अनगिनत रत्नों को बिखेरने लगती है। सुबह-शाम का वायु-सेवन स्वास्थ्यकर ही कहा गया है। और फिर कल्पना-प्रेमियों को तो रात्रि में हर चीज अमानवीय दीख पड़ती है—पेड़-पौधे किसी किसी विचित्र अपार्थिव प्राणी की याद दिलाने लगते हैं। कभी लगता है कोई पीछा कर रहा है, कभी आकाशीय संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है। अपने हृदय की धड़कन में हमें समस्त ब्रह्माण्ड का स्वर कर्ण-गोचर होने लगता है। और तभी भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में "या निशा सर्व भूतानी..." का गान किया है। तात्पर्य यह कि इस समय का चलना कुछ अखर नहीं रहा था जबकि प्रकृति की माया-माधुरी दिन भर के केलि-क्रीड़ा के उपरान्त अलसाती हुई सोने का उपक्रम कर रही थी। पर समय के अनुसार असामयिक ही तो जान ही पड़ा। मेरे एक वयोवृद्ध मित्र की बात याद हो आई जो उन्होंने बहुत साल पहले अपने चपरासी राहत मिंया से कहा था—"बड़े मिंया, तुम पैदल...से स्टेशन तक नहीं जा सकते और तुम्हारे भाई-बन्धु पैदल मक्का हो आते हैं।" मित्र एक अर्ध सरकारी दफ्तर में कार्य करते थे तथा अपनी कृपणता का कुफल राहत मिंया को चखने को मजबूर करते। कहना न होगा, उन्होंने कड़कती गर्मी की लू में राहत से स्टेशन पैदल जाने को कहा था। तो, यह तो समय-समय के हिसाब से होता है। राहत मिंया को अपनी नौकरी रखनी थी, वे चाहे पैदल गये और आये। पर इस समय तो कोई ऐसी बात थी नहीं। पर, कुछ, शायद "मूनस्ट्रोक" के भय से रात में चाँदनी का आनन्द न लेने पाते हों। दिन में तो कुछ लोग—सूर्य की प्रखर किरणों को शीतलता में परिणत करने के लिए—ब्रह्मरंध्र के ऊपर एक छोटा सा चौकोर टुकड़ा साफ कराकर उस पर मक्खन का लेप कर देते हैं। अच्छी सूझ है यह।

बातें करते हम रास्ते पर बहुत कुछ दूर निकल आये। एक रिक्शा दूर पर दिखाई पड़ा जो संभवतः बड़ी मस्त चाल से बढ़ता जा रहा था जैसे उसे कुछ प्रयोजन नहीं इस लोक से। गाना गाते हुए। सोचा रात तो बड़ी शीघ्रता कर रही है—और कल सवेरे ही उठना है भी। अन्यथा देर होने से विद्यालय में जवाब-तलब हो जायगा, दो चार मीठी बातें ऊपर से सुननी पड़ेंगी और इसी वजह से, सुबह की जल्दी इस समय ही अपना असर दिखाने लगी।

निकट पहुँच कर पूछा—"भई, कहाँ तक?"

"बाबू जहाँ तक जाय।" प्रश्न भी कुछ अजीब सा था। पर उत्तर दिया—"कचहरी"।

"आठ आना" सीधा-सा उत्तर प्राप्त हुआ, एक प्रश्न चिह्न के साथ। वह भी कुछ निर्लिप्त सा जान पड़ा। उसके निकट पैसे का महत्व नहीं ऐसा प्रतीत हुआ।

मेरे सह-घुमक्कड़ राजी न हुए। कहा—आधे रास्ते तो हम आ ही गए, अब क्या आठ आना और, हमें खींचते हुए कहा—चलो, अभी तो पहुँचे जाते हैं। एक क्षण पश्चात् पुनः पूछा कि शायद कुछ कंसेशन मिल जाय—"बिल्कुल ठीक" पर उत्तर मिला—"हमने तो ठीक ही कहा, आगे आपकी मर्जी। चलिए तो चलूँ, नहीं तो...।"

"ठीक है, ठीक है" मैंने बीच ही में रोक दिया और उसे आगे वाक्य पूरा करने देना उचित न समझा, क्योंकि वही मैं सुनना नहीं चाहता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने मित्र प्रधानजी को मैंने रिक्शे पर बैठाया और...फिर एक बार सारे दिन की कार्रवाई का स्मरण कर लिया गया। प्रधान जी बोलते चले जा रहे थे और मैं...मैं भी अपने हाँ-हाँ की आवाज स्वयं सुन रहा था। इन महाशय के कुछ गंभीर-बालक का-सा स्वभाव होने के कारण उनके मित्रों की संख्या भी कम नहीं। बात-चीत से तनिक भी प्रकट नहीं हो पाता कि उनके हृदय में कितना गाम्भीर्य है तथा एक ही शब्द पर हँसी से लोट-पोट भी कर दें। "मैं पैदल जाता हूँ तो घर ४-५ बजे पहुँच जाता हूँ, पर एक दिन बस से गया तो रात आठ बज गए और श्रीमती जी ने कहा कि आप पैदल ही आया करें" इत्यादि तो साधारण से उदाहरण हैं। और फिर एक दूसरे मित्र का स्मरण हो आया जो अपने या अन्य किसी के घर का एक-एक चिट्ठा डंके की चोट ऐलान करना न भूलेंगे। ये तो निरे बच्चे हैं—बिलकुल ही नादान जो यही नहीं जान पाता कि वह क्या कर रहा है या क्या कह रहा है। उसे आनन्द आता है केवल 'कुछ कहने' में क्योंकि "शब्द" उसके लिए एक नई वस्तु है जिसे पाकर वह प्रफुल्ल हो जाता है। लेकिन यहीं तक यह सीमित रहे तो ठीक अन्यथा हम इसे दूसरा नाम देते हैं—अविवेक। 'शब्द' उच्चारण से ही सृष्टि की उत्पत्ति का उल्लेख है। सृष्टि ही "माया" है तथा इसी का दूसरा नाम 'संसार' भी है। तथागत को संसार दुःखपूर्ण ज्ञात हुआ और उन्होंने इसके कारण तथा निरोध के उपाय भी बतलाये। क्या हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते कि संसार के दुःख, लड़ाई झगड़े केवल 'शब्दों' को ही लेकर खड़े होते हैं तथा शब्द के साधारण बाह्य अर्थ के पचड़े में पड़कर एक दूसरे का सिर तोड़ने के बदले यदि इसके मूल-तत्त्व को समझ जायँ तो शांति ही शांति है। वर्त्तमान समय के ख्यातिप्राप्त दार्शनिक श्री जे० कृष्णमूर्ति ने भी 'शब्दों' को ही हमारे सारे दुःखों का जड़ बतलाया है। साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि कलिकाल में 'नाम महत्व' का भी वर्णन है। श्री चैतन्य तथा गोस्वामी तुलसीदास ने तो 'शब्द' [नाम] की ही महिमा-गान करके संसार के बंधनों से मुक्ति पाने का मार्ग दिखाया है। यदि थोड़ा विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि 'शब्द' ही हमारी स्मृति है, 'स्मृति' ही जीवन है अर्थात् मानव-अस्तित्व ही 'स्मृति' की नींव पर आश्रित है। स्मृति से अलग हमारा अस्तित्व नहीं। 'स्मृति' भी 'जीवन' है तथा 'विस्मृति' को हम कह सकते हैं—'मृत्यु'। दोनों ही हैं एक ही तत्त्व, पर अवस्था में विभिन्नता है केवल।

× × ×

बस में केवल ५ जन थे। दो तो हमीं, तीन भद्र जन और भी। थे तीन एक एक सीट पर बैठ गये, जिनमें एक जो जरा अधेड़ वयस के होंगे, आगे की सीट पर बैठे। हाथ में एक छड़ी और कुछ डगमगाते से नजर आये। एक बार इधर उधर निगाह दौड़ाकर आवाज दी, अपने साथियों को—

अंडस होय वहर तो यहर चल्ल आवऽ"

मेरी कुछ समझ में आया नहीं इस विशाल बस में पांच आदमी बैठे हैं और फिर अंडस!

इतने ही में उन्होंने उठकर ड्राइवर की बगल वाली सीट पर जाकर बैठते हुए ड्राइवर से पूछा—

"यहाँ मैं बैठ जाऊँ तो आपको अंडस तो नहीं होई?

यान चालक ने उचित उत्तर भी दिया। कौतूहल तो उसे हुआ अवश्य। मैं प्रधान जी की ओर देखकर मुस्करा पड़ा। वे अपनी हँसी न रोक सके। थोड़ा निकट होकर कहा—

"संभवतः किसी और ही जगत् में विचरण कर रहे हैं।" वाक्य पूरा करते हुए मैंने कहा—

"जहाँ पर शायद बस में अकेले बैठने पर अंडस होता होगा।"

गुदौलिया चतुष्पथ ऐक्य स्थान पर पहुँच कर सोचा, एक-एक प्याले चाय पी जाय।

चाय की केटली से निकलते हुए वाष्प-शृंखला में आज सुबह से शाम तक के स्मृति-चित्र एक के बाद एक आते हुये से जान पड़े। यात्रा-दिवस का स्रोत एक विन्दु से उदय होकर होकर पुनः एक सीधी रेखा बनाते हुये, अन्त में, उसी मूल विन्दु में विलीन हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-जगत्

जापान में विश्व बौद्ध सम्मेलन का सफल अधिवेशन

गत २५ सितम्बर को टोकियो में जापान-नरेश की अध्यक्षता में 'विश्व बौद्ध भ्रातृत्व' का द्वितीय अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इस अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए संसार भर के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के प्रायः ५०० प्रतिनिधि बाहर से गये हुए हैं। महाबोधि सभा की ओर से राजा हेवाविताराण, श्री केशवचन्द्र गुप्त, श्री के० टी० बिमल सेकर, साहु मणिहर्षजोति, भिक्षु जगदीश काश्यप और श्री ए० बी० कोलिन डी सोयसा इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए गए हैं।

लंका से जो प्रतिनिधिमण्डल गया है, वह अपने साथ बोधिवृक्ष की एक शाखा और भगवान् बुद्ध की अस्थि का कुछ अंश भी ले गया है। उस अस्थि-अंश को सर्वसम्मति से अणु-बम से क्षत-विक्षत हिरोशिमा में स्थापित करने का निर्णय हुआ। बर्मा के प्रतिनिधियों ने एक संगमरमर की और एक सोने की मूर्ति तथा स्याम वालों ने हाथी दाँत का पाँच इंच का पगोडा उस मन्दिर को प्रदान किया, जिसमें सम्मेलन हो रहा है।

३० सितम्बर को एक प्रस्ताव द्वारा यह माँग की गई कि सभी जापानी युद्धबन्दियों को रिहा कर दिया जाय तथा जिन्हें फाँसी की सजा मिली है, उन्हें क्षमा दान किया जाय। इनमें आस्ट्रेलिया तथा फिलिपाइन में रखे गये जापानी बन्दी भी शामिल हैं। रूस-चीन आदि देशों में अभी भी जो जापानी युद्धबन्दी हैं उन्हें भी जापान को वापस करने के लिए कहा गया।

इस सम्मेलन के प्रति अपनी सद्भावना प्रदर्शित करने के लिए सेठ जुगलकिशोर बिरला द्वारा ४०००) तथा अखिल आर्य हिन्दू धर्म सेवा संघ द्वारा २५००) भेंट-स्वरूप सम्मेलन को भेजा गया था।

धर्मपाल-जन्मोत्सव—१७ सितम्बर को सारनाथ में स्वर्गीय अनागारिक धर्मपाल जी का जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। प्रातःकाल मन्दिर में पूजा की गई। दोपहर में सारनाथ और काशी-स्थित सभी भिक्षुओं को भोजन दान दिया गया। सायंकाल चार बजे काशी विद्यापीठ के कुलपति आचार्य श्री बीरबल सिंह की अध्यक्षता में एक महती सभा हुई।

प्रारम्भ में भिक्षु धर्मरक्षित ने स्वागत-भाषण दिया। भिक्षु सद्धातिस्स ने पंचशील प्रदान किया और प्राइमरी स्कूल के छात्रों द्वारा जयमंगल-गान हुआ।

त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित, श्री विजय श्रीवास्तव श्री रामचन्द्र लाल और श्री हरिवंश राय के भाषण हुए। सबने दिवंगत अनागारिक धर्मपाल जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की तथा उनके कार्यों का वर्णन किया। तदुपरान्त महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल सारनाथ के छात्रों के प्रतियोगितात्मक भाषण हुए, जिनमें तीन छात्रों के भाषण सबसे अच्छे रहे।

सभापति ने अपने भाषण में कहा—"अनागारिक धर्मपाल जी जैसे व्यक्ति सैकड़ों-हजारों वर्षों में हुआ करते हैं। वे न केवल धार्मिक सुधारक थे, प्रत्युत उन्होंने समाज का भी सुधार किया। उन्होंने लंका और भारत दोनों देशों की समान रूप से सेवा की। वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति थे। उन्होंने महाबोधि सभा को स्थापित कर भारत को भूले हुए बौद्ध धर्म को दिखलाया, ७००-८०० वर्षों तक सूने पड़े हुए स्थानों को फिर से हरा भरा बनाया और उन्हें बौद्ध-संस्कृति का पुनः केन्द्र बनाने का सफल प्रयत्न किया। धर्मपाल जी के कार्य महान् थे, उन्होंने संसार के सामने बौद्ध धर्म को रखा। उन्होंने जो सबसे बड़ा कार्य किया, वह भारत और लंका के मैत्री-सम्बन्ध का था। हिन्दू जो बौद्ध धर्म भूले हुए थे, उन्हें उन्होंने बौद्ध धर्म बतलाया। उन्हें प्रेम-सूत्र में बाँधा। उन्हीं के कार्यों का फल था कि बर्मा के भिक्षु उत्तम हिन्दू महा-सभा के सभापति चुने गए थे। आज जब एक छोटी बात को लेकर लंका-भारत का सम्बन्ध कभी-कभी डँवा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डोल होने लगता है, तब हमें धर्मपालजी की याद हो आती है। यदि वे होते तो ऐसा कदापि न होता। अनागारिक धर्मपाल एक महान् और अद्भुत व्यक्ति थे।"

अन्त में भिक्षु सद्धातिस्स ने आगत व्यक्तियों को धन्यवाद दिया।

मूलगन्ध कुटी पुस्तकालय में अभ्यागतों को जलपान कराया गया। रात्रि में मन्दिर में प्रदीप जलाये गये।

बौद्धधर्म विश्वधर्म है—गत १० सितम्बर को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रो० अवधकिशोर नारायण के सभापतित्व में बुद्धिष्ट ब्रदरहुड (=बौद्ध बन्धुत्व) का प्रथम आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। उक्त सभा में विश्वविद्यालय के सभी बौद्ध छात्र, प्राध्यापक, काशी और सारनाथवासी भिक्षु सम्मिलित हुए थे।

विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव ने भाषण देते हुए कहा—"बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म से भिन्न विश्वधर्म है। इस अर्थ में तो सभी धर्म समान हैं कि सभी ही मुक्ति चाहते हैं, किन्तु जीवन-समस्या-हल का प्रश्न सबके लिए सरल नहीं है। बौद्ध धर्म का जन्म भारत में हुआ था। अब पुनः इसे उसकी आवश्यकता है। स्वतंत्र भारत के छात्रों को इस तथ्य को जानना चाहिए। बौद्ध धर्म का सन्देश प्रेम और दया का सन्देश है। वही भारत से बाह्य देशों में गया था। हमें पुनः इस सन्देश को अपनाकर आत्मउन्नति करनी चाहिए।

काशी में प्रवारणोत्सव—३ अक्टूबर शुक्रवार को बनारस के मलदहिया स्थित बर्मी बौद्ध विहार में भारतीय बौद्धसंघ के तत्वावधान में प्रवारणोत्सव हुआ, जिसमें भारत, लंका, बर्मा, पाकिस्तान और तिब्बत के भिक्षु सम्मिलित हुए थे। दोपहर में भिक्षु संघ को भोजन-दान दिया गया। तीन बजे प्रवारणा हुई। प्रवारणा में भिक्षु अपने अपराधों को बतलाते और उसे स्वीकार करने के लिए भिक्षुसंघ से प्रार्थना करता है। भिक्षुसंघ उस भिक्षु के दोषों को बतलाता है अथवा निर्दोष होने पर साधु! साधु!! साधु!!! कहकर धन्यवाद देता है। इस कार्य में केवल भिक्षु ही सम्मिलित होते हैं। बौद्ध देशों में इस उत्सव का बहुत बड़ा महत्व है। प्रवारणा के बाद श्री-हरिकृष्ण हुण्डीवाले के सभापतित्व में सभा हुई, जिसमें भारतीय बौद्ध संघ के मंत्री भिक्षु ऊ चन्दिमा, ऊ तिरजया, ऊ धम्मउदा, त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित तथा कलकत्ता स्थित बर्मी कौंसिल जनरल श्री ऊ युन के भाषण हुए। सबने वर्षावास एवं प्रवारणा का महत्व बतलाया। सभापति के भाषण के बाद भिक्षु अग्गसमाधि ने धन्यवाद दिया।

बम्बई में धर्मपाल जयन्ती—१७ सितम्बर को महाबोधि-सभा के संस्थापक श्री अनागारिक धर्मपाल जी का जन्मोत्सव बम्बई के पेरोल मुहल्ले में स्थित बहुजन विहार में मनाया गया। भिक्षु डी० सुमङ्गल, श्री एम० ए० अलबर्ट और श्री दन्तनारायण के भाषण हुए। सन्ध्या समय मन्दिर में धूप प्रदीप आदि से पूजा की गई।

लखनऊ में प्रवारणा—२ अक्टूबर को बौद्ध विहार लखनऊ में प्रवारणा की गई। प्रातः बुद्धपूजा हुई। दोपहर में भोजन-दान दिया गया। सन्ध्या समय साढ़े छः बजे लखनऊ में रहनेवाले नाना देशवासी बौद्ध एवं अबौद्ध उपासक-उपासिकाओं की सभा हुई, जिसमें श्री चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु', डा० एच० वां० गुन्थर और भिक्षु प्रज्ञानन्द के भाषण हुए।

पवित्र अस्थियाँ कम्बोडिया को—५ अक्टूबर को अग्रश्रावकों की तथा सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में स्थित भगवान् बुद्ध की अस्थियाँ कलकत्ता से एक विशेष वायुयान द्वारा कम्बोडिया (=हिन्द-चीन) ले जाई गईं। अस्थियों के साथ डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, भिक्षु शीलभद्र, भिक्षु एम० संघरत्न, भिक्षु जिनरत्न, भिक्षु सद्धातिस्स और अन्य तीन सभा के सदस्य गए हैं। सभा के उपसभापति श्री केशव चन्द्र गुप्त भी जापान से कम्बोडिया बाहर ही बाहर आ जायेंगे।

सम्प्रति कम्बोडिया एशिया में एक उपद्रव का स्थान बना हुआ है। हमारी उत्कट अभिलाषा है कि पवित्र अस्थियों के आगमन के साथ वहाँ शान्ति, सौख्य एवं प्रसन्नता विराजमान हो जायेगी।

साँची विहार का उद्घाटन—डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी और श्री देवप्रिय बलिसिंह २९ सितम्बर को भोपाल गए थे और भोपाल के चीफ कमीश्नर श्री भगवान् सहाय तथा भोपाल के मुख्य मंत्री डा० शंकर विहारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्मा के साथ साँची विहार के उद्घाटन के सम्बन्ध में बात चीत किये और सारा कार्यक्रम तैयार किया गया। कार्यक्रम इसी अंक में अन्यत्र छप रहा है। सभा भोपाल सरकार की कृतज्ञ है कि उसने २९ और ३० नवम्बर का सारा प्रबन्ध-भार अपने जिम्मे ले लिया है। एक स्वागत-समिति बना ली गई है। जिसके अध्यक्ष भोपाल के नवाब हैं और मंत्री हैं भोपाल के विकास विभाग के कमीश्नर श्री बी० एम० वेन्कोब राव। इस उद्घाटन महोत्सव में भारत तथा विदेशों के काफी संख्या में प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे। बर्मा के प्रधान मंत्री श्री थाकिननू भी पधारेंगे। यद्यपि लंका के प्रधान मंत्री श्री डडली सेनानायक नहीं आ सकेंगे, किन्तु लंका से काफी संख्या में लोग आयेंगे।

विभिन्न कारणों से अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध संस्कृतिक सम्मेलन और महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती एक दिन पूर्व २९ नवम्बर को एक साथ होंगे। भारत के उप-राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् अध्यक्ष होंगे और प्रसिद्ध बौद्ध विद्वानों के भाषण होंगे।

हीरक जयन्ती स्मारक ग्रन्थ—हीरक जयन्ती का स्मारक ग्रन्थ २९ नवम्बर से पूर्व प्रकाशित होगा, जिसमें महाबोधि सभा का इतिहास, संस्थापक का जीवन-चरित, सभा की संस्थाओं के चित्र और बौद्ध संस्कृति एवं इतिहास पर अनेक महत्वपूर्ण लेख रहेंगे। डा० राधाकृष्णन् प्रो० पी० सी० बागची, डा० सुनीति कुमार चटर्जी, डा० उ० एन० घोषाल, डा० नलिनाक्ष दत्त, प्रो० पी० वी० बापट, प्रो० एन० के० भागवत और कुमारी आई० बी० हॉर्नर के लेख प्राप्त हो चुके हैं।

स्मृति ग्रन्थ का मूल्य ५) पाँच रुपये होगा। ग्रन्थ-प्राप्ति का आर्डर पहले मिलना चाहिए।

साँची विहार के लिए दान—सभा के प्रधानमन्त्री की माँग पर कोलम्बो की श्रीमती साइमन हेवावितारण ने विहार-फण्ड के लिए अपने दिवंगत पति की स्मृति में १०००) भेजा है। यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रीमती साइमन हेवावितारण ने ही सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार के प्रधान-द्वार के निमित्त १२,०००) प्रदान किया था।

श्री के० टी० विमलसेकर ने भी अपने श्वसुर, स्वर्गीय श्री डी० पी० जयवर्द्धन की स्मृति में १०००) भेजा है। सभा इन दोनों दानी व्यक्तियों को हार्दिक धन्यवाद देती है।

सभापति निर्वाचित—'धर्मदूत' सम्पादक त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित, देवरिया जिले के धूसी स्थित शहीद रामचन्द्र हायर सेकण्डरी स्कूल के सभापति निर्वाचित हुए हैं। गत २२ सितम्बर को स्कूल के सदस्य मण्डल ने सर्वसम्मति से उन्हें सभापति चुना।

कुशीनगर के खँडहरों की सुरक्षा की व्यवस्था—बहुत दिनों से कुशीनगर के खँडहरों की सुरक्षा की व्यवस्था पर विचार किया जा रहा था। कुशीनगर के खँडहरों में सदा गाय-भैंसों के चरने से उन्हें काफी क्षति पहुँचती थी। प्राचीन दीवारों पर गाय-भैंसों के घूमने से वे नष्ट होती जा रही थीं। चौकीदार का प्रबन्ध होने पर भी आस-पास के ग्रामीण खँडहरों में अपने गाय-भैंसों को चराना नहीं बन्द करते थे। भगवान् बुद्ध के अंत्येष्टि-स्थान रामाभार के खँडहर धीरे-धीरे खेत बनते जा रहे थे। गत वर्ष तक जिस भूमि में २६ इंच तक लम्बी और काफी चौड़ी-मोटी प्राचीन ईंटें मौजूद थीं, उसमें जमींदारों के प्रभुत्व ने गन्ना का खेत खड़ा कर दिया है। वे ऐतिहासिक ईंटें रामाभार ताल में फेंकी पड़ी हैं जिन्हें कोई भी यात्री देख सकता है। बहुत कुछ ईंटों को तो चीना बाबा ने एकत्र कर रखा है। कुछ वर्ष पूर्व इस स्थान एवं खँडहर की सुरक्षा के लिए पुरातत्व विभाग की ओर से सीमाबन्दी की गई थी और पत्थर गड़वाये गये थे, किन्तु किसानों ने उन्हें न जाने कहाँ अदृश्य कर दिया।

अब प्रसन्नता की बात है कि त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित के इस प्रस्ताव को पुरातत्व विभाग ने स्वीकार कर लिया है कि उक्त खँडहरों के चारों ओर तार लगा दिये जायँ। आशा है शीघ्र ही कुशीनगर के खँडहर तारों से घिरकर सुरक्षित हो जाएँगे।

कुशीनगर में शालवृक्ष लगेंगे—प्राचीनकाल में कुशीनगर शालवाटिका था। शालवाटिका में ही दो शाल वृक्षों के नीचे भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु कई शताब्दियों से कुशीनगर शाल वृक्षों से शून्य है। लंका, बर्मा आदि बाह्य देशों के यात्री यहाँ आकर शालवृक्षों को देखना चाहते हैं, वे बड़ी ही उत्सुकता से जानना चाहते हैं कि शाल वृक्ष कैसा होता है? कारण, उक्त देशों में शालवृक्ष नहीं पाये जाते हैं। इसकी बड़ी आवश्यकता थी कि कुशीनगर में शालवृक्षों का रोपण हो और इसे पुनः शालवाटिका का रूप दिया जाय।

जिलाधीश श्री चन्द्रमोहन निगम का ध्यान इस ऐतिहासिक कार्य की ओर गया है। वे ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि शीघ्र ही कुशीनगर शालवाटिका बन जाय। आगामी जनवरी मास में शालवृक्षों का रोपण-कार्य प्रारम्भ हो जायेगा। इस कार्य से श्री निगमजी का नाम अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धजगत् में आदर की दृष्टि से लिया जायेगा।

लखनऊ में बौद्ध सत्संग—लखनऊ के रिसालदार पार्क-स्थित बौद्ध विहार में भारतीय बौद्ध समिति के तत्वावधान में गत सितम्बर मास में नियमतः ६, १३, २० और २७ सितम्बर को बौद्ध सत्संग हुआ, जिनमें लखनऊ के सभी बौद्ध उपासक, उपासिका, विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे। उक्त तिथियों पर क्रमशः श्री गंगाचरण लाल और भिक्षु प्रज्ञानन्द; भिक्षु प्रज्ञानन्द और डा० एच० वी० गुन्थर; भिक्षु प्रज्ञानन्द और डा० एच० वी० गुन्थर; श्री गंगाचरण लाल और डा० एच० वी० गुन्थर के भाषण हुए। इस प्रकार उक्त बौद्ध विहार बौद्ध धर्मावलम्बियों के सत्संग एवं ज्ञानोपार्जन का प्रमुख केन्द्र बनता जा रहा है। इस प्रशंसनीय कार्य के संचालक भिक्षु प्रज्ञानन्दजी हैं, और सबसे बड़े सहायक एवं उत्साहवर्द्धक हैं श्री गंगाचरण लाल तथा डा० गुन्थर। सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात तो यह है कि इस सत्संग में काफी लोग सम्मिलित होकर लाभ उठाने लगे हैं, जिनमें बौद्ध, हिन्दू आदि सभी एक भाव से हाथ बँटाते हैं।

कपिलवस्तु में 'बुद्ध विद्यापीठ'—भगवान् बुद्ध की बाल-लीला-भूमि कपिलवस्तु (तौलिहवा) में 'बुद्ध विद्यापीठ' प्रारम्भ करने का आयोजन हो रहा है, जिसकी कमेटी संगठित हो चुकी है। कमेटी के व्यवस्थापक हैं मंगलमान बौद्धाचार्य, मंत्री श्री रामप्रसाद श्रेष्ठ, आडीटर श्री तारा प्रसाद मजुमदार, कोषाध्यक्ष श्री सागर प्रसाद। और अन्य ७ व्यक्ति सदस्य निर्वाचित हुए हैं। उक्त विद्यापीठ द्वारा भगवान् बुद्ध के उच्चादर्शों का प्रचार एवं कपिलवस्तु के गौरव के संरक्षण का कार्य सम्पन्न होगा।

लेफ्टिनेन्ट कर्नल की पत्नी ने बौद्धधर्म अपनाया—विगत कश्मीर एवं लद्दाख के युद्ध में विजय-प्राप्त लेफ्टिनेन्ट कर्नल श्री ठाकुर पृथ्वीचन्द की धर्मपत्नी ने लामा अंगरूप से धर्म सीखकर बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया। लाहुल के बौद्ध चारित्र, विहार एवं प्रतिमाओं को देखकर वह बौद्ध धर्मकी ओर आकर्षित हुई तथा हिन्दी में प्रकाशित बौद्ध ग्रन्थों एवं "धर्मदूत" के सहारे लामा अंगरूप द्वारा बौद्धधर्म में प्रवेश पायी।

सितम्बर के भाषण और वक्ता—महाबोधि सभा के प्रधान केन्द्र कलकत्ता के धर्मराजिक विहार में गत मास में निम्नलिखित भाषण हुए और उत्सव मनाये गए—

ता० ३, बुधवार—पूर्णिमा। भिक्षु शीलभद्र का उपदेश।

ता० ४, वृहस्पति—विषय 'अनित्य'। वक्ता—पं० जयद्रथ चौधुरी। सभापति—भिक्षु शीलभद्र।

ता० ७, रविवार—धम्मपद-क्लास। भिक्षु आनन्द कौसल्यायन।

ता० ११, वृहस्पति—विषय 'मैत्री और करुणा'। वक्ता—श्री केशवचन्द्र गुप्त एम० ए०। सभापति—डा० उ० एन० घोषाल, एम० ए०, पी-एच० डी०।

ता० १४, रविवार—धम्मपद-क्लास। भिक्षु आनन्द कौसल्यायन।

ता० १७, बुधवार—भारतीय महाबोधि सभा की वार्षिक बैठक और अनागारिक धर्मपालजी का जन्मोत्सव।

ता० १८, वृहस्पति—विषय 'मानव सेवा और भगवान् बुद्ध'। वक्ता—पं० विश्वनाथ शास्त्री। सभापति—श्री बी० आर० बरुआ।

ता० २४, वृहस्पति—विषय 'बौद्ध धर्म के कुछ सिद्धान्त'। वक्ता—श्री के० एस० सीताराम। सभापति—भिक्षु शीलभद्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सांस्कृतिक सम्मेलन

भारतीय महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती तथा साँची विहार का उद्घाटन

यह घोषणा करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है कि भारतीय महाबोधि सभा की जो हीरक जयन्ती गत वर्ष स्थगित हो गई थी, वह २९ और ३० नवम्बर को मनायी जायगी। जयन्ती के लिए साँची का स्थान चुना गया है जहाँ कि सारिपुत्र और मौद्गल्यायन अर्हन्तों की अस्थियों के स्थापनार्थ मन्दिर बनकर तैयार हुआ है। भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने विहार का उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया है। भारत के उपराष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् सांस्कृतिक सम्मेलन की अध्यक्षता करेंगे। सभा की प्रबन्धकारिणी समिति ने निश्चय किया है कि हीरक जयन्ती भी इसी ऐतिहासिक स्थान पर मनाई जाय।

प्रतिनिधियों एवं दर्शकों से प्रार्थना है कि वे समय से पूर्व महाबोधि सभा के प्रधान मन्त्री को सूचित कर दें, ताकि उनके रहने की व्यवस्था की जा सके, क्योंकि साँची में धर्मशाला या होटल नहीं हैं। टेण्ट और झोपड़ियाँ रहेंगी, जहाँ दर्शक रह सकेंगे और भोजन प्राप्त कर सकेंगे। भोपाल-सरकार यथासम्भव उत्सव को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील है। सांस्कृतिक सम्मेलन में सम्मिलित होनेवाले व्यक्तियों को रेलवे-विभाग कन्सेशन टिकट देगा।

कार्यक्रम का पूरा विवरण

२७ नवम्बर, बृहस्पतिवार

५-३० बजे सायं धर्मराजिक विहार कलकत्ता से अस्थियों का जुलूस हबड़ा स्टेशन के लिए रवाना होगा।

७ बजे सायं जुलूस हबड़ा स्टेशन पर पहुँचेगा।

८-४५ बजे सायं बाम्बे मेल से अस्थियाँ साँची के लिए प्रस्थान करेंगी। साथ में महाबोधि सभा के प्रतिनिधि और दर्शक रहेंगे।

हबड़ा से साँची के मध्य जिन स्टेशनों पर ट्रेन रुकेगी, उन स्टेशनों के नगरवासियों से प्रार्थना है कि वे जुलूस के साथ आकर अस्थियों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें। जिन नगरों के लोग ऐसा करना चाहते हैं कृपया सभा के प्रधान मंत्री से पत्र-व्यवहार करके सब जानकारी प्राप्त कर लें।

२९ नवम्बर, शनिवार

८-३० बजे प्रातः अस्थियाँ साँची पहुँचेंगी और स्वागत-समिति की ओर से उनका स्वागत होगा, जिनमें भोपाल के नवाब, चीफ कमीश्नर श्री भगवान् सहाय, मुख्य मंत्री श्रीशंकर बिहारी शर्मा और अन्य लोग रहेंगे। तत्पश्चात् अस्थियाँ जुलूस के साथ नवनिर्मित मण्डप में ले जाई जायेंगी, जहाँ वह दूसरे दिन तक रहेंगी।

२-३० बजे अपराह्न डा० राधाकृष्णन् के सभापतित्व में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सांस्कृतिक सम्मेलन और हीरक-जयन्ती महोत्सव।

९-३० बजे सायं अतिथि-स्वागत।

३० नवम्बर, रविवार

२-३० बजे अपराह्न महाबोधि-सभा के अध्यक्ष द्वारा पवित्र अस्थियाँ जुलूस के साथ लाई जायेंगी। सब अतिथि जुलूस में अस्थियों के साथ विहार के द्वार तक जायेंगे, जो लगभग १½ फर्लांग की दूरी पर है।

३ बजे सायं जुलूस विहार में पहुँचेगा। अस्थियाँ एक चबूतरे पर रखी जायेंगी और सभी अतिथि विहार के फर्श पर बैठेंगे। वहाँ का कार्यक्रम इस प्रकार होगा:—

१. राष्ट्रीय गान, २. पंचशील ग्रहण, ३. सूत्रपाठ, ४. महाबोधि सभा के अध्यक्ष का भाषण, ५. प्रतिनिधियों का स्वागत, ६. भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल का भाषण, ७. सभा के सभापति भोपाल के नवाब का भाषण, ८. महाबोधि-सभा के प्रधान मन्त्री द्वारा धन्यवाद ९. भिक्षुओं द्वारा आशीर्वाद। तदुपरान्त पवित्र अस्थियाँ महाबोधि-सभा के अध्यक्ष द्वारा श्री जवाहर लाल नेहरू को दी जायेंगी, जिन्हें वे मन्दिर के भीतर तक ले जायेंगे। अन्त में वे अस्थियों को भिक्षुओं के हाथ सौंप देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शकों के लिए सूचना

१. रहने के लिये टेन्ट और झोपड़ियों का प्रबन्ध होगा, जो सांची विहार के पास पहाड़ी के नीचे होंगी।

२. सभी दर्शकों को अपना बिछावन लाना चाहिए, गद्दा और मच्छरदानी भी। मच्छरदानी की विशेष आवश्यकता होगी।

३. यह उत्सव जाड़े में पड़ेगा, अतः गर्म कपड़े, कम्बल आदि साथ लाना चाहिए।

४. यद्यपि भोजनालय की व्यवस्था होगी, किन्तु जो लोग विशेष प्रकार का भोजन चाहेंगे, उनका भी प्रबन्ध सम्भव होगा।

५. स्वागत समिति भोजनालय को केवल निरामिष भोजन की ही अनुमति देगी, आमिष भोजन सर्वथा वर्जित होगा।

६. दर्शकों की सुविधा के लिये टेम्परेरी डाकखाना, तार घर और स्वयंसेवक दल की व्यवस्था होगी।

७. यद्यपि बिजली की व्यवस्था होगी, किन्तु दर्शकों को चाहिए कि वे अपने साथ हवा से न बुझने वाले चिराग और टार्च लेते आवें।

८. उत्सव से कुछ दिन पूर्व साँची में एक सूचना कार्यालय भी खुलेगा।

९. 'मेल ट्रेनें' सांची में नहीं रुकती हैं, किन्तु रेलवे विभाग के कर्मचारियों से ऐसी प्रार्थना की गई है कि वे सभी ट्रेनों को सांची में रुकने की व्यवस्था करें।

१०. जो लोग कलकत्ता से अस्थियों के साथ सांची जाना चाहें, उन्हें शीघ्र सूचित करना चाहिए।

११. महाबोधि पुस्तक-भण्डार का एक बुकस्टाल सांची में खुलेगा, जहाँ से पुस्तकें मोल ली जा सकेंगी।

१२. किसी भी प्रकार की जानकारी के लिए श्री देवप्रिय-वलिसिंह, प्रधान मंत्री, ४ ए, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२ को लिखें।

हिन्दी में अपूर्व प्रकाशन

धर्म-चक्र

आकर्षक मुखपृष्ठ ० आदर्श साहित्य

गांधी तत्व का पुरस्कार करने वाला और

भारतीय संस्कृति का आदर्श :—

धर्म-चक्र

—: पढ़िये :—

भारत का शान्तिदूत "धर्म-चक्र" ही है।

वार्षिक मूल्य ४) डाक व्यय के साथ।

निम्नलिखित पते पर लिखें :—

"धर्मचक्र" कार्यालय,

सुगत निधान,

लाट नं० ४६३, १५वाँ रास्ता

खार, बम्बई (२१)

राष्ट्र भाषा हिन्दी का ज्ञान बढ़ाने के लिये

भारती

मासिक पत्रिका के ग्राहक बनिये

एक प्रति ≡), वार्षिक २)

प्राप्ति स्थान :—

बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ

डॉ० देशमुख लेन, बम्बई-४

['भारती' अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी की लोकप्रिय पत्रिका है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)
मज्झिम निकाय— ,, ,,	८)
विनय पिटक— ,, ,,	८)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१॥)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १,२	७॥), ७॥)
,, ,, (भाग ३)	१०)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर— ,,	१।।।)
बौद्धचर्य्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१॥)
बुद्धचर्य्या—राहुल सांकृत्यायन, सजिल्द	८)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१॥)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)
बुद्धार्चन— ,, ,,	।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	।।।)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्रसाद	-)
बुद्धदेव—शरत् कुमार राय	१।।।)
थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक— ,,	१॥)
तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२॥)
पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
जातिभेद और बुद्ध— ,, ,,	॥)
ब्राह्मण धम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
तेलकटाह गाथा— ,, ,,	।)
बौद्ध शिशु बोध— ,, ,,	।)
सारनाथ दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
कुशीनगर-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
लंका-यात्रा— ,, ,,	१॥)
पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२)
बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	॥)
बुद्ध शतकम्— ,, ,,	।)
महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बुद्ध-अर्चना (कविता) कुमारी विद्या	≡)
तिब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित	९)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३॥)
नवनीत टीका— ,, ,,	२॥)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,,	२॥)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,,	।)
पालि-पाठ-माला— ,,	१)
चरियापिटक—डा० विमलाचरण लाहा	५)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
धम्मसंगणी—श्री वापट	८)
अत्थसालिनी— ,,	८)
पातिमोक्ख— ,,	१)
सिङ्गाल सुत्तं—भिक्षु ऊ कित्तिमा	॥)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४२४
२५-८-८८

धर्मदूत

सारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

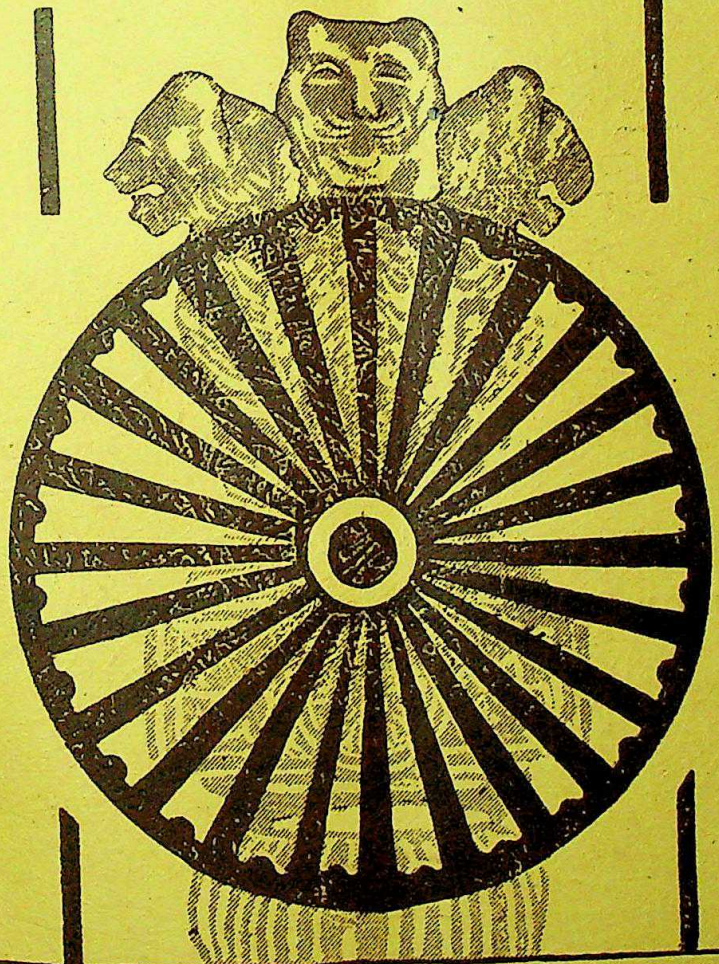

नवम्बर

१९५२

वर्ष १७ • अङ्क १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वार्षिक-३) एक अङ्क का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१.	बुद्ध-वचनामृत	१६५
२.	गौतम बुद्ध और साम्यवाद—श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी	१६६
३.	बौद्धधर्म में श्रद्धा का स्थान—श्री भरतसिंह उपाध्याय	१६८
४.	प्रभात-फेरी (कविता)—श्री रामचन्द्रलाल	१७०
५.	साँची-स्तूप (कविता)—कुमारी विद्या 'प्रभाकर'	१७१
६.	संकीर्णताजनित संकट—श्री एच० वी० गुन्थर, पी० एच० डी०	१७२
७.	अभिधम्म का सजीव हृदय वर्मा—पं० विश्वनाथ शास्त्री	१७५
८.	श्रमण—भिक्षु प्रज्ञानन्द	१७८
९.	तथागत की अस्थियों की कम्बोडिया-यात्रा—भिक्षु धर्मरक्षित	१८०
१०.	जगद्दल विश्वविद्यालय—प्रो० सुशीलचन्द्र	१८४
११.	वार्षिक विवरण	१८५
१२.	मूलगन्धकुटी विहार	१८६
१३.	सन्देश और शुभ-कामनायें	१८७
१४.	साँची (कविता)—डा० प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ'	१८८
१५.	बौद्ध-जगत्	१८९

धर्मदूत की निःशुल्क सेवा

'धर्मदूत' के कम से कम पाँच ग्राहक बनाने वाले सज्जन की सेवा में 'धर्मदूत' एक वर्ष तक निःशुल्क दिया जायगा। धर्मप्रेमी, उत्साही एवं अपने सभी सहयोगी बन्धुओं से निवेदन है कि 'धर्मदूत' का प्रचार कर इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने में योगदान दें।

"धर्मदूत" ही क्यों पढ़ें ?

क्योंकि :-

१. यह भगवान् बुद्ध का सन्देश घर-घर पहुँचाने वाला हिन्दी का एकमात्र पत्र है।
२. यह अहिंसा के बल पर उपार्जित स्वतन्त्र भारत और उसके बाहर नेपाल, लङ्का, बर्मा, लद्दाख, पूर्वी-पाकिस्तान आदि देशों में प्रतिमास अहिंसा, प्रेम और दया के मूल सिद्धान्त को लेकर पहुँचता है।
३. इसमें देश तथा विदेश के बौद्ध विद्वानों के धर्म, संस्कृति, दर्शन, योग आदि विषयों पर लेख रहते हैं।
४. सारे संसार के बौद्धों की धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ पढ़ने को मिलती हैं।
५. सर्व-स्वातन्त्र्य का उपदेश देने वाले भगवान् बुद्ध का विचार-दर्शन इसी में होता है।

हम उत्सुकता पूर्वक अपने पाठकों एवं सहयोगियों की अभिरुचि जानना चाहते हैं और साथ ही यह भी प्रार्थना करते हैं कि सभी सज्जन 'धर्मदूत' का प्रचार कर पुण्य के भागी हों।

व्यवस्थापक—'धर्मदूत', सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १७	सारनाथ,	नवम्बर	बु० सं० २४९६ ई० सं० १९५२	अङ्क ७

बुद्ध-वचनामृत

चेतना और संकल्प के अभाव में मुक्ति

"भिक्षुओ! जो चेतना करता है, संकल्प करता है, किसी काम में लग जाता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है। आलम्बन होने से विज्ञान जमा रहता है। विज्ञान के जमे रहने और बढ़ने से झुकाव होता है। झुकाव होने से भविष्य में गति होती है। भविष्य में गति होने से मरना-जीना होता है। मरना-जीना होने से जाति, जरामरण होता है। इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ! जो चेतना नहीं करता, संकल्प नहीं करता, किन्तु किसी काम में लगा रहता है, वह भी विज्ञान की स्थिति बनाए रखने का आलम्बन होता है। इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ! जो चेतना नहीं करता, संकल्प नहीं करता, काम में नहीं लगा रहता, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन नहीं होता है। आलम्बन नहीं होने से विज्ञान जमा नहीं रहता है और बढ़ने नहीं पाता। विज्ञान के न जमे रहने और न बढ़ते रहने से झुकाव नहीं होता है। झुकाव नहीं होने से भविष्य में गति भी नहीं होती। गति नहीं होने से जीना-मरना नहीं होता। इस प्रकार सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

—संयुत्त निकाय, १२. ४. १०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतम बुद्ध और साम्यवाद

श्री अनन्त रामचंद्र कुलकर्णी, नागपुर

गौतम बुद्ध संसार के सबसे बड़े साम्यवादी कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनका त्याग अपूर्व था। अतः हम दावे के साथ कह सकते हैं कि बुद्ध की शिक्षा में साम्यवाद अन्तर्भूत है। परन्तु हमें दुःख से कहना पड़ता है कि साम्यवाद में बुद्ध को स्थान नहीं है क्योंकि साम्यवाद तो केवल एक भौतिकवाद है। परन्तु बुद्ध तो अपने जीवन में धर्म या सचाई पर ही जोर देते हैं। जैसे समस्त संसार का सूर्य एक ही है वैसे ही मनुष्य मात्र का धर्म भी एक ही है। जैसे सुगन्धहीन पुष्प व्यर्थ है, वैसे ही सचाई बिना मनुष्य का जीवन निरर्थक है। सच देखा जाय तो सचाई बिना मनुष्य जीवन सुखी नहीं हो सकता। सचाई ही मनुष्य जीवन को सुखी करने का एकमेव साधन है। जिस जीवन में सचाई का स्थान नहीं होता, वह जीवन पाशविक जीवन होता है।

इस पर साम्यवादी लोग कहेंगे कि मनुष्य जीवन सुखी करने का एकमेव साधन है सम्पत्ति। और इसी कारण हमें अपने जीवन में सम्पत्ति या उसके समान वितरण पर ही जोर देना चाहिये। इस पर हमारा कहना है कि हम मानते हैं कि सम्पत्ति के अभाव से मनुष्य जीवन दुःखी हो सकता है। मनुष्य को खाने के लिये अन्न चाहिये, रहने के लिये मकान चाहिये और ओढ़ने के लिये वस्त्र चाहिये। ये सब चीजें मनुष्य के दुःख-निवारण के एक साधन हैं। इनके अभाव से मनुष्य जीवन दुःखी अवश्य होता है। परन्तु उनके प्रभाव से मनुष्य जीवन सुखी होता है ऐसा भी तो हम नहीं कह सकते। तो फिर सुख का साधन क्या है? सुख का साधन है धर्म या सचाई या न्याय का रास्ता और इसी कारण हम दावे के साथ कह सकते हैं कि सचाई से चलनेवाला एक गरीब मनुष्य अन्यायी या झूठ श्रीमन्त से अभी भी सुखी होता है, क्योंकि अन्याय से चलने वाले मनुष्य के मन पर एक तरह का बोझ रहता है क्योंकि वह सोचता है कि अन्याय से चलने में मैं अच्छी बात नहीं कर रहा हूँ। परन्तु न्याय से चलने वाले मनुष्य का मन प्रसन्न रहता है, क्योंकि वह जानता है 'मैं सही रास्ते से चल रहा हूँ'। आखिर मन की प्रसन्नता ही तो सुख की कसौटी है। जब तक मनुष्य का मन प्रसन्न नहीं है तब तक मनुष्य सुखी नहीं कहलाता। अतः मन प्रसन्न रखना ही प्रत्येक मनुष्य का आद्य कर्तव्य होता है। और सचाई या न्याय के पथ से चलने से ही मन प्रसन्न रह सकता है यह एक अबाधित सत्य है। सचाई की ठोस कल्पना यह है कि हम दूसरों के प्रति ऐसा व्यवहार करें जिसकी हम दूसरों से अपने प्रति अपेक्षा करते हैं। अतः मनुष्य जीवन सुखी बनाने के लिये हमें मन की प्रसन्नता पर ही जोर देना चाहिये। परन्तु साम्यवाद तो संपत्ति या ऐहिक चीजों पर ही जोर देता है। अतः वह मानव कल्याण का मार्ग नहीं कहा जा सकता।

हम जानते हैं कि मन की प्रसन्नता प्राप्त करना बहुत कठिन है। जब तक मनुष्य अपने जीवन से तृष्णा को जड़ से नाश नहीं करता तब तक उसका मन प्रसन्न हुआ–ऐसा हम नहीं कह सकते। तृष्णा ही तो समस्त दुःखों की जड़ है। अतः मन की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये तृष्णा का नाश करना हमारा आद्य कर्तव्य होता है। इस पर साम्यवादी कहेंगे "हम मानते हैं कि तृष्णा ही हमारे समस्त दुःखों का कारण है। और इसी कारण हमें अपनी समाज रचना ऐसी करनी चाहिये कि जहाँ पर तृष्णा को स्थान नहीं मिले। और इसी कारण साम्यवाद में निजी संपत्ति को स्थान नहीं है। वहाँ पर तो समस्त संपत्ति समाज या राष्ट्र की होती है। जिस समाज में तृष्णा को स्थान नहीं है ऐसा समाज निर्माण करना ही मनुष्य जीवन सुखी करने का सही रास्ता है"। इस पर हम कहेंगे कि जीवन में निजी संपत्ति को स्थान न देने से या समस्त संपत्ति समाज या राष्ट्र की है इस भावना पर जोर देने से हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृष्णा को नहीं मिटा सकते। तृष्णा को अवसर न देना यह तृष्णा नष्ट करने का रास्ता नहीं है। अंगार के सान्निध्य से जलने वाली चीजें हटाने से अंगार बुझ नहीं सकता। जलने वाली चीजें अंगार की सान्निध्य से हटाने से हम अंगार का प्रसार रोकते हैं ऐसा हम मानते हैं। परन्तु उससे अंगार नहीं बुझ सकता। वैसे ही तृष्णा की कक्षा से संपत्ति हटाने से हम तृष्णा का नाश नहीं कर सकते। उसके लिये तो तृष्णा पर ही हमें प्रत्यक्ष प्रहार करना होगा। अप्रत्यक्ष प्रहार कभी भी असफल ही होता है। और फिर निजी तथा राष्ट्र की संपत्ति, इनमें रेखा निकालना बहुत कठिन है इसे हमें ध्यान में रखना चाहिये। जब तक हम अपने जीवन में सचाई पर जोर नहीं देंगे तब तक हम राष्ट्र-संपत्ति का उपयोग या दुरुपयोग निजी संपत्ति की तरह करेंगे। तो फिर साम्यवाद सफल होने के लिये आखिर तो हमें चरित्र पर ही जोर देना पड़ेगा। हमारा यहाँ पर इतना ही कहना है कि यह जोर प्रत्यक्ष होना चाहिये न कि अप्रत्यक्ष। तृष्णा के प्रभाव से ही मनुष्य चरित्रहीन होता है। चरित्रवान बनने के लिये हमें तृष्णा के नाश पर ही जोर देना चाहिये। सच बात तो यह है कि मनुष्य दूसरों को नहीं सुधार सकता। वह तो अपने को ही सुधार सकता है। वह जब अच्छी तरह अपने को सुधारता है तो वह दूसरों के लिये एक आदर्श बनता है और उनको वह सचाई से चलने की प्रेरणा देता रहता है। इस पर साम्यवादी कहेंगे 'तृष्णा का नाश असंभव है'। इस पर हम कहेंगे कि तृष्णा का नाश असंभव नहीं है परन्तु कठिन है। इसी कारण हमें उस दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिये क्योंकि प्रयत्न कभी भी नैराश्य से अच्छा ही है। प्रयत्नवादी मनुष्य जीवन में निराश नहीं होता। अतः जिन लोगों की प्रयत्न पर श्रद्धा है ऐसे उत्साहशील मनुष्य ही तृष्णा का अन्त करने के लिये समर्थ होते हैं। नैराश्यवादी लोग इस रास्ते का अवलंबन ही नहीं करते। सच बात तो यह है कि हमें जीवन में किस पर जोर देना चाहिये सचाई पर या ऐहिक चीजों पर? यही जीवन में सच्चा प्रश्न है। साम्यवाद तो ऐहिक चीजों पर ही जोर देता है।

इन सब बातों से हम कह सकते हैं कि साम्यवाद तो एक राजनैतिकवाद या पक्ष है। परन्तु जब यह वाद या पक्ष धर्म का स्थान लेना चाहता है तो ही झगड़ा निर्माण होता है। अब हमारे सामने सच्चा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या साम्यवाद धर्म का स्थान ले सकता है? 'कभी भी नहीं' यही इसका स्पष्ट जवाब है। क्योंकि साम्यवाद में सचाई पर जोर न होने के कारण वह मनुष्य जीवन सुखी करने के लिये असमर्थ है। जिस जीवन में सचाई को स्थान नहीं होता है वह जीवन अनार्य, ग्राम्य और निरर्थक जीवन होता है। इसी कारण आर्य या श्रेष्ठ लोग साम्यवाद के प्रशंसक नहीं होते।

अब हम देखेंगे कि साम्यवाद राज्य शासन के लिये अच्छा साधन है या नहीं? यों तो साम्यवाद में दो ठोस दोष हैं। पहला दोष तो यह है कि साम्यवाद में व्यक्ति-विकास को बिल्कुल स्थान नहीं है। समाज या राष्ट्र के सामने व्यक्ति की कुछ कीमत नहीं है। और दूसरा दोष यह है कि साम्यवाद केवल मजदूरों तथा किसानों का भला चाहता है न कि सबका। इस दृष्टि से साम्यवाद वर्गभेद को प्रोत्साहन देता है और राष्ट्र की नींव दुर्बल करता है ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा। इसी कारण गण-राज्य या डिमॉक्रसी राज्यशासन का आदर्श साधन माना जा सकता है। भगवान् बुद्ध गणराज्य के आद्यप्रवर्तक थे यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। इसी कारण भारत ने आज भगवान् बुद्ध-प्रवर्तित धर्मचक्र को जिसे हम 'अशोक चक्र' कहते हैं अपने राष्ट्रध्वज में सन्मान का स्थान देकर बुद्ध को अपने गणराज्य का प्रतीक माना है। भगवान् बुद्ध तो मध्यम मार्गी हैं। भगवान् बुद्ध का मध्यम मार्ग हमें बताता है कि व्यक्ति समाज के लिये है और समाज व्यक्ति के लिये है। अतः गणराज्य में व्यक्ति तथा समाज का समन्वय होता है। और गणराज्य समस्त लोगों का तथा समस्त लोगों के कल्याण का राज्य होता है। यहाँ पर वर्गद्वेष को बिल्कुल स्थान नहीं होता। इन्हीं कारणों से हम दावे के साथ कह सकते हैं कि लोकतंत्रात्मक गणराज्य ही आदर्श राज्य शासन है। भारत में यह राज्य अमर करने के लिये हमें गणराज्य के निर्माता भगवान् बुद्ध की शिक्षा पर ही जोर देना चाहिये। इसी से हम केवल भारत का ही नहीं अपितु समस्त विश्व का कल्याण कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धधर्म में श्रद्धा का स्थान

श्री भरतसिंह उपाध्याय

बौद्धधर्म बुद्धि-प्रधान धर्म है। उसे 'एहिपस्सक' धर्म कहा गया है, जिसका अर्थ है 'आओ और देख लो'। विश्वास को यहाँ कोई स्थान नहीं है। वैज्ञानिक प्रक्रिया के समान खोज और परीक्षण उसके साधन हैं और विश्लेषण उसका मार्ग है। सत्य उसके लिये एक खोज करने की वस्तु है, पहले से तैयार की हुई देन-लेन के लिए नहीं। इसलिये मनुष्य को बाँधने का प्रयत्न वहाँ बिल्कुल नहीं किया गया है। बौद्धधर्म की यह एक ऐसी विशेषता है जो उसे संसार के अन्य सब धर्मों से अलग कर देती है।

बौद्धधर्म के बुद्धिवादी दृष्टिकोण के कारण उसे आधुनिक युग में काफी लोकप्रियता मिली है। वैज्ञानिक मन को संतोष देने में जितना यह धर्म समर्थ हुआ है उतना अन्य कोई नहीं। यूरोप में, उन्नीसवीं शताब्दी में, जब धर्म और विज्ञान का संघर्ष चल रहा था, यूरोपीय विचारकों का इसधर्म से परिचय हुआ। यहाँ उन्हें एक ऐसा अद्भुत धर्म मिला जिसकी न केवल मान्यताएँ विज्ञान से संगत थी, बल्कि जिसके सोचने का पूरा तरीका वैज्ञानिक था। इस धर्म से परिचय पाकर यूरोप के विचारकों को कितना आश्वासन मिला है यह इसी से जाना जा सकता है कि उनमें से एक (सर फ्रांसिस यंगहस्बेण्ड) ने कहा है कि बुद्ध-उपदेशों के समझने का वास्तविक समय अब २५०० वर्ष बाद आया है, और दूसरे (बरट्रेंड रसल) ने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा है कि "यदि मैं किसी धर्म को अपनाऊँगा तो वह बौद्धधर्म होगा।" बौद्धधर्म के निरन्तर बढ़ते हुए प्रभाव के ये शब्द संकेत भर हैं। जिस धर्म के प्रभाव में आधे से अधिक जगत् पहिले भी आ चुका है उसे, या यदि अधिक ठीक कहें तो उसके मार्ग को (क्योंकि 'मार्ग' से अतिरिक्त बौद्धधर्म और कुछ नहीं है), ज्ञान और मानवता के विकास के लिये आगे चलकर यदि पूरा विश्व अपना ले तो यह कोई आश्चर्य की बात न होगी। जैसा कि एक जापानी सम्राट ने कहा था—संसार में कोई ऐसा प्राणी नहीं है जो बुद्ध-धर्म से प्रभावित न हो यदि यह उसके सामने रक्खा जाय।

इसे एक युग धर्म की ही बात समझना चाहिए कि बौद्धधर्म के विशेषतः बुद्धिवाद ने इस युग में लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। बौद्धधर्म के ऐसे अनेक गुण हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों को, भिन्न-भिन्न युगों में आकृष्ट करते रहेंगे। यहाँ केवल एक सूक्ष्म भय यह है कि हम कहीं इनमें से किसी एक गुण का अतिवाद न कर बैठें, जिससे हम तथागत के मन्तव्य से दूर जा पड़ें। बुद्ध मन्तव्य इतना परिपूर्ण है जितना जीवन। दूसरे शब्दों में हम इसे यों कह सकते हैं कि मध्यम-मार्ग से तथागत ने धर्म का उपदेश दिया है। 'मज्झेन तथागतो धम्म देसेति'। यह बात हमें बुद्ध-धर्म के प्रकृत रूप को समझने में सदा याद रखनी चाहिए।

कोरा बुद्धिवाद मनुष्य को प्रकृतिवाद या भौतिकवाद में ले जायगा जिस प्रकार कोरा श्रद्धावाद अन्ध-विश्वास में। बौद्धधर्म दैवी विश्वास पर तो आधारित है ही नहीं, वह भौतिकवाद से भी उतना ही दूर है। जहाँ तक वह प्रज्ञा के विकास पर जोर देता है बौद्धधर्म एक विज्ञान है। परन्तु यहाँ वह प्रज्ञा की व्याख्या 'कुशलचित्त-संयुक्त ज्ञान' के रूप में करता है, वह विज्ञान से आगे बढ़ कर नैतिक दर्शन बन जाता है और विज्ञान का पथ-प्रदर्शन करता है। बुद्धिवादी होते हुए भी वह बौद्धिक नहीं है। वह जीवन का एक परिपूर्ण, व्यावहारिक दर्शन है। इसके लिए उसमें श्रद्धा की महिमा भी अपने ढंग से सुरक्षित है, यह हम उसके स्वरूप के विवेचन से अभी देखेंगे।

भगवान् बुद्ध ने जिस ज्ञान को प्राप्त किया उसे उन्होंने 'अतर्कावचर' बताया है। 'अतर्कावचर' का अर्थ है तर्क से अप्राप्य। सत्य या बोधि की प्राप्ति बौद्धिक ऊहापोह से नहीं हो सकती। जैसा कठोपनिषद् के ऋषि ने कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था 'यह मति तर्क से प्राप्त नहीं की जा सकती' (नैषा तर्केण मतिरापनेया), वही अर्थ 'अतर्कावचर' शब्द में निहित है। बौद्धिक ज्ञान से अतीत इस गम्भीर सत्य को प्राप्त करने के लिए सर्व प्रथम किस बात की आवश्यकता होगी, इसे बताते हुए ज्ञान-प्राप्ति के ठीक बाद ही भगवान् ने कहा था "अमृत के द्वार खुल गये हैं। जिनके पास कान हैं वे श्रद्धा उपस्थित करें।" बुद्धधर्म चित्त-शुद्धि के लिए था और चित्त-शुद्धि का लक्ष्य था निर्वाण। निर्वाण या पूर्ण विशुद्धि के लिए तथागत ने पुरुषार्थ को ही प्रधान साधन बताया था। यह सार्थक है कि बौद्ध परिभाषा में 'प्रधान' शब्दों का ही अर्थ पुरुषार्थ है। वीर्य और अप्रमाद इसी के दूसरे नाम हैं। वीर्य और अप्रमाद के रूप में देखना ही बौद्ध साधना को उसके वास्तविक रूप को देखना है। परन्तु वीर्यारम्भ के लिए प्रेरणा या शक्ति कहाँ से मिलेगी? बुद्धि से नहीं मिल सकती, क्योंकि उसका सम्बन्ध हृदय से नहीं है। इसका अक्षय स्रोत तो श्रद्धा ही है जो हृदय से उत्पन्न होती है और जिसे भगवान् ने एक 'बल' माना है, एक 'इन्द्रिय' या जीवनी-शक्ति कहा है। बौद्ध-धर्म में पाँच इन्द्रियाँ (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा) और सात बल (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा, ह्री और अपत्राप्य या पाप-भय) माने गये हैं। उनमें श्रद्धा को प्रथम स्थान प्राप्त है। इसका कारण यह है कि उत्पन्न होते ही श्रद्धा चित्त-मलों को दूर कर देती है। जैसा कहा भी गया है, "सद्धा उप्पज्जमाना नीवरणे विक्खम्भेति।"

श्रद्धा चित्त में उत्पन्न हुई है, इसका लक्षण ही यह है कि सारा मन प्रसन्नता से भर जाता है, मनुष्य की चेतना एकदम शान्ति और आध्यात्मिक 'प्रसाद' में डूब जाती है। श्रद्धा का लक्षण करते हुए 'मिलिन्द-प्रश्न' में कहा गया है—"सम्पसादनलखणा सद्धा" अर्थात् श्रद्धा का लक्षण है संप्रसाद, चित्त का प्रसन्न होना, शान्त होना, उत्साह से भर जाना। 'मिलिन्द-प्रश्न ईसवी सन् के करीब की रचना है। बौद्ध जीवन-साधना ने हमें जो कुछ दिया है उससे हमें यह आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि योग सूत्र के भाष्यकार व्यास ने, जिसका समय पाँचवी शताब्दी ईसवी माना गया है, हूबहू बौद्ध परिभाषा को स्वीकार करते हुए कहा है 'श्रद्धा चेतसः संप्रसादः' (व्यासभाष्य १।२०)। क्या श्रद्धा की सर्वोत्तम परिभाषा के लिए भी हम बौद्ध साधना के ऋणी हैं? न केवल व्यास-भाष्य, बल्कि योग-सूत्रों (तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व) पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट उपलक्षित है, यह इसी प्रसंग में इससे जाना जा सकता है कि असंप्रज्ञात समाधि की प्राप्ति के लिए उन्होंने बौद्ध साधना की पाँच इन्द्रियों का उल्लेख किया है, यद्यपि 'इन्द्रिय' शब्द का निर्देश उन्होंने नहीं किया है। 'श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्" (योग-सूत्र १।२०)। इस सूत्र की व्यास-भाष्य में जो व्याख्या की गयी है वह बौद्ध मन्तव्य और शब्दावली का बिल्कुल अनुसरण करती है, इसे विस्तार से दिखाने की यहाँ आवश्यकता नहीं। हमारा अभिप्राय यहाँ केवल यह दिखाना है कि श्रद्धा चित्त की वह प्रसादमयी अवस्था है जो एक ओर साधक को उन्नत आध्यात्मिक अवस्थाओं को अनुभव करने के लिए उत्साहित करती है और दूसरी ओर संशयादि चित्त-मलों को दूर कर चित्त को शान्ति प्रदान करती है। श्रद्धा से ही वीर्य उत्पन्न होता है। वीर्यारम्भ करने वाले की स्मृति ठहरती है। जिसकी स्मृति ठहरी हुई है उसी का चित्त समाधिमग्न होता है और चित्त की समाधि से ही प्रज्ञा मिलती है जिससे साधक यथाभूत ज्ञान-दर्शन को प्राप्त करता है। इस साधन-क्रम का आरम्भ प्रसाद-रूप श्रद्धा से होता है। इसकी सच्चाई की गवाही गीता में भी संक्षेपतः इन शब्दों में दी गई है। "प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्यासु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते" संशय या अश्रद्धा को जिस प्रकार गीता में विघ्न माना गया है और यज्ञ और अश्रद्धालु के विनाश की बात कही गई है उसी प्रकार संशय या विचिकित्सा (विचिकिच्छा) को बौद्ध दर्शन में चित्त का एक काँटा कहा गया है। "जो भिक्षु शास्ता के प्रति सन्देह करता है, उनके प्रति श्रद्धा नहीं रखता, प्रसन्न नहीं होता, उसका चित्त संयम, योग और प्रधान (पुरुषार्थ) की ओर नहीं झुकता।" इसलिए जहाँ कहीं पालि-त्रिपिटक में साधक का वर्णन आया है वहाँ सबसे पहले यही बात कही गई है—यहाँ भिक्षु श्रद्धा से युक्त होता है' (इध भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति) आदि। इसलिए हम कह सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि बौद्ध साधना का प्रस्थान बिन्दु बुद्धि नहीं बल्कि श्रद्धा है और जैसा बृहदारण्यक उपनिषद् ने कहा है, श्रद्धा की प्रतिष्ठा हृदय में है "हृदये ह्येव श्रद्धा प्रतिष्ठिता"। दानादि के प्रसंग में जिस प्रकार श्रद्धा की प्रशंसा वैदिक ग्रन्थों में की गयी है उसी प्रकार बौद्ध साहित्य में श्रद्धा को सम्पूर्ण पुण्यकारी वस्तुओं (पुञ्ञकिरिया वत्थूनि) का आधार कहा गया है। सुत्त-निपात के कसि भारद्वाज-सुत्त में भगवान् बुद्ध अमृत की खेती करते दिखाये गये हैं। उसका बीज वहाँ श्रद्धा को ही बताया गया है। श्रद्धा की बार-बार अभ्यास की गई अवस्थाओं को ही आचार्य बुद्धघोष ने भक्ति कहा है (पुनप्पुनं भजनवसेन सद्धा वा भक्ति) और भक्ति अनिवार्यतः प्रेम (पेम) से सम्बन्धित है। परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध साधना श्रद्धा से प्रेमरूपा भक्ति की ओर न मुड़कर प्रज्ञा-रूपिणी 'भावना' की ओर बढ़ गयी है जो बुद्धि से अधिक सम्बन्धित है। जैसे गीता ने कहा है, योग की तो दोनों जगह ही आवश्यकता है और 'भावना' से भी शान्ति और सुख की सिद्धि होती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध साधना में श्रद्धा और बुद्धि का समन्वय है। उनकी श्रद्धा 'पञ्ञान्वया' है। स्वयं भगवान् बुद्ध ने हमें एक शब्द दिया है 'पञ्ञान्वया सद्धा' (प्रज्ञान्वया श्रद्धा)। इस एक शब्द के द्वारा ही हम बौद्ध धर्म में श्रद्धा के स्थान को समझ सकते हैं।

श्रद्धा के द्वारा विमुक्त होने की बात भगवान् ने अनेक बार कही है। "श्रद्धा के द्वारा मनुष्य भव-बाढ़ को तरता है" (सद्धाय तरती ओघं) ऐसा उन्होंने अनेक बार आश्वासन दिया है। पिंगिय नामक ब्राह्मण विद्यार्थी को उन्होंने अनेक उदाहरण देते हुए श्रद्धा द्वारा मुक्त हो जाने के लिए उत्साहित किया। भगवान् ने कहा 'जिस प्रकार वक्कलि, भद्रायुध और आलवि गोतम श्रद्धा द्वारा मुक्त हुए उसी प्रकार पिंगिय! तुम भी श्रद्धा को उपस्थित करो। तुम मृत्यु को पार कर जाओगे।" इस प्रकार श्रद्धा द्वारा भगवान् ने विमुक्ति को सिखाया है।

तथागत की 'प्रज्ञान्वया श्रद्धा' इस अस्तव्यस्त जीव-लोक के लिए, जिसके बौद्धिक और भावात्मक सन्तुलन खोये हुए हैं सचमुच एक वरदान की वस्तु है।

(जीवन-साहित्य से)

प्रभात-फेरी

श्री रामचन्द्र लाल

जाग रे जहान, जाग जाग रे जहान।
आलस्य, मोह त्याग देख स्वर्ण का विहान॥

हिंसा, घृणा, कलह का व्यर्थ हो रहा शिकार,
शान्ति प्राप्ति के लिए न कर रहा विचार,
बन्धु बन्धु का अरे! करे है रक्त पान।
जाग रे जहान, जाग जाग रे जहान॥
सभ्यता की डींग व्यर्थ ही तू हाँकता,
इधर-उधर की धूल व्यर्थ ही तू फाँकता,
सत्य, दया, त्याग, प्रेम से तू बन महान।
जाग रे जहान, जाग जाग रे जहान॥
बुद्ध का विशुद्ध मार्ग छोड़ क्यों चला,
सम्बन्ध स्वर्ग का तू आज तोड़ क्यों चला,
आ जा राजमार्ग पर बजा के अब निशान।
जाग रे जहान, जाग जाग रे जहान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साँची-स्तूप

कुमारी 'विद्या प्रभाकर'

रजत इन्दु कमनीय कान्ति में, ले अतीत के मृदु आख्यान।
संस्कृति में फिर गुञ्जित कर दो, स्वर्णिम युग के गौरव गान॥
कंचन महलों की शोभा में, पुलकित था वैभव साकार।
उर्मिल वेत्रवती का तट था, कंजकली का क्रीड़ागार॥
विश्व विजय के साधक आये, एक छत्र शासक बनकर।
विदिशा राजहंसिनी से वे, पाये मंजु प्रणय उपहार॥

'देवी'[1] के उस हृदयेश्वर की, वह शुचि करुणा की पहिचान।
आज जगा दो इस नवयुग में, ले अतीत से मृदु वरदान॥

किया अशान्त हृदय को उनके, वह कलिंग का विजय विहार।
पल भर शान्ति न दे पाते थे, वैभव गौरव थे वे भार॥
स्निग्ध शान्ति वे पाये थे, पावन करुणा की छाया में।
थे नत हुए त्रिरत्न शरण में, पाकर मन चाहा मनुहार॥

उस करुणा, मंजुल ममता का, करने को नव-नव सम्मान।
बने पथिक वे मुक्ति मार्ग के, त्यागे हेम खचित परिधान॥

आर्य-सत्य वा शुचि शीलों के, लेकर उच्चभाव सुकुमार।
मैत्री का मकरन्द लुटा जो, गये विश्व बन्धन के पार॥
अग्रश्रावकों के अवशेषों की, रखने चिर सुप्त निशानी।
श्रद्धा की अंजलि देकर वे, बनवाये स्तूप विहार॥

समय-चक्र की गति बदली थी, स्वर्णिम युग का था अवसान।
दूर देश में गई मंजूषा, तड़प उठा संस्कृति का मान॥

सुन्दर शिल्प, साकार कल्पना, के प्रतीक से बन्दनवार।
जिसके स्तम्भों पर अंकित, जातक रम्य रूप अवतार॥
सीपी से स्तूप मौन थे अवशेषों की मुक्ता खोकर।
आई मुक्ता फिर साँची में, स्वतन्त्रता से कर शृंगार॥

देवी की विदिशा समीप ही, फैला निर्मल कीर्ति वितान।
मंगल-मय वरदान बनो ओ, साँची के स्तूप महान्॥

---

१ सम्राट अशोक की रानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकीर्णताजनित संकट

श्री एच० वी० गुन्थर, पी-एच० डी०

समानतः हम लोग अपने को और संसार को जिसमें हम पैदा हुए हैं सत्य मान बैठते हैं, और जीवन का तथा हमारा क्या रहस्य है—ऐसे महत्वपूर्ण एवं कष्टदायक प्रश्न केवल अपवाद रूप में हमारे सामने आते हैं। अपने व्यवहारिक जीवन के लिये सभी वस्तुओं को यथार्थ मान लेना साधारणतया भले ही सरल और लाभप्रद ज्ञात हो, किन्तु यह धारणा सतत नैराश्य, असफलता और विवशता-पूर्ण परित्याग का कारण है। इसका कारण यह है कि हम लोगों ने अपना और जगत् का एक विशुद्ध काल्पनिक चित्र खींच लिया है—जिसे हम अहंभाव, अपने व्यक्तित्व और अपनी मानवता के नाम से पुकारते हैं, वह हमारे वास्तविक अस्तित्व से परे की और असंगति वस्तु है; और जिसे हम संसार कहते हैं, वह भी इसी तरह अयुक्तिपूर्ण तत्वहीन वस्तु है—ये दोनों हमें स्थायी सुख और आत्मिक संतोष प्रदान करने में असमर्थ हैं।

हम यह निश्चय समझते हैं कि विषयी और विषय के बीच का द्वैत सत्य है; इसी दोष के कारण हमें अपने और अपने चारों ओर स्थित संसार के बीच एक ऐसी खाई दिखलायी देती है जिसको पार करना असम्भव नहीं है। परन्तु बात यहीं पर समाप्त नहीं होती, इससे भी बढ़कर यह समस्या है कि हम लोगों के अन्तर में हमारी बौद्धिक एवं भावपूर्ण क्रियाओं के बीच एक अत्यन्त अशांत एवं दुःखदायी अन्तर द्वन्द्व चला करता है—इन्हीं क्रियाओं के असमंजस से सभी प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं।

जिस ज्ञान के लिये साधारणतः हम सबसे अधिक लालायित रहते हैं, वह ज्ञान निश्चय ही बौद्धिक ज्ञान है। इस ज्ञान के विषय में हम कह सकते हैं कि वह आद्योपान्त काल्पनिक सिद्धान्तों पर निश्चित रहता है और केवल यदा-कदा उनसे उद्भूत फलों से उसकी यथार्थता नापी जाती है। अतएव यह ज्ञान परतंत्र ज्ञान है। निःसंदेह इस प्रकार का ज्ञान हमें निश्चयात्मकता की भावना देता है, लेकिन यथार्थता और सम्पूर्णता की भावना प्रदान करने में असमर्थता प्रकट करता है। फलतः यह निश्चयात्मक की भावना भी हम स्वीकार करें या न करें—एक दुर्बल और बहुत भ्रामक भावना है; क्योंकि हम देखते हैं कि कल्पना और विचारों द्वारा निर्मित हमारा दृढ़ संसार नवीन खोजों के बाद अचानक ढह जाता है और हमें खण्डहरों के बीच छोड़ देता है। उदाहरण के लिये, प्लेटो द्वारा निर्णीत संसार विषयक सिद्धान्तिक विचार उसके शिष्य अरस्तू द्वारा खण्डित कर दिया गया; अरस्तू का सिद्धान्त आगे चल गैलेलियों और न्यूटन द्वारा अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण सिद्ध किया गया; और न्यूटन के संसार विषयक सिद्धान्त में आइन्स्टीन द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया गया और; आइन्स्टीन का सम्बन्ध विषयक एकीकरण का सिद्धान्त भी भविष्य में—जब उसका मूलभूत सिद्धान्त अथवा उसका कोई अंग जहाँ से सिद्धान्त पालन होता है मिथ्या सिद्ध कर दिया जायगा—परिवर्तित किया जा सकता है। हमारा बौद्धिक ज्ञान पूर्ण रूप से सुरक्षित और विश्वसनीय ज्ञान नहीं होता; इतना ही नहीं, कुछ अंशों में अपने गुणों के रहते हुए भी वह महान क्रान्तिकारी होता है। जिस प्रकार सम्वाददाताओं द्वारा शीघ्रता-पूर्वक ग्रहण करने तथा रोचकतर बना कर पुनः प्रकाशित करने से क्रान्तिकारी घटनायें सभी प्रकार के मिथ्या प्रचारों को जन्म देती हैं, ठीक उसी प्रकार कोरा बौद्धिक ज्ञान सभी प्रकार के काल्पनिक विचारों और भावों को जन्म देता है; इन्हीं के लिये साधारण मनुष्य प्रयत्नशील रहता है। सापेक्षतया ठोस बातों पर आधारित तथा कल्पनाओं से मिश्रित इस प्रकार के ज्ञान को गौतम बुद्ध ने अविद्या या अज्ञान संज्ञा दी है क्योंकि स्वभावतः यह हमें मौलिक अन्तिम और चिरंतन ज्ञान देने में असमर्थ है। यह अविद्या-मूलक ज्ञान सद्यःजात अनुभूति की अपेक्षा सदैव कुछ न कुछ अधिक निश्चय कर लेता है और इसीलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ठोस सत्यों को छिपाने वाला भले ही न हो, कम से कम भ्रामक अवश्य है। प्रज्ञाकर्मति ने ठीक कहा है, "क्योंकि स्वभाव से ही यह भार स्वरूप है और अन्धेरे की भाँति सत्य को आच्छादित कर देता है"। इसके अतिरिक्त यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि परीक्षित सत्य तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों से कितने अधिक मिले होते हैं और कितनी दृढ़ता से हम अपने पूर्व निश्चित सिद्धान्तों से लिपटे रहते हैं, चाहे परीक्षित सत्य इन सिद्धान्तों के विरोधी ही क्यों न हों। सभी ज्ञेय, (बौद्धिक ज्ञान के विषय) वस्तुओं के वास्तविक रूप तक पहुँचने में बाधक हैं; और स्थिरमति के अनुसार जहाँ तक प्रत्येक ज्ञेय का सम्बन्ध है यह ज्ञान के संचित आचरण में बाधक होने के कारण अक्रियाशील अविद्या है। दूसरे शब्दों में हमारा बौद्धिक या सामान्य ज्ञान अनुमान जनित ज्ञान है, न कि ठोस सत्य द्वारा सुनिश्चित ज्ञान।

आन्तरिक भावनाओं की दृष्टि से भी हम अच्छी परिस्थिति में नहीं हैं। हम लोगों का अधिकांश समय घोर राग और द्वेष के द्वन्द्व में व्यतीत होता है अथवा हम उदासीनता और अकर्मण्यता का भाव ग्रहण कर लेते हैं जो शायद निकृष्टतम कोटि का मोह है। फिर हमारे बौद्धिक और आन्तरिक विचारों में अद्भुत सम्बन्ध और अन्योन्याश्रयत्व है। हमारी विचारधारा जितनी ही काल्पनिक होती है हम उससे उतने ही अधिक सम्बद्ध रहते हैं जब हम साथ ही साथ शीघ्र ही उसकी काल्पनिकता की ओर संकेत भी कर देते हैं। हमारे ही समान काल्पनिक विचार यदि किसी दूसरे में उत्पन्न होते हैं तो हम उसका घोर विरोध करते हैं। यदि किसी साहसी पुरुष ने किसी कारण से हम से विरोधी विचार प्रकट किया तब हम बिना संकोच उस विचार की काल्पनिकता अथवा अपने विरोधाभास का सम्बन्ध उस मनुष्य के चरित्र से जोड़ देते हैं। सामान्यतः जन जीवन में और विशेषतः वैज्ञानिक जीवन में आने वाली निरर्थक लम्बी चौड़ी भावनाओं से भरी हुई वक्तृताओं के विषय में जब हम सोचते हैं तब हमें यही ज्ञात होता है कि हमारे जीवन में मस्तिष्क से अधिक आन्तरिकता का स्थान रहता है और सचमुच यह बौद्धिक विचार की उपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। अपनी भावनाओं के प्रवाह में हम निःसंकोच अपने साथी जीवों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं। किन्तु यह विनाशात्मक कार्य केवल हम से विभिन्न लोगों की ओर ही नहीं अग्रसर होता, अन्ततोगत्वा यह हमीं लोगों के ऊपर घहराता है क्योंकि हमारे और प्रकृति के जीवधारियों के बीच पृथक्करण की कोई गहरी रेखा नहीं है। दूसरों के लिये किया गया हमारा प्रत्येक विनाशकारी कार्य हम लोगों के लिये भी हानि और पराजय का कारण होता है। यदि सच कहा जाय तो हमें अन्धा और कर्तव्य-विमूढ़ बनाने वाले भावावेशों द्वारा किया गया विनाश सदा ही एक प्रकार की मृत्यु है और वस्तुतः भावावेश की समाप्ति के उपरान्त नवीन जीवन प्रारम्भ होता है। किन्तु यदि हम उनकी पुनरावृत्ति एवं पुनराक्रमण को असम्भव करने के लिये भावावेशों को समूल नाश करने में सफल नहीं होते तो निश्चय ही मृत्यु का पुनरागमन होता रहेगा। यह कार्य उनके दमन अथवा परित्याग से असम्भव नहीं है बल्कि उनकी स्वार्थ-मूलक शक्ति को स्वार्थ-रहित उद्देश्य की ओर उन्हें मोड़ देने से। नित्य प्रति जीवन के अनुभव से मालूम होता है कि मृत्यु और पुनर्जन्म का कार्य हमारे भावावेश साथ साथ करते रहते हैं। स्थिरमति ने ठीक कहा है, "हमारे कर्म और विचार परिणाम ह संसार के कारण हैं क्योंकि भावोद्वेगों के प्रभुत्व के कारण ही हमारा कार्य हमारे लिये नये जीवन का मार्ग तैयार करता है।"

पूर्णतया एकीकरण के लिये अति-आवश्यक दृढ़ता के मार्ग में हमारे अहंभाव, विकेन्द्रित भावनायें और विचार ही बाधा उपस्थित करते हैं; शिक्षा विधि की बाधा के कारण हम अस्थायी वस्तुओं के पीछे दौड़ते रहते हैं—दोनों बाधायें हमें ममत्व तथा मित्रत्व की भावना से परे की आनन्दानुभूति तथा असीम जागृति की दिव्य ज्योति का अनुभव नहीं होने देती; जीवन के सतत संकट पूर्ण प्रश्नों का सम्पूर्ण उत्तर पा जाने पर ही इस दिव्य अनुभूति की प्राप्ति होती है। दूसरे शब्दों में हमारी ममतापूर्ण कामनायें हमें यह अनुभव कराने में असमर्थ बना देती हैं कि अपने को दूसरे से अच्छा समझने की भावना निर्मूल है, और हम अपने स्थायी जीवधारियों का बध करने पर भी सदैव अपनी नैतिकता बनाये रख सकते हैं। शिक्षाविधि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण हम इसका अनुभव नहीं कर सकते कि संसार का कोई पदार्थ सभी दशाओं से परे अपनी सत्ता को स्थिर नहीं रख सकता। अहंभाव मूलक भावोद्वेग और शिक्षा-विधि के महत्वपूर्ण सम्मिलन के कारण हम सांसारिक वस्तुओं में तैरते रहते हैं और साध्य तथा सत्य से दूर रहते हैं। हम अपने को भले ही बहुत बड़ा विद्वान् और बुद्धिवान् समझें किन्तु जीवन की मूल समस्याओं के सम्बन्ध में हम निरे मूर्ख हैं; और हम अपनी भावनाओं को चाहे कितना ही उत्कृष्ट समझें किन्तु अपने साथी जीवधारियों के प्रति व्यवहार में हम बनैले पशु हैं।

इन्हीं कारणों से बुद्ध ने निःस्वार्थ होकर द्वैत भावना का अतिक्रमण करने पर जोर दिया है; अहं की भावना अत्यन्त भावुकतापूर्ण और अशान्तिमूलक है। अहंभाव से मुक्त होने पर ही हमें स्वातन्त्र्य और स्वयं प्रकाश की प्राप्ति होती है क्योंकि उस अवस्था में सभी बौद्धिक और आन्तरिक बन्धन टूट जाते हैं। तब हमें महासुख मिलता है और बल का प्रयोग किये बिना प्रज्ञा शून्यता करुणा प्रेम और विचार के सहारे अपना उद्देश्य पूर्ति करने में समर्थ होती है। तब हमारी अन्तर्ज्योति वह ज्योति नहीं रह जाती जिसे हम देखते और खोजते हैं बल्कि उसी अन्तर्ज्योति से हम देखने और उसी के प्रकाश में प्रत्येक वस्तु के रहस्य को समझने लगते हैं। वास्तव में आत्म-प्रकाश ही अहंकार एवं तदुत्भावित कष्ट और विपत्तियों की औषधि है प्रज्ञाकर्मति ने कहा है "बुद्धिवाद और शिक्षाविधि द्वारा उपस्थित बाधाओं के अन्धकार को मिटाने के लिये शून्यता अस्त्र है; सर्वज्ञता का अभिलाषी कौन शीघ्रता से इसे नहीं अपनायेगा?"

कितनी ही दूर तक शिक्षा-विधि चली जाय, यह एक अकाट्य सत्य है कि उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान में सदा कुछ अज्ञात वस्तु भी मिली रहती है और ज्ञान के विषय का केवल एकांगी चित्र सामने आता है उसका अन्य सभी वस्तुओं के साथ आधारभूत सम्बन्ध तथा अन्योन्याश्रयता हमारी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। शिक्षा-विधि की यह अद्भुत विशेषता हमें एक भयंकर वृत्ति में अज्ञात के पीछे दौड़ाती रहती है। अभिलषित वस्तु को पाने की इच्छा से सभी प्रकार के घातक यंत्रों का आविष्कार करके और नवीन सिद्धान्तों की रचना-क्रीड़ा से आकर्षित होकर हम प्रधान विवाद-ग्रस्त विषय को एकदम भूल जाते हैं। यहाँ तक कि हम सृष्टि को समझने में भी भूल करने लग जाते हैं—वस्तुओं के विषय में अपने विचारों और भावों को वास्तविक वस्तु ही समझ लेते हैं। परिणाम-स्वरूप प्रधान विषयीगत वस्तुओं को विषयगत वस्तुओं का रूप दे दिया जाता है; तथाकथित निष्पक्षता अत्यन्त कट्टर असहिष्णुता का रूप धर लेती है; और अध्यारोपित आध्यात्मिकता केवल कोरा बुद्धिवाद निकलती है। भावोद्वेग और शिक्षा विधि के इस महत्वपूर्ण प्रभाव को जानकर बुद्ध ने सदैव चेतनाशक्ति का अनुभव करने और लकीर का फकीर न बनने के लिये चेतावनी दी है। उन्होंने लंकावतार सूत्र में इस प्रकार कहा है, "महासत्व बोधिसत्व को भाव पर विचार करना चाहिये न कि शब्दों पर। महामति, क्योंकि एक कुलीन पुत्र या पुत्री, जो शब्द जाल में फँसता है, केवल अपने ही को नहीं नष्ट करता है बल्कि दूसरों को समझाने में भी असमर्थ रहता है।"

किन्तु हम लोगों में से अधिकांश लोग लकीर के फकीर बने रह जाते हैं; पथ-प्रदर्शक स्तम्भ को मार्ग समझ बैठते हैं; और आलस्य तथा अविद्या के कारण रूढ़ि के आगे नहीं जाते। इसी बात की ओर बुद्ध ने एक सुन्दर उपमा में संकेत किया है, हे महामति, एक सुयोग्य वंश के पुत्र या पुत्री को केवल शब्दों के ही मोह में न पड़ना चाहिये क्योंकि महत्वपूर्ण बातें शब्दों से नहीं स्पष्ट की जा सकती। न तो उन्हें साधन को साध्य समझ लेना चाहिये। हे महामति जिस प्रकार एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपनी अँगुली से कुछ दिखलावे और वह दूसरा मनुष्य देखने की इच्छा से उसकी अँगुली के अग्रभाग तक ही देख पावे; उसी प्रकार हे महामति मूर्खों की परम्परा में उत्पन्न मूर्ख अज्ञानी लोगों का समूह लकीर का फकीर बना रहता है और लकीर को पार किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है इस प्रकार अन्तिम सत्य का अनुभव नहीं कर पाता।"

शब्दों से लिपटने के स्थान पर भाव को समझने के लिये प्रयत्न करने का एक प्रधान परिणाम है। इससे बौद्ध धर्म की सतत संजीवनी शक्ति अक्षुण्ण बनी रहती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध धर्म किसी सार हीन रूढ़िवादी बाह्याडम्बर में डूबने से बचा रहता है क्योंकि बौद्ध धर्म की संजीवनी शक्ति ज्ञान है जो शिक्षाविधि और भावुकता के भ्रमजाल में नहीं फँस सकता। जो कुछ भी बुद्ध ने कहा वह सब ज्ञान के पथ प्रदर्शक स्तम्भ के रूप में कहा गया था; उन्होंने कभी भी किसी राजनीतिक शक्ति की वृद्धि के लिये सर्वशक्तिमान अन्धविश्वास को जन्म नहीं दिया।

अतएव पाश्चात्य सिद्धान्तमूलक धर्म तथा दर्शन धाराओं के आदेशानुसार यदि कोई बौद्ध धर्म को रूढ़िवादिता या अपरिवर्तनशील परिभाषा में सीमित करना चाहता है तो वह बौद्ध धर्म को समझने में त्रुटि करता है और उसे त्रुटिपूर्ण ढंग से प्रकट करता है। यह निश्चय है कि प्रत्येक धारा अपने सिद्धान्तों तथा तदुद्भूत परिणाम के आधार पर ही निर्मित की जा सकती है; और ये भी आधारभूत अनुभव केवल एकांगी दिग्दर्शन ही कराते हैं जो सीमित परिभाषा के पहले आता है किन्तु उसी में सम्पूर्ण कभी नहीं होता।

यदि सच कहा जाय तो किसी धारा (शैली) को सर्वस्व मान लेने की परिपाटी का विरोध बुद्ध ने दृढ़ता से किया—अपने को सर्वोपरि मानना विकल्प है। साधारण दृष्टि से शब्द और विचार केवल निषेधात्मक वर्णन करते हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध सीमित, स्थानीय और निश्चित बातों से रहता है; हमारी विषयीगत (Subjective) भावनाओं की संकुचित सीमाओं तथा हमारे स्वार्थ पर विचारों के संकीर्ण क्षेत्र के परे की वस्तुओं से उनका सम्बन्ध नहीं रहता। अतः हमें इस बात को बराबर याद रखना चाहिये कि कोई भी शब्द, विचार अथवा अक्षर हमारी सभी आन्तरिक शक्तियों को क्रीयमाण एवं जागृत करने वाले ज्ञान का महत्व कभी नहीं प्रकट कर सकता।

एक बात मुझे और कहनी है। यद्यपि कोई शब्द प्रज्ञान का अर्थ नहीं बतला सकता, तथापि किसी का अनुभव और अपने लिये ज्ञान का अर्थ निकालने में उसकी सफलता को जानने के लिये दुर्बल मापदण्ड के रूप में शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों को हम इसी दृष्टि से समझ सकते हैं—थेरवादियों के पालि ग्रन्थों से प्रारम्भ करके महायान के तन्त्रों तक। बुद्ध के ज्ञान की अद्भुत अनुभूति के मापदण्ड के रूप में ही इन सभी ग्रन्थों का जन्म हुआ। अपनी व्यक्तिगत विचार-धारा के कसौटी पर कसकर ग्रन्थों के विभिन्न समूहों का बहिष्कार करने के बदले यदि हम बौद्ध-ग्रन्थों को इस ढंग से समझेंगे तो हम संकीर्णता के संकट से बच जायेंगे। संसार मे सभी विपत्तियों और मिथ्या धारणाओं के मूल में संकीर्णता ही है।

अनुवादकः— श्री रामचरण लाल एम० ए०

बर्मा-यात्रा का एक विवरण

अभिधम्म का सजीव हृदय बर्मा

कविराज पं० विश्वनाथ शास्त्री

उस मंगलवार (५-३-५२) को मङ्गलमय अपराह्न का स्मरण सदा ही एक सा आनन्द देता रहता है। वह हृदय को विभोर कर देता है। उस दिन अवश्य कोई विशेष संयोग का दिन था। धर्म-प्राण वर्तमान बर्मा सरकार के धार्मिक शासन विभाग और अन्तर्राष्ट्रीय विभाग का आमन्त्रण पाकर हम सब भारतीय महाबोधि संसद के दस सदस्य रंगून के नवनिर्मित "विश्व शांति पगोडा महोत्सव में भाग लेने जा रहे थे। हम सब जिस यू. वि० एस. के विमान से उड़ रहे थे, वह जब रंगून के निकट पहुँचा था, दिन ढल चुका था। भुवनभास्कर अस्ताचल के शिखर का स्पर्श कर रहे थे। उस समय उनकी मुस्कराहट से पश्चिम दिशामें लोहित सुवर्ण की आभा गगन में बिखर कर अनन्त में व्याप्त हो रही थी। रंगून हवाई अड्डे पर मड़राते हुए पूर्व की ओर से उस विशाल स्वेडेगोन पगोडा के सुवर्ण गुम्बज पर स्वर्णिम मयूख पड़ कर पृथ्वी, द्यो और अन्तरिक्ष तक सुवर्णमय हो रहा था। उस अपूर्व दृश्य के देखने में मैं इतना तल्लीन हो पड़ा था कि वायुयान के भूमि स्पर्श के धक्के ने हमारा ध्यान खींचता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ समझा सका कि रंगून में हम उतर गये। हवाई अड्डे पर उतरते ही स्वागतार्थ फूलों के गुच्छे, फूल-माले, रंग-विरंगे पताके लिये जनझुण्डों को देखा और 'स्वतन्त्र भारत की जय' 'स्वतन्त्र बर्मा की जय' 'महा-बोधि की जय' तथा डा० मुकर्जी की जय के निनाद सुन पड़े। वायु-यान से हम सब एक सुन्दर मोटर पर भीड़ के पास लाये गये, और वहाँ के परराष्ट्र मन्त्री तथा धार्मिक विभाग के मन्त्री श्री यू० विन० तथा एटर्नी जेनरल श्री चांग तुंग ने बड़ी ही सज्जनता, सरलता और विनयावनत हृदयग्राहिता के भावों में हमें अपना लिया। अब जन-गण की बारी आई और रंगून के प्रवासी भारतियों की खड़ी पंक्तियों ने पुष्प प्रदान, कर मर्दन, कराञ्जली, तथा करसम्पुट के अनेक मुद्राओं द्वारा स्वागत आरम्भ किया। उनमें हिन्दी भाषी, मारवाड़ी, पंजाबी, बंगाली तथा गुज-राती प्रभृति सभी थे। उनके सौजन्य ने हमें अपने मन से अपना लिया। वहाँ से हम लोग विश्व-शान्ति पगोडा में लाये गये। इसे देखकर हम लोग अत्यन्त अचम्भे में पड़ गये। दो मील के आयतन में एक से एक सजे सजाये कैम्प, कुटी, पर्ण वियनि, और भव्य वीथिकाओं की जाल फैली हुई थी। महामेला लगा हुआ था। विशाल पगोडा, उसके कला मनोहर के अष्ट द्वार और अभ्यन्तरस्थ सुवर्ण एवं रजतपट पर लिखे पालि अभिधम्म तथा विनय के वाक्य समूह अपूर्व दर्शनीय, सराहनीय और लुभावनीय थे। भगवान् बुद्ध अर्हत् सारिपुत्त, मौद्गल्यायन तथा और भी अनेक अर्हतों की पवित्र अस्थियों का दर्शन शरीर के सभी मल, सभी प्रकार के संताप, दुःख और वेदना को दूर कर पवित्रता, करुणा, और निष्ठा की श्रद्धा हृदय में भर रहा था। हम सब जहाँ अपने को और अपने इस सौभाग्य के सुयोग्य को धन्य मान रहे थे, वहाँ वर्तमान बर्मा सरकार के सुयोग्य सचिव-गण तथा उनके प्रधान मन्त्री श्री थाकिन् महोदय को विशेष रूप से धन्यवाद दे रहे थे। वास्तव में श्री थाकिन् महोदय इस युग के श्रेष्ठ महापुरुष हैं। परम श्रद्धा के योग्य हैं और एशिया के एकमात्र सौभाग्यवान नेता हैं। उनके लक्ष्य और उनके उज्जवल चरित्र सम्राट् अशोक, महाराजा हर्षवर्द्धन, तथा महाराज धर्मपाल की नाई पृथ्वी पर अमर रहेगा। श्रद्धा का पात्र होगा और विडम्बनापूर्ण प्रपञ्ची वर्तमान विश्व के लिये आदर्श होगा। आज बर्मा में मन्त्रियों की उच्च सद्भावना से वहाँ के सभी मन्दिरों के जीर्णोद्धार, संस्कृति, धर्म और समाज-जीवन में नवीन प्रगति आ गई है।

बर्मा-प्रदेश प्रकृति जननी का लाड़ला और सुसमृद्ध-शाली सौभाग्यवान देश है। बर्मा की धरतीमाता ने अपने वक्ष-कक्ष में अनेक मूल्यवान खनिज पदार्थों को संचय कर रक्खा है। सोना, चाँदी, ताम्बा, टीन, सीसा, रसा-ञ्जन, विस्माथ, एम्बार, कोयला, पेट्रोल, 'कीरासन आदि से यहाँ का खनिज भरा पड़ा है। वहाँ, चीड़ अरण्यशाल, शागवान, गोंद, लाह, रबर तथा सुन्दर फल-फूलों से हरे-भरे हैं। संगमर्मर पत्थर, गन्धक, सोडा, और नमक से बर्मा-प्रदेश समृद्ध है। जिधर आइये धान की कतारों से वसु-न्धरा की लोच अपूर्व शोभा दिखायगी। बाँस के झुरझुण्ड, फूलों की क्यारियाँ, सब्जियों की हरियालियों से मन मुदित हो जाता है। वहाँ के आदि निवासी सभी बौद्ध धर्मी हैं। गाँव, कसबे और जनपद बौद्धस्तूप, पेगोडा, संघाराम और बौद्ध पुंगीचौंग से परिपूर्ण मिलेगा। यहाँ के बौद्ध 'अभि-धम्म सम्पदा" प्रणाली के हैं। अभिधम्म का यहाँ सजीव रूप है। आतिथ्य सत्कार, दान और धार्मिक अनुष्ठान यहाँ के समाज की मूल रुचि और जीवन का आवश्यक अंग है। बर्मी-महिला विश्व में श्रेष्ठ पतिसेवा परायण आदर्श गृहिणी हैं। इनके वस्त्र, आभूषण और रहन-सहन की प्रणालियों में चमत्कार, सौन्दर्य और सफाई का विशेष आयोजन रहता है। मेले-ठेले में भी ये लोग शान्ति, संयम और सुरुचि बनाये रहती हैं। महिलायें घर, दूकान और कारोबार करती हुई, स्वच्छन्द होकर सर्वत्र गमनागमन करती हुई भी दाम्पत्य जीवन में रमणी ही रहती हैं। सदाचार और सतीत्व की मर्यादा को कठोर रूप से पालती हैं। पति प्रेम, आनन्द और रमण इनके जीवन में एक साथ रहता है। इन तीन में से किसी भी एक की कमी वह नहीं सह पाती हैं। इस दशा में पति और बच्चों को भी वे छोड़कर चल देती हैं। कलह इन्हें पसन्द नहीं है।

धर्मचर्चा और शिक्षा

सम्पूर्ण बर्मा देशमें जो लाखों पगोडे और पुंगी चौंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, उनका सुन्दर उपयोग है। पुंगियों (बौद्ध भिक्षु) का कार्य सर्वदा धर्मचर्चा और शिक्षा का विस्तार है। पुंगी-गण अपने अपने चौंग में रहते हुए बालकों को निःशुल्क विद्याध्ययन कराते रहते हैं। प्रत्येक बर्मी बालक को ७ दिन ७ मास या ७ वर्ष तक भिक्षु निवासमें, भिक्षु वेष में और भिक्षु आचार में रहकर विद्याध्ययन करने की परिपाटी वहाँ अभी भी है। इस नियम में अँग्रेजी स्कूलों के कारण कुछ शिथिलता भी आ गई है। अनुमानतः सम्पूर्ण बर्मा में ५०,००० भिक्षु हैं और रंगून में ५०००। हम लोगों ने ९-३-५२ को परराष्ट्र सचिव श्री यू. विन के साथ पेगु का वह विशालकाय "स्वेमय-देव-पगोडा" भी देखा। विश्व-का सबसे बड़ा अफ्रिका का पीरामिड और इङ्गलैण्ड के सेन्टपाल गिर्जा के बराबर का वह पगोड़ा है। पृथ्वी की सतह से ३६१ फुट यह ऊँचा है। बर्माबासियों का कहना है कि बुद्ध भगवान् के परिनिर्वाण के कुछ ही दिनों बाद भारत के दो वणिकों ने यहाँ आकर इस पगोड़ा का निर्माण आरंभ किया था और इसमें भारत से भगवान् बुद्ध की अस्थि लाकर रक्खी थी। पीछे पेगु के प्रायः सभी राजाओंने ५७३ ई० से लेकर १६ वीं शताब्दी के अन्त तक अपनी स्मृतियों में विस्तार किया है। पेगुमें और कई मठ ऐसे हैं जो प्राचीन और दर्शनीय हैं। "महा जेदी चैत्य" नामक मन्दिर में एक बुद्धदेव की शयन मुद्रावाली मूर्ति इतनी बड़ी है कि केवल उसके १६ फुट की आँखों की लम्बाई से अनुमान किया जा सकता है कि वह कितनी विशाल मूर्त्ति है। मूर्तिका गठन १८० फुट है। रंगून से ३८ मील पर चैंक पुन-पगोडा में एलिफेन्टा की तुलना की चार मुखवाली बुद्ध मूर्त्ति भी विशाल है। इस प्रकार अनेक मूर्ति और पगोडा का वह देश परम सौभाग्यवान है। बर्मा में हिन्दू संस्कृति का भी प्रभाव बहुत ही गहरा पड़ा है। वहाँ की भाषा बारह आने मागधी मिश्रित है। बर्मा की कला और जीवन में मागधी कला, रहन-सहन, आचार-विचार, व्यवहार और पूजा-पाठमें प्रत्यक्ष दीखता है। मगध के पतन के बाद उनमें चीन कलाने भी अपना थोड़ा विस्तार अवश्य पाया है। बर्मा की प्राचीन कला तो बिल्कुल मागधी है। वर्तमान में पेगु के कमिश्नर और डिपुटी कमिश्नर श्री यू. मौऊ मौङ्ग. बी. ए. बी. एल. एल. की देख-रेख में स्वी-माव-डाव-पगोडा का जीर्णोद्धार ४० लाख के व्यय से हो रहा है, जो प्रशंसनीय है।

महाभारत के सभापर्व (अ० ३०- १३) में लिखा है कि पाण्डवों में से भीम बर्मा गये थे और बर्मा तथा स्यामबर्मा दोनों भागों पर विजय किया था। लिखा है:—

"शर्मकान बर्मकाँठ श्चैव व्यजयत्, शान्ति पूर्वकम्।"

ब्रह्मदेश के प्राचीन इतिहास में लिखा है कि बर्मा (आराकान) प्रदेश में १४६ ई० के लगभग भारतीय शाक्य वंशीगणों का रामावती नाम के नगर में राजधानी थी। यह राजपुत्र काशीराजा के सम्बन्धी थे। उन दिनों बौद्ध धर्म का प्रचार प्रबलवेग से था और बर्मा भारत में आन्तरिक सद्भावना थी।

स्वागत-आमन्त्रण और जलपान का ताँता

हम सबों के सम्मान में बर्मा-वासियों ने भोज जलपान और अभिनन्दन का ताँता-सा बाँध दिया था। उनमें बहुतों का तो नाम भी स्मरण नहीं रहा।

"कावर-एय—(विश्व शान्ति) पगोडा का अभिनन्दन ७ मार्च १९५२ ई० को हम लोगों ने ग्रहण किया। यह अतिशय हृदय-ग्राही, रोचक और सम्मान-पूर्ण था। भड़कीला भी था। दूसरा अभिनन्दन में "डाईरेक्टरेट ऑफ-रेलिजियस एफियर्स" के १० मार्च के रात्रि में दिये गये भोज अपनी श्रेष्ठता और सौजन्यता के लिये अति उत्तम था। इसमें बर्मा के सभी श्रेष्ठ-मर्यादावान व्यक्ति उपस्थित थे।

इसके अतिरिक्त बर्मा इण्डियन कांग्रेस द्वारा स्टान्ड होटल में दिया गया भोज, भारतीय स्वयं-सेवक संघ द्वारा आयोजित भोज, बर्मा पुलिस-विभाग के कमिश्नर द्वारा दिया गया भोज, इन्डियन अम्बेसडर द्वारा आयोजित जलपान आदि अत्यन्त सौजन्यपूर्ण थे, वे सब हम सबों के लिये सम्मान प्रदर्शक और धन्यवाद के योग्य हैं।

हम लोग रंगून के सर्वश्रेष्ठ भवन "काम्बोज पेलेस" (चांग चूंग हाउस) में ठहरे थे। यह पेलेस भी अपने इतिहास के लिये प्रसिद्ध है। बड़ा पेचिदा इसका जीवन है। इसने चायनीज धनकुबेर चांग चूंग का उत्थान-पतन और उनकी मृत्यु का जटिल दृश्य देखा है। अँग्रेज गवर्नरों को देखा है। नेताजी सुभाष बोस को ठहराया है। जापानियों के शासकों का चरण चूमा है। आज यह विदेशी सम्माननीय तथा धनिक यात्रियों की सेवा में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण

भिक्षु प्रज्ञानन्द

समता से श्रमण बनता है। राग, द्वेष और मोह, को शमन करने वाले का नाम भी श्रमण है। पालि भाषा में इसी को 'समण' कहते हैं।

इस 'समण' या श्रमण शब्द का प्रयोग भारतीय धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रों में यथेष्ट हुआ है, लेकिन इसका अर्थ कुछ अपने-अपने ढंग पर ही हुआ है। श्रमण, मुनि, साधु, संत आदि शब्द प्रायः समानार्थ में ही आये हैं। साथ ही श्रमण और ब्राह्मण की व्याख्या भगवान् बुद्ध ने जो की है, उसके अनुसार इन दोनों शब्दों के अर्थ भी प्रायः समान ही हैं और जहाँ-जहाँ उन्होंने श्रमण शब्द का प्रयोग किया है, वहीं-वहीं ब्राह्मण शब्द का भी प्रयोग हुआ है। उसी तरह जहाँ ब्राह्मण शब्द का प्रयोग हुआ है, वहीं श्रमण शब्द का भी प्रयोग दीखता है। उदाहरणार्थ—

बाहित पापो'ति ब्राह्मणो समचरिया समणो'ति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं तस्मा पब्बजितोति वुच्चति ॥५॥
—धम्मपद ब्राह्मण वर्ग

जिसने पाप को धोकर बहा दिया, वह ब्राह्मण है, जो समता का आचरण करता है, वह समण या श्रमण है, चूँकि उसने अपने चित्त मलों को हटा दिया, इसलिये वह प्रव्रजित कहा जाता है।

खन्ती परमं तपो तितिक्खा,
निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा।
नहि पब्बजितो परूपघाती,
समणो होति परं विहेठयन्तो ॥६॥
अनुपवादो अनुपघातो पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥७॥

क्षमा और तितिक्षा परम तप है। बुद्ध निर्वाण को परम बतलाते हैं। दूसरों का घात करने वाला, दूसरे को पीड़ित करने वाला प्रव्रजित, श्रमण-सन्यासी नहीं हो सकता। निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, परिमाण जानकर भोजन करना, एकान्त में सोना-बैठना, चित्त को योग में लगाना—यह बुद्धों की शिक्षा है।

उदान में भी एक घटना आई है। पिलिन्दवच्छ नामक एक ब्राह्मण भिक्षुओं को चाण्डाल कह कर पुकारा करता था। भिक्षु लोगों ने उस पर क्रुद्ध हो जाकर भगवान् से उसकी शिकायत की। भगवान् शान्तिवादी जो ठहरे। उन्होंने कहा पिलिन्दवच्छ की यह आदत संस्कारतः परम्परागत है, द्वेष के कारण नहीं।

यम्हि न माया वत्तति न मानो,
यो खीणलोभो अमसो निरासो।
पणुन्नकोधो अभिनिब्बुतत्तो,
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खूति ॥

अर्थात् जिसमें न माया (छल) है, न अभिमान, जो निर्लोभ, तथा स्वार्थ और तृष्णा से रहित है। जो क्रोध से रहित, और शान्त हो गया है, वही ब्राह्मण, वही श्रमण और वही भिक्षु है।

भगवान् के शब्दों में श्रमण की सुन्दर व्याख्या सुत्त-निपात के एक-दो सुत्तों में आई हुई है। चुन्द कर्मारिपुत्त ने भगवान् से भिन्न भिन्न श्रमणों के विषय में प्रश्न किये और भगवान् ने उनके उत्तर इस प्रकार दिये—

चुन्द—बहुप्रज्ञमुनि, द्विपदों में उत्तम और सारथियों में श्रेष्ठ बुद्ध! बतावें संसार में कितने प्रकार के श्रमण हैं?

तब भगवान् ने उत्तर दिया—हे चुन्द! चार प्रकार के श्रमण हैं, यहाँ पाँचवाँ नहीं। (१) मार्गजित, (२) मार्ग देशक, (३) मार्ग जीवी तथा (४) मार्ग दूषक—यही चार श्रमण हैं।

मग्गजिनो, मग्गदेसको च मग्गे जीवति यो च मग्गदूसी।"

और फिर वे चार प्रकार के श्रमण कौन-कौन हैं यह भगवान् बताते हैं—(१) जो शङ्काओं से रहित, दुःख-मुक्त, निर्वाण में अभिरत, लालसा से रहित और देवों तथा मनुष्यों का नेता हो, बुद्ध उसे मार्गजित बताते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) जो मुनि इस संसार में परमार्थ को परमार्थ जानकर यहाँ उस धर्म का उपदेश देता है और व्याख्या करता है; राग रहित, शङ्काओं को दूर करनेवाला वह दूसरा भिक्षु मार्गदेशक कहा गया है।

(३) जो सुदेशित धर्मपद के अनुसार संयमित और स्मृतिमान् हो मार्ग पर जीता है, अनवद्य पथ पर चलने वाला वह तृतीय भिक्षु मार्गजीवी है।

(४) जो सुकृतों का वेष धारण कर मौका की ताक में रहता है, जो कुल-दूषक, प्रगल्भी, मायावी, असंमी और प्रलापी हो साधुओं के भेष में विचरण करता है वह मार्ग-दूषक है।

सुत्तनिपात में ही एक और स्थल पर एक सभिय नामक परिव्राजक के प्रश्नों के उत्तर भगवान् के दिये मिलते हैं। वहाँ सभिय परिव्राजक भगवान् से पूछता है कि श्रमण ब्राह्मण, स्नातक, क्षेत्रजित्, कुशल, पण्डित, मुनि, वेदज्ञ, अनुचित, वीर्यवान, आजानीय, श्रोत्रिय, आर्य, आचार-वान् तथा परिव्राजक के विषय में। वहाँ भगवान् ने जिस प्रकार के गुण सम्पन्न व्यक्ति को श्रमण-कहलाने का अधिकारी बतलाया है वह द्रष्टव्य है।

सब्बत्थ उपेक्खको सतीमा,
न सो हिंसति किंचि सब्बलोके।
तिण्णो समणो अनाविलो,
उस्सदा तस्स न सन्ति सोरतो सो॥

सर्वत्र उपेक्षाभाव सहित, स्मृतिमान् वह संसार में किसी को नहीं सताता। संसार पारंगत, निर्मल, तृष्णा रहित जो श्रमण है, वह शान्त है।

फिर कहते हैं—जो पुण्य और पाप को दूर कर शान्त हो गया है, इस लोक और परलोक को जानकर रज-रहित हो गया है, जो जन्म के परे हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा, वह श्रमण कहलाता है।

इन सबसे अधिक विस्तृत रूप से इस श्रमण शब्द पर प्रकाश डालने वाला एक सुत्त मज्झिम निकाय में आया है, जिसमें भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा है कि भिक्षुओ! श्रमण, श्रमण कहकर लोग तुम्हारा नाम धरते हैं। तुम भी तुम कौन हो? पूछने पर श्रमण हैं, उत्तर देते हो। भिक्षुओ! तुम्हारी यह संज्ञा होते हुए, तुम्हारी यह प्रतिज्ञा होते हुए, तुम्हें सीख लेना चाहिये जो श्रमण बनाने वाले धर्म हैं, जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं उन्हें लेकर हम बर्तेंगे इस प्रकार हमारी संज्ञा सच्ची होगी। हमारी प्रतिज्ञा यथार्थ होगी। और जिन गृहस्थों के दिये अन्न, वस्त्र, निवास, रोग में पथ्य-औषधि हम उपयोग करते हैं, उनका वह हम पर किया उपकार भी महा-फलदायक महा आनृशंस्य होगा। हमारी यह प्रव्रज्या-भी अन्-बंध्या और सफला होगी।

"भिक्षुओ! कौन धर्मश्रमण बनानेवाले हैं, ब्राह्मण बनानेवाले हैं? हम लज्जा और संकोच वाले बनेंगे। यह भिक्षुओ! तुम्हें सीखना चाहिये और इतना बस है, इतना यथेष्ट है पर सन्तोष कर लेना नहीं चाहिये।

भिक्षुओ! तुम्हें कहता हूँ, समझाता हूँ कि मत श्रमण-पन की कामना शेष रखो और इस प्रकार श्रमणपन का अर्थ तुमसे निकल न जाय। कैसा है भिक्षुओ! आगे कर लिया? ऐसा सीखना चाहिये—हमारा कायिक आचरा परिशुद्ध होगा, खुला होगा। वह छिद्र-दोष युक्त और ढँका न होगा। उस कायिक आचार के शुद्ध होने से न हम अपने लिये अभिमान करेंगे, न दूसरों को नीच कहेंगे।

हम इन्द्रियों में संयम रखेंगे। चक्षु से रूप को देख-कर निमित्तग्राही, अनुव्यंजनग्राही, नहीं होंगे। चक्षु इन्द्रियों में संयम न करके विहरने वाले व्यक्ति में अभिध्या लोभ-दौर्मनस्य-दुर्मनता आदि बुराइयाँ या अकुशल धर्म आ पड़ते हैं। इसलिये उनके संयम में तत्पर होंगे।

हम भोजन में मात्रा का ख्याल रखेंगे। ठीक से जान-कर, न पद के लिये, न मंडन के लिये, नविभूषण के लिये, बल्कि जितना इस काया की स्थिति के लिये, गुजारे के लिये, पीड़ा को रोकने के लिये, ब्रह्मचर्य की सहायता के लिये आवश्यक है, उतना ही ग्रहण करेंगे। इस प्रकार पुरानी वेदना का नाश करेंगे और नई वेदना को उत्पन्न होने से रोकेंगे।

जागरण में तत्पर रहेंगे। टहलते, उठते, बैठते या आचारणीय धर्मों को करते हर समय स्मृतिमान् रहेंगे। अर्थात् स्मृति और संप्रजन्य से युक्त होंगे।

जैसे भिक्षुओ! स्वच्छ, मधुर, शीतल जलवाली रम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णीय सुन्दर घाटों वाली पुष्करणी हो और थके-मादे तृषित व्यक्ति, चाहे वह जिस किसी तरफ से क्यों न आवें उसमें उतर कर, जल पी तृप्त हो सकता है। उसी तरह तथागत के उपदेश दिये धर्म-विनय में प्रवेश कर प्राप्त कर हर प्रकार मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा की भावना करे तो वह आध्यात्मिक शान्ति को प्राप्त करता है। आध्यात्मिक शान्ति से ही श्रमण सामीचि प्रतिपद् पर आरूढ़ है—ऐसा मैं कहता हूँ।

तथागत की अस्थियों की कम्बोडिया-यात्रा

भिक्षु धर्मरक्षित

भगवान् बुद्ध तथा उनके प्रधान शिष्यों की अस्थियों की विभिन्न देशों की यात्रा ने प्रायः सभी बौद्ध देशों में नवचेतना उत्पन्न कर दी है। लंका, बर्मा, तिब्बत, लद्दाख, नेपाल और आसाम के बौद्धों ने अपने देश में इन पवित्र अस्थियों की पूजा कर अपना सौभाग्य माना था और शेष देशवासी भी उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे जब कि उनके यहाँ भी इन अस्थियों की यात्रा होगी। पूर्वी पाकिस्तान, उड़ीसा, स्याम और कम्बोडिया की बौद्ध जनता विशेषकर उत्सुक थी। फलतः कम्बोडिया-नरेश एवं वहाँ के संघराज की प्रार्थना सफल हुई और उनके निमन्त्रण पर गत ५ अक्तूबर को सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में सुरक्षित भगवान् बुद्ध की अस्थियाँ तथा कलकत्ते के धर्मराजिक विहार में सुरक्षित अग्रश्रावक सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की अस्थियाँ कम्बोडिया से आये एक विशेष वायुयान द्वारा वहाँ ले जायी गयीं।

महाबोधि सभा के संयुक्तमन्त्री भिक्षु संघरत्न तथा सभापति डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी के साथ अन्य भी १० व्यक्ति अस्थियों के साथ गये। अस्थियों के ले जाने के लिए कम्बोडिया-नरेश की ओर से वैदेशिक मन्त्री श्री फ्रेंग निल तथा संघराज की ओर से भिक्षु धम्माराम आये थे।

स्याम की राजधानी में स्वागत

अस्थियों के साथ प्रतिनिधिमण्डल ४ बजे प्रातःकाल कलकत्ते के दमदम हवाई अड्डे से उड़ा और ११॥ बजे स्याम की राजधानी बैंकाक में उतरा। वहाँ हवाई अड्डे पर अस्थियों के दर्शनार्थ पहले से ही लाखों की भीड़ जमा थी। भिक्षु, स्थविर, उपासक, उपासिकादि धूप, पुष्प इत्यादि के साथ पूजा करने के लिए जुलूस के साथ आये हुए थे। उन्होंने एक घण्टेतक अस्थियों की पूजा की।

१ बजे वायुयान कम्बोडिया के लिए उड़ चला और ५ बजे सन्ध्या को कम्बोडिया की राजधानी फ्नोमपेन में पहुँच गया।

राजमन्दिर में पूजा

हवाई अड्डे पर अस्थियों के स्वागत के लिए संघराज, राजा, राजपरिवार, मन्त्रि-परिषद्, लगभग २०,००० भिक्षु और उपासक-उपासिकाएँ उपस्थित थीं। ५ लाख से कम की भीड़ न थी। सब लोग झण्डी पताका के साथ सजधजकर आये थे। वायुयान से उतर कर अस्थियाँ राजा और संघराज को दी गयीं। कम्बोडिया देशवासियों ने नव-निर्मित मण्डप में उन्हें रखकर पूजा की, तत्पश्चात् मोटरकार द्वारा राज-भवन-मन्दिर के लिए प्रस्थान किया गया। हवाई अड्डे से राजमन्दिर १० मील दूर है। राजमन्दिर को 'सिलवर पैगोडा' कहते हैं। यह बड़ा ही सुन्दर बना है। इसमें केवल राजवंश के लोग ही पूजा करने आते हैं।

मन्दिर में पहुँचने पर अस्थियों की पूजा प्रारम्भ हुई। राजा, राजपरिवार और मंत्रि-परिषद् ने क्रमशः पूजा की।

९ बजे रात्रि में उसी मन्दिर में एक स्वागत-सभा हुई, जिसमें राजा ने स्वागत-भाषण करते हुए कहा—हम बहुत दिनों से इस दिनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महाबोधि सभा तथा भारत सरकार की कृपा से हमारी मानोकामना आज पूर्ण हो गयी।

हमारा जीवन धन्य है जो हम भगवान् बुद्ध तथा अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों की पूजा कर रहे हैं। हमारे देशवासी भारत सरकार के बड़े ही कृतज्ञ हैं जिसने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ऐसा अवसर प्रदान किया है। इन अस्थियों के आगमन से हमारा देश पवित्र हो गया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम आशा करते हैं हमारे देश के सभी कलह-विवाद इनके प्रभाव से शांत हो जायंगे।

प्रतिनिधियों की ओर से डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने राजा के स्वागत भाषण का अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् भारत से गये हुए प्रतिनिधियों को कम्बोडिया के प्राचीन नृत्य दिखलाये गये।

थीं। लारीपर संघराज और वहाँ के प्रधान भिक्षु बैठे थे। चारों कोनों पर चार दिशा-रक्षक देवताओं की मूर्तियाँ बनी थीं। लारी के पीछे एक मील लम्बी भिक्षुओं की पंक्ति थी। पंक्ति से सड़क की, पूरी चौड़ाई भरी हुई थी। उनके पीछे उपासक-उपासिकाएँ थीं जिनमें चीन, वियतनाम, बर्मा, स्याम और सेगानके लोग भी सम्मिलित थे। इस प्रकार

कम्बोडिया नरेश और संघराज अस्थियों की मंजूषा लिए हुए।
बायीं ओर डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी खड़े हैं।

नगर-प्रदर्शन

दूसरे दिन प्रातःकाल एक सुन्दर जुलूस निकाला गया। जुलूस में आगे सरकारी बैंड, अमात्यगण और पुलिस चल रही थी। उनके पीछे एक विशेष मण्डप से अलंकृत लारी पर रखी गयी भगवान् बुद्ध और अग्रश्रावकों की अस्थियाँ

नगर में अस्थियों का प्रदर्शन किया गया। हर एक प्रधान मन्दिर में उनका स्वागत हुआ। सभी जगह भिक्षु संघरत्न ने स्वागत भाषणों का अभिनन्दन किया।

पालि भाषा की प्रधानता

कम्बोडिया में कोई भी व्यक्ति अंग्रेजी नहीं जानता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ फ्रेंच, कम्बोडियन और पालिभाषा ही प्रचलित है। पालिभाषा को तो प्रायः सब लोग जानते हैं। लंका, बर्मा आदि किसी भी बौद्ध देश में पालि भाषा का प्रचार कम्बोडिया जैसा नहीं है। यही कारण था कि इस यात्रा में प्रायः सभी भाषण पालि में ही हुए।

प्रतिनिधियों में जो लोग पालि नहीं जानते थे, उन्हें मौन रहना पड़ा अथवा संकेतों द्वारा ही बातें करनी पड़ी। कम्बोडिया में पालि भाषा के जीवित रूप को देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। इस देश के भिक्षु जिनकी संख्या ८०,००० है पालि भाषा के पठन-पाठन में सदा लगे रहते हैं।

श्रद्धालु ललना अपने आभूषण निकाल कर अस्थियों पर चढ़ा रही थी। उस समय ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया था, मानो श्रद्धा और करुणा का स्रोत उमड़ चला हो। सबके मुह से निकल रहा था--'मेरा जीवन सफल हो गया।'

प्राचीन राजधानी में

चौथे दिन कम्बोडिया की प्राचीन राजधानी अंगकोरवत के लिए प्रस्थान किया गया। यह नगर बारहवीं शताब्दी में इस देश की राजधानी था। इसका निर्माण सूर्य-वर्मा द्वितीय (१११३-११४५) ने करवाया था। रामायण, महाभारत और बुद्ध-जीवन से सम्बन्धि अनेक

सिलवर पैगोडा (राजमन्दिर) में अस्थियों का परिचय देते हुए दायीं ओर भिक्षु संघरत्न जी खड़े हैं। सामने अस्थियाँ दिखाई दे रही हैं।

प्रदर्शन के पश्चात् अस्थियों का स्वागत पालि विद्यालयों की ओर से किया गया और जुलूस ११ बजे वापस राजमन्दिर लौट आया।

जनता द्वारा पूजा

तीसरे दिन प्रातःकाल से भिक्षुओं और नगरवासियों ने अस्थियों की पूजा प्रारम्भ की। ७ बजे प्रातः से ९ बजेतक भिक्षुओं ने पूजा की और १० बजे रात्रि तक गृहस्थों ने।

अस्थियाँ 'सिलवर पैगोडा' के एक ऊँचे स्थानपर रखी गयी थीं। उन्हें देखकर कोई आनन्द से नाच रहा था, तो कोई प्रेमाश्रु बहा रहा था। कोई उछल रहा था तो कोई

चित्रों को यहाँ मूर्तिबद्ध किया गया है। १२० फुट ऊँचे अंगकोरवत के मन्दिर का अलिन्द लगभग आध मील लम्बा है जो अपनी विशालता और भावमयता के लिए प्रसिद्ध है। इस नगर के खंडहर लगभग ३० मीलतक फैले हुए हैं। कम्बोडिया के घने जंगलों के बीच अवस्थित ये भग्नावशेष किस अकथ कहानी को कह रहे हैं, इसको सुनने के लिये आज व्यस्त मनुष्य के पास अवकाश कहाँ है?

अंगकोरवत के मन्दिरों में बने सुरासुर-संग्राम, बुद्ध-जीवनी, जातक कथा, रामायण कथा, सीता-हरण, राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण-युद्ध और प्राचीन युद्ध-कला को देखकर प्रतिनिधि मण्डल आश्चर्य चकित हो गया।

रात्रि में वहाँ विश्राम कर दूसरे दिन प्रातः पुनः फोम-पेन लौट आये।

दान और उपहार

९ अक्तूबर को सब देशों से आगत भिक्षुओं को राजा ने अपने राजभवन में भोजन-दान दिया। राजा और उनकी माँने स्वयं भोजन परोस परोस कर खिलाया। भोजनोपरांत भिक्षु लोगों को चीवर आदि वस्तुएँ प्रदान कीं। भिक्षुओं ने सूत्रपाठ करके उन्हें आशीर्वाद दिया।

सन्ध्या समय भिक्षु प्रतिनिधियों का लंकाराम, उण्णलोमाराम, सुमन सिंहाराम आदि प्रधान विहारों और विद्यालयों की ओर से स्वागत हुआ। उपहार में चीवर आदि भेंट किये गये।

१० अक्तूबर को भी नगर के एक बड़े व्यापारी ने सभी भिक्षुओं को भोजन कराया। सन्ध्या समय संघराज की ओर से प्रतिनिधिमण्डल को जलपान कराया गया और उपहार दिये गये। महाबोधि सभा की ओर से भी संघराज को त्रिपिटक के प्रकाशन और सभा द्वारा प्रकाशित सभी भाषाओं के ग्रन्थ, एक बुद्ध प्रतिमा, सारनाथ मन्दिर की मूर्ति के चित्र प्रदान किये गये।

उपाधि प्रदान

रात्रि में सब लोग राज-भवन में गये। राजा, राजा-परिवार, अमात्यगण, संघराज और प्रधान भिक्षु उपस्थित थे। संघराज ने अभ्यागतों को धन्यवाद देने के साथ ही तीन व्यक्तियों को उपाधियाँ प्रदान कीं। डाक्टर श्यामा-प्रसाद मुखर्जी को 'सम्बुद्ध शासनारक्षक' की उपाधि मिली। भिक्षु संघरत्न को 'वरगुरु सिरि धम्मचक्काल' और भिक्षु जिनरत्न को 'महाबोधिगुत्त'। उपाधि-पत्रों को संघराज ने पढ़कर सुनाया और राजा ने उन्हें प्रदान किया।

अन्त में डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने इस सम्मान के लिए संघराज एवं राजा को धन्यवाद दिया तथा अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

कम्बोडिया की संस्कृति

स्थविरवादी बौद्ध धर्मावलम्बी देशों में कम्बोडिया का अपना एक विशेष स्थान है। यहाँ की जनसंख्या सन् १९३७ की जनगणना के अनुसार ३०,४६,००० है। कुछ यूरोपियनों के अतिरिक्त प्रायः सभी लोग बौद्ध हैं।

पाँचवीं शताब्दी में जब यहाँ फूनान-राज्य था, तब यहाँ शैव और बौद्ध दोनों धर्मों की प्रधानता थी। छठी शताब्दी में फूनान-राज्य ही 'कम्बुज' हो गया। कम्बोडिया का ही संस्कृत नाम कम्बुज है। फ्रांसीसी लोग आज भी इस प्रदेश को कम्बोज कहते हैं। कम्बुज राज्य-काल में यहाँ महायान बौद्धधर्म का उत्कर्ष रहा। लोकेश्वर बोधिसत्व की प्रतिमाएं उस समय की बनी हुई अनेक धर्मशालाओं में आज भी देखी जा सकती हैं। दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों की बनी हुई अनेक धर्मशालाएँ और आरोग्यशालाएँ बोधिसत्व लोकेश्वर को समर्पित की गयी हैं। यह ध्यान देने की बात है कि कम्बोडिया के महायान बौद्धधर्म पर तान्त्रिक प्रभाव कहीं परिलक्षित नहीं है। पन्द्रहवी शताब्दी में जब कम्बोडिया के स्याम के साथ युद्ध हुए तब स्थविरवाद बौद्धधर्म का प्रवेश वहाँ की अधिकांश जनता का यही धर्म चला आ रहा है।

वेशभूषा और खानपान

ग्रामीण प्रायः काले रंग के कपड़े पहनते हैं। दाँतों को सदा काले रंग से रंगे रहते हैं। दाँतों को काला बनाना यहाँ का प्रधान शृंगार है। राजा, राजवंश और राजकर्मचारी हिन्दुस्तानी धोती और कोट पहनते हैं। यह सबसे आश्चर्य की बात है कि जहाँ भारत के आधुनिक तरुण धोती छोड़ते जा रहे हैं वहां कम्बोडिया के लोग धोती को अपना सम्मानित वेष बनाये हुए हैं। भारतीय संस्कृति की छाप का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

कम्बोडिया का प्रधान आहार चावल है। रोटी यहाँ उपलब्ध नहीं। फल-मूल सस्ता है। लोग धार्मिक और श्रद्धालु हैं। इस देश के सभी भिक्षुओं के भोजन की व्यवस्था राज्य की ओर से होती है।

कम्बोडिया के ग्रामीण सुन्दर चटाइयाँ बनाने तथा वस्त्रोंपर छापने के उत्तम काम करते हैं। अधिकतर वस्त्रों पर छपे हुए चित्र बुद्ध-जीवनी सम्बन्धी होते हैं। कम्बोडिया में मसजिद और मुसलमान बिलकुल ही नहीं हैं। हाँ, यूरोपियनों के लिए दो गिरजाघर बने हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्थान

११ अक्तूबर को प्रातःकाल जुलूस के साथ अस्थियों की विदाई हुई। विदाई के समय डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी का एक सारगर्भित भाषण हुआ। उन्होंने अपने भाषण में कम्बोडिया में अस्थियों का जिस उत्साह और श्रद्धापूर्वक स्वागत किया गया था, उसके लिए धन्यवाद दिया।

विदाई के समय करुणा का स्रोत सा बह चला। संघराज विदा करते समय रो पड़े। उन्हें रोते देख राजा भी रो पड़ा और फिर जिधर देखो, उधर ही सब जनता रोती हुई दिखाई पड़ने लगी।

मार्ग में बैंकाक में तीन घण्टे रुकने के पश्चात् अस्थियाँ रात में ९ बजे कलकत्ता वापस आ गयीं। महाबोधि सभा के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रिय वलि सिंहने हवाई अड्डेपर जाकर उन्हें ग्रहण किया।

बंगाल का विख्यात प्राचीन बौद्ध विद्याकेन्द्र

जगद्दल विश्वविद्यालय

प्रो० सुशील चन्द्र

प्राचीन तिब्बती बौद्ध-विद्वानों और पुरातत्त्व विभाग के अन्वेषणों से यह प्रमाणित हो चुका है कि उत्तरी बंगाल, जिसे वरेन्द्र या पुण्ड्र कहा जाता था, अनेक शताब्दियों तक बौद्ध संस्कृति का केन्द्र रहा। तिब्बती इतिहास, जो तारानाथ और सम्पा द्वारा लिखा गया था, यह बतलाता है कि उत्तरी बंगाल में कतिपय महत्त्वपूर्ण बौद्ध विद्याकेन्द्र थे; जिनमें सोमपुर महाविहार (इसके खँडहर बोगरा जिले में पहाड़पुर नामक स्थान में पाये गए हैं), पौंड्रवर्धन महाविहार (यह भी बोगरा जिले में महस्तहानगढ़ के पास कहीं था), देवीकोट महाविहार (यह पश्चिमी दीनाजपुर में बनगढ़ के पास स्थित था), जगद्दल महाविहार (जिसका वर्णन हम करने जा रहे हैं) और पौंड्र भूमि महाविहार (सम्भवतः यह मालदह जिले में पाण्डव के पास था)।

ग्यारहवीं शताब्दी के सन्ध्याकरनन्दी ने 'रामपालचरित' केवल जगद्दल विहार का ही वर्णन किया है, उक्त अन्य किसी विहार का भी नाम उस ग्रन्थ में नहीं मिलता, इससे प्रगट होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में जगद्दल विश्वविद्यालय एक प्रधान विद्याकेन्द्र था। इस बौद्ध विश्वविद्यालय के नष्टावशेष पूर्वी पाकिस्तान के राजशाही जिले के जगद्दल नामक स्थान में पाये गये हैं। वहाँ जाने के लिए ई० बी० रेलवे (पाकिस्तान) के जयपुरहट स्टेशन पर उतरना चाहिए और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क से पश्चिम की ओर फर्सीपारा को जाना चाहिए, जो जयपुरहट से आठ मील दूर है। वहाँ से दो मील उत्तर बढ़ना चाहिए। सूखी रहनेवाली जमुना नदी नष्टावशेष से दो मील दूर है। पालवंश के राजा नरायणपाल के मन्त्री गौरवमिश्र का प्रसिद्ध गरुड़ स्तम्भ और हरगौरी का मन्दिर इसी प्रदेश में स्थित हैं।

जगद्दल विश्वविद्यालय की स्थापना पालवंश के बौद्ध राजा रामपाल ने ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में की थी। रामपाल के समय के प्रसिद्ध इतिहासकार सन्ध्याकरनन्दी ने इस राजा के शासन-प्रबन्ध का वर्णन किया है और लिखा है कि जगद्दल महाविहार एक बहुत ही आदरणीय स्थान था। बंगाल के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री राखालदास बनर्जी ने लिखा है कि नरेश ने इस विश्वविद्यालय को रामावती नगर के भीतर स्थापित किया था। (बांगलार इतिहास, भाग १, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३०१)। यह देखा जाता है कि बहुत कम बौद्ध विश्वविद्यालय नगरों के बीच स्थित थे। वे प्रायः नगर से कुछ दूर हुआ करते थे। उदाहरणार्थ, विक्रमशिला विश्वविद्यालय चम्पा नगर से कुछ दूर था, नालन्दा विश्वविद्यालय राजगृह के पास था और तक्षशिला विश्वविद्यालय भी नगर से कुछ दूर था। इससे हम विचार करते हैं कि जगद्दल विश्वविद्यालय रामावती नगर के भीतर नहीं था, किन्तु वह उससे थोड़ी दूर बाहर था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्ध्याकरनन्दी के 'रामचरित' में रामपाल द्वारा हेत्वीश्वर, चन्द्रेश्वर और क्षेमेश्वर की मूर्ति-स्थापना का वर्णन है। सम्भवतः ये मूर्तियाँ विश्वविद्यालय में स्थापित नहीं थीं, प्रत्युत रामावती नगर में थीं। तिब्बती इतिहास के अनुसार इस बौद्ध विद्याकेन्द्र में एक अवलोकितेश्वर की मूर्ति स्थापित थी।

सम्पा रचित तिब्बती इतिहास में हम इस विश्वविद्यालय के कुछ अध्यापकों के नाम पाते हैं, जिन्होंने संस्कृत भाषा से तिब्बती में बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया था और जिन्होंने कुछ संस्कृत ग्रन्थों की मौलिक रचना की थी। यह ध्यान देने की बात है कि तिब्बती अनुवाद तिब्बत में काफी संख्या में पाये गए हैं और वहाँ वे आजकल भी उपलब्ध हैं।

इस विश्वविद्यालय के 'दानशील' नामक एक प्राध्यापक ने तन्त्रयान के साठ ग्रन्थों का तिब्बती में अनुवाद किया था। उन्होंने एक मौलिक ग्रन्थ भी संस्कृत में लिखा था, जिसका नाम 'पुस्तकपाठोपाय' था। इसका तिब्बती अनुवाद भी स्वयं किया था। इस ग्रन्थ में पुस्तकों के अध्ययन का ढंग वर्णित है।

इस विश्वविद्यालय के दूसरे प्राध्यापक मोक्षाकर गुप्त थे, जिन्होंने बौद्ध-तर्क पर संस्कृत में 'तर्क-भाषा' नामक ग्रन्थ लिखा था। यह ग्रन्थ बड़ौदा के गायकवाड सीरीज से संस्कृत भाष्य के साथ प्रकाशित हो चुका है। सम्भवतः मोक्षाकर गुप्त ने 'दोहाकोष' का भाष्य भी लिखा था, जो अपभ्रंश भाषा में था।

इस विश्वविद्यालय के एक दूसरे प्राध्यापक विभूतिचन्द्र थे, जिन्होंने तेइस तन्त्र के ग्रन्थों को लिखा था, जिनमें सत्रह अनूदित थे और इनमें से दो सहजयान के सिद्धाचार्य लुइपा से सम्बन्धित थे।

तिब्बती इतिहास इस विश्वविद्यालय के एक और प्रसिद्ध प्राध्यापक शुभाकर गुप्त का वर्णन करते हैं। (इन प्राध्यापकों के नामों एवं कृतियों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए कृपया ढाका विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हिस्ट्री ऑफ बंगाल भाग १ परिच्छेद ११ देखिये)।

इसके लिखने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रसिद्ध विश्वविद्यालय का पूर्ण वर्णन करने में हम समर्थ नहीं हैं, क्योंकि इसके नष्टावशेष राजशाही जिले में ज्यों के त्यों पड़े हैं और अभी तक पुरातत्व-विभाग की ओर से इनकी खोदाई नहीं हुई है, किन्तु कहा जाता है कि इनकी खोदाई से पुरातत्व सम्बन्धी बहुत सी बहुमूल्य वस्तुओं की प्राप्ति होगी। यह उचित समय है, पाकिस्तान सरकार को चाहिए कि वह पुरातत्व विभाग को इस कार्य के लिये प्रेरित करे। आशा है कि इन नष्टावशेषों की खोदाई शीघ्र हो सकेगी। मैं यहाँ यह भी बतलाना चाहता हूँ कि कलकत्ता विश्वविद्यालय दीनाजपुर जिले के बनगढ़ स्थान की खोदाई करा रहा है और जब खोदाई पूरी हो जायेगी, तो आशा है कि भूमि में दबे पाल नरेश के प्राचीन नगर देवीकोट के विश्वविद्यालय शोणिपुर का पता लग जायगा। क्या ढाका विश्वविद्यालय के लिए सम्भव नहीं है कि वह जगद्दल विश्वविद्यालय के नष्टावशेषों का खनन-कार्य अपने हाथ में ले ले?

वार्षिक-विवरण

[यह विवरण मूलगन्धकुटी विहार के २१वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर भिक्षु संघरत्न जी द्वारा पढ़ा गया था।]

माननीय सभापति जी, भिक्षुसंघ, भाइयो तथा बहिनो!

आप सभी देश-विदेश के अतिथियों के स्वागत करने तथा आपके सामने सारनाथ के २१ वें वार्षिक-विवरण को आज उपस्थित करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। सारनाथ बौद्ध-धर्म के चार महातीर्थों में से एक है। यहीं पर वह दीप प्रज्वलित हुआ जिसने विश्व के कोने-कोने को आलोकित किया। कई शताब्दियों तक सारनाथ बौद्ध-धर्म तथा बौद्ध संस्कृति का केन्द्र बना रहा, फिर एक समय ऐसा आया कि लोग इसे भूल गये और यह खँडहर हो गया। बहुत दिनों के बाद स्वर्गीय अनागारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मपाल जी ने इसके महत्त्व को समझा तथा अपना जीवन इसके पुनरुत्थान में लगा दिया। सारनाथ को पुनः एक बार बौद्ध-केन्द्र के रूप में देखने का उनका स्वप्न सन् १९३१ में मूलगन्धकुटी विहार के रूप में साकार हुआ। तब से सारनाथ महाबोधि सभा का केन्द्र बन गया। मूलगन्ध कुटी विहार हजारों यात्रियों के लिये एक भव्य आकर्षण है।

इस वर्ष के विशेष कार्य

इस वर्ष भगवान् बुद्ध तथा अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ विश्व शान्ति स्तूप के उद्घाटन के अवसर पर बर्मा और कम्बोडिया गईं। दोनों देशों में मूलगन्धकुटी विहार सारनाथ में सुरक्षित भगवान् बुद्धकी पवित्र अस्थियों को लेकर भिक्षु संघरत्न गये। कम्बोडिया के संघराज ने उन्हें 'वरगुरु सिरि धम्मचक्कपाल' की उपाधि से भी सम्मानित किया। इस वर्ष ग्रन्थोंके प्रकाशन में सभा ने बारह हजार रुपये व्यय किये। भोजनशाला बनवाने के लिये लंका की महाबोधि सभा के मन्त्री श्री नलिनमुन सिंह ने ३०००) रु० प्रदान किया। बोधिवृक्ष के चारों ओर ईंट लगाने के लिये लंका के श्री डायस और उनके परिवार ने ८६०) रु० दिया। डा० देदिगम कुमारी हामी ने लगभग ३०००) रु० का एक सप्तसप्ताह प्रतिमा और धम्मचक्कपवत्तन सुत्त लिखवा कर प्रदान किया। कठिन महोत्सव के लिये २१०) रु० लंका की श्रीमती के० ए० कुमारी हामी ने भेजा था। नासिक जिलान्तर्गत देवली के श्री जशनमल वाडूमल ने पुस्तक-प्रकाशन के लिये २५०) रु० का दान दिया। कुमारी विद्यावती तथा श्री बंशनरायण लाल ने 'श्रद्धा के फूल' एवं 'धम्मपद' नामक अपने ग्रन्थ सभा को प्रदान किये। इन सभी व्यक्तियों को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस अवसर पर दाताओं तथा अपने साथ सहानुभूति रखने वालों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

आज के उत्सव की सफलता के लिये मैं अपने साथियों, सहयोगियों तथा अपने विद्यालयों के सभी अध्यापकों एवं छात्रों का आभारी हूँ।

आज स्वतन्त्र भारत में भगवान् बुद्ध के शान्ति तथा प्रेम के सन्देश की बड़ी आवश्यकता है। प्रायः सभी पड़ोसी देश शान्ति के लिये भारत की ओर दृष्टि लगाये हुये हैं। आशा है भारत पुनः भगवान् बुद्ध की शरण जाकर उनके सन्देशों से विश्व शान्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा और संसार के अशान्त वातावरण को शान्त बनाकर पुनः जगद्गुरु बनेगा। भवतु सब्ब मंगलं।

दर्शकों की दृष्टि में

मूलगन्ध कुटी विहार

[मूलगन्ध कुटी विहार का दर्शन कर दर्शकों का जैसा भाव-परिवर्तन होता है, उसका ज्ञान इन पंक्तियों से होगा। ये पंक्तियाँ विभिन्न समयों में दर्शकों द्वारा लिखित विहारस्थ दर्शक-पञ्जिका से ली गई हैं—]

श्री पी० वेंo सुब्बाराजु

इसी सारनाथ के क्षितिज में भारत के ज्ञान-सूर्य का उदय हुआ और युग-युगमें उसकी ज्योति फैलती गई। सारनाथ वही है जिसके कारण हिन्दुस्तान सिर उठाकर गर्व के साथ अपनी संस्कृति का यशोगान करता आ रहा है। यहाँ की ईंट-ईंट भारतीय संस्कृति की कहानी सुनाती आ रही है। यहीं पर अहिंसा की मंगलमय कुंकुम-वर्षा हुई। यहीं पर मानव-प्रेम की वंशी के मधुर राग मुखरित होते थे। सारनाथ भारतवासियों के विगत वैभव का प्रतीक है। धन्य है सारनाथ जहाँ पर बुद्ध भगवान् ने सर्व प्रथम शिक्षा की सुनहली ज्योति बिखेरी और धन्य है वह जो सारनाथ का दर्शन कर रहा है।

२०-८-५२

श्री गौरीशंकर मिश्र, पिलानी, राजस्थान

मन्दिर बहुत अच्छा है। विश्व के मानवों की आत्मा को उज्ज्वल और पवित्र बनाने के लिए एक महान् आत्मा आई, किन्तु खेद कि भारतवासी कुछ भी शिक्षा न ले सके। हमें भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं पर चलना चाहिए।

२२-८-५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरेशचन्द्र गुप्त, अजमेर

भारतीय गौरव और संस्कृति की जीवित प्रतिमा सारनाथ के खँडहरों का अवलोकन कर किस मनुष्य का हृदय ऐसा होगा जो उल्लसित न हो जाय। मन्दिर में प्रवेश करते ही दया, धर्म, सत्य, अहिंसा का स्रोत-सा बहने लगता है। यहाँ की चित्रकारी भी अपना विशेष महत्व रखती है। चित्रकार को कोटिशः धन्यवाद।

३-७-५२

गोवर्धनदास पन्नालाल जौहरी, नरसिंह बाजार इन्दौर सिटी

सारनाथ के इस बुद्ध-मन्दिर की भूमि में कदम रखते ही सहसा स्वर्ग का आभास होने लगता है। स्वर्ग और कुछ भी नहीं है। कलाकार ने अपनी कला को उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया है। वास्तव में चित्रकार ने अपनी कला की पटुता से चित्रों में जान डालकर आने वाले दर्शकों की भावनाओं को उस 'प्रकाश' तक पहुँचने के लिये प्रेरित किया है। मेरा सौभाग्य है कि मुझे इस सुन्दरतम पवित्र स्थान को देखने का यह सुअवसर प्राप्त हुआ है।

२२-९-५२

श्रीमती सरला घाटलिया, बम्बई

इन सुन्दर चित्रों को देखकर हमें भारत की संस्कृति का भान होता है। जो वस्तु इतिहास से जानते हैं, उससे अधिक हमें इन चित्रों द्वारा सुन्दर ज्ञान प्राप्त होता है। धर्म की दृष्टि से यह धार्मिक मन्दिर है और चित्रकला की दृष्टि से यह चित्रकला का मन्दिर है। १८-८ ५२

सन्देश और शुभ-कामनायें

[मूलगन्धकुटी विहार के २१वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर देश-विदेश के सैकड़ों महानुभावों के शुभ-सन्देश एवं शुभ-कामनायें प्राप्त हुई थीं जिनमें से कुछ यहाँ दी जा रही हैं--]

भारत सरकार के वित्तमन्त्री श्री सी० डी० देशमुख ने लिखा है—"भगवान् बुद्ध की शिक्षा-द्वारा संसार में जो जागृति उत्पन्न हुई है, उसके प्रति मूलगन्ध-कुटी विहार के २१वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ। उसका सार सदा स्थिर रहे—यह मेरी कामना है।"

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री के० एम० मुन्शी ने लिखा है—"भगवान् बुद्ध का सन्देश संसार को प्रेरणा देता रहे।"

मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री बी० पट्टाभिसीतारामैय्या ने लिखा है—"मूलगन्ध कुटी विहार के २१ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर भारत में बौद्ध संस्कृति का पुनरुज्जीवन होने जा रहा है—यह देख मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। आकस्मिक घटनाओं के कारण भगवान् बुद्ध प्रणीत महान् संस्कृति तथा शासन अपनी जन्मभूमि से हटकर परदेशी हो गई। अतीत में लगातार विदेशी शासन ने भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के बौद्ध देशों में स्नेह-सम्बन्ध तोड़ने में सहायक रहा है, परन्तु भारत की स्वतंत्रता—जिसकी आयु ५ साल की है—उस पुराने स्नेह-सम्बन्ध को पुनः स्थापित करने में सफल रही है, जिसके लिए विद्वानों ने बहुत प्रयत्न किया था। हमें आशा है कि भगवान् बुद्ध की शिक्षा भारतवासियों के हृदय पर पुनः वही छाप डालने में समर्थ होगी।

आसाम के राज्यपाल श्री जयरामदास दौलतराम ने लिखा है—'सम्यक् कर्म ही मनुष्य जीवन है—ऐसा भगवान् बुद्ध का उपदेश है। यह सम्यक् कर्म हरेक युग में परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। आधुनिक युग में साधारण मनुष्य के स्तर को ऊँचा करने से बढ़कर दूसरा सम्यक् कर्म नहीं हो सकता। हरेक बौद्ध संघ इसकी पूर्ति के लिए अपना हाथ बँटाये।"

बिहार के राज्यपाल श्री आर० आर० दिवाकर ने लिखा है—"आपका कार्य स्तुत्य है, परन्तु आपके सामने अधिक काम है। आपकी संस्था की प्रतिदिन उन्नति होती रहे।"

मद्रास के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश ने लिखा है—"मूलगन्ध-कुटी विहार के वार्षिकोत्सव के शुभावसर पर मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। वहाँ पर जो भिन्न-भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानों से मेरे मित्र उपस्थित हैं, उन सब का मैं स्वागत और सत्कार करता हूँ। इस अवसर पर मैं महान् अनागारिक देवमित्त धम्मपाल जी को भी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूँ, जिन्होंने भारत में बौद्ध-धर्म के पुनरुत्थान के लिऐ अनमोल सेवायें की हैं। मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि भगवान् बुद्ध का सन्देश मानवमात्र के हृदय में भर जाय और संसार में सदा सुख तथा शान्ति बनाये रहे।

उड़ीसा के राज्यपाल श्री फज़ल अली ने लिखा है—"वार्षिकोत्सव में आप सफल रहें—यह मेरी शुभ-कामना है।"

इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के गृह मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द, श्री विचित्रनारायण शर्मा, पश्चिमी बंगाल के मुख्य मन्त्री श्री विधानचन्द्रराय, उत्तर प्रदेश के वित्त मन्त्री श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम, राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री टीकाराम पालीवाल, पंजाब के मुख्य मन्त्री श्री भीमसेन सच्चर, रीवाँ के मुख्य मन्त्री, जम्मू और कश्मीर के युवराज कर्णसिंह के मन्त्री, भोपाल के मुख्य मन्त्री डा० शंकरदयाल शर्मा, लंका के श्री आर्य पतिरन पिलिवन्दल, उत्तर प्रदेश के सूचना मन्त्री श्री कमलापति त्रिपाठी, अजमेर के मुख्य मन्त्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय, आसाम के मुख्य मन्त्री श्री विष्णुराम मेधी, लंका के श्री एम० डब्ल्यू० पी० धर्मसेन, मध्यप्रदेश के मुख्य मन्त्री पं० रविशंकर शुक्ल आदि आदि से शुभ-सन्देश एवं शुभ-कामनायें प्राप्त हुई थीं।

साँची

डॉ० प्रेमसिंह चौहान दिव्यार्थ

इतिहास निराला है तेरा, दुनिया में तू साँची, साँची
तुझ में वसुधा है छिपी हुई, अनमोल 'लड़ी साँची, साँची
प्रियदर्शी का दायाद धर्म, भारत का यश, गौरव लंका
ठहरा था तेरे अंचल में, उस दिन से है साँची, साँची
मानव के दुख पर फूट कढ़ी जगमें जिसकी करुणा धारा
भगवान सुगत की गत निधि है बैठी तुझमें साँची, साँची
दक्षिण उत्तर कर से दोनों, श्रावक थे अग्र विनायक के
जग पावन धातु लिये उरमें, तू धन्य हुई साँची, साँची
झूठे जग की तसवीर सही, जगमें है तुझमें खिंची हुई
जगकी मानवता की झाँकी अंकित तुझ में साँची, साँची
सम्राट अशोक, अशोक निशाँ, तेरी छाती पर छोड़ गया
भारत को फिरसे दान कृपा की दाता है साँची, साँची
वह गौरव धर्म तथागत का, भारतध्वज में लहराता है
चतुर्सिंह सुरक्षित यत्न तेरा, दिक्सिंह प्रभा साँची, साँची
गरिमा इतिहास मयी तूने अन्तर्तल में रख छोड़ी थी
है मुक्त गुलामी में महिमा, भारत माँ की साँची, साँची
मिस मेयो जली ने तो हमको, सच वूड कटर कर डाला था
पर जग को आज बताती है, अपनी प्रतिभा साँची, साँची
लौटी फिर से इतिहास कड़ी, लौटेगा मर्म अशोक यहाँ
छहरेगी वह करुणा धारा, श्रीघन्न की फिर साँची, साँची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-जगत्

भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं से ही विश्व-कल्याण

तथागत ने भारत का मस्तक ऊँचा किया

मूलगन्ध-कुटी विहार का २१ वाँ वार्षिकोत्सव सम्पन्न

२ नवम्बर रविवार को सारनाथ में मूलगन्ध कुटी विहार का २१ वाँ वार्षिकोत्सव आचार्य नरेन्द्रदेव के सभापतित्व में मनाया गया, जिसमें भारत, चीन, लंका, तिब्बत आदि देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। उक्त समारोह के अवसर पर उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, आसाम, बिहार, उड़ीसा और मद्रास के राज्यपालों एवं पंजाब, मध्यप्रदेश और पश्चिमी बंगाल के मुख्य मंत्रियों तथा भारत सरकार के वित्तमंत्री, उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री, सूचना मंत्री आदि ने शुभ कामना के सन्देश भेजे थे।

प्रारम्भिक कार्यवाही

प्रातःकाल ४ बजे महाबोधि कालेज एवं जे. टी. सी. ट्रेनिंग कालेज के छात्रों ने प्रभात फेरी की। ७ बजे मन्दिर में भिक्षुओं द्वारा सूत्रपाठ हुआ। ८ बजे अजमेर से पधारी कोली राजपूत-पार्टी के भजन-गायन के बाद पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन हुआ। सब देशों से पधारे हुए बौद्धों ने पूजा की। दोपहर में भिक्षुसंघ को भोजन दान दिया गया।

जुलूस

उत्सव के उपलक्ष में सारनाथ खूब सजा दिया गया था। ऐसी सजावट शायद ही कभी हुई होगी। बर्मी, सिंहली और तिब्बती झंडियों से सारनाथ का मैदान, मन्दिर-प्रदेश अलंकृत हो गया था। २॥ बजे अपराह्न में भगवान् बुद्ध की पवित्र अस्थियों का एक भव्य जुलूस निकला, जो चौखण्डी स्तूप तक जाकर वापस आया। जूलूस में सभी देशवासी बौद्ध उपासक-उपासिका, स्कूलों के छात्र, अध्यापक एवं भिक्षु सम्मिलित हुए थे।

सभा

४ बजे सायंकाल सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित के स्वागत भाषण के पश्चात् स्थानीय प्राइमरी स्कूल के छात्रों ने मंगल गान गाया। अजमेर से पधारी कुमारी रोहिणी देवी ने बुद्ध-भजन सुनाया। भिक्षु संघरत्न ने पंचशील दिया और चीन, लंका और तिब्बत के भिक्षुओं के क्रमशः परित्रपाठ हुए, जो बड़े ही आकर्षक थे। तदुपरान्त महाबोधि सभा के संयुक्त मंत्री भिक्षु संघरत्न ने वार्षिक-विवरण पढ़ा और महाबोधि हायर सेकेण्ड्री स्कूल सारनाथ के प्रिंसिपल श्री बालेश्वर प्रसाद ने प्राप्त सन्देशों को पढ़कर सुनाया।

भाषण

सर्वप्रथम बुद्ध सोसाइटी नागपुर के मन्त्री श्री ए० आर० कुलकर्णी का भाषण हुआ। उन्होंने कहा कि आज समाज में रूढ़ि ने धर्म का स्थान ले लिया है तथा जातीयता ने देश को कमजोर कर रखा है। भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जाति-विहीन समाज का निर्माण आवश्यक है। यह कार्य भगवान् बुद्ध की शिक्षा पर चलने से ही सम्भव है।

हिन्दू विश्वविद्यालय के राजनीति विभाग के अध्यक्ष प्रो० मुकुटबिहारी लाल ने एक प्रस्ताव रखा, जिसमें एशिया की संस्कृति और इतिहास के अध्ययन के लिए सारनाथ में एक विद्यालय खोलने पर जोर देते हुए विभिन्न एशियाई देशों से इस सम्बन्ध में सहायता देने का अनुरोध किया गया था। आपने प्रस्ताव रखते हुए कहा कि एशिया की स्वतन्त्रता को आगे बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि देश के अनेक शिक्षा-केन्द्रों में एशिया के इतिहास, राजनीति और संस्कृति के अध्ययन का प्रबन्ध हो। संस्कृत गवर्नमेण्ट कालेज बनारस के बौद्ध-दर्शन के प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की संस्कृति जिन-जिन देशों में फैली है, उनके इतिहास का अध्ययन किये बिना भारतीय संस्कृति की व्यवस्था नहीं की जा सकती। प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

तदुपरान्त भिक्षु सद्धातिस्स ने पालिभाषा में भाषण किया। अजमेर तरुण बौद्ध-समिति के मन्त्री श्री राहुल सुमन छावरा के भाषण के बाद सभापति का भाषण हुआ।

सभापति का भाषण

सभापति आचार्य नरेन्द्रदेव ने बौद्ध-धर्म की विशेषता बताते हुए कहा कि भगवान् बुद्ध ऐसे समय में अवतीर्ण हुए थे जब कि देश निराशावादिता के गर्त में गिरा हुआ था और मानव को क्षुद्र, असहाय और अकिंचन माना जाता था। बुद्ध की शिक्षा ने ऐसे समय में नयी चेतना दी जो किसी विशेष जाति अथवा नस्ल के लिए नहीं, वरन् मानवमात्र के लिए थी। वे एक नये युग के संस्थापक थे। उनका कथन था कि धर्म और अधर्म, शुभ और अशुभ, राग और विराग, मोक्ष और मोह में नित्य संघर्ष होता रहता है, पर अन्त में जीत शुभ की, धर्म की ही होती है।

आचार्य जी ने कहा कि बौद्ध-धर्म की महत्ता यही है कि उसने अनेक दर्शनों की सृष्टि की, अनेक नये विचार दिये। पश्चिम के दर्शन मोक्षप्राप्ति के नहीं, केवल चिन्ता के विषय हैं। सृष्टि कैसे हुई, उसका अन्त कब होगा, इसी कौतूहल में उनका समय जाता है, पर दुःख क्या है, उसका निवारण कैसे होगा, मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार होगी—ये बातें भारतीय दर्शन में ही मिलेंगी। यहाँ जितने धर्म-दर्शन हैं, सबका एक उद्देश्य है, पश्चिम की तरह वे निरुद्देश्य नहीं हैं।

आपने आगे कहा कि समाज की आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं। उनकी पूर्ति के लिए जब तक आप नये ज्ञान न अपनायेंगे तब तक आप कितने ही सदाचारी क्यों न हों उन्हें हल नहीं कर सकते। बुद्ध ने जो शिक्षा दी फल यह हुआ कि भारत विश्व के मानचित्र पर आ गया, नहीं तो हम कूपमण्डूक ही होते। पश्चिम एशिया को छोड़कर समस्त एशिया भारत को उन्हीं के कारण गुरु मानता रहा है। खोये हुए मान को प्राप्त करने के लिए बौद्ध-ग्रन्थों की गवेषणा आवश्यक है।

आचार्य जी ने आगे कहा कि आज भारत का सम्मान जो विश्व और एशिया में है, वह भगवान् बुद्ध के ही कारण है। बौद्ध-धर्म अनीश्वरवादी होते हुए भी नैतिकतापूर्ण है। नैतिकता के बिना किसी समाज का टिकना कठिन है, वह टूट जायगा।

बौद्ध-धर्म महान् और विस्तृत मनोवृत्ति का है। भगवान् बुद्ध ने इसमें साम्प्रदायिकता और संकीर्णता को बिलकुल स्थान नहीं दिया। यही कारण है कि यह धर्म विश्व में इतना फला-फूला। आज विश्व में अशान्ति का वातावरण है, चारों ओर असन्तोष व्याप्त है, कोई नहीं कह सकता कि विश्व-युद्ध कब छिड़ जायगा। आज भगवान् बुद्ध के मैत्री और करुणा के सन्देश की आवश्यकता है। आज दुर्बल राष्ट्र की दुर्बलता नहीं मिटायी गई और सबको समान अधिकार नहीं मिलेगा तब तक विश्व में शान्ति नहीं स्थापित हो सकती।

आगे आपने कहा कि जब मैं बुद्ध-गया गया तो मैंने वहाँ बुद्ध की मूर्ति देखी। उससे प्रत्यक्ष मालूम देता था कि दया, करुणा और शान्ति टपक रही है।

बौद्ध-भिक्षु विदेश में ज्ञान एवं धर्म का नूतन सन्देश देने गए। विदेशियों ने उनका स्वागत किया। उन भक्तों में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था। उनका स्वार्थ समाज का स्वार्थ था। इसलिए वे सफल हुए। उन्होंने अपनी ज्योति से विश्व को प्रकाशित किया। जब तक हम समाज के स्वार्थ को नहीं देखेंगे तब तक हम अपना स्वार्थ पूरा नहीं कर सकते। यह तभी सम्भव है जब ज्ञान और पुण्य का संचय होगा।

आपने आगे कहा कि आपलोगों ने सारनाथ के जो डिग्री कालेज खोलने का प्रस्ताव किया है वह सामयिक है। यदि इसे कार्यान्वित किया जाय तो हमें लंका, बर्मा, तिब्बत के भिक्षुओं और लोगों से सहायता भी मिलती रहेगी और ज्ञान एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी होता रहेगा। इस कार्य के लिए यह समुचित केन्द्र है। जिस प्रकार नालन्दा में प्रतिष्ठान बनाया गया है; उसी प्रकार यहाँ भी बनना चाहिए।

प्रस्ताव

सभा में जो प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह इस प्रकार था—"इस सभा की सम्मति में सारनाथ स्थित महाबोधि उच्च महाविद्यालय में उपाधि परीक्षाओं के लिए एक डिग्री कालेज की स्थापना की जाय जिसमें एशिया के इतिहास और संस्कृति का अध्ययन हो। यह सभा विश्वविद्यालय से अनुरोध करती है कि वह इस कालेज को अपने से संबद्ध करे।

यह सभा एशिया के विभिन्न देशों की सरकारों एवं विद्वानों से प्रार्थना करती है कि वे इस प्रयास को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें।"

अन्त में त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित ने धन्यवाद दिया और सभा विसर्जित हुई।

कैम्पफायर

रात्रि में सूत्रपाठ एवं प्रदीप-पूजा के पश्चात् सभा-मण्डप में ही महाबोधि जे. टी. सी. ट्रेनिंग कालेज के छात्राध्यापकों ने कैम्पफायर किया, जो बड़ा ही आकर्षक रहा। कैम्पफायर में अजमेर से पधारे कोलीराजपूतों ने भी भाग लिया था। कैम्पफायर समाप्त होने के पश्चात् ग्रामीणों के मनोरंजनार्थ बिरहा-सम्मेलन हुआ, जो २ बजे रात्रि तक चलता रहा।

अन्तराष्ट्रीय बौद्ध-सम्मेलन—३ नवम्बर को प्रातःकाल मूलगन्ध कुटी विहार में नागपुर बुद्ध सोसाइटी के प्रधान मंत्री श्री ए० आर० कुलकर्णी के सभापतित्व में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन हुआ। इस अवसर पर भारत, लंका, बर्मा, तिब्बत, लद्दाख, लाहुल, नेपाल, चटगाँव और पूर्वी पाकिस्तान के बौद्ध प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। सम्मेलन में भिक्षु ऊ कित्तिमा (बर्मा), त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित (भारत), भिक्षु अश्वघोष (नेपाल), भिक्षु शीलाचार (चटगाँव), भिक्षु सद्धातिस्स (लंका), श्री राहुल सुमन छावरा (अजमेर), लामा अंगरूप (लाहुल) और भिक्षु संघरत्न के भाषण हुए। सबने बौद्धधर्म की प्रगति एवं उसकी समस्याओं पर प्रकाश डाला। इस सम्मेलन में अजमेर, गढ़मुक्तेश्वर, हिमांचल प्रदेश, उड़ीसा एवं मद्रास के बौद्धों की समस्याओं पर विशेष रूप से विचार किया गया।

प्रस्ताव

इस सम्मेलन में सर्वसम्मति से दो प्रस्ताव स्वीकृत हुए :—

"यह सभा सर्वसम्मति से स्वीकार करती है कि भारतवर्ष के बौद्धों में आवाह-विवाह एवं शिक्षा-दीक्षा की जो असुविधा है उसके लिए भारतीय महाबोधि सभा समुचित कार्य करे और उन्हें सुविधा दी जाय। विशेषकर अजमेर के कोली रजपूत, अलमोड़ा, गढ़मुक्तेश्वर तथा हिमांचल प्रदेश के बौद्धों की सहायता इस दिशा में सर्वप्रथम करे।"

दूसरे प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से वैशाख पूर्णिमा को सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित करने के लिए प्रार्थना की गयी। अन्त में भिक्षुसंघ द्वारा सूत्रपाठ हुआ और पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ।

महाबोधि कालेज का वार्षिकोत्सव—३ नवम्बर को ही अपराह्न में ३॥ बजे से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री नार्लिकर के सभापतित्व में सारनाथ के महाबोधि हायर सेकेण्डरी स्कूल का वार्षिकोत्सव मनाया गया। मंगलाचरण से सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। महाबोधि कालेज एवं जे० टी० सी० ट्रेनिग कालेज के छात्रों द्वारा कतिपय शिक्षाप्रद प्रदर्शन एव वार्तालाप किये जाने के पश्चात् प्रिंसिपल ने वार्षिक विवरण पढ़ा और पुरस्कार वितरित हुए। इन पुरस्कारों में धर्मज्ञान संबंधी भी पुरस्कार था। अन्त में सभापति का ओजस्वी एवं ज्ञानवर्द्धक भाषण हुआ। उन्होंने अपने भाषण में सारनाथ का महत्व बतलाते हुए छात्रों के कर्तव्यों का वर्णन किया और प्राचीन ग्रन्थों में लिखित कतिपय उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए कर्तव्य-परायण, उद्योगी एवं आत्म-निर्भर होने की सलाह दी।

सभा के अन्त में छात्रों को मिष्ठान्न बाँटा गया और कालेज पाँच दिनों के लिए बन्द हो गया।

भारतीय बौद्ध संघ का वार्षिक अधिवेशन—४ नवम्बर को अपराह्न में बर्मी बौद्ध विहार सारनाथ में भिक्षु ऊ कित्तिमा के सभापतित्व में भारतीय बौद्ध संघ का वार्षिक अधिवेशन हुआ। मंत्री के वार्षिक विवरण पढ़ने के पश्चात् पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ। भदन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊ चन्द्रमणि महास्थविर सभापति, भिक्षु ऊ महेन्द्र उपसभापति, भिक्षु ऊ चन्दिमा मंत्री, भिक्षु अग्गसमाधि उपमंत्री, भिक्षु कित्तिमा कोषाध्यक्ष और भिक्षु संघरत्न तथा भिक्षु धर्मरक्षित सदस्य चुने गए।

सभा में दो प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहला प्रस्ताव भिक्षु संघरत्न द्वारा रखा गया था, जिसके द्वारा अजमेर, हिमांचल प्रदेश, गढ़मुक्तेश्वर आदि के बौद्धों की सहायता करने की अपील की गई थी। दूसरा प्रस्ताव भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जो इस प्रकार था—

"कुशीनगर बौद्ध धर्म का एक महातीर्थ है। इसके दर्शनार्थ नित्यप्रति हजारों व्यक्ति जाते हैं, किन्तु गमनागमन की असुविधा के कारण उन्हें कष्ट होता है। यह सभा भारत सरकार से निवेदन करती है कि देवरिया जिले के भटनी जंकशन से या देवरिया से ही कुशीनगर होते हुए पड़रौना तक एक रेलवे-मार्ग का निर्माण यथाशीघ्र कराया जाय। इससे इस प्रदेश के लोगों एवं यात्रियों को विशेष लाभ होगा।"

लामा अंगरूप—लामा अंगरूप लाहुल के रहने वाले एक तरुण विद्यार्थी हैं। वे लगभग तीन वर्ष तक सारनाथ में रहकर पालि, हिन्दी और अंग्रेजी पढ़े हैं। गत ६ नवम्बर से वे काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के कुलपति के विशेष आग्रह पर तिब्बती के अध्यापक होकर विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय ने उनके निजी अध्ययन का भी प्रबन्ध किया है और उन्हें ७५) मासिक की छात्रवृत्ति भी प्रदान कर रहा है, जिससे वे विश्वविद्यालय में ही पालि, संस्कृत, हिन्दी एवं अँग्रेजी की ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकें। हम लामा अंगरूप की उन्नति चाहते हैं और आशा करते हैं कि वे वहाँ भी सारनाथ की भाँति ही अपने कार्यों में सफलता प्राप्त करेंगे।

भिक्षु संघरत्न को उपाधि—पवित्र अस्थियों के साथ कम्बोडिया जाने पर वहाँ के संघराज एवं राजा की ओर से महाबोधि-सभा के संयुक्त मन्त्री भिक्षु संघरत्न को "वरगुरु सिरि धम्मचक्कपाल" की उपाधि मिली है। भिक्षु जिनरत्न को "महाबोधिगुप्त" तथा डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी को "सम्बुद्ध शासनारक्षक" की। हम इस सम्मान के लिए कम्बोडिया के संघराज एवं राजा को धन्यवाद देते हैं तथा इन तीनों सम्मानित व्यक्तियों का अभिनन्दन करते हैं।

कुशीनगर भिक्षु-संघ के पदाधिकारियों का चुनाव—९ नवम्बर को बौद्ध-विहार कुशीनगर में भदन्त ऊ चन्द्रमणि महास्थविर के सभापतित्व में 'कुशीनगर भिक्षु-संघ' के पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ। सर्वसम्मति से भदन्त ऊ चन्द्रमणि महास्थविर संघ के आजीवन सभापति निर्वाचित हुए। भिक्षु ऊ कित्तिमा उपसभापति, त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित मन्त्री, भिक्षु जिनानन्द उपमन्त्री, भिक्षु अच्युतानन्द कोषाध्यक्ष और भिक्षु प्रज्ञावंश तथा भिक्षु ऊ चन्दिमा सदस्य निर्वाचित हुए। सभापति के अतिरिक्त अन्य पदाधिकारियों का निर्वाचन प्रति तीसरे वर्ष बुद्ध-जयन्ती महोत्सव के अवसर पर हुआ करेगा।

महाबोधि विद्यापरिषद्—गत २५ अक्टूबर को भिक्षु ऊ-कित्तिमा के सभापतित्व में सारनाथ के महाबोधि विद्यापरिषद् का वार्षिक अधिवेशन मनाया गया, जिसमें प्रबन्ध समिति के पदाधिकारियों एवं व्यवस्थापक का निर्वाचन हुआ। भिक्षु संघरत्न महाबोधि हायर सेकेण्डरी स्कूल तथा फ्री प्राइमरी स्कूल के व्यवस्थापक सर्वसम्मति से चुने गए।

श्री राहुल सुमन छावरा—अजमेर तरुण-बौद्ध समिति के नवयुवक एवं उत्साही मन्त्री श्री राहुल सुमन छावरा (श्री रामसिंह छावरा) ने चार नवम्बर को सारनाथ के भिक्षु संघ का आशीर्वाद लेकर बर्मा के लिए प्रस्थान किया। वे बर्मा में प्रव्रज्या ग्रहण कर बौद्ध-धर्म का अध्ययन करेंगे तथा बौद्ध देशों के रीत-रिवाज सीखेंगे। वे वहाँ से लौटकर अजमेर प्रदेश में बौद्ध धर्म का प्रचार-कार्य करेंगे। हम हृदय से उनकी सफलता की कामना करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धचर्य्या

भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों के सम्बन्ध में, भारतीय भाषाओं में जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें विशालता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'बुद्धचर्य्या' सभी से बढ़कर है। त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र सम्बन्धी जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, 'बुद्धचर्या' में उस सारी सामग्री का वैज्ञानिक संकलन कर, अविकल अनुवाद दिया गया है। 'बुद्धचर्या' को यदि समस्त सुत्तपिटक और विनयपिटक का सार कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

बीस वर्ष पहले उसका प्रथम संस्करण छपा था। बहुत दिनों से उसकी माँग रहने पर भी इस व्यय-साध्य ग्रन्थ का दूसरा संस्करण न हो सका। ग्रन्थ की विशालता और कागज आदि के दुर्लभ होने के साथ-साथ आज के प्रकाशक और पाठक की 'रुचि' भी इस विलम्ब के लिये उत्तरदायी है।

महाबोधि सभा ने ग्रन्थ के महात्म्य का ख्याल कर हिन्दी पाठकों की प्रामाणिक साहित्यप्रियता के भरोसे ही इसके प्रकाशन का व्यय-भार वहन किया है।

किसी भी पुस्तकालय में और विशेषरूप से बौद्ध-साहित्य प्रेमी किसी भी भाई बहिन के पुस्तकालय में 'बुद्धचर्य्या' रहनी ही चाहिए।

बड़े आकार के छः सौ तीस पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८) है। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

मिलने का पता :—

१. महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, (बनारस)
२. महाबोधि पुस्तक भण्डार, ४ ए बङ्किम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२
३. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धविहार, रीडिंग रोड, नई दिल्ली
४. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धगया (बिहार)

उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत

१. वर्द्धमान	१८००)	पुरस्कार मूल्य	६)
२. शेरोसुखन	५००)	,, ,,	८)
३. शेरोशायरी	५००)	,, ,,	८)
४. पथचिह्न	१०००)	,, ,,	२)
५. वैदिक साहित्य	६००)	,, ,,	६)
६. मिलनयामिनी	५००)	,, ,,	४)

सन् १९५२ के नवीन प्रकाशन

१. हमारे आराध्य (पं० बनारसीदास च०)	मू०	३)
२. संस्मरण	,,	,, ३)
३. रेखाचित्र (प्रेस में)	,,	,,
४. रजतरश्मि (डा० रामकुमार वर्मा)	,,	२॥)
५. आकाश के तारे: धरती के फूल (क० मिश्र)	,,	२)
६. जैन जागरण के अग्रदूत (अ. प्र. गोयलीय)	,,	५)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस–५

महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती तथा साँची-विहार के उद्घाटन में सम्मिलित होइये—

२९ और ३० नवम्बर को

साँची में पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ाइये।

—मन्त्री, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)	भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० प्रबोधचन्द्र प्रसाद	–)
मज्झिम निकाय—,, ,,	८)	बुद्धदेव—शरत् कुमार राय	१॥)
विनय पिटक— ,, ,,	८)	थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	॥)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)	बुद्ध और बौद्ध साधक— ,,	१॥)
खुद्दकपाठ— ,,	।)	तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१॥)	कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२॥)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १,२ ७॥),	७॥)	पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
,, ,, (भाग ३)	१०)	जातिभेद और बुद्ध— ,, ,,	॥)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५॥)	ब्राह्मण धम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	–)	तेलकटाह गाथा— ,, ,,	।)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१॥	बौद्ध शिशु बोध— ,, ,,	।)
बुद्ध और उनके अनुचर— ,,	१॥)	सारनाथ दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
बौद्धचर्य्या पद्धति—योधानन्द महास्थविर	१॥)	कुशीनगर-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
बुद्धचर्य्या—राहुल सांकृत्यायन, सजिल्द	८)	लंका-यात्रा— ,, ,,	१॥)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	॥)	पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)	बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	॥)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)	बुद्ध-शतकम्— ,, ,,	।)
बुद्धार्चन— ,, ,,	।)	महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)	बुद्ध-अर्चना (कविता)—कुमारी विद्या	=)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	।॥)	तिब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित	६)	चरियापिटक—डा० विमलाचरण लाहा	५)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३॥)	सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
नवनीत टीका— ,, ,,	२॥)	खुद्दकपाठ— ,,	।)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,,	२॥)	धम्मसंगणी—श्री वापट	८)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)	अत्थसालिनी— ,,	८)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)	पातिमोक्ख— ,,	१)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,,	।)	सिङ्गाल सुत्तं—भिक्षु ऊ कित्तिमा	॥)
पालि-पाठ-माला— ,,	१)		

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)

मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, जगमोहन प्रेस, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

636
30-10-2008
21-2-22

धर्मदूत

सारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

साँची

विशेषाङ्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वार्षिक--3) डस अङ्क

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनामृत	...	१९३
२. साँची महोत्सव—श्री राहुल सांकृत्यायन	...	१९४
३. अग्रश्रावक सारिपुत्र-मौद्गल्यायन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	...	१९७
४. साँची-सौरभ (कविता)—डा० प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ'	...	२०३
५. बौद्ध धर्म की विजय पताका फहराने वाले महान् प्रचारक—डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार		२०६
६. साँची के स्तूप—श्री द्वारकाप्रसाद कटारे	...	२०९
७. वरदान-याचना (कविता)—श्री रामचन्द्रलाल	...	२११
८. साँची में एशिया का महान् सांस्कृतिक मेला—एक प्रत्यक्षदर्शी	...	२१२
९. बुद्ध-वाणी (कविता)—श्री रामचरण लाल एम० ए०	...	२१५
१०. भगवान् बुद्ध की आत्म-कथा—श्री भरतसिंह उपाध्याय एम० ए०	...	२१६
११. कलातीर्थअजन्ता (कविता)—श्रीमती सुभाषिनी	...	२२१
१२. कला की साधना और आर्य अष्टांगिक मार्ग—श्री विजय श्रीवास्तव	...	२२२
१३. भारतीय संस्कृति के मध्य एशियाई प्रचारक—श्री सुमन वात्स्यायन	...	२२५
१४. बौद्ध युग और कला—कुमारी विद्या	...	२२८
१५. काशी के महाजमाती उरुवेल काश्यप—भिक्षु धर्मरक्षित	...	२३०
१६. सुभाषित सीकर	...	२३२
१७. बौद्ध-जगत्	...	२३३

'धर्मदूत' के नियम—

१—"धर्मदूत" भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मासिक मुखपत्र है। जो प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४ - लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिये।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख या कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—"धर्मदूत" का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक

"धर्मदूत" सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष भिक्षु | सारनाथ, दिसम्बर–जनवरी | बु० सं० २४९६ / ई० सं० १९५३ | अङ्क ८–२

बुद्ध-वचनामृत

लाभ-सत्कार की भयंकरता और उसका त्याग

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित कर कहा—"भिक्षुओ; अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभ-सत्कार बड़ा दारुण है, कटु है, तीखा है, विघ्नकर है। भिक्षुओ ! इसलिए तुम्हें ऐसा सीखना चाहिए कि लाभ-सत्कार प्रशंसा आदि को छोड़ दूँगा, उन्हें मन में ठहरने नहीं दूँगा। भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिए।

भिक्षुओ ! जैसे अंकुसी फेंकनेवाला चारा लगाकर अंकुसी को पानी में फेंक दे, तब चारे के लोभ से कोई मछली उसे निगल जाय। भिक्षुओ ! इस तरह वह मछली अंकुसी को निगल कर बड़े दुःख और विपत्ति में पड़ जाती है; मछुवा जो चाहे उससे करता है। भिक्षुओ ! यहाँ अंकुसी फेंकने वाला मछुवा पापी मार को ही समझना चाहिए और उसकी अंकुसी यही लाभ, सत्कार, प्रशंसा आदि हैं।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु लाभादि पाने पर बड़ा खुश होता है और आनन्द उठाता है, वह मार की अंकुसी में फँसा हुआ समझा जाता है। वह दुःख और विपत्ति में पड़ता है। मार उससे जैसा चहता है, करता है।"—संयुक्त निकाय १६, १, २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साँची महोत्सव

श्री राहुल सांकृत्यायन

आज साँची के नए विहार का उद्घाटन हो रहा है। प्राचीन भारत की मूर्तिकला और स्थापत्यकला के अद्भुत संग्रहालय के रूप में साँची के स्तूपों की ख्याति पिछली शताब्दी से ही सारे विश्व में फैली हुई है। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर किसी समय फ्रांस के राजा लुई ने सांची के तोरणों को खरीदकर पेरिस मँगवाना चाहा था, किन्तु हमारे सौभाग्य से वह इसमें सफल नहीं हुआ। साँची के एक स्तूप में बुद्ध के दोनों अग्रश्रावकों (प्रधान शिष्यों)—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की अस्थियाँ मिली थीं। यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे शिक्षित लोगों को भी भारत के इन दो श्रेष्ठ पुत्रों के बारे में बहुत कम पता है, जिनका नाम बड़े आदर के साथ जापान से बैकाल सरोवर तक और लंका से कम्बोज (हिंदचीन) तक [illegible] जाता है। सारिपुत्र बुद्ध के योग्यतम शिष्य थे। उन्हें अनुबुद्ध तथा धर्मसेनापति भी कहा जाता है। उनका जन्मस्थान नालक ग्राम (मगध) था, जो पीछे नालन्दा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिस कोठरी में उनका जन्म हुआ था, मृत्यु भी उनकी उसी में हुई थी। इसका बड़ा करुणापूर्ण वर्णन 'दीघनिकाय की अट्ठकथा' (टीका) में मिलता है। बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन विहार में थे। सारिपुत्र उसी समय मगध के नालक ग्राम में सख्त बीमार पड़े हुए थे, जहाँ वह यहीं से बुद्ध की अनुमति लेकर निर्वाण के वास्ते ही गए थे।

निर्वाण की अनुमति

सारिपुत्र पाँच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान के पास जा वन्दना कर बोले—"भन्ते! भगवान अनुज्ञा दें, सुगत अनुज्ञा दें, मेरा परिनिर्वाण-काल है, आयु-संस्कार (जीवन) खतम हो चुका।"

...."कहाँ परिनिर्वाण करोगे?"...

"भन्ते! मगध (देश) में नालक ग्राम में (मेरा) जन्मगृह है, वहाँ परिनिर्वाण करूँगा।"

..."सारिपुत्र! जैसा तू काल समझे।"

...स्थविर ने रक्तवर्ण हाथों को फैलाकर, शास्ता के सुवर्ण-कच्छप-सदृश चरणों के गुल्फों को पकड़ कर कहा—"भन्ते! इन चरणों की वन्दना के लिए सौ हजार कल्पों से अधिक काल तक मैंने असंख्य पारमिताएँ पूर्ण कीं। वह मेरा मनोरथ सिर तक पहुँच गया। अब (आपके साथ) फिर जन्म ले एक स्थान में एकत्र (समागम) होना नहीं है। यदि मेरा कोई कायिक या वाचिक (कर्म) भगवान को न रुचा हो, तो भगवान क्षमा करें। मेरा यह प्रयाण का समय है।"

"सारिपुत्र! तुझे क्षमा करता हूँ; [illegible] भी कायिक वाचिक (कर्म) ऐसा नहीं, जो मुझे नापसन्द हो। अब तू सारिपुत्र! जैसा काल समझे (उसे कर)।"

भगवान की अनुज्ञा पाने के बाद, आयुष्मान सारिपुत्र के पाद-वन्दना कर उठते समय...शास्ता भी धर्मसेनापति के सम्मान के लिए धर्मासन से उठकर गंधकुटी के सामने मणिफलक पर जा खड़े हुए।

स्थविर तीन बार प्रदक्षिणा कर चार स्थानों (अंगों) से वन्दना करके बोले—"भगवान! आज से असंख्य सौ हजार कल्प से अधिक समय पूर्व अनोमदर्शी सम्यक-संबुद्ध के पादमूल में पड़कर, मैंने तुम्हारे दर्शन की प्रार्थना की। वह मेरी प्रार्थना पूरी हुई, तुम्हें देख लिया। वह तुम्हारा प्रथम दर्शन था और अब यह अन्तिम दर्शन, (अब) फिर तुम्हारा दर्शन नहीं होगा।"

फिर दश-नख संयुक्त समुज्ज्वल अंजलि को जोड़े जब तक (भगवान) नजर के सामने थे, (बिना पीठ दिखाये) सामने मुख रखते ही चलकर वन्दना कर चल दिए।...भगवान ने घेर कर खड़े हुए भिक्षुओं से कहा—"भिक्षुओ! अपने ज्येष्ठ भ्राता का अनुगमन करो।"

उस समय एक सम्यक-संबुद्ध को छोड़कर सभी भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, चारों परिषद जेतवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निकले। श्रावस्ती-नगर वासियों ने भी 'सारिपुत्र स्थविर सम्यक संबुद्ध से पूछकर, 'परिनिर्वाण की इच्छा से निकले हैं, उनका दर्शन करें'—ऐसा सोच, नगरद्वारों को अवकाशरहित बनाते निकल गंधमाला हाथ में ले, केशों को बिखेरे'—महाप्रज्ञ कहाँ बैठे हैं? कहाँ धर्म-सेनापति बैठे हैं?'—पूछते 'हम किसके पास जाएँगे', 'स्थविर किसके हाथ में शास्ता को सौंप कर जा रहे हो' इस प्रकार से रोते-कांदते स्थविर का अनुगमन किया।

निर्वाण की बेला

नालक ग्राम में सैकड़ों भिक्षुओं के साथ जा सारिपुत्र बीमार पड़ गए। अन्त समय आया देखकर उन्होंने अपने सहोदर भिक्षु चुन्द से कहा "चुन्द! क्या समय है?"

"भन्ते! बड़े भोर की बेला है।"

"भिक्षु-संघ को जमा करो।"

"भन्ते! भिक्षु-संघ जमा है।"

"चुन्द! मुझे उठाकर बैठाओ।"

उठा कर बैठा दिया तब स्थविर ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"आवुसो! तुम्हें मेरे साथ विचरते चौवालिस वर्ष हो गए, जो कोई मेरा कायिक, वाचिक (कर्म) तुम्हें अरुचिकर हुआ हो, आवुसो! उसे क्षमा करो।"

"भन्ते! इतने समय तक आपको छाया की भाँति बिना छोड़े बिचरते, हमने अरुचिकर (बुरा) कुछ भी नहीं देखा। किन्तु, आप हमारे दोषों को क्षमा करें।"

तब स्थविर महाचीवर को खींचकर मुख को ढँक, दाहिनी करवट लेट गये।

देहान्त हो जाने पर सारिपुत्र का अन्त्येष्टि संस्कार किया जाने लगा।

स्थविर के शरीर को चिता में रख, खस के पुंजों से लिपवा दिया। अनुरुद्ध स्थविर ने सर्वगंधादिक से स्थविर की चिता बुझाई। चुंद स्थविर की धातुओं (अस्थियों) को परिस्रावण (जलछाका) में रख, 'अब मैं यहाँ नहीं ठहर सकता, चलके अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्म-सेनापति सारिपुत्र स्थविर के परिनिर्वाण होने की बात सम्यक-संबुद्ध को कहूँ' ऐसा सोच धातु परिस्रावण और स्थविर के पात्र-चीवर को लेकर श्रावस्ती चले। एक स्थान में दो रात भी न ठहरे···श्रावस्ती पहुँच गए। जाकर जहाँ उनके उपाध्याय धर्म-भण्डारी आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गए।

चुंद ने अपने गुरु आनन्द से कहा—"भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिवृत (निर्वाणप्राप्त) हो गये, यह उनका पात्र-चीवर है, यह उनका धातु-परिस्रावण है।"

भगवान् द्वारा सराहना

"आवुस चुंद! यह कथा (बात) रूपी भेंट है, चलो चलें, आवुस चुन्द! जहां भगवान् हैं,...चलकर भगवान् को यह बात कहें।"

बुद्ध के पास जाने पर उन्होंने हाथ फैला धातु-परिस्रावण को हथेली पर रख, भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"भिक्षुओ! जिस भिक्षु ने पहले एक दिन निर्वाण प्राप्त करने के लिए अनुज्ञा मांगी, उसकी यह आज शंखवर्ण-समान धातुएं (हड्डियां) दिखाई पड़ रही हैं। भिक्षुओ! सौ हजार कल्प से अधिक समय तक पारमिता पूरने, धर्म के चक्के का अनुपवर्तन करनेवाला यह भिक्षु था।...

महाप्रज्ञावान वह भिक्षु था।...अल्पेच्छ (त्यागी) यह भिक्षु था। यह संतुष्ट प्रवीविक्त (एकान्तप्रेमी) था, असंतुष्ट था, उद्योगी, पाप-निन्दक यह भिक्षु था। प्राप्त-महान-संपत्तियों को पांच सौ जन्मों तक छोड़कर यह भिक्षु प्रव्रजित होता रहा।..देखो भिक्षुओ! महाप्रज्ञ की धातुओं को...

"जो पाँच सौ जन्मों तक मनोरम भोगों को छोड़ प्रव्रजित होता रहा, उस वीतराग, जितेन्द्रिय, निर्वाण-प्राप्त सारिपुत्र की वन्दना करो॥१॥

"क्षमा-बल में पृथ्वी के समान था, वह कुपित नहीं होता था, न इच्छाओं के वशवर्ती होता था, यह अनुकम्पक, कारुणिक, निर्वाण को गया, निर्वाण-प्राप्त सारिपुत्र की वन्दना करो॥२॥

"जैसे चाण्डाल पुत्र मन नीचा किए, कपाल हाथ में लिए नगर में प्रविष्ट हो विचरता है, ऐसे ही यह सारिपुत्र निर्वाण-प्राप्त०" ॥३॥

इस प्रकार भगवान ने...स्थविर के गुण का वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। जैसे-जैसे भगवान स्थविर के गुण का वर्णन करते थे, वैसे-वैसे आनन्द अपने को सम्हाल नहीं सकते थे।

बुद्ध ने सारिपुत्र के निर्वाण की खबर सुनकर जो उद्‌गार प्रकट किए, उनसे ही मालूम हो जाएगा कि वह कितने योग्य तथा बुद्ध के स्नेहभाजन थे।

संयुत्तनिकायकी अट्ठकथा से मालूम है कि धर्मसेनापति सारिपुत्र का निर्वाण कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था। उसके १५ दिन बाद अगहन की अमावस्था को मौद्‌गल्यायन राजगृह के जंगलों में डाकुओं द्वारा मारे गए। वहीं दोनों की अस्थियों पर स्तूप बनवाए गए। इसी समय की यात्रा में जब बुद्ध उल्काचेल (वर्तमान हाजीपुर) नगर के पास गंगा की रेती में बैठे थे, तबका वर्णन है—

"उस समय भगवान् भिक्षु-संघ के साथ खुली जगह में बैठे हुए थे। तब भगवान् ने भिक्षु-संघ को मौन देखकर भिक्षुओं को आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! मुझे यह परिषद् शून्य-सी जान पड़ती है। सारिपुत्र मौद्‌गल्यायन के परिनिर्वाण न हुए समय, भिक्षुओ! मुझे यह परिषद अशून्य मालूम होती थी। जिस दिशा में सारिपुत्र-मौद्‌गल्यायन विहरते थे, वह दिशा अपेक्षा-रहित होती थी।"

अस्थियाँ साँची कैसे पहुँचीं?

मगध के नालक ग्राम और राजगृह में दोनों प्रधान शिष्यों के स्तूप बनाए गए थे। उनकी हड्डियाँ वहाँ से कैसे साँची पहुँचीं, यह जानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। ई० पू० तीसरी या दूसरी शताब्दी में जब विदिशा के बौद्धों ने अपने नगर के बाहरवाले पहाड़ वैदिशगिरि के ऊपर मनोहारी स्तूपों को बनवाया, उसी समय जान पड़ता है, दोनों अग्रश्रावकों की अस्थियों में से भी कुछको यहाँ रखा गया। साँची अर्थात् वैदिशगिरि का विहार ई० पू० तीसरी शताब्दी में ही महाविहार बन गया था। हो सकता है, वह बुद्ध के एक प्रमुख शिष्य महाकात्यायन के समय बना हो। विदिशा (वर्तमान भिलसा) उस समय एक समृद्ध नगरी थी। उत्तर से दक्षिण जानेवाला वणिक्‌पथ यहीं से गुजरता था, यहाँ के शिल्पियों की ख्याति बहुत दूर-दूर तक थी। उनके पास भी इतना धन था कि साँची के स्तूप के एक भव्य तोरण को उन्होंने अपने धन और श्रम से बनवा दिया। पाटलिपुत्र से उज्जैन को उप-राज बन कर जाते समय ई० पू० २८० में अशोक को विदिशा के देवश्रेष्ठी की कन्या से प्रणय हो गया। श्रेष्ठी-कन्या ने पति के साथ उज्जैन जाकर एक पुत्र प्रसव किया, जिसने महेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हो लंका (सिंहल) में जाकर बौद्धधर्म का प्रचार किया। महेन्द्र लंका के लिए जाते समय अपनी माता का दर्शन करने विदिशा गए थे। माँ ने उन्हें "वैदिशगिरि महाविहार" में ठहराया था। इस प्रकार २४७ ई० पू० के आसपास सांची के महाविहार में महेन्द्र का आना निश्चित मालूम होता है।

महेन्द्र के समय सांची के भव्य तोरण बन चुके थे, इसका पता नहीं। शायद सांची की महिमा उस समय बढ़ी, जब कि मौर्य-वंश के उच्छेद के बाद ई० पू० द्वितीय शताब्दी में पाटलिपुत्र बौद्धसंघ का प्रधान केन्द्र नहीं रह गया।

सुव्यवस्थित प्रचार

ई० पू० २४८ में बौद्धसंघ का एक बृहद् अधिवेशन (संगीति) पटना में हुआ था, जिसने विदेशों में धर्मदूतों के भेजने का आयोजन किया। इस अधिवेशन के अध्यक्ष अशोक के गुरु मौग्गलिपुत्त तिस्स, (उप-गुप्त) थे। मौग्गलिपुत्त और पाटलिपुत्र संघ द्वारा भेजे गए धर्मप्रचारकों में से कितनों ही की अस्थियाँ साँची और उसके पास के सोनरिया तथा अंधरा के स्तूपों में दूसरी-तीसरी ई० पू० की लिपि में अंकित डिबियों में मिलती हैं। इनमें से एक डिबिया पर उत्कीर्ण है—"सपुरिसस मोगलिपुतस" (सत्पुरुष मोग्गलिपुत्तका) दूसरे कितने ही नाम हैं—"सपुरिसस कसप-गौतम सवहेमवतचरियस" (सत्पुरुष काश्यपगोत्र सारे हिमालय के आचार्य का), "सपुरिसस मझिमस" (सत्पुरुष मध्यम का), "सपुरिसस मझिमस कोड्डिनिपुतस" (सत्पुरुष मध्यम कौंडिनीपुत्र का), "सपुरिसस कौटिपतुस कसपगोतस सवहेमवतचरियस" (सत्पुरुष कोटिपुत्र काश्यपगोत्र सारे हेमवतों के आचार्य का), "सपुरिसस कोसिकीपुतस" (सत्पुरुष कौशिकी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र का)। परम्परा ने बाहर भेजे जानेवाले पाँच-पाँच भिक्षुओं में से केवल महेन्द्र के ही चार साथियों का नाम सुरक्षित रखा है। सोनरिया के स्तूप में मज्झिम-कौंडिनी-पुत्र का नाम अंकित मिला है, और वहीं उनके लिए सारे हेमवतों के आचार्य ही उत्कीर्ण नहीं हैं, बल्कि दूसरे नाम के साथ भी हेमवताचार्य मौजूद है। साँची और उसके आसपास के स्तूपों में भारत के बाहर जानेवाले हमारे धर्मदूतों की ये अस्थियाँ बतला रही हैं कि उस समय धर्म-प्रचार का कार्य बहुत सुव्यवस्थित रीति से चल रहा था—धर्मदूतों को पूरे कोरम के साथ ही बाहर नहीं भेजा जाता था, बल्कि मर जाने पर उनकी अस्थियों के अंश को भी बड़े सम्मान के साथ स्तूपों में स्थान दिया जाता था।

प्राचीन बौद्ध स्तूप और विहार आज भी भारत की सर्वश्रेष्ठ कला की निधियाँ हैं। अजंता, एलोरा, कारला, अमरावती, धान्यकटक आदि उनके एक-से-एक उदाहरण हमारे सामने मौजूद हैं जिनको देखकर प्रत्येक भारतीय का सिर गर्व से उठ जाता है। कला के नव-जागरण में इन भव्य अवशेषों ने हमारे देश को ही भारी प्रेरणा नहीं दी है, बल्कि भारत से बाहर भी उनसे प्रेरणा मिली है। नवीन अफगानिस्तान अपने बामियान और बेग्राम (कपिशा) के बौद्ध-अवशेषों से फिर से अपने विस्मृत रूप को कला के क्षेत्र में पहचानने की कोशिश कर रहा है, वही बात इन्डोनेसिया में देखी जाती है। यह बड़े हर्ष की बात है कि कितनी शताब्दियों तक विस्मृत रहने के बाद साँची या वेदिशगिरि फिर एक जीवित-जागृत बौद्ध-केन्द्र बनने जा रहा है। भारत के नव-जागरण के साथ-साथ बौद्धों की देनों का हमें परिचय हुआ और इसमें कोई शक नहीं कि हमारे राष्ट्रीय सम्मान और उचित अभिमान के बढ़ाने में हमारे इतिहास का वह काल बहुत सहायक हुआ, जिसमें भारत बौद्ध मनीषियों, कलाकारों, साहस-यात्रियों से प्रभावित था।

अग्रश्रावक

सारिपुत्र-मौद्गल्यायन तथा साँची

भिक्षु आनन्द कौसल्यायन

धातु-पूजा

जिस देवता की मूर्ति के प्रति आदमी की भावना जितनी ही अधिक गहरी रहती है, वह मूर्ति उतनी ही अधिक मात्रा में आदमी का 'देवता' बन जाती है। 'देवता' की पूजा का सार न मूर्ति में है, न मूर्ति-पूजक में है, किन्तु उस भावना में है, जो दोनों के सम्बन्ध की बीच की कड़ी है।

नाना प्रकार के भयों से त्रस्त मानव न जाने किन-किन अलूल-जलूल चीजों की पूजा करता आया है। आज भी कर रहा है। हम बौद्धों के लिए ही नहीं, हम भारतीयों के लिए ही नहीं, किन्तु प्रज्ञा तथा करुणा के प्रसार की कामना करनेवाले सभी के लिए लोक-गुरु बुद्ध की धातुओं के बाद यदि कोई पूज्य-वस्तु है तो वह यही सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन के अवशेष हैं। यह किसी काल्पनिक "देवता" की मूर्ति नहीं है, किन्तु यह एक ऐतिहासिक महापुरुष के शरीर के अंग हैं। धन्य है साँची की वह पवित्र-भूमि जो इन्हें सैकड़ों वर्षों तक धारण किये रही और जो इन्हें भविष्य में भी अपने ही विहार में स्थान देने जा रही है।

साँची स्तूप

दिल्ली से बम्बई अथवा दिल्ली से मद्रास जाते हुए प्रसिद्ध ग्रेट इन्डियन पैननसुला (जी० आई० पी०) लाइन पर एक छोटा-सा स्टेशन - साँची।

भेलसा अथवा प्राचीन विदिशा-गिरि के लगभग बारह मील के घेरे में पाँच पुरातन अवशेष हैं, जो साँची-स्तूप-समूह कहलाते हैं। वे पाँचों हैं—

१—साँची—भेलसा से ५॥ मील दक्षिण-पश्चिम।

२—सोनारी—साँची से ६ मील दक्षिण-पश्चिम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—सतधार—साँची से ६॥ मील पश्चिम।

४—पिप्पलिय—साँची से ७ मील पूर्व।

५—अन्धेर—भेलसा से ८ मील पूर्व-दक्षिण।

साँची-खास में जो स्थान श्रद्धावान् लोगों के पूजने तथा देखने के हैं, वे सात हैं—

१—सबसे बड़ा स्तूप—यह अशोक-कालीन वेष्टनी से घिरा हुआ है और उसके चारों ओर चार अत्यन्त सुन्दर कलापूर्ण द्वार हैं।

२—स्तूप संख्या—(२) जिसमें उन अर्हतों में से कुछ की धातु मिली हैं, जिन्होंने अशोक के समय में धर्म प्रचारार्थ विदेश-गमन किया।

३—स्तूप संख्या—(३) जिसमें से सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन अर्हतों की धातु मिली हैं।

४—स्तूप संख्या—(४) तथा अन्य प्राचीन अवशेष।

५—अशोक-स्तम्भ तथा अन्य स्तम्भ।

६—बौद्ध-विहार तथा प्रतिमा-गृह।

७—पुरातत्व सम्बन्धी अजायब-घर।

साँची का ऐतिहासिक विकास-क्रम

साँची और उसके आस-पास इतने स्तूप होने का क्या कारण है? वहाँ लुम्बिनी की तरह भगवान् बुद्ध का जन्म नहीं हुआ, वहाँ बुद्ध-गया की तरह भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व लाभ नहीं किया, वहाँ सारनाथ की तरह भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन नहीं किया, वहाँ कुशीनगर की तरह भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण नहीं हुआ, तो फिर साँची के आस-पास इतने स्तूप क्यों?

इसका एक ही कारण हो सकता है, कि वेस और बेतवा नदी के संगम पर प्राचीन विदिशा-नगरी बसी हुई थी जो पूर्व-मालवा की राजधानी थी। वहीं के सम्पन्न बौद्ध गृहस्थों ने आस-पास की पहाड़ियों पर इन स्तूपों का निर्माण कराया होगा।

सांची की पहाड़ी की ऊँचाई साधारण है। ३००० फीट से अधिक नहीं। बीच में एक छोटा सांची नाम का गांव है। सम्भव है इसी गांव के नाम से पहाड़ी का नाम साँची-पहाड़ी पड़ा हो।

साँची का इतिहास ई० तीसरी शताब्दी पूर्व अशोक के समय से आरम्भ होता है और लगभग चौदह शताब्दियों का लेखा-जोखा है।

१—अशोक के राज्यकाल से आरम्भ करके चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा क्षत्रपों की शक्ति के उन्मूलन तक का काल।

२—गुप्तों के साम्राज्य से आरम्भ करके ६४७ ई० में सम्राट् हर्ष की मृत्यु तक का काल।

३—उत्तरकालीन मध्ययुग से आरम्भ करके बारहवीं शताब्दी तक का काल।

आश्चर्य का विषय है कि यद्यपि कुल पाँच मील की दूरी पर भेलसा मुसलमानों के राज्य-काल में कई बार तहस-नहस किया गया, तो भी साँची को किसी ने नहीं छेड़ा। १८१८ में जेनरल टेलर ने जब प्रथम बार साँची की सुध-बुध ली तो उस समय यह बहुत ही संतोषजनक अवस्था में था।

इसमें हमें तनिक सन्देह नहीं कि आज की साँची सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन के पवित्र धातुओं के स्वागत की जो तैयारी कर रही है, यह उसका सबसे बड़ा सौभाग्य है। निकट भविष्य में बौद्ध संस्कृति के प्रेमियों के लिए साँची भी उसी प्रकार वन्दनीय होगा, जिस प्रकार आज श्रावस्ती तथा राजगिरि है।

साँची के दर्शनीय स्थान

ऊपर हमने साँची-खास के जिन सात पूजनीय तथा दर्शनीय स्थानों का नामोल्लेख किया है, उनमें प्रथम है—

सबसे बड़ा स्तूप—यह महान् स्तूप, जैसा कि उसका वर्तमान आकार है, एक बड़े भारी अण्डे की शकल का है। उसके चारों ओर ऊँची 'मेधी' है, जो प्राचीन काल के प्रदक्षिणा-पथ का काम देती थी और जिस तक पहुँचने के लिये दक्षिण तक डबल सीढ़ियाँ बनी हुई थी। नीचे की मंजिल पर एक दूसरा प्रदक्षिणा-पथ भी है, जो पत्थर की विशाल वेदिका से घिरा है। यह वेदिका चार हिस्सों में विभक्त है और उसके चारों ओर चारसुन्दर तोरण—चार विश्वविख्यात कलाकृतियाँ हैं।

स्तूप संख्या (२)—यह स्तूप बहुत कुछ स्तूप संख्या (३) से मिलता जुलता है। विशेषता यह है कि महान् स्तूप में चार तोरण हैं, स्तूप संख्या (३) में भी एक तोरण है, किन्तु इस स्तूप संख्या (२) में एक भी तोरण नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८२२ में कैप्टन जानसन ने सर्वप्रथम इस स्तूप के मुँह को खो खोला। उसने इसे लगभग आधा नष्ट कर दिया। जनरल कनिंघम का सौभाग्य था कि सन् १८५१ में सुरक्षित पवित्र धातु उसके हाथ लगे।

जिस बक्स में पवित्र-धातु रखे हुए मिले हैं, वह ग्यारह इंच लम्बा, ४॥ इंच चौड़ा और ऊँचाई में भी उतना ही था। उनमें से चार डिब्बियाँ निकलीं। सभी डिब्बियों में मानव-अस्थियाँ मिलीं। बक्से में एक और पुरातन ब्राह्मी अक्षरों में लिखे लेख का अनुवाद इस प्रकार है—

चारों डिब्बियों के ढक्कनों पर दूसरे-दूसरे लेख हैं, जिनसे पता लगता है कि यह धातु उन अर्हतों के हैं, जिन्होंने सम्राट् अशोक की तृतीय संगीति में भाग लिया था और जिनमें से कुछ हिमालय की ओर धर्म प्रचारार्थ गये थे।

स्तूप संख्या (३)—यही वह स्तूप है, जिसमें से सारिपुत्र तथा महामौद्गल्यायन अर्हतों के पवित्र-धातु हाथ लगे हैं १८५१ के जनवरी के अन्त और फरवरी के आरम्भ में जनरल कनिंघम और लैफ्टनेन्ट मेले को ही इस रहस्य के उद्घाटन करने का श्रेय प्राप्त है। जब इस स्तूप के ऊपर से एक छोटा सुराख करके उसे यन्त्र द्वारा अन्दर तक ले जाया गया तो कुछ घण्टे के परिश्रम के बाद जनरल कनिंघम को कोई पाँच फुट से अधिक लम्बी पत्थर की शिला पर जाकर रुकना पड़ा। इस शिला को उठाने पर उसके नीचे से भूरे पत्थर के दो बक्स निकले। प्रत्येक के ढक्कन पर ब्राह्मी अक्षर खुदे थे। जो दक्षिण की ओर था, उस पर खुदा था—

सा रि पु त स

जो उत्तर की ओर था, उस पर खुदा था—

महा मो ग ल न स

प्रत्येक बक्स डेढ़ फुट लम्बा-चौड़ा था, और उस पर छः इंच मोटा ढक्कन था।

दक्षिण की ओर जो पत्थर का बक्स रखा था, उसमें सफेद पत्थर की एक बड़ी डिबिया थी, कोई छः इंच चौड़ी और ३ इंच ऊँची। उसी डिबिया के पास चन्दन की लकड़ी की दो पतली-पतली चपटियाँ रखी थीं—एक ४॥ इंच लम्बी और दूसरी ३॥ इंच लम्बी।

इसी छोटी डिबिया के अन्दर से भगवान् बुद्ध के अग्र-श्रावक महास्थविर सारिपुत्र की केवल एक पवित्र हड्डी मिली और उसके साथ थे भिन्न-भिन्न तरह के माला के मन के।

उत्तर की ओर जनरल कनिंघम को एक और बक्स मिला, जो सारिपुत्र वाले बक्स से कुछ मोटा था। इसी छोटे बक्स में महास्थविर मौद्गल्यायन की दो पवित्र हड्डियाँ मिलीं। इसमें से जो बड़ी थी, वह आधे इंच से भी छोटी थी।

हर डिबिया के ढक्कन के अन्दर की ओर आध इंच ऊँचा एक सुन्दर अक्षर है। सारिपुत्र की डिबिया में ब्राह्मी में लिखा है—'स'

महामौद्गल्यायन की डिबिया के ढक्कन के अन्दर की ओर लिखा है—'म'

दोनों पत्थर की डिबिया जिस क्रम से रखी हुई मिली हैं उसका भी महत्त्व है। भगवान् बुद्ध जब पूर्व की ओर मुँह करके बैठते थे तो दक्षिण-दिशा उनके दाहिने हाथ की ओर रहती और उत्तर-दिशा उनके बायें हाथ की ओर। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन दोनों अग्र-श्रावक भगवान् बुद्ध के दायें और बायें हाथ कहे जाते थे। उनके अन्तिम अवशेष भी उसी क्रम से रखे गये जैसे वे भगवान् बुद्ध के दायें और बायें बैठते रहे होंगे।

पत्थर के बड़े बक्सों के ढक्कन जिस पर "सारिपुतस" और "महामोगलनस" लिखा है, साँची के अजायबघर में सुरक्षित रखे हैं।

सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन

जिन सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन के पवित्र धातु लगभग दो हजार वर्ष तक साँची के स्तूप संख्या (३) में सुरक्षित रहे हैं, उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में भारतीय-अनुश्रुति ने पालि-त्रिपिटक में जो जानकारी सुरक्षित रखी है, उसमें से कुछ इस प्रकार हैं—

"उन दिनों राज-गृह में संजय नाम के एक परिव्राजक निवास करते थे। उपतिष्य और कोलित नाम के उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो शिष्यों ने आपस में प्रतिज्ञा की--"जिस किसी को पहले अमृत (ज्ञान) की प्राप्ति हो, वह दूसरे को उसकी सूचना दे।"

पूर्वाह्न का समय था। त्रिचीवर[1] धारण किये, हाथ में पात्र लिये, आयुष्मान् अश्वजित राजगृह में भिक्षार्थ घूम रहे थे। उपतिष्य परिव्राजक ने उन्हें इस संयमी ढङ्ग से विचरते देख सोचा--"या तो यह आयुष्मान् अर्हत् पद[2] प्राप्त हैं, अथवा अर्हत्व के मार्ग पर आरूढ़ हैं। मैं क्यों न इनसे पूछूँ कि आप किसके शिष्य हैं?" लेकिन फिर सोचा--'यह समय प्रश्न पूछने का नहीं। इस समय यह भिक्षार्थ भ्रमण कर रहे हैं। मुझे चाहिये कि एक विद्यार्थी की भाँति मैं इनके पीछे-पीछे चलूँ, और यदि मुझे यह पूछना हो, तो इनके किसी जगह शान्त होकर बैठने पर पूछूँ।"

भिक्षा समाप्त कर आयुष्मान् अश्वजित अपने स्थान पर पहुँचे। उपतिष्य परिव्राजक (सारिपुत्र) पीछे ही थे। अश्वजित के शान्त हो अपने स्थान पर बैठने पर सारिपुत्र ने एक ओर खड़े होकर पूछा--"आयुष्मान! आपकी आकृति अत्यन्त शान्त और सुन्दर है। छवि-वर्ण परिशुद्ध है। आप किसको अपना गुरु बनाकर प्रव्रजित हुए हैं? आपका शास्ता कौन है? आप किसके धर्म को मानते हैं?"

अश्वजित--"आयुष्मान! मैं शाक्यकुल-प्रव्रजित शाक्यपुत्र महाश्रमण (गौतम) को अपना गुरु बनाकर प्रव्रजित हुआ हूँ। वही मेरे शास्ता हैं। मैं उन्हीं के धर्म को मानता हूँ।"

"आयुष्मान के शास्ता का क्या सिद्धान्त है?"

"आयुष्मान! मैं इस धर्म में अभी नया ही प्रव्रजित हुआ हूँ, इसलिए विस्तारपूर्वक तो कुछ कह नहीं सकता। हाँ, संक्षेप में कह सकता हूँ।"

"आयुष्मान! मुझे भी सार से ही मतलब है। बहुत से शब्दों को लेकर मैं ही क्या करूँगा!"

अश्वजित--"महाश्रमण की शिक्षा का सार इतने में ही समझिये--

"सभी सकारण-धर्मों (दुःखादि) का कारण और उनके निरोध का उपाय।"[1]

"सारिपुत्र ने सुना तो मानो एकदम उनकी ज्ञान की आँखें खुल गईं। उन्हें उसी समय स्पष्ट हो गया कि जितने भी समुदय धर्म (=उत्पन्न होनेवाला पदार्थ) हैं, वे सभी निरोध-धर्म (=नाशवान) हैं।"[2]

सारिपुत्र अपने मित्र कोलित परिव्राजक (मौद्गल्यायन) के पास गये। मौद्गल्यायन ने सारिपुत्र को देखते ही कहा--"आयुष्मान! तेरी आकृति अत्यन्त शान्त और सुन्दर है। छवि-वर्ण परिशुद्ध है। तूने कहीं अमृत तो नहीं पा लिया।"

"हाँ, आयुष्मान्! अमृत पा लिया।"

"आयुष्मान्! तूने अमृत कैसे पा लिया?"

सारिपुत्र ने आयुष्मान् अश्वजित सम्बन्धी सारी कथा कह सुनाई, जिसे सुन मौद्गल्यायन की भी ज्ञान की आँख खुल गई। उन्हें भी बोध हुआ कि जितने समुदय-धर्म (उत्पन्न होनेवाला पदार्थ) हैं, वे सभी निरोध-धर्म (नाशवान) हैं।

मौद्गल्यायन ने कहा--"चलो सारिपुत्र! भगवान् के पास चलें। वही हमारे शास्ता हैं।"

भगवान् ने देखा, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन चले आ रहे हैं। देखकर कहा--"भिक्षुओ, ये जो दो मित्र उपतिष्य (सारिपुत्र) और कोलित (मौद्गल्यायन) आ रहे हैं, ये दोनों मेरे अग्रश्रावक होंगे--श्रेष्ठ शिष्य होंगे।"

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने भगवान् के पास पहुँच, चरणों में सिर झुकाकर कहा--"भन्ते! भगवान्, हमें प्रव्रजित करें, उपसम्पन्न करें।"

भगवान् बोले--"आओ भिक्षुओ! धर्म सु-आख्यात है। दुःख के सर्वनाश के लिए ब्रह्मचर्याचरण करो।"

इस प्रकार सारिपुत्र और मौद्गल्यायन प्रव्रजित हुए।[1]

१--भिक्षु के तीन वस्त्र।

२--बौद्धों के अर्हत-पद की कल्पना गीता के स्थितप्रज्ञ की कल्पना से की जा सकती है।

१--ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतु तथागतो आह।
तेसं च यो निरोधो एवं वादी महासमणो॥

२--महावग्ग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धकुटी[1] के परिवेण (आँगन) में बिछे हुए उत्तम आसन पर भगवान् विराजमान थे। भिक्षु संघ ने उन्हें चारों ओर से घेर रखा था। भगवान् बोले—"भिक्षुओ! अब मैं वृद्ध (८६ वर्ष का) हो चला। अब तक नित नये उपस्थाक (= परिचायक) से काम चलता रहा है; लेकिन मैं देखता हूँ कि कोई-कोई भिक्षु 'इस मार्ग से चलो' कहने पर दूसरे मार्ग से चलते हैं। मेरा पात्र-चीवर जमीन पर ही रख देते हैं, इसलिए अब तुम मेरे लिये एक नियत उपस्थाक खोजो।"[2]

भिक्षुओं ने सुना तो उन्हें बड़ा खेद हुआ। आयुष्मान सारिपुत्र ने कहा—"भगवान्, मैं सेवा करूँगा।"

भगवान् बोले—"नहीं, सारिपुत्र! जिस दिशा में तू जाता है, उस दिशा में फिर मेरे जाने की जरूरत नहीं रह जाती। तेरे उपदेश बुद्धों के उपदेश के समान हैं, इसलिये सारिपुत्र! मुझे तेरे उपस्थाक बनने से काम नहीं।"

× × ×

भगवान् श्रावस्ती में ठहरे हुए थे। आयुष्मान आनन्द भगवान् के पास पहुँच, प्रणाम् कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आनन्द से भगवान् ने पूछा—"आनन्द! क्या तुझे सारिपुत्र अच्छे लगते हैं?"

"भन्ते! कौन ऐसा है, जो मूर्ख दुष्टचित्त, मूढ़ है, जिसे सारिपुत्र अच्छे नहीं लगते? भन्ते! आयुष्मान सारिपुत्र पंडित हैं, महाप्रज्ञावान हैं...अल्पेच्छुक हैं, सन्तोषी हैं...निर्लिप्त हैं, प्रयत्नशील हैं...वक्ता...पाप नाश करने वाले हैं। ऐसे सारिपुत्र, भन्ते! किसे अच्छे नहीं लगेंगे?'

"आनन्द! ऐसा ही है, ऐसा ही है। जो कुछ तूने कहा है, मैं इन सबका समर्थन करता हूँ।"[3]

× × ×

भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे—

आयुष्मान सारिपुत्र मगध में नालक[1] ग्राम (अपनी जन्मभूमि) में रोग से अत्यन्त पीड़ित थे। आयुष्मान चुन्द उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे थे। इसी रोग की अवस्था में आयुष्मान सारिपुत्र परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।[2]

आयुष्मान चुन्द सारिपुत्र का पात्र-चीवर ले श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में, जहाँ आयुष्मान आनन्द रहते थे; पहुँचे। जाकर आनन्द से बोले—"आनन्द! आयुष्मान सारिपुत्र परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। यह उनका पात्र-चीवर है, और इस जल छानने के कपड़े में उनकी धातु (अस्थि शेष) हैं।"

"चुन्द! चलो भगवान् के पास चलें, और उनसे जाकर कहें।"

चुन्द और आनन्द भगवान् के पास पहुँचे और प्रणाम् कर एक ओर बैठ गये। आनन्द ने कहा—"भन्ते! आयुष्मान चुन्द कहते हैं कि सारिपुत्र परिनिर्वृत हो गये। यह उनका पात्र-चीवर है, और इस पानी छानने के कपड़े में धातु-शेष है। भन्ते! यह सुनकर मेरा शरीर तो मानो जड़ हो गया। चारों ओर अन्धकार छा गया। धर्म की तो बात ही क्या, दिशाएँ तक सूझनी बन्द हो गई। ओह! सारिपुत्र परिनिर्वृत हो गये।

"आनन्द! जिस प्रकार किसी बड़े भारी वृक्ष के खड़े रहते उसका सबसे बड़ा सार वाला तना टूटकर गिर जाये, इसी प्रकार महान् भिक्षु-संघ के रहते सारवान सारिपुत्र का परिनिर्वाण हो गया। आनन्द! यह कहाँ मिलेगा कि जो पैदा हुआ है, जिसकी रचना हुई है, जो अस्तित्व में आया है, उसका विनाश न हो? नहीं आनन्द! यह नहीं हो सकता। इसलिए आनन्द! अपने दीपक आप बनो। किसी दूसरे का आश्रय मत देखो। धर्म को ही अपना दीपक समझो। धर्म का ही आश्रय ग्रहण करो।"

यद्यपि सारिपुत्र और मौद्गल्यायन दोनों ही सहनशीलता की मूर्ति थे, किन्तु मौद्गल्यायन अनुशासन की

१—जेतवनाराम (श्रावस्ती) में भगवान् के ठहरने की कुटी।

२—अंगुत्तरनिकाय-अट्ठकथा।

३—संयुत्त निकाय।

१. पटना जिले के नालन्दा के समीप वर्तमान सारिचक (बड़गाँव)

२. कार्तिक मास की पूर्णिमा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापना के लिये कभी-कभी कड़ी अनुशासनात्मक कार्रवाई भी कर सकते थे। ऐसा लगता है कि अपने कठोर आचरण* और असाधारण शक्ति के कारण मौद्गल्यायन बहुत से ब्राह्मणों की ईर्ष्या का पात्र बन गये। उन्होंने महास्थविर मौद्गल्यायन की हत्या कराने के लिए षड्यन्त्र रचा।

अभी महास्थविर सारिपुत्र को परिनिर्वाण प्राप्त किये दो सप्ताह ही हुए थे। एक दिन महास्थविर मौद्गल्यायन गहरे ध्यान में तल्लीन बैठे थे। हत्यारों को अवसर मिल गया। उन्होंने उनके सिर पर लाठियों का प्रहार किया और महास्थविर को मृत जान छोड़कर चले गये। ध्यान की अत्यन्त गहरी स्थिति में होने के कारण महास्थविर को इस आघात का पता भी नहीं हुआ। किन्तु जब ध्यान की भूमि से नीचे उतरे, तब अपने शरीर की अवस्था देख उन्हें निश्चय हो गया कि अब इस शरीर का अन्त समय समीप आ पहुँचा।

महास्थविर मौद्गल्यायन भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

पवित्र धातुओं का भारत प्रत्यागमन

१८१५ में जिस समय सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन के धातु स्तूप संख्या (३) से और साँची के पास ही एक गाँव सतधारा के एक स्तूप में से मिले, उसी समय ये भारत से लन्दन ले जाये गये, जहाँ वे पिछले पाँच वर्षों से पूर्व तक रहे।

१९३३ में जब इन पंक्तियों का लेखक सिंहल की महाबोधि-सोसाइटी की ओर से लन्दन के बौद्ध मिशन में था तो उस समय अनेक देशों के लन्दन-निवासी बौद्धों की ओर से यह प्रयत्न आरम्भ हुआ कि सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन के पवित्र धातु जिस तरह भी हो, वापिस बौद्ध संसार को मिलें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक प्रतिनिधिमंडल उस समय के एलबर्ट म्यूजियम के क्यूरेटर श्री कैम्पबेल से मिला। श्री कैम्पबेल की हमारे उद्देश्य के साथ पूर्ण सहानुभूति थी; किन्तु वह उस समय की ब्रिटिश सरकार की अनुमति के बिना कुछ भी न कर सकते थे। म्यूजियम के अधिकारियों ने इतनी कृपा की कि १९३३ में कार्तिक पूर्णिमा के दिन सभी देशों के लन्दन निवासी बौद्धों को म्यूजियम में आकर सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के उन फूलों की 'फूलों' से अर्चना करने का सुविधा कर दी। न जाने कितनी शताब्दियों के बाद देश-विदेश के बौद्धों ने लन्दन में अपने "धर्म सेनापति" के सामने सिर झुकाया था!

१९३८ में महाबोधि सोसाइटी के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रियबलि सिंह ने इन पवित्र धातुओं को प्राप्त करने का फिर नये सिरे से प्रयत्न आरम्भ किया। उन्हें इस कार्य में अनेक दूसरी बौद्ध संस्थाओं का समर्थन प्राप्त था। ब्रिटिश सरकार ने महाबोधि सोसाइटी के मन्त्री की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

भारत में धातु-पूजा

१४ मार्च १९४७ से ६ जनवरी १९४८ तक सिंहलवासियों का यह सौभाग्य रहा कि वे इन पवित्र धातुओं के दर्शन और पूजा करते रहे। जिस श्रद्धा भक्ति के साथ लगभग ग्यारह महीने पूर्व लंकावासियों ने सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन के पवित्र धातुओं का स्वागत किया था, उसी श्रद्धा भक्ति के साथ सिंहलवासियों ने ६ जनवरी १९४८ को इन पवित्र धातुओं को बिदा किया।

एक सप्ताह बाद १३ जनवरी १९४८ को भगवान् बुद्ध के दोनों प्रधान शिष्यों—सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन के पवित्र धातुओं का भारत-भूमि ने स्वागत किया। स्वतन्त्र भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू और उनकी सारी सरकार ने इस अवसर पर अपने जिस सांस्कृतिक कर्तव्य को पूरा किया उसके लिए वे सचमुच बधाई के पात्र हैं। एशिया के ही नहीं, संसार के सभी देशों को एक दूसरे के समीप लानेवाले इस प्रकार के पुण्य अवसर हम सभी के सौभाग्य का विषय है।

१३ जनवरी से १९ मार्च १९४९ तक यह पवित्र धातु कलकत्ते के धर्मराजिक विहार में ही लोगों के पूजा-भाजन बने रहे। मार्च के मध्य में विहार सरकार के आग्रह-पूर्ण निमन्त्रण पर धातुओं को पटना ले जाने की

* हम इस विचार से सहमत नहीं—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था की गई। २० मार्च से पूरे एक सप्ताह तक धातु बिहार में रहे।

यह सोचकर रोमांच हो आता है कि पूरे दो हजार वर्ष के बाद सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के धातुओं की पूजा उस राजगृह में भी हुई जहाँ भगवान् बुद्ध के ये दोनों अग्रश्रावक पर्यटन करते हुए मगध की राजधानी को अपनी चरण-धूलि से पवित्र करते रहे। पटना की सभा में बिहार सरकार के प्रधान मंत्री ने कहा—"२५०० वर्ष के बाद सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के पवित्र धातुओं का गृह-प्रत्यावर्तन इस प्रान्त के लिये विशेष रूप से अभिमान की वस्तु है, क्योंकि यह बिहार के ही दो सुपुत्रों के धातु हैं, जिन्होंने अपने 'धर्म' के प्रकाश से संसार भर को प्रकाशित किया।"

१९५० में सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन के धातुओं की पूजा करने का अवसर देने की प्रार्थना तीन सरकारों ने की। पहला निमंत्रण बरमा-सरकार का था।

दूसरा निमन्त्रण आसाम प्रान्त के बौद्धों के आग्रह पर आसाम सरकार ने दिया था।

१९५१ में इस वर्ष २५ फरवरी से २३ अप्रैल तक अग्र-श्रावकों के पवित्र धातुओं ने तिब्बत तथा सिकिम की धर्म-यात्रा की। दोनों देशों की सरकारों तथा धर्म-गुरुओं ने धातुओं की पूजा-अर्चना में एक दूसरे से बढ़कर उत्साह से भाग लिया।

नेपाल तथा कम्बोज की सरकारें और जनता भी इन पवित्र धातुओं का स्वागत और पूजा करने में किसी से पीछे नहीं रही!

अग्र-श्रावकों के पवित्र धातुओं की इन धर्म-यात्राओं में साथ जानेवालों ने अप्रमाण पुण्य लाभ किया।

गत ३० नवम्बर १९५२ को इन पवित्र धातुओं की स्थापना उसी साँची में नवनिर्मित विहार में हुई है, जहाँ इन्होंने न जाने कितनी शताब्दियाँ विश्राम किया है। हमें विश्वास है कि इन पवित्र धातुओं की छाया अमर है।

धातुओं की पूजा

भगवान् बुद्ध के अग्र-श्रावकों के पवित्र-धातुओं की सच्ची पूजा अपनी-अपनी रुचि तथा सामर्थ्य के अनुसार धर्म के कार्यों को अग्रसर करने से ही हो सकती है।

वक्कलि नाम के भिक्षु को भगवान् ने स्वयं सर्वज्ञ धातुओं के बारे में कहा था, "वक्कलि! इस अपवित्र शरीर की ओर क्या देखते हो? जो धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है।"

धातुओं का सच्चा दर्शन धर्म-दर्शन में ही है और धर्म का सच्चा दर्शन धर्माचरण में ही है।

इमाय धम्मानुधम्मपटिपत्तिया बुद्धं पूजेमि
इमाय धम्मानुधम्मपटिपत्तिया धम्मं पूजेमि
इमाय धम्मानुधम्मपटिपत्तिया संघं पूजेमि
(मैं धर्माचरण द्वारा बुद्ध की पूजा करता हूँ।
मैं धर्माचरण द्वारा धर्म की पूजा करता हूँ।
मैं धर्माचरण द्वारा संघ की पूजा करता हूँ।)

साँची-सौरभ

डॉ० प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ'

आर्य वह प्रियदर्शी सम्राट, प्रेमपथ निरत धर्म की ओट
यही थी उसकी शासन वानि, न आये मानवता पर चोट
विश्व के प्राणी हों निर्विघ्न, द्वेष का गला दिया था घोट
घृणा की मात्रमही मर गई, कलुषता गई भूमि में लोट
महिम हे गुरु! जड़ता आलोक, चरण में शत-शत करूँ प्रणाम
किया संकल्प धर्म दायाद, बनेगा प्रभु का दास ललाम
अरे, सम्राट्! सोचकर कहें, प्रतिज्ञा यह कठोर पथवाम
समर्पण शासन को संतान, करे दायाद-धर्म निष्काम
तभी युवराज महेन्द्र विलोकि, कहा नृप ने मेरे प्रिय तात!
समुज्वल करने को संसार, तुम्हें होगी अंगीकृत बात?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव ! कबसे था यही विचार, बने चीवर धारी यह गात
मौर्य कुल केतु आप हों धन्य, संघ को देकर दान सुजात
तोष से गद्‌गद हुवे अशोक, संघमित्रा ने कहा पुकार—
अनघ, निस्पृह भारत सम्राट्, धन्य दायक प्रण पुण्य विचार
पिता जी ! किया समर्पण बंधु, करें पुत्री का भी उपकार !
भिक्षुणी की गरिमा अभिप्राप्त, करायें लख नश्वर संसार
बहे प्रेमाश्रु हृदय की धार, अहो संतति तेरा आभार !
मौर्य कुल भूषण भारत कीर्ति, हटाओ मानवता का भार
नहीं रहने पाये अविवेक; न हो पृथ्वी पर पापाचार—
तथागत का जग में आलोक, करेगा मानव का उपकार
दिव्य संकल्प पद्म सुकुमार, हुवे चीवर धारी वरु भेष
चुनौती मिली कलुष को आज, न कलिमल रह पायेगा शेष
धर्म ने ली जैसे हो शपथ, पाप होगा जगसे निश्शेष
कल्पना नहीं, सत्यका उदय, बुद्ध का प्रगटा तेज विशेष
विनय सम्पन्न कुशल हो भिक्षु, चले करने जग का उपकार
विरत माया, रत अक्षय पुण्य, पुंज तप उऋण हेतु आभार !
राष्ट्र-सम्राज्ञी, जीवन तीर्थ, गये विदिशा जननी के द्वार
जगा जननी के मनमें गर्व, पुण्य तप सा सुत लख साकार
तात, भन्ते ! पंचांग प्रणाम, यहाँ करिये कुछ दिन विश्राम
मुझे करिये अमृत उपदेश, बने पति सा जीवन निष्काम
भाग्यशालिनि हूँ जगमें धन्य, कुक्ष में ले तुमको अभिराम
बुद्ध के ले सब शुचिउपकरण, चैत्य गिरि रचना करूँ ललाम
भिक्षुमाता, सम्राज्ञी देश, सुश्री भारत माता-संतान—
चैत्य गिरि को देती उपकरण, तथागत के, सहश्रद्धा दान
अहा, चमका गिरिपर काषाय, अनघ है मालव भू सज्ञान
भिक्षु, मालव-पुत्री का पुत्र, हरण करता जग का अज्ञान
अहो, मालव की गरिमा कुक्षि, जना उपबुद्ध पुण्य-साकार
वरण कर मानव-रत्न महान्, मानवीरूप शची आकार
चैत्यगिरि को आलोकित किया, या कि इतिहास अमर प्राकार
कला महिमा गरिमा-सन्देश, देश भारत का गुणागार
हुआ माता को पूर्ण प्रतोष, चले तब अर्हत सिंहल ओर—
रहेगी साँची, साँची सदा, मात्र भूपर करुणा की कोर !
विदा, माता ! विभूति सा यहाँ, छोड़ता हूँ चीवर का छोर—
काल खंडित कर देगा विश्व, रहेगा फिर भी यहाँ सुभोर
समय का चला करेगा दंड, उलटता जायेगा संसार—
न होगा आर्य जाति का ह्रास, पुण्य प्रिय दर्शी का आगार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नष्ट हो जाये यदि समृद्धि, आर्य श्री पाकर काल अपार-
तदपि साँची रहकर अवशेष, करेगी भारत का उद्धार
अमिट उपकरण तथागत चिन्ह, करेगा धर्म चक्र आह्वान
रहेगा अमर आर्य वीरत्व, चतुर्दिक लक्षित सिंह समान
पताका, राजचिन्ह इतिहास, भव्य संस्कृतिभारत अभिमान
रहेगा सदा सुरक्षित यहाँ, राष्ट्र को है साँची वरदान
अश्रुमुख हो माता ने किया, भिक्षु सुत को भूमिष्ट प्रणाम !
पधारे, जगहित गरिमा धनी, शाक्य पुत्रीय श्रमण अभिराम
बचायें जलते जग को आप, वहा करुणा धारा निष्काम !
जहाँ मानवता का कल्याण, वही श्रीघन-उद्देश्य ललाम !
स्वस्ति कह उठा भिक्षु तप तेज, प्रकट माता मुख पर आलोक
हो उठा प्रतिबिंबित सा धर्म, हुआ गत चक्रवाल का शोक
हो गई विदिशा-जनता धन्य, धन्य मालव, भारत भूलोक
शांतमति चले विहँस कर आप, विज्ञ कुल जगमें धन्य अशोक
सिंधु तटपर जाकर के घूम, मात्र भू कर अवलोकन, धीर !
सश्रद्धा धर्म विजय के काज, गये सिंहल को प्रज्ञा-वीर
तिष्य नृप का करके उपकार, विराजे तहाँ जलधि के तीर
हुवे सिंहल वासी कृत कृत्य, तृषित ले मिला सुधामय नीर
तथागत-धर्म मनुज कल्याण, शोक तापों से रक्षक ढाल
सौम्य मानवता मित्र प्रतीक, किया वितरित श्रीभारत लाल
पुण्य रज भारत भूमि प्रणाम, जहाँ चमका माता का भाल—
कुक्षि विदिशा, साँची का भिक्षु, विजय कर गया सर्वदा काल
यही है साँची का अभिमान, दिया जिसने जगको आलोक
जहाँ से चले पर्यटक भिक्षु, चतुर्दिक पावन करने लोक
किया मानवता का उपकार, हटाकर जग जड़ता का शोक
चमकते वे अब भी उपकरण, जिन्हें निर्मित कर गया अशोक
विश्व चिर संचित सत्व विभूति, जहाँ सोती स्मृति अविकार
गर्भ में विस्मृति के परिपूर्ण, झलकती मानवता साकार-
अंकमें लिये विगत इतिहास, भव्य भारत का यश आगार
जहाँ पर मृत-जीवित सी कला, विहँसती मूक भग्न आकार
प्रकृति प्रचलित जगका परिणाम, अन्य क्षण क्षण का यह आदान
काल की निष्ठुरता का शौर्य, कर रहे खँडहर वित्त बखान
आह, वह भारत का उत्कर्ष, विश्व गुरु, मानव-तेज प्रधान—
हीन होकर फिर पलटा वही, नियति का कैसा विकृत विधान !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धधर्म की विजय-पताका फहरानेवाले महान् प्रचारक

डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार

भारत के प्राचीन इतिहास में साँची का महत्व बहुत अधिक है। उसका विशाल स्तूप उस युग का स्मारक है, जब भारत विश्व की सभ्यता, धर्म और संस्कृति का केन्द्र था। जिस प्रकार संसार भर के मुसलमान अरब को और यहूदी व ईसाई फिलस्तीन को अपनी धर्मभूमि मानते हैं, वैसे ही चीन, जापान, तिब्बत, श्रीलंका आदि देशों के बौद्ध भारत को अपनी धर्मभूमि मानकर यहाँ तीर्थ-यात्रा के लिए आया करते थे और उन स्थानों के दर्शन करके अपने को धन्य समझते थे, जिनका सम्बन्ध भगवान बुद्ध व अन्य बौद्ध नेताओं के साथ था। गया, सारनाथ, कपिलवस्तु, कुशीनारा आदि के समान साँची भी बौद्धों का तीर्थस्थान रहा है और देश-विदेश के हजारों बौद्ध यात्री वहाँ हर साल पूजा व दर्शन के लिए एकत्र होते थे।

प्रचारकों का अस्थि-कोष साँची

साँची का स्तूप बहुत विशाल है। आधार के समीप इनका व्यास १०० फुट के लगभग है। इसकी ऊँचाई, जब यह पूर्ण दशा में थी, तब ७७ फुट थी। यह स्तूप अर्धमण्डलाकार गुम्बज के आकार का है। इसके आधार में चारों तरफ एक ऊँची मेधी बनी हुई है, जो प्राचीन काल में प्रदक्षिणा-पथ का काम देती थी। इस प्रदक्षिणा-पथ तक पहुँचने के लिए स्तूप के दक्षिणी भाग में एक दोहरी सोपान है। सम्पूर्ण स्तूप के चारों ओर भूमि के समतल के साथ एक अन्य प्रदक्षिणा-पथ है, जो पत्थर की वेदिका (पाषाण-वेष्टनी) से परिवेष्टित है। यह वेदिका चार चतुष्कोण प्रकोणों में विभक्त है, जिन्हें चार सुन्दर द्वार एक दूसरे से पृथक् करते हैं। चारों द्वारों पर नानाविध मूर्तियों, उत्कीर्ण चित्रों तथा खचित पच्चीकारी से युक्त तोरण हैं। इनमें बौद्धधर्म की अनेक गाथाओं को व्यक्त किया गया है।

साँची के स्तूप के भीतर पत्थर का बना हुआ एक सन्दूक मिला है। इस सन्दूक से दो धातु-मंजूषाएँ उपलब्ध हुई हैं, जिनमें से एक आचार्य मोग्गलिपुत्त की है और दूसरी की तली तथा ढक्कन के ऊपर व अन्दर हारितीपुत्त, मज्झिम और सवहेमवताचरिय (सर्व-हिमवन्ताचार्य-सम्पूर्ण हिमालय के आचार्य) कासपगोत के नाम उत्कीर्ण हैं। इन धातु-मंजूषाओं में उन महान् आचार्यों के धातु (फूल या शरीर के अवशेष) रखे गये थे जिनके नाम उन पर उत्कीर्ण हैं और साँची का यह विशाल स्तूप इन्हीं बौद्ध आचार्यों के 'शरीर', 'धातु' या फूलों (शरीर की अस्थि के अवशेष) को सुरक्षित रखने के लिए समाधि के रूप में बनाया गया था।

ये आचार्य कौन थे और किसलिए इनको इतना अधिक महत्व दिया गया कि इनकी स्मृति को कायम रखने के लिए ऐसे विशाल स्तूप का निर्माण किया गया? इस बात का पता हमें साँची के स्तूप में प्राप्त किसी लेख द्वारा नहीं मिलता। पर बौद्ध साहित्य में इन आचार्यों के उस महत्वपूर्ण कार्य का उल्लेख है, जिनके कारण उनके समकालीन लोगों ने उन्हें इतना आदर और गौरव प्रदान किया।

कासपगोत, मज्झिम और उनके साथी अन्य आचार्यों ने बौद्ध धर्म का अन्य देशों में प्रचार करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया था। बुद्ध के जीवन-काल में उनके धर्म का प्रचार भारत के प्राच्य भाग और मध्यदेश में ही हुआ था। मगध, अंग, काशी, कोशल और वत्स जनपदों में ही बुद्ध ने अपने धर्म का स्वयं उपदेश किया था। बुद्ध के जीवनकाल में और उनके बाद भी बौद्ध भिक्षु अपने आचार्य के इस आदेश का पालन करते रहे—'हे भिक्षुओ, अब तुम जाओ और बहुतों के कुशल के लिए, संसार की दया के निमित्त,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं और मनुष्यों की भलाई, कल्याण और कुशल के लिए भ्रमण करो। तुममें कोई भी दो एक ही मार्ग से न जाओ। हे भिक्षुओ, तुम उस सिद्धान्त का प्रचार करो जो आदि में उत्तम है, मध्य में उत्तम है, और अन्त में उत्तम है। सम्पन्न, पूर्ण और पवित्र जीवन का प्रचार करो।" बुद्ध के बाद दो सदियों तक बौद्ध धर्म का प्रचार उत्तरी भारत में सर्वत्र होता रहा। पर इस कार्य में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई।

अशोक काल में बौद्धधर्म को नवजीवन

पर सम्राट् अशोक के समय (२६९–२३२ ई० पू०) में बौद्धधर्म में नवजीवन का संचार हुआ। उसका न केवल भारत में अपितु अनेक विदेशी राज्यों में भी प्रचार हुआ। वर्तमान समय में मानव-समाज का लगभग एक तिहाई भाग बौद्धधर्म का अनुयायी है। भारत से बौद्ध धर्म का इस समय प्रायः लोप हो चुका है, पर श्रीलंका, बर्मा, तिब्बत, चीन, जापान आदि अनेक देशों में अब भी इस धर्म की प्रमुखता है। जैसे भारत से बौद्ध धर्म का लोप हो गया, वैसे ही अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, जावा, सुमात्रा, मलाया आदि अन्य अनेक देशों में भी अब बौद्ध धर्म का प्रचार नहीं रहा है। पर एक समय था, जब ये देश भी बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। भूमंडल के इतने बड़े भाग में बौद्धधर्म का जो प्रसार हुआ, उसके लिए उद्योग का प्रारम्भ अशोक के समय में ही हुआ था। आचार्य कासपगोत और मझिम इसी उद्योग के महान् नेता थे।

देश-विदेश में बौद्ध धर्म के प्रचार का सारा आयोजन बौद्धधर्म की तीसरी महासभा द्वारा किया गया था। अशोक के पूर्व बौद्धधर्म में बहुत शिथिलता आ चुकी थी। भिक्षु लोग आपस के विवादों में उलझे रहते थे। बुद्ध की शिक्षाओं की मनमानी व्याख्या की जाने लगी थी। बौद्धधर्म में अनेक सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये थे, जिनकी संख्या प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ महावंश के अनुसार अठारह थी। इन सम्प्रदायों के झगड़े इतने बढ़ गये थे कि कई सालों से संघ में साधारण उपासना तक भी नहीं हो पाई थी। इस दशा में अशोक के संरक्षण में बौद्धों की तीसरी महासभा का आयोजन किया गया। यह महासभा पाटलिपुत्र के अशोकाराम में हुई थी। इसके अध्यक्ष अशोक के धर्मगुरु आचार्य उपगुप्त थे। श्रीलंका की बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार इस आचार्य का नाम मौद्गलिपुत्र तिष्य था। सम्भवतः उपगुप्त और तिष्य एक ही व्यक्ति के दो नाम थे। साँची के स्तूप में उपलब्ध एक धातु-मंजूषा में इस महान आचार्य के पार्थिव शरीर के अवशेष (धातु या फूल) सुरक्षित हैं।

मौद्गलिपुत्र तिष्य का महान कार्य

पाटलिपुत्र की तीसरी महासभा द्वारा बौद्ध संघ में फिर से एकता स्थापित की गई। धर्म सम्बन्धी सब विवादग्रस्त विषयों पर विचार कर इस महासभा ने मौद्गलिपुत्र तिष्य द्वारा रचित 'कथावत्थु' ग्रन्थ को प्रमाण रूप से स्वीकार किया। बौद्ध धर्म के आन्तरिक झगड़ों के समाप्त हो जाने पर और संघ में एकता स्थापित हो जाने पर आचार्य तिष्य ने देश-विदेश में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए एक महान योजना तैयार की। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि भिक्षुओं की मण्डलियाँ विविध देशों में प्रचार कार्य के लिए भेजी जाएँ। श्रीलंका की प्राचीन अनुश्रुति के अनुसार इन मण्डलियों के नेताओं और उनके सुपुर्द किये गये देशों की सूची इस प्रकार है:—

देश	प्रधान भिक्षु
काश्मीर और गान्धार	मज्झन्तिक
महिशमण्डल (मैसूर)	महादेव
वनवास (उत्तरी कर्नाकट)	थेर रक्खित
अपरान्तक (दक्षिणी गुजरात)	योनक धम्मरक्खित
महाराष्ट्र	महा धम्मरक्खित
योन लोक (यवन देश)	महारक्खित
हिमवन्त	मज्झिम
सुवर्णभूमि (पेगू और मोलमीन)	सोण और उत्तर
श्रीलंका	महेन्द्र

आचार्य मौद्गलिपुत्र तिष्य की योजना के अनुसार ये भिक्षु विविध देशों में गए और वहाँ उन्होंने प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया। इसी समय से भारत के इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उस युग का प्रारम्भ हुआ, जिसमें यह देश एशिया भर के धर्म और संस्कृति का केन्द्र था। केवल भारत के इतिहास में ही नहीं, अपितु संसार के इतिहास में आचार्य तिष्य के इस प्रयत्न का बड़ा महत्व है। बौद्ध भिक्षु जिस उद्योग के लिए इस समय तत्पर हुए उसे वे 'बुद्ध के शासन' का प्रसार कहते थे। चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक जैसे प्रतापी सम्राटों के प्रयत्न से भारत भर में विशाल मगध साम्राज्य की स्थापना इस समय तक हो चुकी थी। प्रायः सम्पूर्ण भारत एक राजनीतिक शासन में आ चुका था। इस दशा में उस युग की भारतीय जनता में इस विचार का विकसित होना सर्वथा स्वाभाविक था कि राजनीतिक साम्राज्य के साथ-साथ 'धर्म साम्राज्य' की भी स्थापना होनी चाहिए। पर धर्म-साम्राज्य की स्थापना के लिए जो उद्योग आचार्य तिष्य ने शुरू किया, उसका क्षेत्र केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा। मगध साम्राज्य की अपेक्षा बहुत अधिक विशाल धर्म-साम्राज्य आचार्य मौद्गलिपुत्र तिष्य ने स्थापित किया और वह न केवल कुछ सदियों तक ही नहीं अपितु अनेक सहस्राब्दियों तक कायम रहा दो हजार साल से अधिक बीत जाने पर भी वह धर्म-साम्राज्य अबतक कायम है, यद्यपि उसमें कुछ क्षीणता अवश्य आ गई है।

'बुद्ध के शासन' को इस प्रकार देश-विदेश में विस्तृत करने के लिए जिन महान् आचार्यों ने उद्योग किया उनमें से मौद्गलिपुत्र, मज्झिम और कस्सप के भौतिक अवशेष साँची के स्तूप में सुरक्षित हैं। यद्यपि 'महावंश' में हिमालय के क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रचारकों में केवल मज्झिम का नाम दिया गया है, पर उसकी टीका में उसके चार साथियों के भी नाम दिए गए हैं। ये साथी कस्सपगोत, दुंदुंभिसर, सहदेव और मूलकदेव थे। साँची में उपलब्ध धातु मंजूषा में जहाँ मज्झिम के पार्थिव अवशेष सुरक्षित हैं वहाँ कस्सपगोत की 'धातु' भी विद्यमान है। साँची से पाँच मील की दूरी पर सोनारी के दूसरे स्तूप में एक अन्य धातु-मंजूषा मिली है, जिसपर 'हिमालय के दुंदुंभिसर के दायाद गोतीपुत का उत्कीर्ण है। इन धातु-मंजूषाओं की प्राप्ति से इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि 'महावंश' में बौद्ध धर्म के प्रचार की जिस योजना का उल्लेख है वह वस्तुतः एक सत्य घटना है। इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म का जो इतना अधिक विस्तार हुआ, उसका प्रधान श्रेय आचार्य मौद्गलिपुत्र तिष्य और उनके साथियों को ही है।

इस दशा में यदि हमारे पूर्वजों ने बौद्ध धर्म के इन महान् प्रचारकों की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए और उनके प्रति अपनी श्रद्धा और आदर को प्रकट करने के लिए उनके पार्थिव अवशेषों को इस प्रकार सम्हालकर रखा हो और उनकी समाधि के रूप में साँची के विशाल स्तूप का निर्माण किया हो, तो यह सर्वथा स्वाभाविक और उचित ही है। सब भारतीयों को इस बात का अभिमान होना चाहिए कि उनके पूर्वजों ने उस विशाल धर्म-साम्राज्य की स्थापना की, जो दो हजार साल से अधिक बीत जाने पर भी अबतक नष्ट नहीं हुआ है। वस्तुतः मौद्गलिपुत्र तिष्य, मज्झिम और कस्सपगोत धर्म-चक्रवर्ती थे, जिनकी विजय सिकन्दर, चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त आदि दिग्विजयी सम्राटों की अपेक्षा भी बहुत अधिक महान् थी। ये आचार्य न केवल बौद्धों के लिए पूज्य हैं, अपितु सब भारतीयों को इन्हें अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखना चाहिए। आज साँची में बौद्धों का जो महोत्सव हो रहा है, वह वस्तुतः भारत का राष्ट्रीय महोत्सव माना जाना चाहिए।

सरल - पालि - शिक्षा : लेखक : भिक्षु सद्धातिस्स

यह ग्रन्थ स्वतः पालि सीखनेवाले लोगों के लिए एकमात्र पथ-प्रदर्शक है। इसकी बहुत ही थोड़ी प्रतियाँ अब शेष हैं। जिन्हें इस ग्रन्थ की आवश्यकता हो वे शीघ्र आर्डर भेजें। मूल्य १॥)

प्राप्ति स्थान :—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साँची के स्तूप

श्री द्वारकाप्रसाद कटारे

साँची के बौद्धकालीन स्तूप भारतीय शिल्प-कला के इतिहास में अपना एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। ये उन्नत शिल्पकला के अनुपम उदाहरण आज भी वीरान जंगल में खड़े वैभवशाली भारत की गाथा सुना रहे हैं। कठोर पत्थरों को मोम की तरह छीलकर उनमें भाँति-भाँति की अभिव्यक्तियों द्वारा स्तूपों के तोरणों पर जो जातक-कथाएँ आँकी गई हैं, वे आज हमारा आह्वान करती हैं कि हम उस आवाज को सुनें जिसकी भित्ति पर उनका निर्माण किया गया है। वह है महात्मा गौतम बुद्ध का अहिंसा और प्रेम का सिद्धान्त, जिसकी युद्ध और अशान्ति से जर्जर मानवता को आज सबसे अधिक आवश्यकता है।

साँची भेलसा-भोपाल रेलवे लाइन पर भेलसा से ५॥ मील नैऋत्य की ओर स्थित है। साँची का इतिहास सम्राट अशोक के शासन-काल से प्रारम्भ होता है जो बौद्ध धर्म के उत्थान का काल था। यह एक छोटी-सी पहाड़ी है, जिसकी ऊँचाई लगभग ३०० फुट है और जो रेतीले पत्थर की है। साँची की स्थापना के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सम्राट अशोक के समय बौद्ध आकर यहाँ रहने लगे थे। साँची में सम्राट अशोक का एक शिलालेख भी मिला है। बौद्ध हो जाने के बाद अशोक ने उपदेशक भेजकर, शिलालेख स्थापित कराकर और स्तूपों का निर्माण करवाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। तीन वर्ष के अल्प काल में ८४ हजार स्तूपों का निर्माण कराना सम्राट अशोक का ही कार्य था। वृहत स्तूप इसी काल का है। अन्य स्तूप सुंग-काल और आंध्र-काल में बनाए गए। महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरान्त उनकी पवित्र अस्थियों पर जगह-जगह स्तूप बनाए गए और पूजा की गई। बर्मा में स्तूप को 'पैगोडा' कहा जाता है। साँची के आसपास इन स्तूपों को 'भीटा' कहा जाता है और वृहत स्तूप को "सास-बहू का भीटा" कहते हैं। कालिदास ने अपने नाटकों में साँची के स्तूपों का वर्णन किया है। गुप्तकाल में भी इन स्तूपों में कुछ और हिस्से जोड़े गए पर उसके बाद १३ वीं शताब्दी से साँची का इतिहास ही बदल गया। गुप्तकाल में ही विदिशा नगरी धूल में मिल गई थी और उसके बाद औरंगजेब के आक्रमणों से तो उसकी और भी बरबादी हुई। १८१८ में जब जनरल टायलर ने खोज की तो उस समय उन्हें वृहत् स्तूप के तीन तोरण (प्रवेश-द्वार) ठीक हालत में और दक्षिण तोरण गिरी हुई दशा में मिला। दूसरा और तीसरा स्तूप भी ठीक दशा में था और उनके साथ अन्य आठ स्तूप थे। इसके बाद खुदाई आरम्भ की गई और विदेशी वस्तु-शास्त्र-वेत्ताओं ने बौद्धकालीन कला के बारे में नई-नई खोजें की।

वृहत् स्तूप

वृहत स्तूप का निर्माण-काल अशोक का समय माना जाता है। यह अंडाकार है और ऊपर कुछ चपटा-सा है। यह एक ऊँचे चबूतरे से घिरा हुआ है जो बौद्धों का प्रदक्षिणा-पथ कहलाता था, जिससे लगी हुई दोहरी सीढ़ियाँ हैं जो दाहिनी ओर हैं। प्रदक्षिणा-पथ को पत्थरों की एक बड़ी वेदिका घेरे हुए है। वेदिका के चार तरफ चार तोरण-द्वार बने हुए हैं, जिनके सभी तरफ शिल्पियों द्वारा बारीक कारीगरी की गई है। यहाँ की सबसे प्रसिद्ध वस्तु वे तोरण-द्वार हैं कि जिनका निर्माण 'ईसा-पूर्व' की दूसरी शताब्दि—आंध्रकाल में किया गया। ऐसा समझा जाता है कि वर्तमान स्तूप के पहले सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित ईंटोंवाला दूसरा स्तूप था जो वर्तमान स्तूप के व्यास से आधा रहा होगा। उसमें १६″ × १०″ × ८″ आकार वाली ईंटें लगी थीं जिन पर लकड़ी की छत और पत्थर का छाता रहा होगा। इस छाते के टुकड़े अभी भी मिले हैं। इन पर मौर्यकालीन कला अंकित है। लगभग एक शताब्दी उपरान्त उस पर पत्थरों का आच्छादन कर उसे वर्तमान रूप में लाया गया। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय इसकी ऊँचाई ५४ फुट है। नीचे की वेदिका के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ है कि उसके पत्थर बुद्ध के भक्तों द्वारा दान में दिये गये थे, जैसा उन पर खुदी हुई भाषा से ज्ञात होता है। खम्भों पर अत्यन्त उच्च कोटि का चित्रांकन किया गया है। पहले वेदिका और तोरण द्वार लाल रंग के पत्थर के बने थे और स्तूप को सफेद बताया जाता है।

तोरण-द्वार

वृहत् स्तूप में जो सबसे महत्वपूर्ण चार द्वार हैं जो सबसे अन्त में जोड़े गये होंगे। सर्वप्रथम दक्षिण का तोरण-द्वार बनाया गया और उसके बाद में उत्तर, पूर्व और पश्चिम का। इन सब में उत्तरी तोरण-द्वार अभी तक अच्छी हालत में मौजूद है। चारों तोरणों में दो-दो वर्गाकार स्तम्भ हैं जो ऊपर की ओर मस्तक के रूप हैं और जिन पर तीन घुमाववाली महराबें सधी हुई हैं। स्तम्भों के शीर्ष पर हाथी बने हुए हैं। यक्षणियों के भी अनेक चित्र अंकित हैं। महराबों में हाथी, सिंह आदि के चित्र बनाये गये हैं। तोरण-द्वार की चोटी पर बीच में [illegible] धर्म का प्रतीक "धर्म-चक्र" बना है जो सिंहों पर सधा हुआ है। उसके हर ओर चँवर लिये यक्ष खड़े हैं और यक्ष के दाहिनी और बाईं ओर बुद्ध, धर्म और संघ का प्रतीक त्रिरत्न बना हुआ है। दोनों स्तम्भ और महराबों पर जातक कथाएँ चित्रित की गई हैं जो महात्मा बुद्ध के जन्म, मुक्ति और महानिर्वाण से सम्बन्धित है। यहाँ यह उल्लेखनीय हैं कि बुद्ध की कोई भी मूर्ति इन स्तम्भों या महराबों पर नहीं खोदी गई है। उस समय महात्मा बुद्ध को मनुष्य के रूप में चित्रित करने की प्रथा नहीं थी। महात्मा बुद्ध को पवित्र वृक्ष व स्तूप द्वारा अंकित किया गया है। इसमें ब्राह्मी लिपि भी खुदी हुई है जिसमें अनेक राजाओं के नामों का उल्लेख है।

दक्षिणी तोरण-द्वार—यह तोरण द्वार भी भारतीय शिल्पकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें महात्मा बुद्ध के जन्म, सम्राट् अशोक की रामग्राम-स्तूप की यात्रा और कमल आदि के पुष्प अंकित किये गये हैं। एक महराब के पीछे की ओर एक चित्र बनाया गया है जिसमें तीन स्तूपें और चार वृक्षों के चित्र हैं जो महात्मा बुद्ध और छः बुद्ध मनीषियों से सम्बन्धित हैं। एक जगह पवित्र अस्थियों के लिये युद्ध का भी चित्र अंकित किया गया है। दोनों स्तम्भों के चारों ओर महात्मा बुद्ध से सम्बन्धित कथाएँ आँकी गई हैं। यह जर्जर हालत में मिला है।

उत्तरी तोरण-द्वार—यह सबसे अच्छी हालत में मिला है। इसमें भी महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ अंकित हैं। एक महराब में महात्मा बुद्ध के पूर्व-जन्म की गाथा आँकी गई है। पूर्वी तोरण के स्तम्भों और महराबों में भी ये ही विभिन्न कथाएँ आँकी गई हैं। बुद्ध और इन्द्र की मूर्तियाँ भी हैं।

पश्चिमी तोरण-द्वार—इस तोरण द्वार में कहीं तो उच्च कोटि की कारीगरी की गई है और कहीं साधारण कोटि की, परन्तु यह एक ही कला का नमूना है। इसमें भी महात्मा बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन के चित्र आँके गए हैं।

इन सम्पूर्ण तोरण द्वारों व स्तम्भों पर जो हजारों-लाखों चित्र अंकित किये गये हैं, वे भारतीय कला के इतिहास में वैभवकारी शिल्पकारिता के युग की याद दिलाते हैं। इस कला का उद्गम-स्थान यही मालवा रहा है जहाँ पहले लकड़ी और हाथीदाँत पर नक्काशी का काम होता था। इसके बाद पत्थरों पर खुदाई आरम्भ हुई। ये चित्र ऐसे स्वाभाविकता में आँके गये हैं कि देखने पर वे हृदय-पटल पर एक अमिट छाप छोड़ देते हैं। यह कला विशुद्ध रूप से भारतीय है।

दूसरा स्तूप

वृहत् स्तूप के उत्तर-पूर्व में ५० गज की दूरी पर एक दूसरा स्तूप है। इसकी ऊँचाई २७ फुट है। इसका निर्माण-काल सुंग-काल बताया जाता है। इसमें सिर्फ एक ही तोरण-द्वार है किन्तु वेदिका नहीं है, जो किसी समय अवश्य रही होगी। सीढ़ियाँ और छत वृहत् स्तूप के समान हैं।

तोरण-द्वार का निर्माण-काल ईसवी शताब्दी का प्रारम्भ बताया जाता है। यह १७ फुट ऊँचा है इसमें भी वृहत् स्तूप के तोरण-द्वारों के सदृश बुद्ध से सम्बन्धित चित्र अंकित किये गये हैं। एक जगह इन्द्र का स्वर्ग भी दिखाया गया है। जनरल कनिंघम ने सन् १८५१ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुदाई कराकर इसी रूप से सन्दूक प्राप्त किये थे। एक में सारिपुत्र और दूसरे में महामोग्गलायन की पवित्र अस्थियाँ हैं।

तीसरा स्तूप

पहाड़ी के नीचे पश्चिम की ओर एक और स्तूप है। यह दूसरे स्तूप के ही समान है। इसमें तोरण-द्वार नहीं है पर वेदिका अच्छी हालत में। उस पर इतनी उच्च कोटि की चित्रकारी की गई है कि तोरण-द्वार के अभाव की पूर्ति हो गई है। महात्मा बुद्ध से सम्बन्धित चित्र, यक्षिणी, तरह-तरह के पशु-पक्षी, धर्म-चक्र, कमल आदि के चित्र बड़े ही आकर्षक हैं और प्राचीन कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसका निर्माण-काल भी सुंग-काल बताया जाता है। सन् १८२२ में कैप्टन जानसन और उसके बाद जनरल कनिंघम ने खुदाई कराकर इसमें से पवित्र अस्थियों का एक सन्दूक प्राप्त किया था।

इन स्तूपों के अतिरिक्त पहाड़ी पर और भी अनेक स्तूप हैं जिनमें से अधिकांश टूट-फूट गये हैं। कुछ मन्दिर भी हैं, जिनके खँडहर शेष हैं और जो गुप्तकालीन माने जाते हैं। साथ ही अशोक की लाटें भी प्राप्त हुई हैं। दक्षिणी तोरण पर प्राप्त अशोक की लाट के एक खँडहर से ज्ञात होता है कि वह किसी समय ४२ फुट ऊँची रही होगी। उसके ऊपर चार सिंह अवश्य हैं पर धर्मचक्र नहीं है। कुछ बुद्ध की मूर्तियाँ, शती की शिलाएँ आदि प्राप्त हुई हैं। इस तरह प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि किसी युग में साँची एक बड़ी वैभवशाली नगरी रही होगी। साँची की पहाड़ी से कुछ दूर पर ही उदयगिरि में महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर है।

साँची के दो स्तूप प्रियदर्शी सम्राट् अशोक के "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" सिद्धान्त की याद दिलाते हैं जिनका "धर्म-चक्र" आज भारत ने अपने शासन का प्रतीक माना है। साँची में आयोजित बौद्ध-सम्मेलन आज की विषम परिस्थिति में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आशा है, एकत्र महात्मा, राजनीतिज्ञ और विद्वान् विश्व-शांति के सिद्धान्त को मूर्तरूप देने का प्रयत्न करेंगे, जिससे आज के अशान्त वातावरण में मानवता का टिमटिमाता दीप बुझ न जाय। महात्मा बुद्ध ने कहा—"मेरा धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण और अन्त-कल्याण है; इससे हित और सुख होगा।"

वरदान-याचना

श्री रामचन्द्र लाल

हमें दो बुद्धदेव वरदान,
हिंसा, घृणा, कलह हम त्यागें,
परसेवा में प्रतिक्षण लागें,
करें विश्व—कल्याण।
हमें दो बुद्धदेव वरदान॥

ऊँच नीच का भेद भुला दें,
द्वेष, दम्भ का दूह ढहा दें,
सत् लेवें पहचान।
हमें दो बुद्धदेव वरदान॥

चोरी, जुआ आदि हम छोड़ें,
शुभ कर्मों से नाता जोड़ें,
लहें शान्ति, सुख-खान।
हमें दो बुद्धदेव वरदान॥

पर निन्दा, चुगली नहीं भावै,
दया, प्रेम, करुणा उर आवै,
बनें धीर धीमान।
हमें दो बुद्धदेव वरदान॥

आलस और ऊँघना भागे,
तृष्णा रहित चेतना जागे,
निर्भय बनें महान।
हमें दो बुद्धदेव वरदान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साँची में एशिया का महान् सांस्कृतिक मेला

(एक प्रत्यक्षदर्शी)

सुना कि झाँसी का यह विशाल प्लेटफार्म दो दिनों से ठसाठस भरा रहता है। २८ को सायंकाल लखनऊ से भरी भराई हमारी ट्रेन भी पहुँच गयी। १० मिनट बाद दिल्ली से एक भरी ट्रेन आ लगी। अब सबको एक ही ट्रेन से सांची पहुँचना है। सौ, दो सौ, चार सौ, हजार दो हजार मीलों से चलकर, समुद्र, आकाश पर्वत और पहाड़ियाँ लाँघते हुए थके माँदे ये यात्री आखिर कहाँ जा रहे हैं ? यही हरएक स्टेशन पर देहाती यात्रियों के लिए, स्टेशन के खोमचेवालों और कुलियों के लिए समस्या थी। बहुत प्रयास के बाद वे बेचारे इतना ही जान पाते थे कि सांची में कोई मेला है। उन्होंने मेले तो बहुत देखे हैं लेकिन गाय, बैल, घोड़े का, कार्तिकी पूर्णिमा या विजया-दशमी आदि पर्वका, जिनमें कुछ ही फर्क लिये लोग शामिल होते हैं। यह बेमेल मेला है जो जंगल में होगा, जिसमें नाना वेश के पीले, लाल, काले, भूरे, ठिंगने, लम्बे, नाक-चिपटे, चकले, चोखे, मृगनयन, काकनयन, गजनयन, बिडालनयन सभी तरह के ये अजीब-अजीब लोग जुट रहे हैं। यह जनसाधारण के विस्मय एवं कौतूहल के लिए काफी था। यात्रियों में बहुत ही कम लोग एक दूसरे की भाषा समझ पाते हैं। विचित्र-विचित्र इङ्गित और चेष्टाओं से पानी के नलपर, चाय की दूकान पर या कुली और खोमचेवालों से मधुर मुस्कान के साथ निःसन्देह सब व्यवहार चला लेते हैं। लोग शब्द और अर्थ की इस कला को देखकर मुग्ध थे।

गोधूलि से पहले सांची के लिए गाड़ी खुली। यात्रियों में चिन्ता के विषय थे जंगल का मेला, जाड़े का दिन, रोशनी, भोजन आदि का प्रबन्ध। अपनी-अपनी मोमबत्ती, टार्च, टिफिन कैरियर पर सबकी आशा लगी थी।

जंगल में मंगल

कुछ रात बीती कि भेलसा स्टेशन आ गया। इसका पुराना नाम विदिशा है। इस नगरी को ग्रीक सम्राट् परम भागवत हेलियोडोरेस और सम्राट् अशोक ने धर्मपुरी बनाया था जिसको बिना दिखाये महाकवि कालिदास भी अपने मेघदूत को आगे नहीं बढ़ा सके थे। इसे देखने के लिए सबकी आँखों पर कौतूहल नाच उठा। अपनी-अपनी भावनाओं की डफली थी, परन्तु समान रूप से सब के मुँह पर उदयगिरि और गरुड़ध्वज ये दो शब्द थे। आँखें फाड़-फाड़कर लोग तमनिमग्न पहाड़ियों को देख रहे थे मानों कोशिश कर रहे थे कि उदयगिरिकी गुफाओं के सम्राट् अशोक के धर्म लेखों को भी अपने डब्बे में बैठे-बैठे पढ़ लें। यहाँ से तीसरा स्टेशन, लगभग ५ मील पर, सांची है। परन्तु यहीं से थोड़ा प्रकाश दिखाई देने लगा। आगे जाने पर पूरी पहाड़ी ही प्रकाश-पुञ्ज के रूप में दिखाई पड़ने लगी।

ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये, लोगों की पूर्व कल्पना के विपरीत सब चीजें मिलने लगी। दूकान, प्रदर्शनी, नाटक आदि की चहल-पहल थी।

सांची की सजावट

सांची छोटा-सा स्टेशन है। उसके चारों तरफ जहाँ देखिये खेमे ही खेमे दिखाई दे रहे हैं। पेड़ों की टहनियाँ भी बिजली और कैण्डिलों से जगमगा उठी हैं। पद पदपर कलापूर्ण ध्वज-तोरणों से सुशोभित द्वार हैं। अनेकों छोटी-बड़ी सड़कें लाल गिट्टियों से और बगल में लगी फूलों की क्यारियों से सजी हैं। स्टेशन पर कुली नहीं हैं, परन्तु सूचना-गृहतक सामान पहुँच जाने के लिए पूरा प्रबन्ध है। सूचनागृह के प्रबन्धकों में भी अनेक देशों के लोग हैं। अपना परिचय देते ही एक निश्चित आवासस्थान, चारपाई आदि मिल जाती है। होटल, रेस्तराँ के भी खासे प्रबन्ध थे।

अस्थियों का स्वागत

२९ नवम्बर को प्रातःकाल भारत के उपराष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कलकत्ते से आयी अस्थियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांची में प्रवेश कराने के समारोह को सम्पन्न किया। भोर से ही सड़क के अलग-बगल देहातों के हजारों नर-नारी एकत्र हो गये। राजकीय प्रबन्ध और राजोचित सम्मान के साथ जुलूस स्टेशन से चला। देश-विदेश के राजकीय पुरुष और नेता एवं विद्वान् आगे-आगे चल रहे थे। बीच में एक स्वर्णजटित रथ था जिसपर अग्रश्रावक धर्मसेनापति सारिपुत्त और महामोदगल्लायन की अस्थियाँ रखी थीं। रथपर आसीन भिक्षुगण परित्त-पाठ करते जा रहे थे। रथ को विदेशी श्रद्धालु यात्री बड़ी श्रद्धा और बड़े उत्साह से खींच रहे थे। एक अत्यन्त मनमोहक प्रांगण में विभिन्न देशों के सांस्कृतिक अलंकरणों से सुसज्जित वर्गाकार स्वर्णजटित पट-मण्डप में पवित्र अस्थियाँ रखी गयीं। बीसों हजार आदमियों ने इन अस्थियों के दर्शन किये।

दिनभर पूजा

पूरे दिन बारी-बारी से एक-एक देश के लोग पूजा-सामग्रियाँ सजाकर स्तुतिपाठ करते आते थे और अपनी-अपनी विधि से पूजा करते थे। तिब्बत, चीन, जापान, बर्मा, सीलोन, कम्बोडिया, सिक्किम आदि देशों के भिक्षु एवं यात्री अपनी-अपनी भाषा में परित्त-पाठ करते थे। विभिन्न प्रणालियों से इन अस्थि-धातुओं की वन्दना, परिक्रमा आदि हुई। इन समस्त पूजा-पद्धतियों को देखते हुए दर्शक अघाते नहीं थे। स्थानीय लोगों ने चाहे इस पूजा का पर्याप्त महत्व न समझा हो लेकिन श्रद्धा की इस महानदी ने इनके भी हृदयतल को आप्लावित किया। हजारों स्थानीय लोगों ने भी इन अग्रश्रावकों के समक्ष अपनी मूकवाणी से श्रद्धा और नमस्कार अर्पित किये। ये देहाती दर्शक जब यह जानते थे कि इन विदेशी लोगों को हमारे पूर्वजों ने ही यह पूजापाठ सिखाया था तो उनकी आँखों में इन पूरे समारंभ के प्रति एक ऐसी आत्म-गौरवपूर्ण कृतज्ञता का भाव छा जाता था जिसमें हम भारतीय हृदय का स्पष्ट दर्शन कर पाते थे।

विश्वबौद्ध-सम्मेलन

इधर भक्तजन अस्थिवन्दन में लगे थे, उधर विश्वबौद्ध-सांस्कृतिक संमेलन डाक्टर राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन का यह धवल पट-मण्डप पचासों कलात्मक चित्रों से सजाया गया था। रजत-मंच पर देश और विदेश के मनीषी एवं विद्वान् आसीन थे। यह सम्मेलन जिस सांस्कृतिक एवं उच्चतम बौद्धिक स्तरपर हुआ तथा इसमें जिस शालीनता एवं शांति का निर्वाह किया गया वह किसी भी सांस्कृतिक सम्मेलन के लिए आदर्श है। इसका वर्णन एक अतिरिक्त लेख की अपेक्षा करता है। रात्रि में भारतीय संगीत का एक बड़ा ही मनमोहक कार्यक्रम था। इसमें कुछ दक्षिण भारत के वाद्य-विशारद एवं गायक सम्मिलित थे। विशेषतः लखनऊ के भातखण्डे महाविद्यालय के यशस्वी कलाकार एवं विद्यार्थी थे। इस कार्यक्रम में दो विशेष उल्लेखनीय कार्यक्रम थे एक डफली से ही समस्त ताल-वाद्य का काम लेना दूसरा अन्त में महाकवि कालिदास के मेघदूत का गायन। मेघदूत के प्रभावपूर्ण गायन की विदेशियों ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अब हमें अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों की स्थापना के समारोह को देखना है।

वन्य प्रान्त में जनसमुद्र उमड़ पड़ा

३० नवम्बर को सबेरे से ही देहातों से जनसमूह उमड़ पड़ा। मध्याह्न तक सांची का वह वन-प्रांत जन-समूह से आन्दोलित हो उठा। दो बजते-बजते वह ऐतिहासिक शोभा-यात्रा सुसज्जित हो गयी जिसकी प्रतीक्षा में भारतीय आत्मा आज भी अमर है। प्रायः सभी के हाथों में जलती हुई धूपवर्तिकाएँ, पुष्पमाला, विभिन्न देशों के अन्य सुगंधित द्रव्य थे, जो अपनी पूर्ण शोभा के साथ इस उपवन के पत्ते-पत्ते सुगन्धित कर रहे थे। सीलोन, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत, लद्दाख, स्याम, कम्बोज आदि के यात्री पंक्तिबद्ध थे। सभी अपनी-अपनी शैली से स्तुतिपाठ करते जा रहे थे।

आगे-आगे पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी, विभिन्न देशों के राजपुरुष तथा राजदूत थे। इस ऐतिहासिक शोभा-यात्रा में लगभग बीस हजार व्यक्ति सम्मिलित थे।

सांची स्तूप पर पहुँचने के लिए दो मार्ग हैं—प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नवीन। परन्तु यह ऐतिहासिक यात्रा उस पुरातन-पथ से ही हुई जिसे ढाई हजार वर्षों में हजारों महापुरुषों ने, लाखों और करोड़ों भारतीय जनता ने अपनी यात्रा से पवित्र किया है। सबसे पहले महाबोधि सोसायटी के अध्यक्ष डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने सांची-स्तूप के आकार की बनी स्वर्ण-मंजूषा को उठाया। इसमें अग्र-श्रावकों की अस्थियाँ २॥ हजार वर्ष पुरानी आदिम पेटिकाओं के साथ काँच की नवीन पेटिकाओं में सुरक्षित थीं। इस मंजूषाको थोड़ी-थोड़ी दूर पर प्रायः सभी विदेशी राजपुरुष अपने सिर पर उठाकर चलते थे।

उनकी श्रद्धा को समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि उन राजपुरुषों ने अपने पैरों में जूते तक नहीं पहने थे। श्रद्धा का यह स्वरूप यद्यपि भारतवर्ष के लिए नवीन नहीं है फिर भी आज के भारतीय नवयुवक समाज का ध्यान खींचने के लिए यह आकर्षक था।

सांची पहाड़ के उच्चतम शिखर पर जब यह शोभा-यात्रा पहुँची तो लाखों भारतीय नर-नारियों ने इसका अभिनन्दन किया। एक ओर सांची का यह ढाई हजार वर्षों से भी अधिक पुराना स्तूप ३०० फुट ऊँची पहाड़ी पर स्थित है जिसके बगल में अशोक के द्वारा निर्मित वह ऐतिहासिक स्तूप है जिसमें चार सुन्दर प्रवेश-द्वार बनवाये गये थे। प्रत्येक द्वार में दो वर्गाकार स्तंभ हैं जो तीन विस्तृत तोरण-द्वारों को सहारा देते हैं। इन तोरण द्वारों के मध्य में नर, नारी, हाथी, सिंह, वृक्ष, वन आदि की विभिन्न सजीव आकृतियाँ चित्रित की गयी हैं। जातक की कथाओं के आधार पर भगवान् बुद्ध के जीवन-चरित एवं उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ चित्रित हैं। ये चार प्रवेशद्वार संसार की शिल्पकला में आज भी सर्वोत्तम माने जाते हैं। इस स्तूप के बगल में उन्नत एवं प्रशस्त प्रदेश में एक नवीन मन्दिर बनाया गया है जो अपनी भव्यता से मीलों की दूरी से ही यात्रियों को मुग्ध कर लेता है। मंदिर में दस-बारह सीढ़ियाँ उतर कर एक सहन है जिसपर तीन-चार सौ व्यक्ति खड़े हो सकते हैं। यह शैलशृंग भौगोलिक एवं राजकीय उपकरणों से इतना सुन्दर सजा था कि छोटी-छोटी पहाड़ियों से देखने पर यह मंदिर आकाश में खड़ा एक स्वर्णजटित विमान जैसा मालूम पड़ता था। इस पर विदेशी राजपुरुषों के अतिरिक्त वे सैकड़ों विदेशी यात्री भी बैठे थे जो श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने को धन्य बना रहे थे। इस समारोह के लिए विशेष रूप से सुसज्जित वहार के आंगन में पहाड़ी की चोटी पर जब जुलूस रुका तो जनता का उत्साह चरम उत्कर्ष पर था। नवाब भोपाल ने अवशेषों का स्वागत किया। उसके बाद मंजूषा मंच पर चंदवा के नीचे रखी गयी। उसके अगल-बगल में पं० जवाहरलाल नेहरू, सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी, यू नू (बर्मा) तथा संघनायक सीलोन बैठे थे। मंच के बाएँ विभिन्न देशों के भिक्षुगण, दाहिने विदेशी राजदूत, अतिथि तथा देश के प्रधानतम नेता व विद्वान् थे। सीढ़ियों पर विदेशी उपासिकाएँ एवं भिक्षुणियाँ सुगंधित द्रव्य लेकर बैठी थीं। महाथेर नारद तथा संघरत्न जी ने पंचशील का पाठ किया जिसे पचासों हजार व्यक्तियों ने समवेत रूप में दुहराया।

भारतीय शांति-प्रयास की प्रशंसा

तदनन्तर विदेशी प्रतिनिधियों ने अपनी-अपनी भाषा में भाषण किये। सभी वक्ताओं ने बौद्धमत के प्रति जाग्रति, रुचि एवं श्रद्धा पैदा होने पर हर्ष प्रगट किया और भारत के शांति-प्रयत्नों की सराहना की और यह आशा व्यक्त की कि इस प्राचीन केन्द्र में विभिन्न राष्ट्रों का एकत्र यह जनसमुदाय सबको पहले से भी अधिक मैत्री और सहयोग के सूत्रमें बाँध देगा।

नेहरू जी अग्रश्रावकों की अस्थि मंजूषा को मन्दिर में प्रतिष्ठित करने के लिए जब मंच की वेदी पर से उठाकर ले चले तो चारों दिशाओं से बौद्ध देशों के यात्री एवं भिक्षु समवेत रूप में 'साधु' 'साधु' उच्चारण करने लगे। उनके सुगंधित द्रव्यों से और जयजयकार से नभ-मंडल गूँज उठा। नेहरू जी मंजूषा लिये एक-एक सीढ़ी चढ़ते जाते और बैंड तथा धार्मिक वाद्य उसका अनुधावन करते।

मन्दिर के ओसारे में खड़े भिक्षुगण 'बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि' शांत और गंभीर ध्वनि में पाठ करते जाते थे। नेहरू जी के पीछे लंका से ले आयी गयी बोधिवृक्ष की टहनी लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्मा के प्रधान मन्त्री और उनके पीछे समस्त विदेशी राजदूत एवं निमंत्रित विदेशी राजपुरुष थे। इस अपूर्व वातावरण में जब सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे तब नेहरू जी की आँखें डबाडबा आयीं, उनका जीवन-दर्शन स्फटिकवत् विशुद्ध और मानवीय है। नेहरू भारतीय हृदय का अधिष्ठातृदेव हैं। उनकी आँखों में आनन्दाश्रु आना एक ऐसी अपूर्व घटना है जिसे प्रत्येक भारतीय को समझना चाहिये।

इसे समझने के लिए मैं उन्हीं के कुछ वाक्य दे रहा हूँ जो उस समय उन्होंने अपने भाषण में जनता के लिए संदेश में कहा था। नेहरूजी ने कहा—'हम इस ऐतिहासिक पहाड़ी पर केवल शरीर ही नहीं मानसिक तीर्थ-यात्रा के लिए उपस्थित हुए हैं। अग्रश्रावकों के इन अवशेषोंका अपनी जन्मभूमि की यात्रा करना मेरी दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अवशेषों के जुलूस के साथ पहाड़ी पर आते हुए मुझे उन महापुरुषों और भक्तों का स्मरण हो आया जो हजारों वर्ष पूर्व इसी रास्तेसे गुजरे होंगे। हमारे ही देश की वह प्राचीन गौरव पूर्ण अमूल्य शिक्षा जिसका जन्म यहाँ के जनमें महापुरुषों द्वारा हुआ था, पुनः ताजी हो गई। भारत के ह्रासका यह कारण हुआ कि हमने अपना संकुचित दृष्टिकोण बना लिया। आज हमें इतिहास से शिक्षा ग्रहण करके एकता का और विशाल दृष्टिकोण बना लेना चाहिये। अवशेषों के इस विहार में प्रतिष्ठापित करने का महत्त्व तभी समझा जा सकेगा जब हममें से प्रत्येक अपने मनमन्दिर में एक ऐसा स्थान बना लेगा जहाँ इस बुद्धि भ्रष्ट विश्व का मार्गदर्शन करने के लिए ये प्राचीन स्मृतियाँ सुरक्षित रह सकें। भगवान् बुद्ध का उल्लेख करते हुए नेहरूजी ने कहा कि जनता के मस्तिष्क में अभी ऐसी स्मृति नहीं रही है जैसी रहनी चाहिये थी। परन्तु आज के समारोह में मुझे विश्वास हो गया है कि बौद्ध धर्म इस देशमें पुनः अपना पूर्वगौरव और सम्मान प्राप्त कर लेगा। बुद्ध की शिक्षा से ही विश्व-समस्याओं का हल पारस्परिक सहयोग की स्थापना से सम्भव है। कितने दुःख की बात है कि आज संसार की आँखें इस तथ्य को नहीं देख पातीं कि शस्त्रों से, गोला-बारूद से शाश्वत विजय नहीं मिल सकती किन्तु जनता के हृदय पर विजय प्राप्त करने से ही शाश्वत विजय मिल सकती है। विगत दो महा युद्धों से, जिनमें से होकर वर्तमान सन्तति को गुजरना पड़ा है, मैं पूछता हूँ, कितनी समस्याएँ हल हुई हैं? जो कुछ हो, कमसे कम महान् परम्पराओं के उत्तराधिकारी हम भारतवासी इस तथ्य की कभी अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देंगे और अपने इन पड़ोसी राष्ट्रों के साथ भाई-भाई के समान हाथ में हाथ मिलाकर विश्व के कोने-कोने में शान्ति का सन्देश पहुँचाने के लिए पूरा प्रयत्न करेंगे।"

बुद्ध-वाणी

श्री रामचरण लाल एम. ए.

जग - पावनि - मनभावनि - गौतम - वर - वाणी,
पाप - नसावनि मोक्ष - प्रदायिनी - कल्याणी।
शान्ति-सिखावनि - साम्य - सुझावनि सब-प्राणी,
विश्व-विहारिणी-विघ्नविदारिणि - जन-वाणी ॥१॥
सत्य - अहिंसा - मूलक तव सुन्दर उपदेश,
कर्म-सृजनकर्ता सुख-दुःख सब समय व देश।
मुक्ति - हेतु अष्टांग मार्ग पावन आदेश,
सकल चराचर व्याप्त शुद्ध-शुचि-शुभ संदेश ॥२॥
"सब्बं खणिकं सब्बं दुक्खं" सब भूतल,
जरा - मरण दुःख जीव सभी संतप्त विकल।
शब्द - सुधा - सिद्धार्थ - पान - सिंचन शीतल,
अंकित - अमर - अशोक-लौहस्तम्भ अचल ॥३॥
हिन्दू - जैन - ईसाई धर्म - धरा - धवलित,
बुद्ध - वचन-पीयूष - धार - मुकुलित-सुमनित।
विश्व-सभ्यता-विश्व - बन्धुता भुवि - विकसित,
शाक्य-सुवन-सन्देश-सकल संसृति-सुरभित ॥४॥
जाति - पांति - सब-वर्ग-वर्ण - अन्तर - विदलित,
उचितानुचित - विवेक - तर्क - मानव मण्डित।
जीवन - दाता जीवन - अधिकार - विभूषित,
अमृत - वचन - अखिल - अवनी-आनंदित ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् बुद्ध की आत्मकथा

श्री भरतसिंह उपाध्याय, एम० ए०

भगवान् बुद्ध ने 'आत्मकथा' जैसी कोई वस्तु नहीं लिखी है। वस्तुतः लिखित रूप में उन्होंने हमारे लिए कुछ नहीं छोड़ा है। भगवान् बुद्ध के सभी उपदेश मौखिक थे। उनके परिनिर्वाण के बाद उनका संकलन और सम्पादन किया गया। पालि त्रिपिटक के रूप में उनका यह संकलित और सम्पादित रूप आज हमें प्राप्त है। बुद्ध की जीवनी और उपदेशों को जानने का सबसे अधिक प्रामाणिक साधन पालि त्रिपिटक ही है।

बुद्ध-उपदेशों की एक बड़ी विशेषता यह है कि भगवान् बुद्ध के अपने अनुभव पर आधारित हैं। उन्होंने जोर देकर कहा है "मैं यह किसी श्रमण या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कहता, बल्कि मैंने जो स्वयं देखा है, स्वयं जाना है, स्वयं अनुभव किया है, उसे ही कहता हूँ।" इस प्रकार बुद्ध-वचनों में हमें बुद्ध के आन्तरिक जीवन की पूरी कथा मिल जाती है, जिसका प्रभाव और ऐतिहासिक महत्त्व उनकी संवादात्मक शैली के कारण अधिक बढ़ गया है। यहाँ हम बुद्ध-जीवन सम्बन्धी उस सूचना को संकलित करने का प्रयत्न करेंगे, जो स्वयं बुद्ध-मुख से हमें प्राप्त हुई हैं।

कुल और जन्मस्थान

"हिमालय (हिमवन्त) की तराई में एक जनपद है। वहाँ कोशल देशवासी एक ऋजुस्वभाव राजा हैं, जो धन और पराक्रम से युक्त हैं। वे सूर्यवंशी हैं और शाक्य जाति के हैं। मैं उनके कुल से प्रव्रजित हुआ हूँ। मैं विषयों की कामना नहीं करता। विषयों के दुष्परिणाम को देखकर मैंने वैराग्य को क्षेम समझा है। मैं मुक्ति की गवेषणा में जाता हूँ। मेरा मन इसी में रमता है।"[1]

"मेरे नगर का नाम कपिलवस्तु है। मेरे पिता शुद्धोधन हैं। मेरी माता, जिन्होंने मुझे जन्म दिया, माया देवी कहलाती हैं। उन्तीस वर्ष तक मैंने घर में वास किया। मेरे तीन उत्तम प्रासाद थे, जिनके नाम थे राम, सुराम और सुभृत। भद्दकच्चा[1] (भद्रकृत्या) नाम की मेरी नारी थी और राहुल पुत्र।"[2]

"फिर भिक्षुओ! कुछ समय बाद जब कि मैं सुन्दर यौवन से युक्त था, यौवन की पूर्ण अवस्था में स्थित था और मेरे केश काले थे, मैं अपने अश्रुमुख पिता और माता को छोड़कर, उनकी इच्छा के विपरीत, अपने केश और दाढ़ी को मुड़वा कर, काषाय वस्त्र पहन कर, गृह से गृहविहीन अवस्था में जाकर प्रव्रजित हो गया।"[3]

"चार निमित्तों[4] को देखकर मैं घोड़े पर चढ़ कर (कपिलवस्तु से) बाहर निकल गया। छः वर्ष तक मैंने सत्य-प्राप्ति के लिए कड़ी तपस्या की।"[5]

क्या व्यथा थी ?

"भिक्षुओ! बुद्धत्व-प्राप्ति से पूर्व, जब कि मैं बोधिसत्व ही था और सम्यक् ज्ञान के लिए प्रयत्न कर रहा था, (मैंने देखा कि) मैं स्वयं जन्म, जरा, रोग, मृत्यु और दुःख से पीड़ित हूँ और गवेषणा भी मैं ऐसे ही पदार्थों (पुत्र, भार्या, दास दासी, सोना-चाँदी) की कर रहा हूँ, जिनका स्वभाव जन्म, जरा, रोग, मृत्यु और दुःख

---

१. पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त निपात)। अपने जीवन और उद्देश्य का यह परिचय सिद्धार्थ ने राजा बिम्बिसार को उस समय दिया जब कि वे गृह त्याग कर मुक्ति की गवेषणा में जा रहे थे और बिम्बिसार ने उन्हें सम्पत्ति का प्रलोभन देकर रोकने का प्रयत्न किया था।

१. पालि साहित्य में अन्य प्रयुक्त नाम हैं गोपा और राहुल-माता। बौद्ध संस्कृत साहित्य में इनको 'यशोधरा' नाम से पुकारा गया है।

२. बुद्ध-वंस, पृष्ठ ७२ (उत्तम भिक्षु द्वारा प्रकाशित संस्करण)

३. अरियपरियेसन-सुत्त (मज्झिम १।३।६)

४. वृद्ध, रोगी, मृत और प्रव्रजित, इन चार चिन्हों को देखकर सिद्धार्थ प्रव्रजित हुए थे।

५. बुद्धवंस, पृष्ठ ७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। तब भिक्षुओ ! मुझे विचार हुआ—क्यों मैं, जो कि जन्म, जरा, रोग, मृत्यु और दुःख से पीड़ित हूँ, ऐसी ही वस्तुओं के पीछे दौड़ रहा हूँ जो पुनः इन्हीं बातों को पैदा करेंगीं ? क्यों न मैं इनके दुष्परिणामों को देखकर उस वस्तु की खोज करूँ जहाँ न जन्म है, न जरा है, न रोग है, न मृत्यु है और न दुःख, बल्कि जो अनुपम योग्यक्षेम और क्लेश रहित स्थान है ?"[६]

"भिक्षुओ ! बुद्धत्व-प्राप्ति से पूर्व, जब कि मैं बोधिसत्व ही था और सम्यक् ज्ञान के लिए प्रयत्न कर रहा था, मुझे यह विचार आया करता था—अहो ! यह लोक दुःख में पड़ा हुआ है। यहाँ जन्म लेना और मरना है। एक अवस्था से च्युत होकर दूसरी से उत्पन्न होना है। यहाँ जरा और मृत्यु हैं। इस दुःख से विमुक्ति जानी नहीं जाती। हाय ! क्या इससे निःसरण का भी कोई मार्ग होगा ?"

अराड (आलार) कालाम और उद्रक रामपुत्र की शिष्यता में

उत्तम शान्ति-पद की खोज करते हुए मैं आलार कालाम के पास पहुँचा। मैंने आलार कालाम से कहा—'आयुष्मान् कालाम ! मैं तुम्हारे धर्म-विनय में ब्रह्मचर्यवास करना चाहता हूँ।' ऐसा कहने पर आलार कालाम ने मुझसे कहा—"आयुष्मान् ! तुम मेरे साथ रह सकते हो। यह धर्म-विनय ऐसा है कि जहाँ बुद्धिमान् पुरुष शीघ्र ही अपने अन्तर्ज्ञान से अपने आचार्य के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।' भिक्षुओ ! थोड़े ही समय में मैंने आलार कालाम के ज्ञान को सीख लिया और फिर उनसे पूछा—'आयुष्मान् कालाम ! जिस ज्ञान को प्राप्त कर तुम अपने जीवन में अभ्यास करते हो उसकी पहुँच कहाँ तक है ?' आलार कालाम ने उत्तर दिया—आकिंचन्यायतन तक।' तब भिक्षुओ ! मुझे यह विचार हुआ—आलार कालाम के पास ही श्रद्धा, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा नहीं हैं, मेरे पास भी हैं। मैं भी इस धर्म को स्वयं जानकर, स्वयं साक्षात्कार कर, जीवन में अभ्यास करूँगा। भिक्षुओ ! मैं शीघ्र ही इस धर्म का साक्षात्कार कर विहरने लगा। तब भिक्षुओ ! मैंने आलार कालाम से जाकर कहा—'आयुष्मान् ! मैं इस धर्म को स्वयं जानकर, स्वयं साक्षात्कार कर, विहरता हूँ'। आलार कालाम ने उत्तर दिया—'मेरा सौभाग्य है कि मुझे आप जैसे सब्रह्मचारी मिले। जिस धर्म को मैंने साक्षात्कार कर जीवन में अभ्यास किया है, उसी को तुमने भी साक्षात्कार कर अभ्यास किया है। जिस धर्म को मैं जानता हूँ, उस धर्म को तुम जानते हो। जिस धर्म को तुम जानते हो, उस धर्म को ही मैं जानता हूँ। हम तुम दोनों समान हैं। जैसे तुम, वैसा मैं। जैसा मैं, वैसा तुम, आओ आयुष्मान् ! हम तुम दोनों मिलकर इस गण का नेतृत्व करें।' इस प्रकार आलार कालाम ने आचार्य होते हुए भी मुझ शिष्य को अपने समान पद पर स्थापित किया और मेरे प्रति बड़ा सम्मान प्रदर्शित किया। परन्तु मैंने सोचा—यह शिक्षा केवल आकिंचन्यायतन तक ले जाने वाली है। इससे निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, ज्ञान, संबोध और निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः मैं उस धर्म को अपर्याप्त समझ कर वहाँ से उदासीन हो चल दिया।

श्रेष्ठ शान्ति-पद की खोज करते हुए मैं उद्रक रामपुत्र के पास पहुँचा।.....उद्रक रामपुत्र ने नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन बतलाया.. अपने समान पद पर स्थापित किया। मैंने सोचा यह धर्म न निर्वेद के लिये है, न ज्ञान के लिये, न उपशम के लिये, न निर्वाण के लिये। उस धर्म को अपर्याप्त समझ कर, वहाँ से उदासीन हो चल दिया।"[७]

उरुविल्व (उरुवेला) में ध्यान के लिये बैठना

"शान्ति की खोज में मगध में क्रमशः घूमते हुए मैं उरुवेला सेनानी-निगम में पहुँचा। वहाँ मैंने देखा कि एक रमणीक भूमिभाग में, वनखण्ड में, एक नदी बह रही है जिसके घाट अत्यंत सुन्दर और श्वेत हैं। चारों ओर फिरने के लिये गाँव थे। मैंने सोचा मुक्ति के लिये प्रयत्न करने वाले कुल-पुत्रों के लिये यह भूमि ध्यान करने के लिये अनुकूल है। यह ध्यान-योग्य स्थान है। मैं वहाँ ध्यान करने के लिये बैठ गया।"[१]

६. अरियपरियेसन सुत्त (मज्झिम १।३।६)
७. संयुत्त-निकाय।

१. अरियपरियेसन-सुत्त (मज्झिम १।३।६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक प्रयत्न

"सारिपुत्र ! मुझे स्मरण है कि उस समय मैं नग्न (अचेलक) भी रहा था, मुक्ताचार भी रहा था। अपने लिये दी गई भिक्षा को मैं ग्रहण नहीं करता था। और न निमन्त्रण स्वीकार करता था। कभी कभी मैं एक ही घर भिक्षा करता था और मेरा आहार होता था केवल एक या दो कौर। एक दिन में एक ही बार आहार करता था और कभी-कभी दो-दो, सात-सात और यहाँ तक कि पन्द्रह-पन्द्रह दिन में एक ही बार खाना खाता था। कभी केवल शाक ही खाता था, कभी सँवा और कोदों ही। सारिपुत्र ! मैं तृण भक्षी भी था और गोबर भक्षी भी। मैं वल्कल-चीर पहनता था और कभी-कभी मुर्दे के कपड़ों को ही धारण करता था। काँटे की शय्या पर सोता था और शाम को जल-शयन के व्यापार में लग्न होता था। अनेक प्रकार से मैं अपनी काया को कष्ट देता था। सारिपुत्र ! इस हद तक मेरी यह तपस्विता थी।

"सारिपुत्र ! पपड़ी पड़े अनेक वर्ष के मैल को मैं अपने शरीर पर संचित किये रहता था। अपने इस मैल को अपने हाथ से धोऊँ या दूसरे इसे धोएँ यह इच्छा भी मुझे न होती थी। सारिपुत्र ! इस हद तक मेरा रुक्षाचार बढ़ा हुआ था।

"सारिपुत्र ! मैं वहाँ नितान्त एकान्तसेवी था। यदि किसी ग्वाले, घसियारे या लकड़हारे को भी देखता तो उससे हटकर किसी दूसरे वन या खड्ड को चला जाता था, ताकि वह मुझे न देखे और मैं उसे न देखूँ।"

"सारिपुत्र ! हेमन्त की रातों में मैं चौड़े में रहता था। मुर्दों की हड्डियों का सिरहाना बना कर मैं श्मशान में शयन करता था। चरवाहे आकर मुझ पर थूकते भी थे, मूत्र भी करते थे, धूल भी फेंकते थे और मेरे कानों में सींक भी करते थे। परन्तु सारिपुत्र ! मुझे उनके विषय में कोई बुरा भाव उत्पन्न नहीं होता था। इस हद तक मैं उपेक्षा-विहारी था।"[१]

१. अरियपरियेसन-सुत्त (मज्झिम १।३।६)

२. अस्सी वर्ष की अवस्था में भगवान् ने अपने प्रधान शिष्य सारिपुत्र को अपनी तपस्या का यह विवरण सुनाया था। महासीहनाद-सुत्त (मज्झिम. १।२।२)

अधिक दुष्कर तपस्याएँ—प्राणायाम

"अग्निवेश ! मेरे मन में हुआ—क्यों न मैं दाँतों के ऊपर दाँत रख, जिह्वा द्वारा तालू को दबा, मन से मन को निग्रह करूँ। तब मेरे दाँत पर दाँत रखने, जिह्वा से तालू को दबाने के कारण मेरी काँख से पसीना निकलता था। उस समय मैंने अदम्य वीर्य आरम्भ किया था मेरी स्मृति जागृत थी और काया तत्पर थी। फिर मैंने मुख, नासिका और कानों से श्वास का आना जाना रोक दिया। आश्वास-प्रश्वास रुक जाने से मेरे सिर में वात टकराने लगे, कड़ी सिर की वेदना होने लगी। फिर मैंने श्वास-रहित ध्यान करना आरम्भ किया। मेरे पेट को वात छुरे की तरह छेदने लगे। काया में अत्यधिक ताप होने लगा। देवता भी मुझे देखकर कहते थे—'श्रमण गोतम मर गया।' कोई देवता कहते थे 'श्रमण गोतम मरा नहीं है, न मरेगा, अर्हत् का तो इस प्रकार का विहार होता ही है।"[१]

भोजन-त्याग

"तब मैंने सोचा—क्यों न मैं आहार को बिलकुल ही छोड़ देना स्वीकार करूँ। तब देवताओं ने मेरे पास आकर कहा—मित्र ! यदि तुम आहार का बिलकुल छोड़ना स्वीकार करोगे तो हम तुम्हारे रोम-कूपों द्वारा दिव्य ओज डाल देंगे, उसी से तुम निर्वाह करोगे। मैंने सोचा—इस प्रकार तो मेरा तप मृषा होगा। मैंने उन देवताओं का प्रत्याख्यान किया—'रहने दो'। और मैं थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करने लगा। केवल पसर भर मूंग की दाल या अरहर की दाल लेता था। उस समय मेरा शरीर दुर्बलता की चरम सीमा को पहुँच गया था। पुरानी शाल की कड़ियों के समान मेरी पँसुलियाँ हो गई थीं, ऊँट के पैर के समान मेरा कूल्हा हो गया था। यदि मैं पेट की खाल को मसलता था तो पीठ के काँटों को पकड़ लेता था, और पीठ के काँटों को मसलता तो पेट की खाल को पकड़ लेता था। यदि मैं मल-मूत्र करने जाता तो वहीं बेहोश हो कर गिर जाता था। काया को हाथ से रगड़ता तो सड़ी जड़ वाले रोम झड़ पड़ते थे। लोग मुझे देख कर कहते 'श्रमण

१. अग्निवेष नामक जैन पंडित से भगवान् ने यह कहा। महासच्चक-सुत्त (मज्झिम. १।४।६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोतम काला है।' कोई मनुष्य कहते 'श्रमण गोतम काला नहीं है, श्याम है।' कुछ कहते 'श्रमण गोतम न काला है, न श्याम, वह मुंगुर-वर्ण है। मेरा स्वच्छ, गौर वर्ण सर्वथा नष्ट हो गया था।"[१]

मार्ग-परिवर्तन

"तब मैंने सोचा! अतीत काल में जिन किन्हीं श्रमण-ब्राह्मणों ने घोर दुःख और तीव्र वेदनाएँ झेली होंगी, वह इसी हद तक झेली होंगी, इससे अधिक नहीं। लेकिन उस दुष्कर तपस्या से मैंने परम तत्त्व को न पाया, अलमार्यज्ञानदर्शन मुझे न मिला। मैंने सोचा—क्या बोधि के लिए कोई दूसरा मार्ग है?"

मध्यम-मार्ग

'मुझे स्मरण आया—मैंने पिता शुद्धोदन शाक्य के खेत पर जामुन की ठंडी छाया में अकुशल-धर्मों से चित्त को हटा कर प्रथम ध्यान को प्राप्त किया था। शायद वह मार्ग बोधि का हो? परन्तु इस प्रकार अत्यन्त कृश और दुर्बल काया से तो वह मिलना सुकर नहीं है। क्यों न मैं आहार दाल-भात को ग्रहण करूँ। मैं दाल-भात ग्रहण करने लगा। उस समय मेरे पास पाँच भिक्षु इस आशा से रहा करते थे कि श्रमण गोतम जिस धर्म को प्राप्त करेगा, उसे हमें भी बतलायेगा। परन्तु जब मैं दाल-भात ग्रहण करने लगा तो उन्होंने सोचा—श्रमण गोतम संग्रही हो गया है, तपस्या से विमुख हो गया है। उदासीन होकर वे मुझे छोड़कर चले गये।"[१]

ज्ञान-प्राप्ति

"स्थूल भोजन से मुझमें शक्ति वापस आई और मैं प्रथम ध्यान के सुख को प्राप्त कर विहरने लगा। क्रमशः ध्यान की द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अवस्थाओं को मैंने प्राप्त किया। मैंने अपने अनेक पूर्व-जन्मों को स्मरण किया। प्राणियों के जन्म-मरण का ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ। उन्हें नाना गतियों में आते-जाते मैंने देखा। मैंने साक्षात्कार किया 'यह दुःख है', 'यह दुःख समुदय है', 'यह दुःख-निरोध है' और यह 'दुःख-निरोध का मार्ग' है। मैंने अनुभव किया—मेरी अविद्या चली गई है, विद्या प्राप्त हुई है, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ है। मेरा चित्त विमुक्त हो गया, जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ। करना था सो कर किया, अब आगे कुछ करने को नहीं है।"[२]

प्रथमोद्गार

"अनेक जन्मों तक निरन्तर इस संसार में दौड़ता रहा। गृहकारक को खोजते-खोजते पुनः पुनः दुःखमय जन्मों में पड़ता रहा। हे गृहकारक! अब मैंने तुझे देख लिया। अब फिर तू घर नहीं बना सकेगा। तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गईं। गृह का शिखर भी निर्बल हो गया। संस्कार-रहित चित्त से तृष्णा का क्षय हो गया।"[३]

ऋषिपतन मृगदाव की ओर प्रस्थान और प्रथम उपदेश

"उरुवेला में इच्छानुसार विहार कर मैं वाराणसी की ओर चल पड़ा। क्रमशः यात्रा करते हुए मैं वाराणसी में ऋषिपतन मृगदाव में पहुँचा, जहाँ पंचवर्गीय भिक्षु थे। पंचवर्गीय भिक्षुओं ने सोचा—साधना-भ्रष्ट श्रमण गोतम आ रहा है। हम इसे अभिवादन नहीं करेंगे, इसके पात्र-चीवर को आगे बढ़कर नहीं लेंगे। जैसे-जैसे मैं पंचवर्गीय भिक्षुओं के समीप आता गया, वे अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर न रह सके। एक ने आसन बिछाया, दूसरे ने पैर धोने का जल दिया, तीसरे ने पैर का पीढ़ा पास लाकर रख दिया। मैं बिछे आसन पर बैठ गया और पैर धोये। पंचवर्गीय भिक्षुओं से मैंने कहा—भिक्षुओ! तथागत साधना-भ्रष्ट नहीं हैं। वे सम्यक् सम्बुद्ध हैं। मैंने अमृत को पाया है। मैं तुम्हें इसका उपदेश करता हूँ। तुम भी उपदेशानुसार आचरण कर इसी जन्म में उसका साक्षात्कार कर विहरोगे। वहाँ जब मैं दो भिक्षुओं को उपदेश करता था, तो तीन भिक्षु भिक्षा के लिए जाते थे। तीन भिक्षु भिक्षाचार करके जो लाते थे उससे हम छहों व्यक्ति निर्वाह करते थे। जब तीन भिक्षुओं

---

२. महासच्चक-सुत्त (मज्झिम. १।४।६), मिलाइये बोधिराजकुमार-सुत्त (मज्झिम. २।४।५) भी

१. २. उपर्युक्त के समान।

३. धम्मपद ११। ८-९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मैं उपदेश करता था, तो दो भिक्षु भिक्षा के लिए जाते थे।"[१]

प्रधान शिष्य-शिष्याएँ

"दो भिक्षु कोलित (मोग्गल्लान) और उपतिष्य (सारिपुत्र) मेरे प्रधान शिष्य हैं। आनन्द मेरा सेवक-शिष्य है जो सदा मेरे पास रहता है। क्षेमा और उत्पलवर्णा मेरी भिक्षुणी-शिष्यों में प्रधान हैं। चित्र और हस्तावलक मेरे प्रधान गृहस्थ-शिष्य (उपासक) हैं। नन्दमाता और उत्तरा मेरी दो प्रधान गृहस्थ-शिष्याएँ (उपासिकाएँ) हैं।"[१]

अन्तिम दिन—राजगृह से कुशीनगर तक की यात्रा और बीच के पड़ाव

"चलो आनन्द! जहाँ अम्बलट्ठिका है, वहाँ चलें।"

"चलो आनन्द! जहाँ पाटलिग्राम है, वहाँ चलें।"

"आओ आनन्द! जहाँ कोटि-ग्राम है, वहाँ चलें।"

"आओ आनन्द! जहाँ नादिका है, वहाँ चलें।"

"भिक्षुओ! तुम वैशाली के चारों ओर वर्षावास करो। मैं यहीं वेलुव-ग्राम में वास करूँगा।"

"आनन्द! मैं वृद्ध, वयः प्राप्त हूँ। अस्सी वर्ष की मेरी उम्र है। आनन्द! जैसे पुरानी गाड़ी बाँध-बूँध कर चलती है, ऐसे ही तथागत का शरीर बाँध-बूँध कर चल रहा है। इसलिए आनन्द! तुम आत्मशरण, आत्मदीप होकर विहरो।"

"आनन्द! आसन उठाओ! जहाँ चापाल चैत्य है, वहाँ दिन के ध्यान के लिए चलेंगे।"[१]

"आओ आनन्द! जहाँ महावन-कूटागारशाला है, वहाँ चलें।"

"भिक्षुओ! अचिर काल में ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। मेरा आयु परिपक्व हो गया, मेरा जीवन थोड़ा है। तुम्हें छोड़ कर जाऊँगा, मैंने अपने करने योग्य काम को कर लिया। भिक्षुओ! निरालस, सावधान, सुशील होओ। संकल्प का अच्छी तरह समाधान कर अपने चित्त की रक्षा करो।"

"आनन्द! तथागत का यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा।"

"आओ आनन्द! जहाँ भण्ड गाँव है, वहाँ चलें।"

"आओ आनन्द! जहाँ आम्र गाँव है, वहाँ चलें।"

"आनन्द! जम्बू ग्राम चलें।"

"आनन्द! भोग नगर चलें।"

"आओ आनन्द! जहाँ कुसीनारा है, वहाँ चलें।"

"आनन्द! मेरे लिए चौपेटी संघाटी बिछा दो। मैं थक गया हूँ, बैठूंगा।"

"आनन्द! मेरे लिए पानी लाओ। प्यासा हूँ आनन्द! पानी पीऊँगा।"

"आनन्द! आज रात के पिछले पहर कुसीनारा के उपवर्तन नामक मल्लों के शाल वन में जुड़वाँ शाल वृक्षों के बीच तथागत का परिनिर्वाण होगा। आओ आनन्द! जहाँ ककुत्था नदी है, वहाँ चलें।"

"चौपेती संघाटी बिछा दो, लेटूंगा।"

"आओ, आनन्द! जहाँ हिरण्यवती नदी का दूसरा किनारा है, वहाँ कुसीनारा के मल्लों का शालवन है। वहाँ चलें।"

"आनन्द! जुड़वाँ शालों के बीच में उत्तर की ओर सिरहाना कर चारपाई बिछा दो। थका हूँ, आनन्द! लेटूंगा।"

"आनन्द! शायद तुम्हें ऐसा हो कि हमारे शास्ता चले गये, अब हमारे शास्ता नहीं रहे। ऐसा मत समझना, आनन्द! मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किए हैं, वही मेरे बाद तुम्हारे शास्ता होंगे।"

परिनिर्वाण और अन्तिम वचन

"हन्त भिक्षुओ! अब तुम्हें कहता हूँ—संस्कार नाशवान् हैं। अप्रमाद से (लक्ष्य) सम्पादन करो।"[१]

यह तथागत का अन्तिम वचन था।

---

१. अरियपरियेसन-सुत्त (मज्झिम. १।३।६)

२. बुद्धवंस, पृष्ठ ७२

१. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ. २।३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलातीर्थ अजन्ता

श्रीमती सुभाषिनी

ओ सुन्दरतम कला-निकेतन !
भोली भावमयी प्रतिमाएँ,
कहीं नृत्य मुद्रित बालाएँ,
विस्मित अधविकसित कलिकाएँ,
अलिदल गूँजें मोद मनाएँ,

पत्थर के अन्तर में उपवन !
ओ सुन्दरतम कला-निकेतन !!
चेतन तो चेतन जड़ डोले,
चातक कहीं चंचुपुट खोले
हंस - हंसिनी हौले - हौले—
नील गगन में पर को तौले

करते जाते कलरव रंजन !
ओ सुन्दरतम कला-निकेतन !!
जो अंकित भू के पत्थर में,
कैसे विम्बित हो अंबर में ?
किन्तु यहाँ के इस भूधर में,
कला गूँजती गर्वित स्वर में,

छू आती जगती का कन-कन !
ओ सुन्दरतम कला-निकेतन !!
नभ उतारता सदा आरती,
जिस पर इठला रही भारती,
विजय यही है चित्रकार की,
कला अमर है कलाकार की,

पाषाणों में अनुपम जीवन !
ओ सुन्दरतम कला-निकेतन !!
यशोधरा की कथा निराली,
दान पुत्र का करने वाली,
अंकित आकारों में आली !
बुद्ध देवता, बौद्ध प्रणाली,

त्याग-स्नेह का अतुल प्रदर्शन !
ओ सुन्दरतम सुधा-निकेतन !!
तू जीवन का मुक्ति द्वार है,
दिव्य ज्ञान का परम सार है,
हो जाता मन निर्विकार है,
ब्रह्म - जीव का जुड़ा तार है,

तपस्वियों का मधुर तपोधन !
सरस सुधामय शान्तिनिकेतन !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला की साधना और आर्य अष्टांगिक मार्ग

श्री विजय श्रीवास्तव

मनुष्य-जीवन बालकपन से वृद्धावस्था पर्यन्त एक जिज्ञासामय, प्रवृत्तिमय, विचारमय एवं भावमय क्रान्तिकारी संघटन है। जो भी तरंगें क्षण-प्रतिक्षण उठा करती हैं तर्क उन्हें सन्तुष्ट करने में असमर्थ रह जाता है। विचार एवं प्रश्न-श्रृंखला का अन्त होता नहीं और तरंगें धारावाहिक रूप में प्रवाहित होने लगती है। हृदय के प्रश्न प्रबल हो उठते हैं, असंतोष प्रबल हो उठता है, मस्तिष्क के पास उन प्रश्नों को सुलझाने का कोई उत्तर नहीं। गति का टक्कर हृदय-पटल से होता है जिसका स्वर-झंकार एक लहर के रूप में समस्त शरीर को उद्वेलित कर देता है। अनुभूति का सृजन-स्रोत यही लहरें हैं।

नूतन उमंगें व्यक्त होने के लिये नूतन मार्ग खोजती हैं और मानसिक बन्धनों को तोड़ कर बाहर निकलने का प्रयास करती हैं। अनुभूति के बिन्दु बिन्दु से व्यक्तित्व की रेखायें बनती हैं और यही व्यक्तित्व मनुष्य की मौलिकता है जो उसे एक दूसरे से भिन्न कर देता है। इस अनुभव की अलौकिकता को व्यक्त करने के हेतु नवीन उपकरणों का आश्रय लेने को बाध्य होता है जिनसे वह सर्वप्रथम अनभिज्ञ था। हृदय-स्वर को व्यक्त करने के लिये मूक भाषा के सेतु का अनुगामी बनना पड़ता है। यही कला की उत्पत्ति है। कलाकार और बाह्य-जगत् के बीच में कला ही एक मात्र सम्पर्क सेतु है।

कला की अनुभूति की रसाद्रता को ही योगियों के शब्दों में ब्रह्मानन्द कहा गया है। यही कलाकार की निर्लिप्ति और (निखिल जगत् के प्रति) आसक्ति का रहस्य है। जीवन का विस्तृत पट प्रभात के सुनहले रंगों में आवेष्टित हो एक नवीन रूप धारण कर लेता है और तब मनुष्य सत्य, शिव, सुन्दर-जगत् का दर्शन करता है; जड़ जगत् चेतनामय होकर उसकी तूलिका द्वारा रंग विरंगी सुन्दर शुचि मनोहारी धाराओं में प्रवाहित हो जाता है। आनन्द अपने तक ही सीमित नहीं किन्तु वह विराट है और कलाकार अपनी अनुभूति के द्वारा विराट के साथ साक्षात्कार तथा समन्वय स्थापित कर अपनी भावनाओं को मूर्त्तरूप प्रदान करता है जिसको देखने से साधारण मनुष्य भी उस अनन्त की एक आभा पा जाता है।

कलाकार की साधना का आधार है—प्रेम। इस क्षेत्र में विक्षेप तथा विग्रह का भाव नहीं। इसी को अन्य शब्दों में हम कहते हैं—सौन्दर्य! सौन्दर्य सर्वव्यापी है, अतः प्राकृतिक भी है। यही कारण है कि कलाकार प्रकृति की वस्तुओं में, चराचर जगत में, मनुष्य-मात्र में असुन्दरता देखता ही नहीं। इसी अनन्त-सौन्दर्य को ही वह मूर्त्तरूप देना चाहता है—अनन्त को क्रन्दित कर देना चाहत है। यहाँ यह भी नहीं भूलना चाहिये कि विशेष वातावरण में रहने वाला कलाकार उसकी त्रुटियों से अछूता नहीं रह जाता और देश काल के अनुसार वे अपना प्रभाव डालते ही हैं। फलस्वरूप उसकी रचनाओं में वातावरण की छाया का भी समावेश हो ही जाता है।

प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्मक्षेत्र की सीमा में स्वतंत्र है। उसके अपने निज के निर्मित बन्धनों को छोड़ उसे बाँधनेवाली, सीमित करनेवाली कोई शक्ति नहीं। कलाकार इन लौकिक एवं बाह्य बन्धनों में बँधे रहकर भी उसकी शान्तिविहीन मायाविनी मोहक मदिरा-माधुरी के नशे में अपने स्वत्व को न भूलकर, उसके बहुत परे चला जाता है। यही उसकी आसक्ति में अनासक्ति है और यही कलाकार की सफलता भी है। सफल कलाकृतियों में ही हम अपने नश्वर जीवन की गूढ़ समस्याओं का, जीवन के हास्य की स्मित रेखा अथवा रुदन की करुण कहानी को चित्र-विचित्र सजीव रंगों में झिलमिलाते हुये देखते हैं। कलाकार के अनन्त के साथ हम सान्निध्य स्थापित अपने निज अस्तित्व को भूल से जाते हैं और सांसारिक चिन्ताओं की बाधा से मुक्ति पाकर हम भी अनुभव करने लगते हैं अद्वितीय आनन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला आत्मविस्तारण की एक क्रियात्मक धारा है जो अन्त में आत्मानुभव एवं आत्मदर्शन के महासागर में मिलकर अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। यह कैसे सम्भव हो सकता है इस पर थोड़ा विचार करना अपेक्ष्य है। ऊपर हम देख चुके हैं कि कलाकार भी सामाजिक प्राणी है तथा समाज का होने के कारण यह आवश्यक है कि उसे जीवन के प्रत्येक रंग, रूप, भेद का सूक्ष्म ज्ञान हो, तथा उनके जीवन के सदा परिवर्तनशील एवं प्रगतिवान भावनाओं के साथ सुर में सुर मिलाकर गा सके। जितना ही अधिक मनुष्य समस्त प्राणियों के जीवनसंगीत में भाग ले सकेंगे उतना ही अधिक उन्हें समझने में सफलता मिलेगी तथा उनके प्रति अपनी सहानुभूति पूर्ण आचरण करने में। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम तथागत की अमर वाणीः—

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥

का अक्षरशः तथा सत्यता के साथ पालन करें। यदि हम प्राणियों की एकता के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं तो क्यों हम जीव-जगत् के प्रति विश्वासघात एवं अस्पृश्यता का व्यवहार करने से विरत नहीं हो पाते? सिद्धान्त के कोरे दार्शनिक वादविवाद करने से हम अपने कर्त्तव्य से चूक जाते हैं। इस एकता में विश्वास का अर्थ है प्रेम। समस्त जीव-जगत् के प्रति सच्चा प्रेम तथा समभाव। इसी एक कर्त्तव्य से चूकने पर हमारे समस्त कष्टों का, दुःख तथा तृष्णा का सृजन होता है और जीवन हमारे लिये एक भार स्वरूप और पहेली बन जाता है।

जीवजगत् से, अपने समाज के साथ हमारा सम्बन्ध सुखदाई नहीं होता, इसका कारण है कि हमारा अपने ही साथ असंतोष रहता है। अपने साथ हमारा सम्बन्ध ठीक हो सकता है और उसकी एकमात्र औषधि है—आर्य अष्टांगिक मार्ग। प्रत्यक्ष जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों का हल यहीं मिलेगा। अपने दुःखों के झंझावात के झकोरों से रक्षा पाने का आश्रय हम यहीं पा सकेंगे। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् लक्ष्य (संकल्प), सम्यक् भाषण (वाणी), सम्यक् कार्य (कर्मान्त), सम्यक् जीविका (आजीविका), सम्यक् उद्योग (व्यायाम), सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारा आज का जीवन अन्यान्य अन्धविश्वासों एवं आदर्शों के फेर में पड़कर इधर-उधर ढुलकता रहता है और यही कारण है कि हमारा जीवन शान्ति का अनुभव करने में असमर्थ रह जाता है, हम दो अति के खिंचाव में पड़कर तनते चले जाते हैं जब तक हमारा सन्तुलन बिल्कुल ही छिन्न-भिन्न नहीं हो जाता। विज्ञान का एक अति महत्वपूर्ण सूत्र है कि जब कोई दो शक्तियाँ किसी इकाई पर दबाव डालती हैं तो वह वस्तु एक तीसरी ही दिशा में मुड़ जाती है। तथागत का मध्यम मार्ग यही है जो विज्ञान के नियमों के थोड़ा भी प्रतिकूल नहीं। कलाकार इसी मध्यम मार्ग का पथिक है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यहाँ साधारण मनुष्य की पहुँच नहीं। इसका एकमात्र कारण यही है कि वे बेकार के जंजालों में इतने फँसे रहते हैं, जीवन की तंरगों के थपेड़ों से इतने मर्माहत हो जाते हैं कि उन्हें सिर उठाने का अवकाश भी नहीं मिलता। उस ओर देखते अथवा जाने की तो बात दूर रही।

अणु के परमाणु युग ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य अनन्त रहस्यों का आगार है तथा उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। यह अनन्त आत्माभिव्यक्ति के हेतु बेचैन रहता है। वह खोजता है आत्म-प्रकाश। आज का मनुष्य सत्य से दूर होता जा रहा है, फलतः उसके पास प्रशंसा के शब्द नहीं, सहानुभूति का लेशमात्र नहीं। जब हमारी सहानुभूति का क्षेत्र मनुष्यमात्र तक ही सीमित न रहकर समस्त प्राणी जगत् को भी अपना समझने लगे तब हम सीमित नहीं रह जाते वरन् असीम हो जाते हैं। वृत्त के मध्य में स्थित रहने से ही हम अपने 'स्व' की असीमितता अनुभव कर सकते हैं तथा यही मध्यम मार्ग है जो किन्हीं दो बिन्दुओं के बीच सेतु का कार्य करता है। इस स्थिति में हम तभी पहुँच सकते हैं जब हमारा ज्ञान विकसित हो। यही स्थिति प्रथम सोपान है और अन्तिम भी। आत्म-विस्तारण से लेकर स्वानुभव तक के सभी मार्गों का संगम। इसी को अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं—सौन्दर्य।

सौन्दर्य के सहारे कलाकार, अपने चतुर्दिक फैले नश्वर जगत् के क्षणिक आकर्षण को अपने प्राणों का अमरत्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर अमर बना देता है—यही ही मृत्यु से अमरत्व की ओर प्रयास। सौन्दर्य-साधक और अनन्त आनन्द में लीन रहनेवाला कलाकार, अपनी कला से हमारे भावजगत के दैन्य का ही निराकरण करता है। कला बाह्य-जगत् के अभावों की पूर्ति का साधन नहीं है। हमारी भावनाओं में अमानुषिकता और असुन्दरता के विकार लिपट जाते हैं जिनका निराकरण करने की क्षमता कला में है। कला, संगीत, साहित्य के विभिन्न रसों में प्रवाहित होकर बहने के अनेकानेक उदाहरण हमें मिल सकते हैं। समय समय पर सभी रसों का प्राबल्य हुआ – कभी कम, कभी अधिक।

कला जीवन का प्रतिबिम्ब है जो कभी एक-सा नहीं रहता। सरल मार्गों को पार करने के पश्चात् और भी अधिक कठिन मार्ग सामने आते हैं। कलाकार संघर्ष से घबराता नहीं, उसकी अवहेलना या उपेक्षा भी नहीं करता किन्तु वह निर्भयता से जीवन के कडुवे घूँटों को पी जाता है।

आर्य अष्टांगिक मार्ग की चार स्थितियाँ हैं जो मानव जीवन की बेड़ियों को अलग कर देने में सहायक होती हैं और चार उत्तम फलों को प्राप्त कराती है :—

प्रथम स्थिति में भ्रममूलक विचार, अंधविश्वास, अहंकारादि दूर हो जाते हैं और मनुष्य श्रोतापत्ति अवस्था में स्थित होता है।

द्वितीय एवं तृतीय स्थिति में मोह, वासना, द्वेषादि, विकार हट जाते हैं और तब सकृदागामी और अनागामी फलों की प्राप्ति होती है।

चौथी स्थिति ज्ञान की है, जहाँ सभी प्रकार की इच्छायें शान्त हो जाती हैं। अविद्या, अहंभाव, अज्ञानता का अंधेरा हट जाता है और तब मनुष्य, ज्ञान को पाता नहीं, ज्ञानमय हो जाता है। इस स्थिति को अर्हन् पद की प्राप्ति कहते हैं।

"जीवन के प्रश्नों का उत्तर कला में जिस प्रकार व्यक्त होता है दर्शन और विज्ञान उस परिधि तक पहुँच नहीं सकते। कलाकार की अनुभूति का एक क्षीण स्पर्श ही हृदय में जीवन की वह स्फूर्ति उड़ेल देता है जिसकी प्रेरणा से जीर्ण शिराओं में नया प्राण हिलोरें लेने लगता है और जीवन के संताप बिखर कर बह जाते हैं। सृष्टि की पहेली निरावरण होकर अपनी यथार्थता में मूर्त्त हो उठती है और भौतिक जीवन के अभावों से संतप्त व्यक्ति तल्लीनता का वरदान पाकर ऐसे शान्ति-शृंग पर खड़ा हो जाता है जहाँ से संकीर्णता से मुक्त जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म बारीकियों को देख सकता है।" अन्य शब्दों में हम इसी को कलाकार की दिव्य-दृष्टि कह सकते हैं जिसके सहारे, आत्म-प्रकाश की ज्योति में वह सत्य की नई-नई रेखायें खींचता है। अपने विचारों को एक सुदृढ़ सूत्र में बाँधकर उसका स्वामी बन जाता है। और तब जीवन का गूढ़ से गूढ़ रहस्य वह सरलता से समझ लेता है।

जीवन एक कला है। जो इसे जितनी ही सुन्दरता दे सकेगा उतनी ही अधिक उसे सुन्दरता मिलेगी भी। दिया हुआ जीवन फिर वापस भी मिल जाता है। इस अर्थ में प्रत्येक मनुष्य कलाकार है, ज्ञानरूप है, सत्यरूप है। मानव है। वही अपना भी और साथ ही जगत् का भी मंगल कर सकता है। उसका अन्तर तथा बाह्य आनन्द से परिपूर्ण रहता है और तभी वह आनन्द बिखेर भी सकता है। ऐसे ही मानव के लिये जो सदा आनन्द से भरपूर रहते हैं, सम्मासंबुद्ध महाकारुणिक तथागत की करुणापूर्ण वाणी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है :—

'चरथ भिक्खवे ! चारिकं बहुजनहिताय, बहुजन-
सुखाय'।

तथागत एक बहुत ही अद्भुत कलाकार थे। जीवन के सभी सुख ऐश्वर्य उन्होंने त्याग दिया, केवल जीवन की कला समझने के लिये, सौन्दर्य को पाने के लिये, मार जैसे भयानक शत्रु की महाशक्तिशाली सेना से लड़ना पड़ा। कलाकार की साधना के पथ पर अनेक बाधायें हैं जिनको हटाने के लिये, जिनसे पाने के लिये, जिनसे पार पाने के लिये उसे निरन्तर युद्ध करना पड़ता है। प्रज्ञा, शील, समाधि उसका निरन्तर साथ देते हैं और फिर अन्त में "लाभ-अलाभ, यश-अप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यश, निन्दा-प्रशंसा, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के प्राप्त होने से विचलित नहीं होता तथा शोक, पाप, भय से रहित परम मंगलमय हो जाता है।"

मंगलमय होने से ही हम बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं तथा मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण कर सकेंगे। कला का यही उद्देश्य है। कला की यही साधना है। भवतु सब्ब मंगलं।

भारतीय संस्कृति के मध्यएशियाई प्रचारक

श्री सुमन वात्स्यायन

प्राचीन काल के मध्य एशिया में अनेक छोटे बड़े शक्तिशाली राज्य थे। राजनैतिक दृष्टि से तो वे भारत के प्रभाव-क्षेत्र में थे ही, संस्कृति, कला और साहित्य की दृष्टि से भी ये भारतीय ही थे। इन राज्यों में भारतीय बस्तियाँ थीं जिनके कारण भारत से यातायात जारी रहता था। इन राज्यों में बाल्हिक (बलख), काशगर, खोतन, कूचा आदि की राज्य-भाषा संस्कृत थी, लिपि भी भारतीय ही थी। भारतीय साहित्य के अध्ययन-अध्यापन के वहाँ बड़े-बड़े केन्द्र थे। सातवीं-आठवीं सदी तक अर्थात् मुस्लिम आक्रमण काल तक बौद्धधर्म ही प्रमुख धर्म था। पुरातत्त्ववेत्ताओं को मध्यएशिया की खुदाई में संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषाओं के हजारों ग्रंथ मिले हैं। बड़े-बड़े मठों के खण्डहर और भारतीय कला के अगणित निदर्शन पाये गये हैं।

मध्यएशियावासियों ने भारतीय संस्कृति को अपने देश तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि दूसरे देशों में भी बड़ी तत्परता और लगन से उसे फैलाया। भारत और चीन के मध्य में होने के कारण मध्यएशिया दोनों महान् सभ्यताओं का संगमस्थल था। पथ पर होने के कारण यह व्यापार का भी एक प्रमुख केन्द्र था। चीन का रेशम इन्हीं देशों से होकर रोम के बाजार में पहुँचता था। ग्रीक साम्राज्य के युग में भी मध्यएशिया का बड़ा महत्त्व था। कुशान लोग मध्यएशिया से ही भारत आये। ग्रीक और शक शक्ति के क्षीण होने पर मध्यएशिया के पार्थियनों ने उत्तर-पश्चिम भारत के कुछ भागों को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। मौर्य साम्राज्य के उत्थान काल में खोतन भी उसके अधीन था। अशोक का पुत्र कुणाल वहाँ का शासक था। स्पष्ट है कि समूचा मध्यएशिया कभी बृहत्तर भारत का ही एक अंग था।

मध्यएशिया ने भारतीय संस्कृति के फैलाव में, विशेष रूप से चीन में भारतीय धर्म और साहित्य के प्रसार में बहुत उत्साह से हाथ बँटाया था। जिन्होंने चीन जाकर साहित्यिक-सांस्कृतिक अग्रदूत का काम किया उनके नाम आज भी चीनवासी बड़ी श्रद्धा से लेते हैं। पहली सदी के पूर्व जो मध्यएशियावासी चीन गये उनके बारे में आज हमें विशेष ज्ञात नहीं है; पर दूसरी सदी के मध्य में पर्सिया के एक राजकुमार (शिकाओ) चीन गये थे, ऐसा उल्लेख मिला है।

लोकोत्तम

शिकाओ का संस्कृत नाम था लोकोत्तम। वह पर्सिया के एक राजकुमार थे और बौद्धधर्म के प्रचार करने के शुभ संकल्प से ही राज्याधिकार अपने चाचा को सौंप कर स्वयं भिक्षु बन गये। वह बड़े ही प्रतिभावान और अध्ययनशील व्यक्ति थे। संस्कृत का अध्ययन उन्होंने खूब किया था। १४८ ई० में ये चीन पहुँचे और वहाँ के सर्व प्रथम बौद्धमठ श्वेताश्व में ठहरे। बाईस वर्ष व्यापी अपने चीनी प्रवास काल में इन्होंने कुल १७९ सूत्रों का संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने भारत के किसी विद्याकेन्द्र में अवश्य अध्ययन किया होगा। इनके अनूदित सूत्रों का ज्यादा अंश आगम साहित्य से ही लिया गया है जो उस समय की चीनी जनता की आवश्यकतानुसार ही थे।

लोकोत्तम सफल अनुवादक ही नहीं थे, वे एक धर्मोपदेशक भी थे। चीनी जनता उस समय तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय विचारधारा से पूर्ण परिचित नहीं हुई थी। उसे शब्दानुवाद की जगह भावानुवाद रोचक लगता था और लोकोत्तम ने यही किया भी। उन्होंने अपने पीछे अनुवादकों और उपदेशकों का एक दल भी तैयार किया जो उनके बाद भी काम करता रहा। उनकी शिष्य मंडली में चीन या फारस निवासी ही नहीं थे बल्कि मध्यएशिया के अनेक चुने हुए विद्वान् भी थे।

लोकक्षेम

लोकक्षेम शक (यू-ची) भिक्षु थे। वे भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। १५० ई. में ये चीन पहुँचे। ये लोकोत्तम (शिक्षाओ) के साथ लोआङ् में रहकर अनुवाद कार्य में उनकी मदद करते रहे। लोकोत्तम की मृत्यु के बाद कुछ चीनी भिक्षुओं की सहायता से इन्होंने अनुवाद कार्य जारी रखा। दशसाहिका प्रज्ञापारमिता का अनुवाद करके चीनी में विशाल प्रज्ञा साहित्य का श्रीगणेश इन्होंने ही किया। भारतीय साहित्य के कुल २३ ग्रंथों का इन्होंने चीनी अनुवाद प्रस्तुत किया।

हियेन

भारतीय साहित्य के प्रचार में सिर्फ गृह-त्यागियों ने ही हाथ बटाया हो, सो बात नहीं है। मध्य एशिया के गृहस्थों ने भी इस दिशा में कम काम नहीं किया। चीन पर यूरोपीय साम्राज्यवादियों का आर्थिक अधिकार होने के पूर्व यह प्रथा थी कि जो विदेशी चीन आते थे उनके नाम का चीनी अनुवाद कर लिया जाता था। अर्थात् नाम का भी चीनी रूप ही वहाँ के निवासी पसंद करते थे। १९४९ से चीन की जनवादी सरकार ने फिर उस प्राचीन नियम को लागू किया है। फारस का एक व्यापारी जिसका चीनी नाम हियेन था १८१ ई० में लोआङ् आया। वह बुद्ध का अनन्य भक्त था। व्यापारी होते हुये भी इसने भारतीय साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। सम्राट की किसी सेवा के फलस्वरूप हियेन घुड़सवार का प्रधान अफसर बना दिया गया। किन्तु हियेन का नाम एक साहित्य-साधक और बुद्धोपासक के कारण ही अमर है। बौद्धधर्म के मूलसिद्धांत प्रतीत्य समुत्पाद (कार्य-कारण श्रृंखला) का प्रचार पहले पहल चीन में हियेन ने ही आगमोक्त द्वादश निदान सूत्र के चीनी अनुवाद द्वारा किया था। दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ जिसका चीनी अनुवाद हियेन ने किया वह है उग्रपरिपृच्छा। इस ग्रंथ का महत्व इसी से मालूम होता है कि आचार्य शांतिदेव ने अपने शिक्षा समुच्चय में इसका बीस बार उल्लेख किया है।* सुग्ध देश के रहनेवाले संघवर्मन ने उग्रपरिपृच्छा का फिर से अनुवाद किया। वह २५२ ई० में चीन पहुँचे थे।

ची-चियेन

हियेन की तरह ची-चियेन भी शक गृहस्थ था। भारतीय साहित्य का इसने अच्छी तरह अध्ययन किया था। मध्य-एशिया निवसी तथा पर्यटक होने के कारण यह अनेक भाषायें और लिपियाँ जानता था। यह २२३ से २५३ ई० तक चीन में रहा। अपने तीस वर्ष के चीन प्रवास में इसने कुल १२९ भारतीय ग्रंथों का अनुवाद किया।

हानवंश के विभक्त हो जाने पर ची-चियेन दक्षिण वू राज्य में चला गया। वहाँ उसकी प्रतिभा और विद्वत्ता से राजा इतना आकर्षित हुआ कि उसे युवराज के शिक्षक पद पर नियुक्त कर दिया। दरबार में उसका बड़ा आदर और सम्मान होता था। वू सम्राट ने इस महान शक पंडित को पो-शी अर्थात् पंडित की उपाधि से विभूषित किया। ची-चियेन युवराज को पढ़ाने लिखाने के अतिरिक्त अपना अधिकांश समय भारतीय ग्रंथों का अनुवाद करने में बिताते थे। चीनी भाषा पर भी इनका पूरा अधिकार था। कहते हैं, ये छः भाषायें बोल सकते थे। इनकी साहित्यिक कृतियों को देखते हुए यह तो स्पष्ट ही है कि ये संस्कृति के भी अच्छे जानकार होंगे।

इनके द्वारा अनूदित ग्रंथों में सूत्र साहित्य का ही ज्यादा भाग है। जिस ग्रंथ के अनुवाद के कारण ची-चियेन ने चीनी भाषा के इतिहास में इतना उच्च पद प्राप्त किया वह है अवदान शतक। पालि जातक और संस्कृति अवदान में बहुत समानता है। हीनयानबौद्धों में जितना लोकप्रिय जातक है उतना ही महायानियों में अवदान। दोनों ही का उद्देश्य मनुष्य के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना है।

ची-चियेन की दूसरी महत्वपूर्ण कीर्ति है प्रसिद्ध

---

*प्र. कु. मुखर्जी—इं. लि., इन चायना एंड फार इस्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातंगी सूत्र का चीनी अनुवाद। इसकी कहानी बहुत सुन्दर और प्रभावोत्पादक है। रवि बाबू ने भी इस कथा का बंगला में अनुवाद किया है।

ची-चियेन ने चीन में प्रथम भारतीय मिशनरी काश्यप मातंग के "बयालीस अध्याय के सूत्र" का फिर से चीनी अनुवाद प्रस्तुत किया। इनके द्वारा अनूदित ग्रंथों में से कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—दशसाहस्रिका, प्रज्ञापारमिता, सुखावती व्यूह, विमलकीर्ति-निर्देश, वत्ससूत्र, शालिस्तम्बसूत्र, ब्रह्मजाल सूत्र।

संघभद्र

संघभद्र सुग्ध देश के रहने वाले थे। सुग्धी लोग ईरानी जाति के थे और ये धीरे-धीरे पूर्वी तुर्किस्तान तक फैल गये। ईस्वी सन् के प्रारम्भ तक मध्यएशिया के विभिन्न प्रदेशों में सुग्धी लोगों की अनेक बस्तियाँ बस गई थीं। इनमें बौद्धधर्म का प्रचार बहुत पहले ही हो चुका था। मध्यएशिया में पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसंधान के फलस्वरूप सुग्धी बौद्ध साहित्य के ध्वंसावशेष प्रकाश में आये हैं।[१] अनेक सुग्धी भिक्षु भारतीय धर्म और साहित्य के प्रचार के लिये चीन गये। संघभद्र उनमें प्रमुख थे।

संघभद्र का परिवार भारत में रहता था। पिता एक व्यापारी थे और चीन से व्यापार होता था। मालूम होता है कि ये चीन के दक्षिणी प्रांत (वर्तमान तौं कींग) में बस गये थे। क्योंकि संघभद्र का जन्म वहीं हुआ था। इनकी शिक्षा भी संभवतः चीनी माध्यम से ही हुई थी। जब ये दस साल के थे तभी इनके माता-पिता का देहांत हो गया। इन्होंने अपनी आँखों से उनका दाह-संकार देखा था और इस दृश्य ने मन पर बहुत गहरा असर डाला। बचपन में ही घर छोड़ सन्यासी हो गये। चीनी भाषा और साहित्य का गम्भीर अध्ययन करने का अवसर मिला था। बौद्ध धर्म के प्रति इनकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। उनकी एकांत इच्छा थी कि चीनी लोगों में भी भारत के इस महान धर्म का जमकर प्रचार किया जाय। इन्होंने 'बुद्धग्राम' या फो-तो-ली नाम का विहार बनवाया जो कि दक्षिण चीन में भारतीय साहित्य और संस्कृति के प्रचार का प्रमुख केन्द्र बन गया। वू-सम्राट् का उत्तराधिकारी बौद्धधर्म के प्रति अच्छी भावना नहीं रखता था। एक बार सरकार के किसी उच्चाधिकारी से संघभद्र का धार्मिक शास्त्रार्थ हुआ जिसमें वे विजयी रहे। तब से सम्राट की भावना बदल गई और वह बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धालु बन गया।

संघभद्र ने कुल चौदह ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया जिनमें से पाँच ही नष्ट होने से बच सके। दो उनमें से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।—षड्पारमितासन्निपात-सूत्र और संयुक्त अवदानसूत्र। २८० ई० में भारतीय साहित्य के इस अनन्य साधक ने चीन की भूमि पर ही अपना शरीर त्याग किया।

धर्मरक्ष

कुशान साम्राज्य की स्थापना से यू-ची लोगों का बड़प्पन न केवल भारत में बल्कि मध्यएशिया के भी कुछ भागों में कायम हो गया। भारत से लेकर चीन की सीमा तक विभिन्न प्रदेशों में यू-ची लोगों की बस्तियाँ थीं। कनिष्क के समय बौद्धधर्म करीब राज्यधर्म के रूप में ही था। उसने बौद्ध धर्माचार्यों को जो बढ़ावा दिया उससे ज्ञात होता है कि वह स्वयं अपने साम्राज्य के बाहर बौद्धधर्म के प्रचार में दिलचस्पी लेता था। पहली सदी में भारत से चीन जानेवाला प्रथम बौद्ध मिशन उस समय यू-ची देश में ही था जब उसे चीनी दूत ने चीन जाने के लिये निमंत्रित किया था। इससे भी पहले यू-ची दरबार से ही चीनी सम्राट को कुछ बौद्ध ग्रंथ भेंट किये गये थे। यू-ची जाति के कतिपय बौद्धधर्म प्रचारक दूसरी और तीसरी सदी में चीन गये थे।* यू-ची धर्म प्रचारकों में एक महान् व्यक्ति थे धर्मरक्ष।

धर्मरक्ष के पिता कानसू प्रान्त के तुन-हुआङ् जिले में रहते थे। तुन-हुआङ् भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र था। एशिया के विभिन्न देशों से बड़े-बड़े यशस्वी विद्वान यहाँ आते-जाते रहते थे। १९०६-९ में पाल पिलिओट के नेतृत्व में इस प्रदेश में कुछ अनुसन्धान का कार्य

१ प्र. च. बागची—इंडिया ऍन्ड चायना।

* प्र. चं. बागची—इंडिया ऍंड चायना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ जिसमें अनेक ग्रंथ तथा कला की चीजें प्राप्त हुईं। स्टीन को यहाँ एक पुस्तकालय मिला जो दीवालों से घिरा हुआ था और जिसमें हजारों की संख्या में संस्कृत, खोतनी, कूची, चीनी और तिब्बती हस्तलिखित ग्रन्थ एवं कागज और रेशमी कपड़े पर अंकित सैकड़ों चित्र मिले थे।[1] इससे पता लगता है कि धर्मरक्ष के समय तुन्-हुआङ् प्रदेश का कितना महत्त्व था। धर्मरक्ष का लालन-पालन चीनी वातावरण में हुआ था। तुन्-हुआङ् में रहनेवाले एक भारतीय पंडित से बालक धर्मरक्ष इतना प्रभावित हुआ कि छोटी उम्र में ही घर छोड़कर वह सन्यासी बन गया।

धर्मरक्ष एक अलौकिक प्रतिभावना व्यक्ति थे। जितने ही वे अध्ययनशील थे उतने ही घुमक्कड़ भी। उन्होंने अनेक देशों की यात्रा की और प्रकृति का विस्तृत प्रांगण उनका सबसे बड़ा पाठ्य-ग्रन्थ था। कहते हैं वे ३६ भाषायें जानते थे। भारतीय साहित्य का उनका अध्ययन बड़ा विशद था। भारतीय ग्रन्थों के वे एक महान् संग्राहक थे। यह सम्भव नहीं कि इतना बड़ा पर्यटक भारत न आया हो। २८४ ई० में धर्मरक्ष चीन आये और चाङ्-एन् में रहने लगे।

धर्मरक्ष सफल अनुवादक ही नहीं थे बल्कि अच्छे प्रचारक और उपदेशक भी थे। चाङ्-एन् में उन्होंने एक मठ की स्थापना की थी। उनका व्याख्यान इतना आकर्षक और विद्वत्तापूर्ण होता था कि उसे सुनने के लिये हजारों आदमी एकत्र हो जाते। कहते हैं, इनके कई हजार शिष्य थे जो गुरु के महान् उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहे।

धर्मरक्ष ने ३१७ या ३१८ ई० में ७८ वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा। इन्होंने कुल २११ भारतीय ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। उनके इतने बड़े साहित्यिक कार्य को देखकर ही हम अन्दाज लगा सकते हैं कि वे कितने कर्मठ, अध्यवसायी और उच्च व्यक्ति थे। दुःख है कि समय की लम्बी दौड़ में दो सौ ग्यारह पुस्तकों में से आज सिर्फ ९० ग्रन्थ ही चीनी त्रिपिटक में सुरक्षित हैं। उनके अनूदित संस्कृत ग्रन्थों में से कुछ इस प्रकार हैं। पञ्चविंशति साहस्रिका प्रज्ञापारमिता, दशभूमिक सूत्र, सद्धर्मपुण्डरीक, उल्लम्बन सूत्र, ललितविस्तर आदि। ये और इस तरह के कुछ और अनुवाद धर्मरक्ष के हैं जिन्होंने चीनी जीवन को बहुत प्रभावित किया।

यहाँ मध्य एशिया के भारतीय संस्कृति के कुछ ही साधनों और प्रचारकों का परिचय दिया जा सका। इस तरह के सैकड़ों और हजारों विद्वान् मध्यएशिया में रहते थे। पर इनके विषय में चीनी स्रोतों से ही हम थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। भारत में इतिहास की सामग्री को बर्बर हमलावरों ने नष्ट कर दिया जिसके लिये परम्परा का प्रत्येक जिज्ञासु तरसता ही रहेगा।

[1] श्री घोषाल—प्रोग्रेस आफ ग्रेटर इंडियन रिसर्च।

बौद्धयुग और कला

सुश्री कुमारी विद्या

भारत में धर्म, साहित्य एवं कला का अति निकट संबंध सदा से रहा है। जो साहित्य में पढ़-सुन या मनन कर प्राप्त होता है वह कला में साकार या पूर्णरूप में सामने आता है। कला अर्थात् (यहाँ पर) शिल्पाङ्कन एवं चित्रण की ओर मानव मात्र की स्वाभाविक अभिरुचि होती है क्योंकि मानव सदैव से सुषुमा का पुजारी रहा है। प्रत्येक युग अपने साहित्य के साथ कला की अक्षय निधि को आज भी संजोये है। प्राचीन मूर्तिकला मंजुल भावनाओं को समेटे अतीत की मूर्तिमंत स्मृति है।

इसी तरह बौद्ध युग भी जहाँ एक ओर पालि साहित्य के भंडार को पूर्ण किया है वहाँ कला की भी अक्षय निधि का वरदान लिये हुए है। बौद्धकाल का स्वर्णयुग देवानांप्रिय सम्राट अशोक के कलिंग विजय के पश्चात् का समय है। जब उनके हिंसा के हाहाकार से ज्वलित हृदय को भगवान् बुद्ध की कल्याणी वाणी से शान्ति मिली थी और वे उस उपदेश सुधा को····· धम्मं सरणं गच्छामि ·····कहकर वसुधा में वितरित किये थे। शान्ति की उस वेला में कला का पूर्ण विकास हुआ। मंजु मनोहर शिल्प-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला और चित्राङ्कन के उत्कृष्ट प्रतीकों को पा संस्कृति मुस्कुरा उठी। उस विशाल राज्यावधि में अंतर्राष्ट्रीय कलाकारों का भी आह्वान हुआ होगा क्योंकि विशुद्ध भारतीय निर्माणशैली के अतिरिक्त अन्य शैलियों की भी कुछ झलक इन कला-कृतियों में दिखाई देती है।

सारनाथ, साँची, अजंता, बाग, भरहुत, अमरावती आदि में मूर्तिकला एवं चित्राङ्कन के उत्कृष्ट रूप शोभित हैं। सारनाथ के गौरवशाली अशोक स्तम्भ पर निर्मित चतुर्मुखीसिंह मूर्ति और उसके नीचे की बृषभ, अश्व एवं हाथी की मूर्तियाँ जहाँ शिल्पकला की अनुपम वस्तुएँ हैं वहाँ वे ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व से भी पूर्ण हैं। भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के चरणों पर निर्मित सिंह मूर्ति उनके गौरव एवं शान्ति की प्रतीक है उसी तरह स्तम्भ पर निर्मित शार्दूल आदि भी।

साँची के शिला-स्तम्भों, तोरण द्वारों में सीधी तिरछी वंकिम खुदाई से जातककथा का अंकन, विभिन्न मुद्राओं में भावनाओं का प्रगटीकरण प्रभावोत्पादक तथा अतीव सौन्दर्य पूर्ण है। बाघिनी नदी के पुलिन पर गौरवशाली मालव प्रदेश में महू स्टेशन से ९७ मील पर स्थित बाग की गुफायें जो पाषाणों को काट कर बनाई गई हैं। बीहड़ कांतार में बौद्धकाल की कला को अंचल में समेटे साधिका सी लीन हैं। बसन्त की वनश्री अरुण पलाश-पुष्पों को बिखेर कर जैसे उसके अन्तर के देवता की अर्चना कर धन्य हो जाती है और वर्षा में लहराती तरंगों से उनका चरण पखार कर बाघिनी सन्तोष की साँस लेती है। यहाँ की गुफाओं में शिलाभित्तियों पर अंकित भगवान् पद्मपाणि, बोधिसत्व की विभिन्न मुद्रायें जैसे त्याग और शान्ति का आदेश दे रही हैं जिन्हें देख कर मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है। छठीं-सातवीं सदी में यह स्थान पावन सूत्रों की मंगल ध्वनि, धूप-दीप के सौरभ से पूर्ण कितना उल्लासमय रहा होगा। जब विहारों के हेतु हमारे पूर्वज माहिष्मती नरेश सुबन्धु ने समीप की भूमि के ग्राम अर्पित कर अपने को धन्य माना था। यहाँ के स्तम्भों में भी खुदाई का उत्कृष्ट कार्य है। कहीं-कहीं मानव की अन्य भावभंगिमायें भी सुन्दर सफल ढंग से अंकित हैं।

और, दक्षिण भारत का कला-निकेतन अजन्ता तो बौद्ध मूर्तिकला एवं चित्रांकन के सुन्दर समन्वय का अनन्य रूप है। महाकारुणिक भगवान् सुगत के जीवन की घटनायें मानों उन कलाकृतियों में साकार हो रही हैं। पद्म तड़ाग, पशु, पक्षियों, वृक्षों, पत्र-पुष्पों के चित्रण भी सुन्दर रूप से पृष्ठभूमि सज्जा के हेतु सजाये गये हैं, जो दर्शनीय हैं। जहाँ का एक-एक कण मनोरम कलाकृतियों को लिये हुए शान्ति एवं मैत्री की मृदुल भावनाओं का सन्देश दे रहा है।

शिल्पी की हथौड़ी और छीनी से चित्रकार की तूलिका से विभिन्न मनोरम रंगों, मुद्राओं में निर्मित व अंकित प्रभाव पूर्ण कलाकृतियाँ जिनका विषय करुणामूर्ति तथागत् की जीवन घटनायें व उपदेश हैं तथा चित्रण व निर्माण जीवन को आदर्श बनाने के हेतु दया, प्रेम, त्याग व ममता, मैत्री की पावन प्रेरणा दे रही हैं। धर्मानुरंजित इन कला प्रतीकों के दर्शन से हृदय श्रद्धा से विभोर हो जाता है। बौद्ध युग की सफल कलाराधना अतीत के गौरव के अक्षय भंडार को भर उस युग का और उनके पावन उपदेशों का यशोगान कर रही है।

और भी कला कृतियाँ भूमि गर्भ में दबी चिर सुप्त निशानी-सी शान्त पड़ी हैं। आधुनिक उत्खनन-कार्य जिन्हें प्रकाश में लाकर स्वर्णिम अतीत के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है। हाल ही में मालव के रेवा (नदी)-तट पर माहिष्मती (माहेश्वर) के समीप बौद्ध स्तूप का पता लगा है। जिसकी ईंटें २१ इंच लम्बी ११ इंच चौड़ी और ३ इंच ऊँची हैं तथा इन पर अशोककालीन लिपि में कुछ अंकित है। मृत्तिका के रंग-विरंगे टुकड़े, अरुणिम चमकीले पात्र-खंड आदि की (वहाँ से) प्राप्ति मनोरंजन के साथ संस्कृति को बौद्धकालीन कलाराधना की अनुपम वस्तुएँ अर्पित करेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी के महाजमाती उरुवेल काश्यप

भिक्षु धर्मरक्षित

काशी नगरी के साधु-सन्तों ने आध्यात्मिक-जगत् में एक ऐसी अपूर्व ज्योति जगाई है, जिससे संसार के अधिकांश व्यक्तियों ने प्रेरणा प्राप्त की है। इन सन्त-विभूतियों के सच्चरित्रों से प्रभावित हो बहुत से साधकों ने आध्यात्म-जगत् में ख्याति प्राप्त की है और दूसरे लोगों को भी आत्मोन्नति के लिए प्रेरित किया है। काशी के साथ इन साधु-सन्तों का एक दीर्घकालीन इतिहास जुटा हुआ है। हम यहाँ काशी के सबसे बड़े जमाती भिक्षु उरुवेल काश्यप का परिचय देना चाहते हैं, जिन्होंने बौद्ध-जगत् में अमर कीर्ति लाभ की और जो अपने समय के काशी के अग्रगण्य भिक्षु थे।

बाल्य-काल और शिक्षा

उरुवेल काश्यप का जन्म ई० पूर्व ६४३ में काशी के एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। अपने माता-पिता के जेठे पुत्र होने के कारण इनका पालन-पोषण बड़े प्रेम से हुआ। जब ये कुछ सयाने हुए, तब इनके पिता ने इन्हें काशी के दिशा-प्रामोख्य आचार्य के पास पढ़ने के लिए भेजा। उरुवेल काश्यप की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। आचार्य इनकी प्रतिभा की प्रखरता देखकर बड़े प्रसन्न रहते थे। ये समयानुसार विघण्टु, कल्प, अक्षर-प्रभेद, निरुक्ति सहित तीनों वेद और इतिहास में पारंगत हो गए। आचार्य ने इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो अपने ही विद्यालय में अध्यापन-कार्य करने के लिए निवेदन किया और इन्होंने उसी विद्यालय में विद्यार्थियों को पढ़ाना आरम्भ किया।

संन्यास

उरुवेल काश्यप के दो और भाई थे। वे भी त्रिवेद पारंगत और अपने पाण्डित्य के लिए ख्याति-प्राप्त थे। सन्ध्या समय तीनों भाई घर पर एकत्र होते थे और परस्पर धार्मिक वार्तालाप करते थे। कुछ दिनों के बाद उरुवेल काश्यप को विरक्ति उत्पन्न हो आई। वे घर से चुपके निकल कर उरुवेला की ओर चले गए और वहीं संन्यास ले लिए। उनके दोनों छोटे भाइयों का भी उरुवेल काश्यप के चले जाने के पश्चात् घर में मन न लगता था। वे भी एक दिन घर-बार छोड़ दिये और उरुवेला की ही ओर जाकर संन्यास ले लिए। इन तीनों संन्यासियों में उरुवेल काश्यप की बड़ी प्रसिद्धि हुई। वे जनता में ऋद्धिमान् और जीवन्मुक्त समझे जाने लगे। दूर-दूर से लोग उनके पास दर्शनार्थ आने लगे। प्रतिदिन शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। नये-नये भेंट और उपहार मिलने लगे। लोगों की भीड़ से उरुवेल काश्यप का आश्रम कभी खाली नहीं होता था।

उनका आश्रम फल्गू नदी के किनारे एक ऐसे रमणीय स्थान पर था, जहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य अनुपम और मनोहर था। साधु-जनों के लिए सुखद एवं समाधि-साधना के लिए उपयुक्त था। वहाँ अनेक हवन-कुण्ड और यज्ञशालाएँ निर्मित थीं। अहर्निश हवन-कुण्ड की आग जला करती थी और हव्य वितरित हुआ करता था। मगधवासी उरुवेल काश्यप से बढ़कर अन्य किसी दूसरे संन्यासी को न मानते थे। धीरे-धीरे उरुवेल काश्यप के शिष्यों की संख्या ५०० से भी अधिक हो गई। दिशाओं में उरुवेल काश्यप के यशगान होते थे और उन्हें अपना मार्गोपदेष्टा समझते थे।

बुद्ध का अनुयायी

जिस समय उरुवेल काश्यप की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी, उस समय भगवान् बुद्ध ने ऋषिपत्तन मृगदाय में प्रथम उपदेश दे और चौमासा व्यतीत कर उरुवेला की ओर चारिका की। वे क्रमशः चलते हुए उरुवेला पहुँचे। सन्ध्यासमय उरुवेल काश्यप के आश्रम में गए और उरुवेल काश्यप से कहा—"हे काश्यप! यदि तुझे भारी न हो तो मैं एक रात तेरी अग्निशाला में वास करूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाश्रमण ! मुझे भारी नहीं है, लेकिन यहाँ एक बड़ा ही चण्ड दिव्यशक्तिधारी घोर विषवाला नाग रहता है। वह कहीं आप को हानि न पहुँचावे।" भगवान् के तीन बार कहने पर भी जब उरुवेल काश्यप ने अनुमति न दी, तब भगवान् ने कहा—"काश्यप ! नाग मुझे हानि नहीं पहुँचावेगा। तुम मुझे अग्निशाला की स्वीकृति दे दे।"

"महाश्रमण ! सुख से विहरो।"

तब भगवान् अग्निशाला में प्रविष्ट हो तृण बिछा पालथी मार शरीर को सीधा कर स्मृति को स्थिर रख बैठ गए। भगवान् को भीतर आया देख नाग क्रुद्ध हो धुआँ देने लगा। भगवान् ने अपने योगबल से उसे वश में कर लिया और उठाकर पात्र में रख लिया। प्रातःकाल उरुवेल काश्यप ने साँप को पात्र में देखकर अपने मन में विचार किया—"यह श्रमण महाशक्तिशालि है, जिसने कि घोर विषवाले चण्ड नाग को अपने पात्र में रख लिया, किन्तु मेरे जैसा अर्हत् नहीं है।" भगवान् के इस चमत्कार से प्रसन्न हो उसने निवेदन किया—"महाश्रमण ! यहीं विहार करें। मैं नित्य भोजन से आपकी सेवा करूँगा।"

इसी प्रकार भगवान् बुद्ध के अनेक चमत्कारों को देखकर उरुवेल काश्यप ने बार-बार भगवान् की प्रशंसा की, किन्तु अपने संशय को न त्यागा। विनयपिटक में भगवान् बुद्ध की पन्द्रह प्रातिहार्यों (चमत्कारों) का वर्णन है, जिनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उरुवेल काश्यप महाऋद्धिमान्-योगी के रूप में सम्मानित थे और वे अपने को वैसा समझते भी थे। तभी तो भगवान् बुद्ध के चमत्कारों को देखकर भी अपने ही को 'बड़ा अर्हत्' मानते थे।

एक दिन भगवान् बुद्ध को विचार हुआ—"चिरकाल तक इस तुच्छ-पुरुष को यह विचार होता रहेगा कि महाश्रमण दिव्यशक्तिधारी है, किन्तु यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं। क्यों न मैं इसे फटकारूँ ?" तब भगवान् ने उरुवेल काश्यप से कहा—"काश्यप ! न तो तू अर्हत् है न अर्हतों के मार्ग पर आरूढ़ है। वह सूझ भी तुझे नहीं है जिससे अर्हत होवे या अर्हतों के मार्ग पर आरूढ़ होवे।"

तब उरुवेल काश्यप भगवान् के पैरों पर सिर रख भगवान् से बोले—"भन्ते ! भगवान् के पास मुझे दीक्षा मिले, मुझे उपसम्पदा मिले।"

"काश्यप ! पाँच सौ जटिलों का नायक है, उनसे भी परामर्श कर।"

तब उरुवेल काश्यप ने जाकर उन जटिलों से कहा—"मैं महाश्रमण गौतम के पास दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। तुम लोगों की जो इच्छा हो सो करो।"

"पहले ही से हम लोग महाश्रमण गौतम में अनुरक्त हैं। यदि आप उनके शिष्य होंगे, तो हम सभी उन्हीं के पास दीक्षा लेंगे।"

वे सभी जटिल उरुवेल काश्यप के साथ केश-सामग्री, जटा-सामग्री, झोली और घी आदि अपने सामान को फल्गू में प्रवाहित कर भगवान् के पास गए। जाकर भगवान् के चरणों पर सिर झुका कर बोले—"भन्ते ! हम भगवान् के पास प्रव्रज्या पावें, उपसम्पदा पावें।"

"भिक्षुओ ! आओ, धर्म स्वाख्यात है, भली प्रकार दुःख को अन्त करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो।" यही उन आयुष्मानों की उपसम्पदा हुई।

जब इस समाचार को उरुवेल काश्यप के छोटे भाइयों ने पाया, तब वे अपने शिष्यों के साथ जहाँ आयुष्मान् उरुवेल काश्यप थे, वहाँ गए और वे भी शिष्य-समूह सहित भगवान् बुद्ध के पास प्रव्रजित हो गए। दूसरे दिन इन नव-दीक्षित एक हजार भिक्षुओं के साथ भगवान् ने गयाशीर्ष (=ब्रह्मयोनि पर्वत) पर विहार करते हुए 'आदित्त परियाय सुत्त' का उपदेश दिया। जिसे सुनकर उन हजार भिक्षुओं के चित्त निर्लिप्त हो आवागमन देने वाले चित्तमलों से छूट गए। आयुष्मान् उरुवेल काश्यप ने भी ज्ञान की पराकाष्ठा प्राप्त कर ली और वे अर्हन्तों में से एक हो गए।

संशय-निवारण

भगवान् बुद्ध इच्छानुसार गयाशीर्ष में विहार कर उरुवेल काश्यप और सभी पुराने जटाधारियों को साथ ले चारिका करते हुए राजगृह पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही भगवान् और उरुवेल काश्यप के आने का समाचार क्षणभर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे नगर में फैल गया। मगध-नरेश बिम्बिसार गृहस्थों की बहुत बड़ी मण्डली के साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया और प्रणाम् कर एक ओर बैठ गया। भगवान् बुद्ध और उरुवेल काश्यप को इतने बड़े महान संघ के साथ देखकर लोगों को संशय होने लगा। वे परस्पर कानाफूसी करने लगे—"क्यों जी ! महाश्रमण गौतम उरुवेल काश्यप का शिष्य है अथवा उरुवेल काश्यप महाश्रमण गौतम का ?" भगवान् ने उनकी बातें सुन, आयुष्मान् उरुवेल काश्यप से कहाः—

'किमेव दिस्वा उरुवेलवासी,
पहासि अग्गिं किसको वदानो।
पुच्छामि तं कस्सप ! एतमत्थं,
कथं पहीनं तव अग्गिहुत्तं ?'

हे उरुवेल-वासी ! हे तपः कृशों के उपदेशक ! क्या देखकर तूने आग छोड़ी ? काश्यप ! तुमसे यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा ?

तब काश्यप ने कहाः—

'रूपे च सद्दे च अथो रसे च,
कामित्थियो चाभिवदन्ति यञ्ञा।
एतं मलन्ति उपधीसु ञत्वा
तस्मा न यिट्ठे न हुते अरञ्ञि ॥'

रूप, शब्द और रसरूपी कामभोगों में, स्त्रियों के रूप, शब्द और रस में हवन करते हैं, काम-भोगों के रूप, शब्द और रस में कामेष्टि-यज्ञ करते हैं। यह रागादि उपाधियाँ मल हैं। मैंने यह जान लिया, इसलिए मैं यज्ञ और होम से विरक्त हो गया।

इसे सुनकर लोग आश्चर्य में पड़ गए कि इतने बड़े समूह के नायक उरुवेल काश्यप यह क्या कर रहे हैं! उनके विचारों को जान उरुवेल काश्यप अपने आसन से उठ, चादर को एक कन्धे पर कर भगवान् के पैरों पर सिर रख भगवान् से बोले—"भन्ते ! भगवान् मेरे गुरु हैं, मैं शिष्य हूँ। भन्ते ! भगवान् मेरे गुरु हैं, मैं शिष्य हूँ।" तब उन मगध-वासी गृहस्थों का संशय दूर हुआ और वे समझ गए कि उरुवेल काश्यप महाश्रमण गौतम के शिष्य हो गए हैं।

श्रेष्ठत्व की उपाधि

भगवान् बुद्ध के पास दीक्षा लेने के बाद भी उरुवेल काश्यप के शिष्य तथा दोनों छोटे भाइयों का परिवार सदा उनके साथ ही विचरण करता था। वे सोचते थे कि हमलोगों ने इन्हीं के कारण भगवान् बुद्ध का दर्शन पाया और धर्म अपनाया; अतः यही हमारे नायक रहें। इस प्रकार उनके साथ सदा बड़ी जमात जुटी रहती थी। अंगुत्तर निकाय की अर्थ-कथा में कहा गया है कि कुछ ही दिनों के बाद उरुवेल काश्यप की जमात दो हजार की हो गई थी। भगवान् बुद्ध ने श्रावस्ती के जेतवन विहार में रहते हुए एक दिन भिक्षुओं के महासम्मेलन में उरुवेल काश्यप को श्रेष्ठत्व की उपाधि देते हुए कहा—"भिक्षुओ! मेरे महापरिषद् (=बड़ी जमात) वाले भिक्षु-श्रावकों में यह उरुवेल काश्यप श्रेष्ठ (=अग्र) है।"

सुभाषित-सीकर

जो लोहे, लकड़ी या रस्सी का बन्धन है, उसे बुद्धिमान् लोग दृढ़ बन्धन नहीं कहते, वस्तुतः मणि, कुण्डल, पुत्र, स्त्री में इच्छा का होना ही दृढ़ बन्धन है।

प्रमादी परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ हैं—अपुण्य का लाभ, सुख से न निद्रा, तीसरे निन्दा और चौथे नरक। अथवा अपुण्य-लाभ, बुरी गति, भयभीत पुरुष की भयभीत स्त्री से अत्यल्प रति और राजा का भारी दण्ड देना। इसलिए मनुष्य को परस्त्रीगमन न करना चाहिए।

सोये गाँव को जैसे बड़ी बाढ़ बहा ले जाये, वैसे ही पुत्र और पशु में लिप्त आसक्त पुरुष को मौत ले जाती है। —धम्मपद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-जगत्

भारतीय महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती, साँची विहार का उद्घाटन तथा पवित्र अस्थियों की स्थापना

गत २९ और ३० नवम्बर को साँची के नवनिर्मित चेतिय गिरि विहार का उद्घाटन, भारतीय महाबोधिसभा की हीरक जयन्ती तथा अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों की स्थापना साँची में बड़े धूम-धाम के साथ सम्पन्न हुई, जिसका विस्तृत वर्णन इसी अंक के पृष्ठ २१२–२१५ में दिया गया है।

पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार २९ नवम्बर को प्रातःकाल पवित्र अस्थियों का साँची स्टेशन पर स्वागत हुआ। अपराह्न में भारत के उपराष्ट्रपति सर राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में भारतीय महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती तथा अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन हुआ।

अन्तराष्ट्रीय बौद्ध सांस्कृतिक सम्मेलन का प्रारम्भ पूर्वी पाकिस्तान के भिक्खु धर्माधार महास्थविर द्वारा पंचशील ग्रहण के साथ हुआ।

मंचपर प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, उपराष्ट्रपति डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, बर्मा के प्रधान-मन्त्री यू नू, डाक्टर धर्मपाल, डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी, लंका के गृहमन्त्री एस० रत्ननायक, लद्दाख के प्रमुख लामा बकुल, जर्मनी के बौद्ध संन्यासी लामा गोविन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, तथा भारतस्थित जापान और थाईलैंड के राजदूत थे। मंच के दोनों ओर लगभग २०० बौद्धभिक्षु बैठे थे। इनमें सबसे अधिक संख्या लंका से आये भिक्खुओं की थी। चीन से ७५ बौद्धभिक्खु और प्रतिनिधि, बर्मा से ५० बौद्धभिक्खु और प्रतिनिधि, तिब्बत और कंबोडिया से १ दर्जन प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में भाग लिया। पांडाल खूब अच्छी तरह सजाया गया था।

अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन एवं महाबोधि सभा की हीरक जयन्ती के उद्घाटन के अवसर पर डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने भाषण करते हुए यह आशा प्रकट की कि साँची जैसा पवित्र स्थान शीघ्र ही ऐसे स्फूर्ति केन्द्र के रूप में विकसित होगा जहाँ विभिन्न देशों के विद्वान् ज्ञानार्जन के निमित्त आयँगे और उसका प्रचार विश्व-भर में करेंगे।

आपने कहा कि ऐसे केन्द्रों का कार्य शिक्षित समाज तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये, बल्कि वहाँ रहनेवाले भिक्षुओं तथा अन्य समाजसेवकों को प्राप्त ज्ञान का प्रसार साधारण जन-समाज में करना चाहिये जिससे उनमें फैला हुआ अज्ञान, गरीबी, बीमारी तथा अन्ध-विश्वास दूर हो सके और उनका सामाजिक तथा आर्थिक स्तर ऊँचा उठ सके।

बर्मा के प्रधान मंत्री का भाषण—अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन में बर्मा के प्रधान मंत्री ऊ थाकिन नू ने भाषण देते हुए कहा—आप लोग बौद्ध धर्म को केवल धर्म के रूप में ग्रहण न करें बल्कि यह जीवनमार्ग का ऐसा दर्शन है जिससे संशय, घृणा, भय और लौकिक तृष्णाओं का शमन होता है।

आपने कहा कि आप लोगों से यह मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि आप लोग इस प्रणाली और जीवनमार्ग की परीक्षा के लिए गम्भीरता के साथ प्रयत्नशील हों। आप उसी प्रकार से सचेष्ट हों जिस प्रकार कोई वैज्ञानिक अपने किसी नये वैज्ञानिक सिद्धान्तों का परीक्षण करता है। हमारे देश में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिन्होंने इसका परीक्षण किया और सार्थकता की कई सीढ़ियों पर चढ़ चुके हैं।

आगे आपने कहा कि भगवान् बुद्ध के कथनानुसार सभी को मृत्यु के बाद तुरत जन्म लेना पड़ता है। इसमें अपवाद नहीं होता। इस संसार-सागर में जन्म लेने और मरने का क्रम बँधा हुआ है। यह भवबन्धन छूटने का नहीं।

आपने कहा कि मृत्यु के बाद प्राणी को चार श्रेणियों में पुनः जन्म लेना पड़ता है—ब्रह्म, देवता, मनुष्य और जानवर। बुद्ध के कथनानुसार जन्म-मरण की यह अनन्त-गति का मुख्य कारण लोभ, द्वेष और मोह है जो प्राणि-मात्र से चिपके हुए हैं। साधारणतः मनुष्य जीव-जन्तुओं से ऊँची श्रेणी का प्राणी होता है। पर वास्तव में कोई प्राणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं चाहता कि आवागमन का यह क्रम चलता रहे और मरने के बाद पुनः जन्म ग्रहण करे क्योंकि जीवन में क्लेशों का पारावार नहीं रहता।

श्री नेहरूजी का भाषण—तदुपरान्त भारत के प्रधान मंत्री श्री नेहरू का भाषण हुआ। उन्होंने भाषण देते हुए कहा—कि आज की तकलीफ भरी और लड़खड़ाती दुनिया की बुराइयों का निराकरण करने में बुद्ध के सन्देश का अच्छा प्रयोग हो सकता है। मैं नहीं जानता कि बुद्ध का सन्देश कहाँ तक इस मामले में सफल हो सकता है परन्तु कुछ न कुछ अवश्य ही होगा क्योंकि संसार इतिहास के संकटकाल में पहुँच चुका है।

प्रधान मन्त्री ने बड़ी गम्भीर मुद्रा में संसार के सभी भागों से आये भिक्षुओं और बौद्ध विद्वानों के सम्मेलन में कहा कि यद्यपि यह सम्मेलन उपस्थिति के लेहाज से कोई बड़ा नहीं है तथापि यह महत्वपूर्ण है। खासकर भारत में रहनेवालों तथा अन्यान्य लोगों के लिए।

नेहरूजी ने कहा कि मैं इस सम्मेलन में कोई चीज देने नहीं बल्कि कुछ पाने के लेहाज से आया हूँ। मैं कोई सन्देश लेकर सांची नहीं आया हूँ बल्कि यहाँ से कुछ लेने आया हूँ। आज भी इस उलझी और विकृत दुनिया में मैं एक बहुत ही उलझा हुआ आदमी हूँ। मैं प्रकाश देखने और पाने की कोशिश करता हूँ। प्रायः मैं विचलित हो उठता हूँ, फिर भी तत्पर होकर आगे कदम बढ़ाता हूँ। जो मुझमें कमी है उसकी तलाश की कोशिश करता हूँ और कोशिश करता हूँ कि हमारा देश और हमारी जनता हमसे जो चाहती है, उसको पाने का प्रयास करता हूँ।

यह हो सकता है कि हम लोग इतिहास की संकट घड़ी में पहुँच रहे हों। आज का इतिहास एक या अन्य देशों का इतिहास नहीं रहा। यह मानव जाति का इतिहास बन गया है। आपने कहा कि अन्यान्य देशों की भांति भारत में भी जोरों की ज्योति जगमगाती है। इस देश ने केवल महती ज्योतियों का दर्शन ही नहीं किया है बल्कि अन्यान्य देशों में व्याप्त अन्धकार में ज्योति भी जगायी है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने जो सन्देश दिया था वह केवल इस देश अथवा महादेश के लिए ही प्रकाश का काम नहीं करता था अपितु समस्त संसार के लिए प्रकाश था।

बुद्ध के सन्देश से विश्वशांति—नेहरूजी ने लोगों से पूछा कि आज की दुनिया में बुद्ध का यह गौरवपूर्ण संदेश किस प्रकार कार्यन्वित किया जाय। तत्काल आपने स्वयं उत्तर दिया कि शायद यह लागू हो भी सकता है और नहीं भी। पर इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि यदि हम लोगों ने बुद्ध के सिद्धांतों को अमल में लाया तो हम-लोग संसार में शांति और सुव्यवस्था स्थापित करने में सफल होंगे।

नेहरूजी ने अपना संक्षिप्त भाषण यह कहते हुए समाप्त किया कि यह सम्मेलन ऐसे अनेक बीजों का वपन कर रहा है जो मानवता के कल्याण के लिए पुष्प देनेवाले वृक्ष तैयार करेगा।

डा० राधाकृष्णन् का भाषण—अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध सांस्कृतिक सम्मेलन के सभापति पद से भारत के उप-राष्ट्रपति डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा कि बौद्ध धर्म अपने स्थान पर पुनः लौटता आ रहा है। इसमें रंचमात्र सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म अपने गौरव के शिखर पर चढ़ रहा है।

आपने कहा कि इस देश में सांस्कृतिक पुनर्जागरण हो रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद किसी भी देश के लिए यह आवश्यक वस्तु है। स्वराज्य का अर्थ केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता होता है। आज हमारे देश के झण्डे पर अशोक का धर्मचक्र है तथा राजचिह्न पर अशोक के सिंह अंकित हैं।

डाक्टर राधाकृष्णन् ने आगे कहा कि आज की दुनिया को यदि आप बदलना चाहते हैं, वर्तमान संसार को परिवर्तित करना आपका यदि लक्ष्य है तो सर्वप्रथम मनुष्य में परिवर्तन करना होगा। मनुष्य में परिवर्तन करने के लिए गौतम बुद्ध के उपदेशों से बढ़कर कुछ भी नहीं है। यदि विभिन्न देशों की सरकारें तथा जनता 'करुणा' को अपने कार्यकलाप का नियंत्रक मान ले तो आज की दुनिया से कल की दुनिया बेहतर होगी। आज के संसार से भावी संसार उत्तम होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर राधाकृष्णन् ने आगे कहा कि उपनिषदों में यह उपदेश किया गया है आत्म-नियन्त्रण करो, दूसरों के प्रति करुणामय व्यवहार करो। इन महासिद्धान्तों के नैतिक पक्ष को गौतमबुद्ध ने हमारे सामने रखा।

ब्रिटेन के बौद्ध भिक्खु संघरक्षित ने कहा कि बुद्धधर्म न केवल भारत में वरन् पश्चिमी देशों में भी पुनरुज्जीवित हो रहा है।

शान्तिनिकेतन के चीनी भवन के प्राध्यापक तानयुन शान ने सम्मेलन के लिए चीन की ओर से सन्देश प्रस्तुत किया।

लद्दाख के प्रधान लामा कुशोक बकुला ने कहा आज का मानव मस्तिष्क रोगग्रस्त है। कभी-कभी उसे उद्धका ज्वर आता है। गौतम बुद्ध संसार के मानव मानस के समस्त रोगों के बहुत बड़े वैद्य थे। बुद्ध ने मनुष्य के आन्तरिक परिवर्तन पर जोर दिया।

थाईलैंड के प्रतिनिधि श्री धर्मवीर ने कहा कि एकमात्र हमारा ही देश ऐसा है जहाँ बौद्धधर्म और संस्कृति पूर्णरूप से सुरक्षित है तथा वहाँ के लोग बुद्ध धर्मानुयायी हैं।

लंका के गृहमन्त्री श्री रत्ननायक ने कहा कि शान्ति के लिए जो लोग प्रयत्नशील हैं वे आज किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये हैं। विनाश और अन्धकार की शक्तियाँ आज जगत् को घेरे हैं। घृणा दावाग्नि की तरह चतुर्दिक फैल रही है अतः मानव का सम्पूर्ण विनाश सुनिश्चित है। स्पष्ट है कि यह सब कुछ अज्ञान के कारण हो रहा है। अतः आवश्यक है कि मनुष्य को इस अज्ञानान्धकार से मुक्त करने के लिए धर्म का उपदेश किया जाय। इसीलिये इस सम्मेलन का महत्व है।

प्रस्ताव—सम्मेलन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि भगवान् बुद्ध की जयन्ती वैशाख पूर्णिमा के दिन सम्पूर्ण भारत में सार्वजनिक अवकाश दिवस घोषित करके मनायी जाय। सम्मेलन द्वारा दूसरी माँग यह भी की गयी कि भारत भर में विद्यमान बौद्ध धर्म-स्थानों की समुचित रक्षा हो। सम्मेलन के अध्यक्ष डाक्टर राधाकृष्णन् ने वचन दिया कि इन सुझावों को भारत सरकार के समक्ष पेश कर दूँगा।

रात्रि में ८ बजे से १० बजे तक उसी पांडाल में एक संगीत सम्मेलन हुआ, जिसमें लखनऊ, पूना, मद्रास आदि के संगीत विद्यालयों के आचार्य एवं छात्र भाग लिए थे।

विहार का उद्घाटन और अस्थि स्थापना—दूसरे दिन प्रातः काल सभी लोग उदयगिरि की गुफायें देखने गए। अपराह्न में विहारोद्घाटन कार्य हुआ और अस्थियों की स्थापना हुई। इस अवसर पर पं० नेहरू, डा० राधाकृष्णन् ऊ नू आदि के भाषण हुए। पं० नेहरू ने भाषण करते हुए विश्व की समग्र जनता से वैयक्तिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल के लिए भगवान् बुद्ध के प्रेम, दया तथा सहिष्णुता के सिद्धान्तों को अपनाने की अपील की।

नेहरूजी ने कहा कि अस्थियों का साँची में पुनः स्थापन हमें भारत के महान् भूतकाल की याद दिलाता है, साथ ही हृदय में पुनः यह विश्वास उत्पन्न करता है कि देशवासियों के जीवन में नयी चेतना का आविर्भाव होगा।

आपने कहा कि आज की तथाकथित प्रगतिशीलता तथा शोरगुल में मनुष्य यह भूल रहा है कि तलवार के बलपर स्थापित की गयी शांति स्थायी नहीं होती। अब वह समय आ गया है जब कि दुनिया को यह तय करना है कि उसे युद्ध और उसके बाद होनेवाले सर्वनाश का मार्ग अपनाना है या बुद्ध और गांधी का मार्ग। नेहरूजी ने कहा इस शताब्दि में दो महायुद्ध हो चुके हैं। उनसे हमारी कितनी समस्याएँ सुलझी हैं।

प्रधान मन्त्री ने यह आशा प्रकट की कि भारत के पड़ोसी बौद्ध देश लंका, बर्मा आदि विश्व में भगवान् बुद्ध के सन्देशों के प्रचार तथा शांति स्थापन के कार्य में सहयोग करेंगे।

नेहरूजी ने कहा कि हमने अपना राष्ट्र-चिह्न अशोक सिंह रखा है तथा राष्ट्रध्वज में अशोकचक्र को स्थान दिया है। इसका कारण यही है कि ये चिह्न शांति के प्रतीक हैं। भारत अपने पूर्वजों द्वारा दिखलाये गये इस मार्ग पर चलना चाहता है और संसार को युद्ध की विभीषिका से बचाने के लिए, जो भी प्रयत्न उससे संभव होगा वह करता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरूजी ने अपने भाषण के अंत में यह आशा प्रकट की कि हर व्यक्ति इस विहार के महत्व को ही नहीं महसूस करेगा बल्कि ऐसा ही एक मन्दिर अपने हृदय में भी बनाने की कोशिश करेगा जहाँ वह अपने मार्ग दर्शन के लिए अपनी पूर्ण स्मृतियों को जाग्रत रख सके।

विहार में लगाये जाने के लिए लंका से लाये गये 'बोधिवृक्ष' की कलम का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि किसी समय भारत ने यह पौधा लंका भेजा था, उस समय वहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ था। अब पुनः लंका से उस वृक्ष की कलम साँची में लगाने के लिए लायी गयी है। आशा है—इससे यहाँ बुद्ध के सन्देश का नये जोश और उत्साह से जनता में प्रचार होगा।

बोधिवृक्ष की शाखा का रोपण—मन्दिर के बाहर भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू तथा बर्मा के प्रधान मन्त्री श्री नू ने बुद्धगया के बोधि वृक्ष की शाखा का रोपण किया। इसी बोधिवृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था। लंका में अनुराधपुर के बोधि वृक्ष की एक शाखा का सिक्कम के महाराजकुमार ने भी रोपण किया।

साँची का नया विहार—नया विहार साँची की पहाड़ी पर अनेक बौद्ध मन्दिरों के खण्डहरों के मध्य में बना है। महाबोधि सोसाइटी ने इसका निर्माण किया है। काम में लाये गये पत्थर का चौरा, नागौरी एवं उदयगिरि के आसपास बिखरे हुए वे ही पत्थर हैं जिनका प्राचीन विहारों एवं मन्दिरों के निर्माण में उपयोग किया गया था।

महाबोधि सभा के कार्यकर्त्ता—इस समारोह में महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्री देवप्रियबलि सिंह, उपमंत्री भिक्षु एम० संघरत्न एवं भिक्षु जिनरत्न ने बड़ा ही परिश्रम किया। इन कार्यकर्त्ताओं के अतिरिक्त अन्य सभी ने भी यथायोग्य कार्य-सम्पादन में सहयोग दिया। भिक्षु एम० संघरत्न जी उत्सव के समाप्त हो जाने पर भी १५ दिनों तक साँची विहार की देखभाल करने के प्रबन्ध में लगे रहे।

लखनऊ में बौद्ध सभा—गत २ दिसम्बर को लखनऊ के कैसर बाग बारादरी में उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री पं० गोविन्द बल्लभ पन्त की अध्यक्षता में एक बौद्ध सभा हुई जिसका आयोजन श्री गंगाचरण लाल (ओ० एस० डी० फार रेलवेज) और भिक्षु प्रज्ञानन्द जी ने किया था। सभा में लंका के भिक्षु नारद ने भाषण देते हुए कहा—

सारे संसार में बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ता जा रहा है। आपने कहा कि भारत के हिन्दुओं ने तथागत को भगवान् का सम्मान प्रदान करके और अपनी राष्ट्रपताका में धर्म-चक्र स्थापित करके संसार का हृदय जीत लिया है। उन्होंने अपनी उदारता का परम्परागत परिचय दिया है। 'फिर भी' मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि बुद्ध की जन्म भूमि भारत में बुद्धजयन्ती की सार्वजनिक छुट्टी नहीं दी जाती जब कि लंका में बुद्ध की जीवन घटनाओं के सम्बन्ध में ७ सार्वजनिक छुट्टियाँ मिलती हैं। भारत में मुहम्मद साहिब और ईसा के जन्म दिनों पर छुट्टियाँ होती हैं। जब कि बुद्ध के अपने ही देश में उनके जन्म दिन पर छुट्टी नहीं होती।

आपने कहा कि कुछ लोगों की यह धारण है कि बुद्ध-धर्म हिन्दू धर्म से निकला है—यह निराधार है क्योंकि स्वतः तथागत ने कहा है कि "मैं अपना स्वयं शिक्षक हूँ" और जिस सत्य का उन्होंने अनुसन्धान किया उसे पहले कभी नहीं सुना गया था। आपने कहा कि बौद्ध धर्म धर्म से अधिक महत्व जीव को देता है। बौद्ध धर्म वास्तव में साध्य नहीं साधन मात्र है। ईश्वर को न मानकर वह कर्म पर विश्वास करता है। आत्मा की अनश्वरता और जीव के पुनर्जन्म पर उसे विश्वास नहीं—वह शरीर के पुनर्जन्म पर जोर देता है। वास्तव में वह मानव-जीवन के प्रतिक्षण परिवर्तन पर विश्वास करता है। बौद्ध-धर्म २५०० वर्षों से संसार के लगभग चौथाई भूभाग पर फैला हुआ है किन्तु उसके कारण एक बूँद भी रक्त कहीं नहीं बहा। अतएव आज के हिंसामय संसार में बौद्धधर्म के प्रचार का यही स्वर्ण अवसर है।

उत्तरप्रदेश के मुख्य मंत्री गोविन्दबल्लभ पन्त ने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कहा कि हमें गर्व है कि भगवान् बुद्ध का अवतार हमारे महान् देश में हुआ। आज भी हम यद्यपि सभी धर्मों का आदर करते हैं, फिर भी बौद्धधर्म के प्रति हमारी विशेष श्रद्धा है।

श्री गंगाचरण लाल के धन्यवाद देने के बाद सभा समाप्त हुई। इस सभा में साँची से लौटनेवाले कई दर्जन भिक्षु और यात्री भी सम्मिलित हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धचर्य्या

भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों के सम्बन्ध में, भारतीय भाषाओं में जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें विशालता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'बुद्धचर्य्या' सभी से बढ़कर है। त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र सम्बन्धी जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, 'बुद्धचर्य्या' में उस सारी सामग्री का वैज्ञानिक संकलन कर, अविकल अनुवाद दिया गया है। 'बुद्धचर्य्या' को यदि समस्त सुत्तपिटक और विनयपिटक का सार कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

बीस वर्ष पहले उसका प्रथम संस्करण छपा था। बहुत दिनों से उसकी माँग रहने पर भी इस व्यय-साध्य ग्रन्थ का दूसरा संस्करण न हो सका। ग्रन्थ की विशालता और कागज आदि के दुर्लभ होने के साथ-साथ आज के प्रकाशक और पाठक की 'रुचि' भी इस विलम्ब के लिये उत्तरदायी है।

महाबोधि सभा ने ग्रन्थ के महात्म्य का ख्याल कर हिन्दी पाठकों की प्रामाणिक साहित्यप्रियता के भरोसे ही इसके प्रकाशन का व्यय-भार वहन किया है।

किसी भी पुस्तकालय में और विशेषरूप से बौद्ध-साहित्य प्रेमी किसी भी भाई बहिन के पुस्तकालय में 'बुद्धचर्य्या' रहनी ही चाहिए।

बड़े आकार के छः सौ तीस पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८) है। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

मिलने का पता :—

१. महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, (बनारस)
२. महाबोधि पुस्तक भण्डार, ४ ए बङ्किम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२
३. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धविहार, रीडिंग रोड, नई दिल्ली
४. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धगया (बिहार)

हमारा निमन्त्रण

हम अपने कृपालु पाठकों को 'धर्मदूत' की सहायता कर पुण्यार्जन करने के लिए निमन्त्रण देते हैं। 'धर्मदूत' के ग्राहकों की संख्या बढ़ा कर आप इसकी सहायता कर सकते हैं। ध्यान रखें 'धर्मदूत' का प्रचार करना तथागत की अमरवाणी का प्रचार करना है, जिसके प्रचार की इस समय अत्यन्त आवश्यकता है। आपका यह प्रचार 'धर्मदान' होगा, जो सब दानों में श्रेष्ठ होता है।

"धर्मदूत" ही क्यों पढ़ें ?

क्योंकि :—

१. यह भगवान् बुद्ध का सन्देश घर-घर पहुँचाने वाला हिन्दी का एकमात्र पत्र है।
२. यह अहिंसा के बल पर उपार्जित स्वतन्त्र भारत और उसके बाहर नेपाल, लङ्का, बर्मा, लद्दाख, पूर्वी-पाकिस्तान आदि देशों में प्रतिमास अहिंसा, प्रेम और दया के मूल सिद्धान्त को लेकर पहुँचता है।
३. इसमें देश तथा विदेश के बौद्ध विद्वानों के धर्म, संस्कृति, दर्शन, योग आदि विषयों पर लेख रहते हैं।
४. सारे संसार के बौद्धों की धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ इसमें पढ़ने को मिलती हैं।
५. सर्व-स्वातन्त्र्य का उपदेश देने वाले भगवान् बुद्ध का विचार-दर्शन इसी में होता है।

व्यवस्थापक—'धर्मदूत', सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

OCT 1953

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय — राहुल सांकृत्यायन	६)	भगवान् हमारे गौतम बुद्ध — प्रो० मनोरञ्जन प्रसाद	—)
मज्झिम निकाय — ,, ,,	८)	बुद्धदेव — शरत् कुमार राय	१।।)
निनय पिटक — ,, ,,	८)	थेरी गाथाएँ — भरतसिंह उपाध्याय	१।।)
सुत्तनिपात — भिक्षु धर्मरत्न	२।।)	बुद्ध और बौद्ध साधक — ,,	१।।)
खुद्दकपाठ — ,,	।)	तथागत का प्रथम उपदेश — भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मपद — अवधकिशोर नारायण	१।।)	कुशीनगर का इतिहास — ,, ,,	२।।)
जातक — भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १,२ ७।।),	७।।)	पालि-पाठ-माला — ,, ,,	१)
,, ,, (भाग ३)	१०)	जातिभेद और बुद्ध — ,, ,,	।।)
पालि महाव्याकरण — भिक्षु जगदीश काश्यप	५।।)	ब्राह्मण धम्मिय सुत्त — ,, ,,	=)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा — श्री देवमित्त धर्मपाल	।—)	तेलकटाह गाथा — ,, ,,	।)
तथागत — भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१।।)	बौद्ध शिशु बोध — ,, ,,	।)
बुद्ध और उनके अनुचर — ,,	१।।।)	सारनाथ दिग्दर्शन — ,, ,,	।)
बौद्धचर्य्या पद्धति — बोधानन्द महास्थविर	१।।)	कुशीनगर-दिग्दर्शन — ,, ,,	।)
बुद्धचर्य्या — राहुल सांकृत्यायन, सजिल्द	८)	लंका-यात्रा — ,, ,,	१।।)
सरल पालि शिक्षा — भिक्षु सद्धातिस्स	१।।)	पालि जातकावली — बटुकनाथ शर्मा	२)
बौद्ध कहानियाँ — व्यथित हृदय	१।।)	बुद्ध वचन — भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	।।)
बुद्ध कीर्तन — प्रेमसिंह चौहान	१।।)	बुद्ध-शतकम् — ,, ,,	।)
बुद्धार्चन — ,, ,,	।)	महापरिनिर्वाण सूत्र — भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बोधिद्रुम (कविता) — सुमन वात्स्यायन	।=)	बुद्ध-अर्चना (कविता) — कुमारी विद्या	≡)
महाकारुणिक तथागत — वेदराज प्रसाद	।।।)	तिब्बत में बौद्ध धर्म — राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा — भिक्षु धर्मरक्षित	६)	चरियापिटक — डा० विमलाचरण लाहा	५)
विसुद्धिमग्गदीपिका — धर्मानन्द कौशाम्बी	३।।)	सुत्तनिपात — भिक्षु धर्मरत्न	२।।)
नवनीत टीका — ,, ,,	२।।)	खुद्दकपाठ — ,,	।)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो — ,, ,,	२।।)	धम्मसंगणी — श्री वापट	८)
महापरिनिब्बाणसुत्त — भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)	अत्थसालिनी — ,,	८)
तेलकटाह गाथा — भिक्षु धर्मरक्षित	।)	पातिमोक्ख — ,,	१)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त — ,,	।)	सिङ्गाल सुत्तं — भिक्षु ऊ कित्तिमा	।।)
पालि-पाठ-माला — ,,	१)		

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक — भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक — ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीरचौरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-पत्रिका
गुरुकुल कांगड़ी

धर्मदूत

सारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

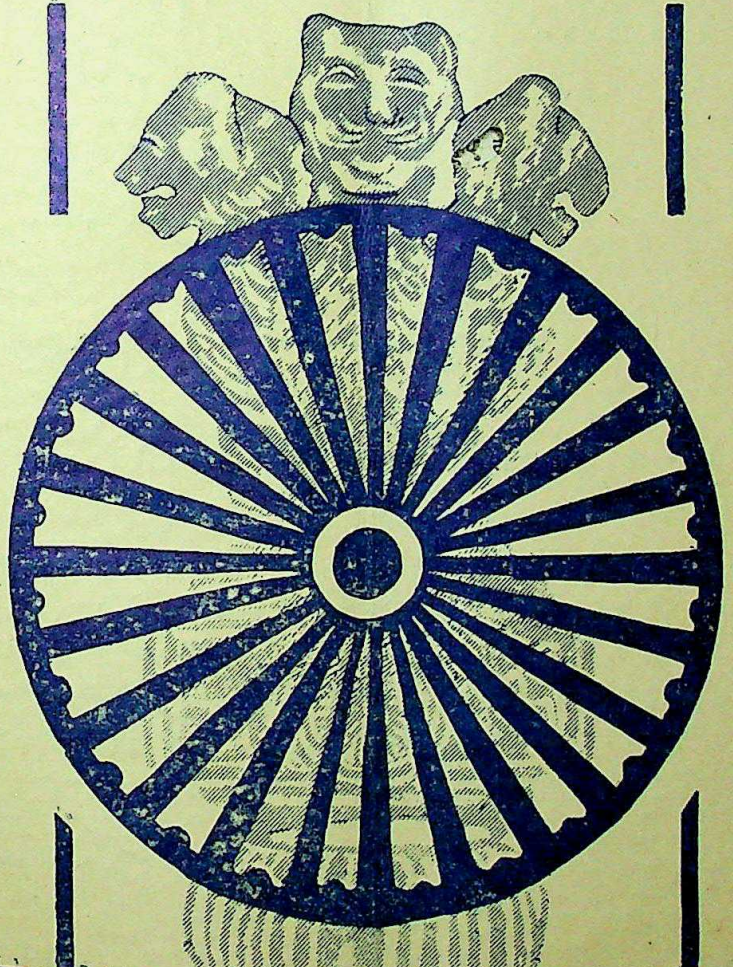

फरवरी १९५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनामृत—कामभोग दुःखदायक हैं	...	२३७
२. बौद्ध दर्शन—आचार्य नरेन्द्रदेव	...	२३८
३. धर्मदीप जले (कविता)—श्रीश्यामसुन्दर 'अशान्त'	...	२४२
४. जहाँ बुद्ध-परिनिर्वाण हुआ था—श्री के० एम० मुंशी	...	२४३
५. राजगृह-दार्शनिकों का केन्द्र—श्रीचन्द्रिका सिंह उपासक	...	२४६
६. आह्वान (कविता)—श्री रामचन्द्र लाल	...	२४९
७. मलय प्राद्वीप के बौद्ध अभिलेख—डा० एन० पी० चक्रवर्ती	...	२५०
८. कामना (कविता)—सुश्री कुमारी विद्या	...	२५१
९. बौद्धयोगी के पत्र—श्री योगी	...	२५२
१०. बौद्धप्रदेश लाहुल के संस्मरण—लामा अङ्गरूप लाहुली	...	२५३
११. नालन्दा विश्वविद्यालय का पठन-पाठन—श्री सुमन वात्स्यायन	...	२५४
१२. नये प्रकाशन		२५७
१३. बौद्ध-जगत्		२५९

'धर्मदूत' के नियम—

१—"धर्मदूत" भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मासिक मुखपत्र है; जो प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४ - लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिये।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख या कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—"धर्मदूत" का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक

"धर्मदूत" सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १७	सारनाथ, फरवरी	बु० सं० २४९६ / ई० सं० १९५३	अङ्क १०

बुद्ध-वचनामृत

काम-भोग दुःखदायक हैं

"भिक्षुओ ! मैं तुम्हें कहता हूँ, तुम्हें बतलाता हूँ, दुःशील (दुराचारी), पापधर्मी, अपवित्र, सन्देह के साथ काम करनेवाले, छिपे-छिपे कर्म करनेवाले अश्रमण, जो कि श्रमण होने का दावा करता है, अ-ब्रह्मचारी, जो कि ब्रह्मचारी होने का दावा करता है, भीतर गन्दगी से भरे हुए अवश्रुत (= उत्पन्न राग आदि से भींगा), कूराकरकट के समान हुए के लिए यही उत्तम है जो कि उस आदिप्त, धधकते, एक-लपट हुए आग के बहुत बड़े ढेर का आलिंगन करके उसके पास बैठे या सोये। सो किस कारण ? भिक्षुओ ! वह उसके कारण मृत्यु को प्राप्त होगा या मृत्यु-मात्र के दुःख को, किन्तु शरीर छूटने पर मरकर नरक में नहीं उत्पन्न होगा और जो कि भिक्षुओ ! दुःशील कन्या (स्त्री) के साथ बैठे या सोये, वह उसके बहुत दिनों के अहित और दुःख के लिये होगा, क्योंकि शरीर छूटने पर वह नरक में उत्पन्न होगा।

अग्गिक्खन्धालिङ्गन दुक्खाति दुक्खं कटुकं फलं।
अविजहतो काम सुखं कुतो भिन्न सीलस्स ॥

आग के ढेर के आलिंगन के दुःख से भी अत्यन्त दुःखदायक और कडुआ फल देनेवाले काम-सुख को नहीं त्यागनेवाले शील-रहित (भिक्षु) को सुख कहाँ ?

—अंगुत्तर नि० ७, ७, १०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध दर्शन

आचार्य नरेन्द्रदेव, कुलपति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भारत के जितने दर्शन हैं उनका लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। इस अर्थ में सब दर्शन मोक्ष शास्त्र हैं। विज्ञान भिक्षु सांख्य प्रवचन भाष्य की भूमिका में लिखते हैं कि मोक्ष शास्त्र चिकित्सा शास्त्र के समान चतुर्व्यूह है। जिस प्रकार रोग, आरोग्य, रोग का निदान और औषध यह चार व्यूह (समूह) चिकित्सा शास्त्र के प्रतिपाद्य हैं उसी प्रकार हेय, हान, हेय-हेतु और हानोपाय यह चार मोक्ष शास्त्र के प्रतिपाद्य हैं। त्रिविध दुःख 'हेय' है, उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति 'हान' है, अविद्या 'हेय-हेतु' है और तत्वज्ञान 'हानोपाय' है। यही चार व्यूह पातंजल योग सूत्र में पाये जाते हैं, किन्तु न्याय शास्त्र में हेय-हेतु को हेय के अन्तर्भूत माना है; 'हान' को तत्वज्ञान बताया है और 'उपाय' शास्त्र है। न्याय शास्त्र में इनको अर्थपद कहते हैं। वाचस्पति मिश्र (तात्पर्य टीका) के अनुसार अर्थपद का अर्थ पुरुषार्थ का स्थान है। वार्तिककार कहते हैं कि सब अध्यात्म विद्याओं में सब आचार्य इन चार अर्थ पदों का वर्णन करते हैं। न्याय की परिभाषा में यह चार अर्थपद इस प्रकार हैं:—(१) हेय अर्थात् दुःख और उसका निर्वर्तक (उत्पादक) अर्थात् दुःख हेतु; (२) आत्यन्तिक हान अर्थात् दुःख निवृत्ति रूप मोक्ष का कारण अर्थात् तत्वज्ञान; (३) उसका उपाय (शास्त्र) (४) अधिगन्तव्य अर्थात् लभ्य मोक्ष (१।१।१ पर न्याय भाष्य) इसी प्रकार बौद्ध दर्शन की चतुःसूत्री है, यह चार आर्य सत्य हैं:—दुःख, दुःख हेतु, दुःखनिरोध और दुःखनिरोध गामिनी प्रतिपत्ति (मार्ग)।

सांख्य शास्त्र के अनुसार प्रकृति और पुरुष के संयोग द्वारा जो अविवेक होता है वह दुःख का हेतु है और विवेक ख्याति अर्थात् तत्वज्ञान ही दुःखनिवृत्ति का उपाय है। क्योंकि इस शास्त्र में संख्या के सम्यग् विवेक से आत्मा का वर्णन है इसलिये इसे सांख्य शास्त्र कहते हैं। न्याय के अनुसार दुःख के अपाय से अर्थात् आसन्न विमुक्ति से निःश्रेयस की सिद्धि होती है। इसमें उपात्त जन्म का त्याग और अपर जन्म का अग्रहण होता है, इस अपर्यन्त अवस्था को अपवर्ग कहते हैं। प्रमाणादि षोडश पदार्थ का तत्वज्ञान मोक्ष का कारण बताया गया है। इन पदार्थों में से प्रमेय पदार्थ का तत्वज्ञान ही मोक्ष-लाभ का साक्षात् कारण है। शेष १५ पदार्थों का तत्वज्ञान प्रमेय-तत्वज्ञान का संपादक और रक्षक है। यह तत्वज्ञान मोक्ष लाभ का पारंपर्येण कारण है। संसार का बीज मिथ्याज्ञान है। इसका उच्छेद करके ही तत्वज्ञान मोक्ष का कारण होता है। अनात्म में आत्मग्रह मिथ्या ज्ञान है। 'मैं हूँ' इस प्रकार का मोह, अहंकार अर्थात् अनात्मा को (देहादिको) आत्मा के रूप में देखना यह दृष्टि, अहंकार है। शरीर-इन्द्रिय-मन-वेदना-बुद्धि वह पदार्थसमूह (अर्थजात) है जिसके विषय में अहंकार होता है। जीव शरीरादि पदार्थ-समूह को (मैं हूँ) यह निश्चित कर शरीरादि के उच्छेद को आत्मोच्छेद मानता है। वह शरीरादि की चिरस्थिति के लिए व्याकुल होता है और बारबार उसका ग्रहण करता है। उसका ग्रहण कर जन्म मरण के निमित्त यत्नशील होता है।

किन्तु जो दुःख को, दुःखायतन को तथा दुःखानुषक्त सुख को देखता है कि यह सब दुःख है (सर्वमिदं दुःखमिति पश्यति) वह दुःख की परिज्ञा करता है। परिज्ञात दुःख प्रहीण होता है। इस प्रकार वह दोषों को और कर्म को दुःख हेतु के रूप में देखता है तथा दोषों का प्रहाण करता है। दोषों के प्रहीण होने पर पुनर्जन्म के प्रति प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रकार प्रमेयों का चतुर्विध विभाग कर अभ्यास करने से सम्यग् दर्शन अर्थात् यथार्थभूत अवबोध या तत्वज्ञान की उत्पत्ति होती है।

वैशेषिक शास्त्र में पदार्थों के तत्वज्ञान से निःश्रेयस की सिद्धि होती है। वैशेषिक शास्त्र के अनुसार (१।१।४) यह तत्वज्ञान द्रव्यादि पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य से उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। साधर्म्य समान धर्म और वैधर्म्य विरुद्ध धर्म है अर्थात् पदार्थों के सामान्य और विशेष लक्षण (अनुगत धर्म, व्यावृत्त धर्म) के ज्ञान से तत्वज्ञान होता है।

सब मोक्ष शास्त्रों में तत्व-साक्षात्कार के लिए योगाभ्यास का प्रयोजन बताया गया है। न्याय दर्शन में (४।२।३८ समाधि विशेषाभ्यासात्) कहा है कि योगाभ्यास के कारण तत्व-बुद्धि उत्पन्न होती है। यम-नियम द्वारा तथा योगशास्त्र विहित अध्यात्म विधि और उपाय-समूह द्वारा आत्म संस्कार करना चाहिये (न्याय० ४।२।४६ तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः)। योगाभ्यास जनित जो धर्म हैं वह जन्मान्तर में भी अनुवर्तन करता है। तत्वज्ञान के निमित्त यह धर्म वृद्धि की पराकाष्ठा को प्राप्त होता है (प्रचयकाष्ठागत) और उसकी सहायता से किसी जन्म में समाधि-प्रयत्न प्रकृष्ट होता है। तब समाधि विशेष उत्पन्न होता है। उससे तत्वज्ञान लाभ होता है। वैशेषिक शास्त्र में कहा है कि आत्म-प्रत्यक्ष योगियों को होता है तथा आत्म-कर्म से मोक्ष होता है (६।२।१६)। यह न्याय का आत्म-संस्कार है। उपस्कार में कहा है कि आत्म-कर्म, श्रवण, मनन, योगाभ्यास, निदिध्यासन, आसन, प्राणायाम और शम दम है। योग योग शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। इस कारण न्याय-वैशेषिक में संकेत मात्र किया है कि तन्त्रान्तर से इस आत्म-कर्म की प्रतिपत्ति होती है। वेदान्त में कहा है कि सूक्ष्मदर्शी योगी प्रज्ञान द्वारा आत्माको जान सकता है।

इसी प्रकार बौद्धधर्म में भी तत्वज्ञान के लिये योग का प्रयोजन बताया गया है। बौद्ध ईश्वर और आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते तथापि उनका भी यही प्रयोजन है कि दुःख से अत्यन्त निवृत्ति हो और निर्वाण का लाभ हो और गन्तव्य स्थान पर पहुँचने का मार्ग भी प्रायः समान है। योग का उपाय सब को समान रूप से स्वीकृत है।

बौद्धागम के अनुसार 'धर्म' वह है जो स्वलक्षण धारण करता है। धर्म पुष्पों के समान अवकीर्ण हैं। धर्म सास्रव और अनास्रव हैं। अतः धर्मों को चुनते हैं और उनका विभाग करते हैं:—यह अनास्रव हैं, यह सास्रव हैं। इस प्रक्रिया को धर्म-प्रविचय-कहते हैं। धर्म-प्रविचय के बिना क्लेशों की शान्ति का कोई उपाय नहीं है और क्लेशों के कारण ही लोक इस भवार्णव में भ्रमित होता है। धर्म-प्रविचय प्रज्ञा द्वारा होता है। यथा पदार्थों के तत्वज्ञान से निःश्रेयस की सिद्धि होती है उसी प्रकार सब धर्मों में अग्र निर्वाण की प्राप्ति धर्म-प्रविचय से होती है। यही परम ज्ञान का अर्थ है। यद्यपि भगवान् बुद्ध की शिक्षा सूत्रान्तों में बिखरी हुई पाई जाती है तथापि आर्य-धर्म शास्त्र में एक पद्धति के रूप में यह उपनिबद्ध है। इसे अभिधर्म इसलिए कहते हैं क्योंकि यह धर्मों के स्वलक्षण और सामान्य लक्षण के अभिमुख है।

वह धर्म कौन हैं जिनका प्रविचय अभिधर्म में उपदिष्ट है? धर्म सास्रव और अनास्रव हैं। एक दूसरा विभाग भी है। धर्म संस्कृत और असंस्कृत हैं। निर्वाण तथा दो और धर्म असंस्कृत हैं। अन्य धर्म संस्कृत हैं। यह सास्रव या अनास्रव हैं। आर्य मार्ग को वर्जित कर अन्य संस्कृत धर्म सास्रव हैं। यह सास्रव हैं क्योंकि यहाँ मलै प्रतिष्ठा अथवा पुष्टि लाभ करते हैं। संस्कृत धर्म वह धर्म है जिसे प्रत्ययों ने अन्योक्त समागम से, एक दूसरे की अपेक्षा कर, किया है (कृत)। संस्कृत सहेतुक हैं। सास्रव संस्कृत उपादान स्कन्ध कहलाते हैं। उपादान क्लेश हैं। उपादान स्कन्ध संज्ञा इसलिए हैं क्योंकि यह क्लेशों से संभूत हैं अथवा यह क्लेशविधेय हैं। सास्रव संस्कृत को दुःख, समुदय, लोक, दृष्टिस्थान तथा भव भी कहते हैं। 'दुःख' शब्द लोक में अनुभूत दुःख वेदना मात्र नहीं है। 'दुःख' उपादान स्कन्ध हैं। न्याय भाष्य में इसका अर्थ 'जन्म' है (तेन दुःखेन जन्मना अत्यन्तं विमुक्तिरप वर्गः—१।१।२२ पर वात्स्यायन भाष्य)। वाचस्पति मिश्र टीका में कहते हैं 'दुःख शब्देन सर्वे शरीरादय उच्यन्ते' अर्थात् दुःख शब्द से सर्व शरीरादि उक्त हैं। वह पुनः कहते हैं कि यह भ्रम न होना चाहिये कि यह मुख्य दुःख है। इसी प्रकार जयन्त कहते हैं (न्याय मंजरी, पृ० ५०७):—न च मुख्यमेव दुखं अवमृश्यते किन्तु तत्साधनं तदनुसक्तं सर्वमेव। इसी प्रकार अभिधर्म कोश (६।३) में कहा है कि पंच उपादान स्कन्ध (रूपादि स्कन्ध पंचक) 'दुःख' कहलाते हैं। वेदना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक देश ही दुःखस्वभाव नहीं है। त्रिदुःखता के कारण सब सास्रव संस्कृत धर्म अविशेषतः दुःख हैं। मनाप भी विपरिणाम-दुःखता के कारण दुःख है। सास्रव संस्कृत को 'समुदाय' भी कहते हैं क्योंकि दुःख के यह हेतुभूत हैं। यह 'लोक' है क्योंकि विनाश प्रवृत्त है। यह दृष्टि 'स्थान' हैं क्योंकि पांच दृष्टियाँ यहाँ अवस्थान और प्रतिष्ठालाभ करती हैं। यह 'भव' है क्योंकि इनका अस्तित्व है।

ऊपर कहा गया है कि संस्कृत धर्म रूपादि स्कन्ध पंचक हैं। 'स्कन्ध' का अर्थ 'राशि' है। स्कन्धों में असंस्कृत संगृहीत नहीं हैं। स्कन्ध यह हैं:—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। रूप स्कन्ध में पांच इन्द्रिय, पांच अर्थ या विषय और अविज्ञप्ति संगृहीत हैं। पांच इन्द्रिय यह हैं—चक्षु श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय। पांच अर्थ रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्प्रष्टव्य हैं। चक्षुरादि इन्द्रिय इन अर्थों के विज्ञान के आश्रय हैं। विज्ञप्ति और समाधि से संभूत कुशल-अकुशल रूप 'अविज्ञप्ति' हैं। यद्यपि यह अनुबन्ध काय विज्ञप्ति और वाग्विज्ञप्ति के सदृश्य रूप स्वभाव और क्रिया स्वभाव हैं तथापि यह विज्ञप्ति के सदृश्य दूसरे को कुछ विज्ञप्ति नहीं करता। अतः इसे अविज्ञप्ति कहते हैं। यह रूप स्कन्ध में गिनाया गया है। सौत्रान्तिक कहते हैं कि अविज्ञप्ति द्रव्यतः नहीं है। उनके अनुसार यह रूप नहीं है। वैभाषिक कहते हैं कि यदि अविज्ञप्ति नहीं है तो जो स्वयं कर्म नहीं करता किन्तु दूसरे को आज्ञा देता है वह कर्मपथ से समन्वागत नहीं होगा। सौत्रान्तिक अविज्ञप्ति न मान कर सन्तति परिणाम-विशेष मानते हैं। उनके अनुसार जब बध के लिए नियुक्त पुरुष बध करता है तब यह न्याय है कि प्रयोक्ता के चित्त-सन्तान में एक सूक्ष्म परिणाम विशेष होता है जिसके प्रभाव से यह सन्तान आयति में फल की अभिनिष्पत्ति करेगा। इस परिणाम-विशेष को कायिक कहते हैं यदि वह काय क्रिया का फल होता है और वाचिक कहते हैं यदि वह वाक्-क्रिया का फल होता है।

वेदना स्कन्ध त्रिविध अनुभूति है:—सुख, दुःख, अदुःखसुख। संज्ञा निमित्त का उद्ग्रहण है। नीलत्व, पीतत्व, दीर्घत्व, ह्रसत्व, पुरुषत्व, स्त्रीत्व आदि विविध स्वभावों का उद्ग्रहण संज्ञा स्कन्ध है। अन्य चार स्कन्धों से भिन्न संस्कार स्कन्ध है। सर्व संस्कृत संस्कार हैं किन्तु संस्कार स्कन्ध उन्हीं संस्कृतों के लिए प्रयुक्त होता है जो अन्य चार स्कन्धों में संगृहीत नहीं हैं। यह सत्य है कि सूत्र में कहा है कि "संस्कार स्कन्ध ६ चेतनाकाय है" और इस लक्षण के अनुसार संस्कार स्कन्ध में सब विप्रयुक्त संस्कार और चेतना वर्जित संप्रयुक्त संस्कार का असंग्रह है। किन्तु अभिसंस्करण में चेतना का प्रधान्य होने से सूत्र का ऐसा निर्देश है। चेतना कर्म स्वभाव है, लक्षणतः यह वह हेतु है जो जन्म का अभिसंस्करण करता है। अन्यथा सूत्र निर्देश का अक्षरार्थ लेने से यह परिणाम होगा कि चेतना व्यतिरिक्त शेष चैतसिक (संप्रयुक्त) धर्म और सर्वचित्त विप्रयुक्त धर्म किसी स्कन्ध में संगृहीत न होंगे। इसलिए इनका दुःखसमुदय—सत्यत्व न होगा, न परीक्षा होगी, न प्रहाण, किन्तु भगवद्-वचन है कि "यदि एक धर्म भी अनभिज्ञात, अपरिज्ञात हो तो मैं कहता हूँ कि दुःख का अन्त नहीं किया जा सकता"। अतः चैत्त और चित्त विप्रयुक्त का कलाप संस्कार स्कन्ध में संगृहीत है। विज्ञान प्रत्येक विषय की उपलब्धि है। विज्ञान स्कन्ध ६ विज्ञानकाय हैं—चक्षुर्विज्ञान.....मनोविज्ञान।

देशना के तीन प्रकार हैं—स्कन्ध, आयतन और धातु। आयतन १२ और धातु १८ हैं। रूप स्कन्ध, ५ चक्षुरादि और ५ रूपादि तथा अविज्ञप्ति है। चक्षुरादि और रूपादि १० आयतन १० धातु हैं। वेदना स्कन्ध, संज्ञा स्कन्ध, संस्कार स्कन्ध तथा अविज्ञप्ति और तीन असंस्कृत यह सात वस्तु धर्मायतन, धर्म धातु हैं। विज्ञान मन-आयतन है। यह सप्त धातु अर्थात् ६ विज्ञान काय (विज्ञान धातु) मनोधातु या मनस् है। प्रश्न है कि ६ विज्ञानकाय अर्थात् ५ इन्द्रिय विज्ञान और मनोविज्ञान से भिन्न मनस् या मनोधातु क्या हो सकता है। विज्ञान से भिन्न-भिन्न मनस् नहीं है। इन ६ विज्ञानों में से जो विज्ञान अन्तरातीत है वह मनस् है। जो २ विज्ञान समनन्तर निरुद्ध होता है वह २ मनोधातु की आख्या प्राप्त करता है। षष्ठ विज्ञानधातु का आश्रय प्रसिद्ध करने के लिए भी मनोधातु की गणना करते हैं। इस प्रकार ६ आश्रय, इन्द्रिय, आश्रयषट्क पर आश्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६ विज्ञान और ६ आलम्बन या विषय के व्यवस्थान से १८ धातु होते हैं। मनस् का आलम्बन धर्म धातु कहलाता है।

सर्वसंस्कृत धर्म स्कन्ध-संग्रह में संगृहीत हैं। सर्व सास्रव धर्म उपादान स्कन्ध संग्रह में संग्रहीत हैं। सर्व धर्म आयतन और धातु संग्रह में संग्रहीत हैं। 'आयतन' उन्हें कहते हैं जो चित्त—चैत्त के आय को फैलाते हैं। धातु स्वजाति के आकर हैं।

स्कन्धादि त्रय की देशना इसलिए है क्योंकि मोह इन्द्रिय और रुचि के तीन तीन प्रकार हैं। मोह त्रिविध है :—एक चैत्तों का पिंडतः ग्रहण कर उन्हीं को आत्मतः ग्रहण करते हैं और इस प्रकार संमूढ़ होते हैं। एक रूप पिंड को ही आत्मतः गृहीत कर संमूढ़ होते हैं; एक रूप और चित्त पिंडात्मक ग्रहण कर संमूढ़ होते हैं।

श्रद्धादि इन्द्रिय त्रिविध हैं—तीक्ष्ण, मध्य, मृदु। रुचि भी त्रिविध है:—एक की संक्षिप्त रुचि होती है, एक की मध्य, एक की विस्तीर्ण। स्कन्ध-देशना पहले प्रकार के श्रावकों के लिए है जो चित्तों के विषय में संमूढ़ होते हैं। इनकी इन्द्रियाँ तीक्ष्ण हैं और रुचि संक्षिप्त देशना में होती है। आयतन देशना दूसरे प्रकार के लिए और धातु देशना तीसरे प्रकार के लिए है।

इसका क्या कारण है कि वेदना और संज्ञा पृथक् स्कन्ध हैं और अन्य सब चैत्त धर्म संस्कार में संगृहीत हैं। क्योंकि यह विवाद मूल-हेतु हैं और संसार के कारण हैं इसलिए यह पृथक् स्कन्ध व्यवस्थित होते हैं। कामाध्यवसाय और दृष्टि अभिष्वंग विवाद मूल हैं। वेदना और संज्ञा संसार के भी कारण हैं। जो वेदना गृद्ध है और जिसकी संज्ञा विपर्यस्त है वह संसार में जन्म-परम्परा करता है।

हम सास्रव संस्कृत धर्मों का निर्देश कर चुके हैं। मार्ग सत्य और तीन असंस्कृत अनास्रव हैं। आकाश, प्रतिसंख्या निरोध और अप्रतिसंख्या निरोध संस्कृत हैं। आकाश वह है जो आवृत नहीं करता यह रूप से आवृत भी नहीं होता। यहाँ रूप की अबाधगति है। सौत्रान्तिक आकाश को वस्तुसत् नहीं मानते। उनके अनुसार रूपाभाव मात्र के लिये आकाश का व्यवहार होता है। सास्रव धर्मों से विसंयोग प्रतिसंख्या या निर्वाण है। प्रतिसंख्या से अनास्रव प्रज्ञा का, दुःखादि आर्य सत्यों के ज्ञान का, ग्रहण होता है। इस प्रज्ञा विशेष से जिस निरोध की प्राप्ति होती है वह प्रतिसंख्या निरोध कहलाता है। एक अन्य निरोध जो उत्पाद में अत्यन्त विघ्नभूत है अप्रतिसंख्या निरोध कहलाता है। इस निरोध की प्राप्ति प्रत्यय-वैकल्प से होती है। यथा जब चक्षुरिन्द्रिय और मन-इन्द्रिय एक रूप में व्यासक्त होते हैं। यह तीन असंस्कृत अध्व-विनिर्मुक्त हैं। सौत्रान्तिक कहते हैं कि यह दो निरोध भी अभाव हैं। अतः निर्वाण अद्रव्य, निःस्वभाव है। सर्वास्तिवादी इस अर्थ को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि असंस्कृत द्रव्य हैं किन्तु वह नित्य, निष्क्रिय हैं। अतः कोई हेतु नहीं है जो उनका उत्पाद करता है और कोई फल नहीं है जिसका यह उत्पाद करते हैं।

धर्मों के इन विभागों में आत्मा, पुरुष का स्थान नहीं है। आत्मा प्रज्ञप्ति मात्र है। जिस प्रकार 'रथ' नाम का कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, वह शब्द मात्र है, परमार्थ में अंगू हैं भार है, उसी प्रकार आत्मा, सत्व, जीव, नाम-रूप मात्र (स्कन्धपंचक हैं) यह कोई अविपरिणामी शाश्वत पदार्थ नहीं हैं। बौद्ध अनीश्वर और अनात्मवादी हैं। सर्वास्तिवादी सस्वभाववादी, बहुधर्मवादी हैं, किन्तु वह कोई शाश्वत पदार्थ नहीं मानते उनके द्रव्य सत् हैं किन्तु क्षणिक हैं। यह द्रव्य चैत्त और रूपी धर्म हैं। सर्वास्तिवाद में किसी मूल कारण की व्यवस्था नहीं है। वह नहीं मानते कि ईश्वर, महादेव या वासुदेव, पुरुष प्रधानादिक किसी एक कारण से सर्व जगत् की प्रवृत्ति होती है। यदि भावों की उत्पत्ति एक कारण से होती तो सर्व जगत् की उत्पति युगपत् होती किन्तु हम देखते हैं वि भावों का क्रमसंभव है।

बौद्ध दर्शन ४ हैं।—सर्वास्तवाद, सौत्रान्तिक, विज्ञान वाद (योगाचार) और माध्यमिक (शून्यवाद)। सर्वास्तवाद के अनुसार बाह्य जगत् प्रत्यक्ष का विषय है। वह प्रकृति और मनस् स्वतन्त्र सत्ता मानता है। प्रकृति की प्रत्यक्ष उपलब्धि मनस् से होती है। सौत्रान्तिक भी बाह्य जगत् की सत्ता मानते हैं किन्तु उनके अनुसार यह प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। बाह्य वस्तुओं का मनस् में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवभास होता है जिससे हम बाह्य वस्तुओं की सत्ता का अनुमान करते हैं। यह दोनों मतवाद बहुस्वभाववादी हैं। विज्ञानवाद के अनुसार ज्ञान के प्रत्यक्ष विषय मनस् के विकल्प हैं। इस वाद में त्रैधातुक को चित्तमात्र व्यवस्थापित किया है। इससे बाह्यार्थ का प्रतिषेध होता है। रूपादि अर्थ के बिना ही रूपादि विज्ञप्ति उत्पन्न होती है। यह विज्ञान ही है (चित्त, मनस्, विज्ञान और विज्ञप्ति पर्याय हैं) जो अर्थ के रूप में अवभासित होता है। वस्तुतः अर्थ असत् हैं। यह वैसे ही जैसे तिमिर का एक रोगी असत्कल्प केश, चन्द्रादि का दर्शन करता है। अर्थ की सत्ता नहीं है। माध्यमिक (शून्यवादी) ग्राह्य-ग्राहक दोनों की सत्ता का प्रपतख्यान करते हैं और इनके परे शून्य तक जाते हैं जो ज्ञानातीत है। विज्ञानवादी दोनों को अयथार्थ मतवाद मानते हैं और दोनों से व्यावृत होते हैं। सर्वास्तिवादी विज्ञान और विज्ञेय दोनों का परमार्थतः अस्तित्व नहीं मानते केवल संवृतितः मानते हैं। विज्ञानवादी केवल चित्त, विज्ञान को द्रव्यसत् मानते हैं और जो विविध आत्मोपचार और धर्मोपचार प्रचलित हैं उनको वह मिथ्योपचार मानते हैं। उनके अनुसार परिकल्पित आत्मा और धर्म विज्ञान और विज्ञप्ति के परिणाम मात्र हैं, चित्त-चैत्त एक मात्र वस्तुसत् है।

धर्म-दीप जले

श्री श्यामसुन्दर 'अशान्त'

बहुजन हिताय बहुजन सुखाय यह दीप जले
यह दीप जले, हो दूर गहन तम अंधकार
यह दीप जल, हो सत्य अहिंसा का प्रसार
यह दीप जले, हो आलोकित मानव का मन
यह दीप जले, हो उद्भासित जग का कण-कण
यह दीप जले, हों आज भावनाएँ प्रबुद्ध
यह दीप जले, हो अब न सत्य का द्वार रुद्ध
यह दीप जले, मिट सके स्वार्थ का अंधकार
यह दीप जले, हिल उठे प्राण का तार-तार
यह दीप जले, हों आज मनुज के भाव एक
यह दीप जले, जागे मन का सोया विवेक
यह दीप जले, हो सके शान्त भव का क्रन्दन
यह दीप जले, फिर गूँज सके जागृति का स्वन
यह दीप जले, फिर बहे स्नेह की अमृत धार
यह दीप जले, मिट सके मनुज मन का विकार
सबके उर में ऐसा शुभ सात्विक भाव पले
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय यह दीप जले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुशीनगर की पवित्र भूमि

जहाँ बुद्ध-परिनिर्वाण हुआ था

श्री के० एम० मुंशी, राज्यपाल उत्तर प्रदेश

१० सितम्बर को हम कसया गये, जहाँ प्राचीन कुशीनगर (कुसिनारा) था और जहाँ पर कि ई० पूर्व ५४३ में वैशाख पूर्णिमा को भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। सौभाग्यतः पुरातत्व के जिज्ञासु देवरिया के जिलाधीश हमारे पथ-प्रदर्शक थे।

हम सर्वप्रथम बीच के प्रधान मन्दिर के पास गये, जहाँ कि भगवान् की परिनिर्वाण मूर्ति है। मूर्ति सोये हुए आकार में है, जिसकी पूजा हुएनसांग ने भी की थी और जो हरिबल द्वारा बनवाई गई थी। यह प्रधान विहार पाँचवीं शताब्दी में निर्मित हुआ था। भगवान् बुद्ध ने इसी स्थान पर अन्तिम साँस ली थी, पहले यहाँ शाल-वाटिका थी।

हमने वहाँ एक बर्मी भिक्षु का दर्शन किया, जो पास की एक धर्मशाला में रहते हैं जिसे बर्मा देशवासी भक्तों ने बनवाया है। उन्हें योग का अद्भुत अभ्यास है। वह ५६ वर्ष से यहाँ रहते हैं।

मैं एक चीनी भिक्षु से भी मिला, जो सब दिन अपने मन्दिर में ही रहते हैं। सबसे पहले जब वे यहाँ आये तो उन्होंने रात्रि के समय मन्दिर में सोना चाहा, किन्तु पुरातत्व-विभाग ने इसकी अनुमति न दी। इससे वे हतोत्साह नहीं हुए। वे वहाँ से थोड़ी दूर पर स्थित रामाभार चले गये जहाँ भवानी-स्तूप है। उसके ऊपर उगे हुए एक वृक्ष पर रहना प्रारम्भ किये और तब से रातों दिन वहीं रहते हैं। ईंटों से निर्मित यह स्तूप ५१ फीट ऊँचा है। यह स्तूप उसी स्थान पर बना था जहाँ पर भगवान् बुद्ध का मृत शरीर जलाया गया था।

हम लोगों ने मन्दिर के पीछे एक दूसरे बड़े स्तूप को भी देखा। अस्थि और लेख के साथ इसके भीतर से एक पात्र पाया गया था। हम लोगों ने कुछ और भी विहारों और खोदे हुए स्थानों को देखा।

तत्पश्चात् वहाँ से थोड़ी दूर पर एक नवनिर्मित मंदिर को देखने गये। वहाँ एक बहुत बड़ी काले पत्थर की भगवान् बुद्ध की बैठी हुई मूर्ति है। यह भूमिस्पर्श मुद्रा में है। यह उस घटना का स्मरण दिलाती है जब कि भगवान् बुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के लिए बोधि वृक्ष के नीचे बैठे थे और पृथ्वी को साक्षी ठहराये थे। इस मूर्ति को जनता 'माथाकुँवर' (मृत कुमार) कहा करती है। यह मूर्ति दो भागों में टूटी हुई पाई गई थी। इस समय इसके दोनों भाग जोड़ दिये गये हैं और ऊपर से सोने की पत्तियाँ चढ़ा दी गई हैं।

वहाँ ध्वंसित प्राकार है। इसीलिए यह स्थान "माथाकुँवर का कोट" (=मृत कुमार का किला) के नाम से पुकारा जाता है। हम लोग रामाभार नहीं जा सके। किन्तु उसे दूरबीन की सहायता से देखे। उसके ऊपर उगे हुए वृक्षों एवं चीनी भिक्षु के सोने के स्थान को भी देखे।

जब भगवान् बुद्ध का मृत शरीर जलाया गया था, तब यहाँ हिरण्यवती नदी बह रही थी। इस समय वह ६ मील दूर चली गई है और उसे छोटी गंडक कहा जाता है।

२५०० वर्ष पूर्व लिच्छवियों के पड़ोसी मल्ल राजा इस स्थान पर राज्य करते थे। लिच्छवियों की राजधानी बिहार प्रान्त की वैशाली नगरी थी और मल्लों की कुशीनगर। जब बुद्ध का परिनिर्वाण हो गया तो उस स्थान पर एक स्तूप का निर्माण हुआ था। उसके भीतर अस्थि रखी गई थी।...

अशोक ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। कहा जाता है कि उसने बुद्ध की सब अस्थियों को संग्रह किया उन्हें थोड़े-थोड़े भागों में विभक्त किया और अपने सम्पूर्ण राज्य में उनपर स्तूपों का निर्माण कराया। सम्भवतः उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय यहाँ की अस्थि भी निकाली गई थी और नये स्तूप में एक भाग की स्थापना हुई थी।

चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में चन्द्रगुप्त प्रथम जो गुप्त साम्राज्य का संस्थापक था, अपनी विजय-यात्रा प्रारम्भ की थी। उसका विवाह लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवी से हुआ था और लिच्छवियों का विवाह सम्बन्ध कुशीनगर के मल्लों से था। इस प्रकार दोनों गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत थे।

लगभग ४०० ई० में फाहियान ने इस पवित्र स्थान की यात्रा की थी और इसका वर्णन लिखा था। उसके थोड़े दिनों के बाद हरिबल ने प्रधान मन्दिर को बनवाया; जिसमें भगवान् की लेटी हुई एक विशाल मूर्ति स्थापित की गई जो इस समय मन्दिर में वर्तमान है। मन्दिर के पीछे के स्तूप का पुनः कुमारगुप्त प्रथम के समय में जीर्णोद्धार हुआ था। इस नये स्तूप में अस्थियाँ, सिक्के और जवाहरात भी रखे गये थे। उनके साथ एक लेख भी स्थापित किया गया था।

हर्ष के समय यह स्थान अवश्य ही तीर्थ स्थान के रूप में प्रसिद्ध रहा होगा। क्योंकि उसके समय में ६३१ ई० में हुएनसांग कुशीनगर आया था। उसने यहाँ के सम्पूर्ण मन्दिरों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

बौद्धधर्म की अवनति

बौद्धधर्म धीरे-धीरे इस भूमि से अदृश्य हो गया। इस स्थान पर जंगल उग आया। इसकी मरम्मत न हो पाई। यहाँ के विहार ध्वस्त हो गये। इनमें से एक बुरी तरह जला डाला गया। मूर्तियाँ भूमि के अन्दर छिप गईं।

गोरखपुर प्रदेश में जहाँ कि यह स्थान स्थित है, सम्भवतः कलचुरी राजाओं के समय से राजपूतों का राज्य था। अकबर ने गोरखपुर को जीता था। उसके पश्चात् अवध के नवाब ने इस पर राज्य किया था और उसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी। डा० बुकानन ने इस स्थान का पता लगाया। वे सन् १८३७ ई० में यहाँ आये। श्री कनिंघम ने सन् १८६२–६६ में इसकी जाँच की और इसका वर्णन किया। श्री कारलाइल ने १८७६–७७ में इसका पूर्ण अध्ययन किया तथा खोदवाया। श्री वी० स्मिथ ने इस स्थान की पुनः जाँच की। उनके बाद डा० वोगल ने १९०४–७ में, और हीरानन्द शास्त्री ने १९१०–१२ में इसकी खोदाई कराई।

सन् १८७७ में कारलाइल ने परिनिर्वाण मूर्ति के दोनों भागों को जोड़ा और स्तूप के अन्दर स्थापित अस्थियाँ को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया, किन्तु असफल रहे। हीरानन्द शास्त्री बड़े भाग्यवान थे, उन्होंने अस्थियों के रखने के घड़े तथा लेख को प्राप्त कर लिया।

लखनऊ लौटने पर हम लोग लेख और घड़े को देखने के लिए संग्रहालय गये और उन्हें देखा। ताँबे के घड़े, उसके भीतर से मिले जवाहरात, टूटी हुई ताँबे की मंजूषा, उसके भीतर से मिली चाँदी की मंजूषा एवं उसके भीतर से प्राप्त सोने की मंजूषा—सब संग्रहालय में मिले। किन्तु हम लोग पवित्र अस्थियों का दर्शन करने गये थे। यह जानकर मुझे बड़ा ही खेद हुआ कि वे स्तूप की खोदाई के समय ही गायब हो गई थीं।

हमने कुमारगुप्त प्रथम के सिक्के देखे, जो घड़े में रखे हुए मिले थे। ताम्र-पत्र भी असाधारण था। इसकी पहली पंक्ति खोदकर लिखी हुई थी, किन्तु बाकी सब ऐसी रोशनाई से लिखी गई थीं जो बहुत दिनों तक रह सकें।

किन्तु, कुशीनगर के प्रति मेरा हृदय सम्मान एवं श्रद्धा से ओतप्रोत था। यह एक दुःखदायी दृश्य था। यह संसार के अत्यधिक पवित्र स्थानों में से एक था। जैसा कि सौराष्ट्र प्रदेश में एक भव्य हिरण्यवती के किनारे देहोत्सर्ग है, जहाँ कि श्रीकृष्ण ने नश्वर शरीर का त्याग किया था।

मैंने बड़े ही दुःख का अनुभव किया। सन् १०५० से १८०० ई० तक, इन ७५० वर्षों का मातृभूमि भारत का कितना भयानक स्वप्न था! किन्तु अँग्रेजों के आगमन एवं कुछ उत्साही अँग्रेज-विद्वानों के कार्यों से भारत के पवित्र स्थानों के नष्टावशेष बचे हैं, जिनकी अभी तक खोदाई नहीं हो पाई है। किन्तु इस समय हम उसके लिए क्या करते हैं? यह पुरातत्व की आश्चर्यजनक बात है। इससे अधिक बढ़कर कोई भी साधन नहीं है जिससे कि हम प्राचीन भारत की ऐतिहासिक महानता को जान सकें।

देहोत्सर्ग की भी वही बुरी गति हुई है। अब भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्र हो गया है। सोमनाथ और देहोत्सर्ग दोनों स्थानों के मन्दिर पुनः तैयार हो गये हैं। किन्तु क्यों हमने अपने उत्साह को बनाये नहीं रखा है, और सर्वत्र मन्दिरों के जीर्णोद्धार का कार्य नहीं जारी रखा है, जिससे कि हमें अपने महान् अतीत का ज्ञान हो सके?

भगवान् बुद्ध का अन्त समय

कुशीनगर के अतीत काल के दृश्य मेरी आँखों के सामने आ गये। यह २४०० वर्ष पहले की घटना है। वैशाख के महीने की पूर्णमासी के दो दिन पूर्व का समय था। लोहार चुन्द के लिये यह एक बहुत बड़ा पर्व था। भगवान् बुद्ध अपने अनुयाइयों के साथ उसके घर भोजन करने आये थे। चुंद का पुत्र भगवान् की सेवा में था; उसने उनके सामने कुकुरमुत्ते की मसालेदार तरकारी खाने के लिये लाकर रखी।

भोजन समाप्त हो गया। बुद्ध अपने अनुयाइयों के साथ शालवन को लौट गये जो नदी हिरण्यवती के किनारे से कुछ दूरी पर है।

उन दिनों सुभद्र भी कुशीनगर में रह रहे थे। वे १२० वर्ष के वयोवृद्ध ब्राह्मण और शास्त्रों के पंडित थे। उनको भी पता चला कि भगवान् बुद्ध शालवन में ठहरे हैं। यह वयोवृद्ध पंडित सृष्टि के रहस्य की खोज में लगे थे। इन्होंने अपना सारा जीवन इसी में बिता दिया था परन्तु रहस्योद्घाटन में असफल रहे थे वे अब उस व्यक्ति के मुख से सत्य को सुनना चाहते थे जिसका नाम सभी की जबानों पर था।

पालकी पर सवार हो करके भगवान् से मिलने आये। वन में कुञ्ज के समीप चारों ओर भक्तगण चिन्तित मुद्रा में बैठे थे। चुन्द के घर के भोजन से उनके गुरु बीमार पड़ गये थे। उनका शरीर धीरे धीरे गिर रहा था। भक्तों के प्रधान आनन्द ने ब्राह्मण से कहा, "इस समय यह उचित नहीं है कि आपको सत्य के उपदेश लेने के लिए भगवान् के समक्ष ले जाया जाय।"

कुंज के नीचे भगवान् मुलायम हरी पत्तियों के बिस्तर पर लेटे हुए थे। एक तकिया उनके सिर के नीचे थी और दूसरी उनकी पैरों के बीच। वे यह जान गये थे कि उनका अन्तकाल आ गया है। वे शान्ति के साथ मृत्यु का इन्तजार कर रहे थे। उनको सुभद्र और आनन्द की बातचीत सुनायी पड़ी। उन्होंने अपनी आँखें—जो एक डूबते हुए सूर्य की तरह चमक रही थीं—खोलीं। उन्होंने समीप खड़े एक शिष्य को बुलाया।

"आनन्द से कहो कि उस आदमी को ज्ञान प्राप्त करने के लिए आने दे" भगवान् ने कहा। बुद्ध प्रकाश दिखाने में किसी के लिए आनाकानी नहीं कर सकते थे।

सुभद्र अन्दर आया और उनको दंडवत किया। बुद्ध ने प्रेमपूर्वक दृष्टि से उसकी ओर देखा और आशीर्वाद दिया।

सुभद्र हाथ जोड़े अपना अंधकार दूर करने के लिए बैठा रहा। भगवान् ने पूछा, "क्यों यहाँ शालवन में मुझसे मिलने आये हो?"

सुभद्र ने श्रद्धा से उत्तर दिया, "६ गुरुओं ने ६ प्रकार की बातें बतायी हैं। मैंने सबका अध्ययन किया है परन्तु मेरे मन में अब भी शंका है। मैं सत्य को जानना चाहता हूँ।"

मृत्यु का भय बुद्ध को डिगा न सका। अपने शिष्यों की सहायता से वे पश्चिम की दिशा की ओर मुड़े और काँपती आवाज में कहा, "मैंने सभी ६ गुरुओं के उपदेशों का अध्ययन किया। परन्तु मुझे उनमें सत्यता नहीं दिखायी पड़ी। इसलिए मैंने २९ वर्ष की अवस्था से ही सत्य की खोज में घर त्याग दिया। बोधि वृक्ष के नीचे मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ और सत्य का अनुभव हुआ। उसके बारे में मैंने सभी कुछ जाना—अष्टांगिक मार्ग जिनसे होकर मनुष्य को गुजरना पड़ता है और वे ४ प्रकार के सत्य जिसे उसे जानना आवश्यक है। वहाँ से मैं वाराणसी (बनारस) गया और वहाँ से सारनाथ। कौंडिन्य और अन्य ४ भिक्षुओं को इसके बारे में उपदेश दिया। ५१ वर्ष हो गये हैं जब कि मैंने ज्ञान को प्राप्त किया था। अनुशासन, समाधि और अध्यात्मिक ज्ञान—ये ही सत्य हैं।

भगवान् ने सुभद्र को चार प्रकार के सत्यों तथा अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया।

"यही है जो कुछ मैं जान पाया हूँ," भगवान् ने कहा, "और सब चीजें व्यर्थ हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधर भगवान् उपदेश दे रहे थे इधर सुभद्र की आँखों से आँसू गिर रहे थे। सुभद्र ने उत्तर दिया, 'भगवान् मैंने सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मुझे अपनी शरण में लें और भिक्षु बनाने की कृपा करें।"

इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया "इसके लिये ४ माह का परीक्षणकाल है। क्या तुम इसके लिये तैयार हो?"

सुभद्र ने उत्तर दिया, "मैं काफी लम्बे चार वर्षों के परीक्षणकाल के लिये तैयार हूँ। आप ही मुझे बचा सकते हैं। मैं सदा सत्य की राह पर चलूँगा।"

बुद्ध ने एक मिनट के लिये अपनी आँखें मूँद लीं। उनके सामने शंका से परे और ज्ञान का नया अनुभवी समुद्र खड़ा था। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और कहा, "जैसा मैंने पहले ही कहा है सब कुछ मनुष्य पर निर्भर करता है। सुभद्र अब तुम्हारे लिये परीक्षणकाल से गुजरने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें दीक्षा दी जायगी।"

आनन्द ने सुभद्र को दीक्षा दी। अन्धकार फैल रहा था। कुंज के पास शिष्यगण चिन्तित मुद्रा में बैठे थे और देख रहे थे उस महान् गुरु को मृत्यु से शांतिपूर्वक लड़ते हुए।

राजगृह–दार्शनिकों का केन्द्र

श्री चन्द्रिका सिंह उपासक

सात छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरी हुई मगध की यह उपत्यका—राजगृह भारत के सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं धार्मिक इतिहास की एक प्रमुख शृंखला है। भारत में यही एक ऐसा अनुपम स्थल है जो अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। प्रायः ऐतिहासिक, राजनैतिक विषयों की क्रीड़ाभूमि भी यह राजगृह रही है। महाभारत में वर्णित बृहद्रथ एवं उसके पुत्र जरासन्ध के आख्यानों का सम्बन्ध इसी राजगृह से जोड़ा जाता है। उनकी ऐतिहासिक पुष्टि आधुनिक पुरातत्ववेत्ता यहाँ के अनेक स्थलों से करते हैं। अतिप्राचीन दार्शनिक एवं महाभारत काल के प्रमुख राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण तथा जरासन्ध का युद्ध क्षेत्र भी कहीं इसी राजगृह के खंडहरों में ही है।

ऐतिहासिक युग में राजगृह समृद्धिशाली प्रमुख व्यापारी केन्द्रों में से एक रही है। उत्तरी भारत के वाराणसी, कौसाम्बी, श्रावस्ती, साकेत आदि ऐसे प्रमुख नगरों में राजगृह का भी उल्लेख पाते हैं।[1] बुद्ध पूर्व तथा बुद्ध कालीन भारत में राजगृह मगध की राजधानी रही है। भगवान् बुद्ध के समय में मगध नरेश बिम्बिसार तथा उनके पुत्र अजातशत्रु के समय में तो यह खूब फूली फली। यह उसका सबसे समुन्नत काल था। भारत के उत्तर-पूर्वी अञ्चल की यह सर्वप्रधान नगरी थी। राजगृह सामरिक दृष्टियों से अभेद्य होने के कारण राजनैतिक महत्व भी रखती थी। इसकी सातों पहाड़ियों को एकाबद्ध करके इसे एक सुरक्षित किले का रूप दे दिया गया था। अभी भी वे ऊँची-ऊँची प्राकारों के अवशेष इन पहाड़ियों के बीच में स्पष्ट हैं। इन प्राकारों के कारण राजगृह में आवागमन का केवल एक ही मार्ग था। कोशल सम्राट प्रसेनजित जब अजातशत्रु के यहाँ अपनी मदद के लिये पहुँचा था उस समय रात्रि हो गई थी और नगर का प्रमुख-द्वार बन्द हो गया था अतः उसे वह रात्रि नगर के द्वार पर बाहर ही कहीं काटनी पड़ी थी। आज भी राजगृह पर विहंगम दृष्टि डालने से स्पष्ट पता चलता है कि कभी राजगृह सामरिक दृष्टि से एक अजेय एवं अभेद्य दुर्ग तुल्य नगर था।

यह नगर व्यापार की दृष्टि से भी बड़ा ही महत्वपूर्ण था। यहाँ से दूर-दूर प्रदेशों को सड़कें जाती थीं। यही कारण था कि यहाँ का व्यापार भी उन्नत था। दूर-दूर के सार्थवाह अपनी पाँच-पाँच सौ बैल गाड़ियों में वस्तुएँ लादकर यहाँ आते थे। श्रावस्ती राजगृह से ४५ योजन (प्रायः ३६० मील) थी। वहाँ से राजगृह का व्यापार बराबर होता था। बौद्ध-कालीन भारत का सबसे प्रमुख

१ दीघनिकाय—महापरिब्बान सुत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारी अनाथपिण्डिक प्रायः व्यापार के लिये राजगृह आता था। उसके पुत्र का विवाह भी राजगृह के एक महाधनिक सेठ के यहाँ हुआ था। उसकी भगवान् बुद्ध से प्रथम-भेंट यहीं राजगृह में ही होती है और बुद्ध इसी धनिक सेठ के आमन्त्रण पर श्रावस्ती जाते हैं जहाँ उन्हें ५४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं से निर्मित जेतवन-अनाथपिण्डिक-आराम का दान मिलता है।[१]

राजगृह का राजनैतिक सम्बन्ध भी बड़ा ही विशद रहा है। बिम्बिसार द्वारा स्थापित और अजातशत्रु द्वारा सिञ्चित राजगृह का यह लघु मगध राज्य उत्तरी भारत का एक प्रमुख राज्य हो जाता है जिसका प्रताप कई शताब्दियों तक अक्षुण्ण ही नहीं बना रहता है प्रत्युत सम्राट अशोक मौर्य के काल में तो सम्पूर्ण भारतवर्ष पर राजनैतिक सत्ता स्थापित करता है और तभी भारत की सांस्कृतिक एवं धार्मिक दिग्विजय होती है। भारत का पास-पड़ोस यहाँ की संस्कृति एवं धर्म से अभिषिक्त होता है। बौद्धधर्म इसी मगध से निकल कर दूर देशों में जाकर फलता-फूलता है और आज भी उस अतीत के गौरव को देखकर हम गौरवान्वित होते हैं। राजगृह का यह मगध राज्य भारत के प्राचीन राज्यों में सर्वप्रमुख रहा है।

राजगृह की भौगोलिक परिस्थिति ऐसी रही है कि उसने राजा महाराजाओं को तो आकर्षित किया ही साथ ही साधु-सन्तों, ऋषि-मुनियों को भी आश्रय प्रदान करता रहा। भगवान् बुद्ध को अपनी कुटी के लिये तथा संघ के निवास के लिये सर्वप्रथम भूमि-दान वेणुवन यहीं राजगृह में राजा बिम्बिसार द्वारा प्राप्त हुआ था। यही नहीं बल्कि भगवान् बुद्ध गृहत्याग के उपरान्त सर्वप्रथम यहीं पर आते हैं, तदुपरान्त बुद्धगया जाते हैं। राजगृह आने का उनका एकमात्र कारण यही था कि यहाँ पर उस समय अनेक दार्शनिक-तपस्वी निवास करते थे जिनसे ज्ञान-पिपासा शान्त होने की उन्हें आशा थी।

त्रिपिटक के दीघनिकाय ग्रन्थ में एक स्थल पर यहाँ के ६२ दार्शनिकों का उल्लेख है। उन दार्शनिकों के अलग-अलग सम्प्रदाय तथा उनके मतानुयायियों की संख्या भी पर्याप्त थी, ऐसा भी उल्लेख मिलता है।[१] जैन ग्रन्थों में तो तत्कालीन जैनेतर ३६४ मतों का वर्णन आता है।[२] उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि बुद्ध-कालीन भारत धार्मिक क्रान्ति का युग था और आध्यात्मिक चिन्तन का विकाश उच्चतम शिखर पर था। उपरोक्त मतों के क्रीड़ा-स्थल की ओर जब हम ध्यान देते हैं, तो हमें राजगृह प्रमुख दिखाई देता है। राजगृह में अनेक ऐसे दार्शनिकों को पाते हैं जो अपने धर्म के प्रचार का केन्द्र इसे ही बनाये हुए थे। इतने अधिक दार्शनिक यहाँ पर क्यों जमे हुए थे और इसे क्यों अपना केन्द्र बनाये हुए थे, इसके तीन प्रमुख कारण थे। प्रथम तो राजगृह की भौगोलिक स्थिति। यहाँ की ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ, एकान्त चिन्तन के अनुकूल तो थी ही साथ ही उनका एक प्रमुख नगर से सानिध्य साधु-सन्तों की शिक्षा-समस्या को समुचित रूप से हल कर देता था। दूसरा यह कि राजगृह एक प्रमुख नगर एवं पूर्वी भारत की राजधानी था अतः वहाँ से प्रचार-कार्य दूर-दूर देशों में सुगमता से किया जा सकता था। तीसरे यहाँ के राजाओं की धार्मिक सहिष्णुता तथा उनकी पोषण प्रवृत्ति। राजा अजातशत्रु स्वयं तो बुद्ध के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करता है, साथ ही अन्य दार्शनिकों के यहाँ जाकर धार्मिक-संलाप करता है।

यों तो भगवान् बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार सर्व प्रथम सारनाथ से ही प्रारम्भ किया था और वहीं वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जाने के कारण तीन मास वर्षावास बिताया था, परन्तु बौद्ध धर्म के इतिहास को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि उनके धर्म की जड़ों का संवर्धन राजगृह से ही होता है। यहीं उन्हें सर्वप्रथम संघ के लिये भूमि-दान मिलता है साथ ही तत्कालीन मगध-सम्राट बिम्बिसार का अक्षुण्ण सहयोग भी। धार्मिक-प्रचार में राजनीति कितनी सहायक होती है इसके लिये इतिहास में सामग्री अल्प नहीं है। सम्राट बिम्बिसार का सहयोग बुद्ध के धर्मप्रचार में ऐसा योगदान था कि उसने इस धर्म की प्रगति को हजार गुना कर दिया। बिम्बिसार की परम्परा

१ जातकट्ठकथा।

१ ब्रह्मजाल सुत्त
२ उत्तराध्ययन सुत्त १८।२३ तथा सूत्रकृतांग २।२।७९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उसके पुत्र अजातशत्रु ने कायम रक्खा। स्वयं बौद्ध धर्म को स्वीकार कर इस मगध कुल उत्तरी भारत के अनेक राजाओं के सम्मुख एक आदर्श रक्खा और जिसका फल यह हुआ कि अनेक राजाओं ने इस धर्म का स्वागत किया तथा उसे संरक्षण दिया। राजाओं में यह परम्परा हजारों वर्षों तक चलती रही और बौद्ध धर्म फूलता-फलता रहा। क्या राजगृह इस पथ-प्रदर्शन से कम गौरवान्वित हुआ। बौद्ध-धर्म का राजगृह वास्तव में एक प्रधान केन्द्र था। भगवान् बुद्ध ने अपना बहुत समय यहाँ बिताया था। यहाँ की प्रायः सभी पहाड़ियाँ उनके चरण-रज से पूत हैं। उनकी मृत्यु के उपरान्त बौद्धों की प्रधान संगीति भी यहीं हुई थी जिसमें त्रिपिटक का प्रथम सम्पादन समाप्त हुआ था। उत्तरोत्तर काल में भी राजगृह बौद्ध धर्म का एक केन्द्र रहा है जिसका फल यह हुआ कि वहाँ से हटकर केवल सात मील की दूरी पर नालन्दा महा विश्वविद्यालय स्थापित हो सका।

राजगृह के ६ अन्य दार्शनिकों का नाम हमें बौद्ध साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है। उनके नाम ये थे, (१) पूरण कस्सप (२) अजित केशकम्बलि (३) पकुध कच्चायन (४) मक्खलि गोसाल (५) संजय बेलट्ठिपुत्त (६) निगण्ठनाथपुत्त।[1] हमें इन दार्शनिकों के विषय में थोड़ी बहुत बातें ज्ञात हैं। पूरण कस्सप से अजातशत्रु ने जब उनके सिद्धान्त के विषय में पूछा तब उसने जिस वाद का प्रतिपादन किया वह था "अक्रिया वाद"। वह क्रिया फल का सर्वथा निषेध करता है। कर्मों का फल प्रत्यक्ष होता है अतः लोक के कर्मों का फल परलोक में कभी नहीं हो सकता। यही पूरण कस्सप की धारणा थी।

अजित केसकम्बलि के विषय में विशेष ज्ञात नहीं परन्तु उनके विचारों से मालूम होता है कि वे एकान्त भौतिकवादी थे। पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि इन्हीं चार महाभूतों से यह शरीर बना हुआ है और मृत्यु के उपरान्त ये सभी तत्व अपने में ही लीन हो जाते हैं। मृत्यु के बाद कोई आत्मा अथवा अन्य शक्ति रहती है—ऐसा उनका विश्वास नहीं।

पकुध कच्चायन ने जगत् में सात पदार्थों की सत्ता को माना। वे हैं—चारों महाभूत, दुःख, सुख और जीवन (चैतन्य)। 'जीवन' की स्थिति को परमाणु मान कर वह आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है। इस वाद को 'अमृततावाद' कहा गया है। शस्त्र के मारने से किसी की हिंसा नहीं होती क्योंकि शस्त्र इन सप्त कायों (पदार्थों) में न पड़कर अलग विवर में गिरता है और किसी पदार्थ को उच्छिन्न नहीं करता अतः पाप नहीं होता है। भगवान् बुद्ध ने इस मत का पूर्ण खण्डन किया है।

बुद्ध कालीन इन दार्शनिकों में से मक्खलि गोसाल सबसे सम्भ्रान्त थे। उनका वर्णन—जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। वे 'आजीवक' सम्प्रदाय के एक अन्यतम उपदेष्टा थे। गोसाल का उस समय प्रभाव अधिक मालूम होता है क्योंकि हमें उनके अनेक शिष्यों का उल्लेख मिलता है। 'आजीवक' जैन-धर्म के आचारों पर आधारित 'नियतिवाद' का समर्थन करता है। उसे हम 'दैववाद' भी कह सकते हैं।

संजय वेलट्ठिपुत्त का वर्णन पालिग्रन्थों में विशेषरूप से आता है। कारण यह है कि भगवान् बुद्ध के दो महा अग्रश्रावक सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन सर्वप्रथम इसी जटाधारी दार्शनिक के यहाँ परिव्रजित हुए थे। और फिर बाद में भगवान् बुद्ध की शिक्षा के प्रभाव में आकर बौद्ध संघ में सम्मिलित हुए। संजय का मत बड़ा ही विलक्षण मालूम होता है। ये किसी भी तत्व जैसे परलोक देवता, पुण्यापुण्य के विषय में किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नहीं करते। सभी विषयों में अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, न अस्ति न नास्ति—इन चार प्रकार की कोटियों का निषेध करते हैं। इनका मत किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नहीं करता अतः यह 'अनेकान्तवाद' प्रतीत होता है। सम्भवतः ऐसे ही आधार पर महावीर का स्याद्वाद प्रतिष्ठित किया गया था।[2]

निगण्ठनातपुत्त तो जैनधर्म के प्रवर्त्तक २४ वें तीर्थंकर भगवान् महावीर ही हैं। भगवान् महावीर ने अपने धर्म का प्रथम उपदेश यहीं राजगृह में ही दिया था।

१ सुत्तनिपात, विनयपिटक, दीघनिकाय।

२ बौद्ध दर्शन-बलदेव उपाध्याय-पृ० ४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार बौद्ध धर्म में सारनाथ का महत्व है, ठीक वही महत्व जैन धर्म में राजगृह को प्राप्त है। जैन धर्म के सिद्धान्त सर्वविदित हैं। एकान्त सत्य, अहिंसा, अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य पर अवलम्बित तथा स्यादवाद से प्रतिष्ठित ही जैन धर्म है।

जैसा की ऊपर संकेत किया गया है कि इन दार्शनिकों का केन्द्र राजगृह ही रहा और उनके मतों का प्रसार कार्य भी यहीं से हुआ था। समय बीतने पर इनमें से प्रायः सभी कालकवलित हो गये। केवल जैन धर्म किसी तरह बचा रहा। परन्तु इनकी परम्पराओं को कई शताब्दियों तक विद्यमान पाते हैं। मिलिन्द पञ्ह (१ सदी ई० पू०) में इन दार्शनिकों का उल्लेख ज्यों का त्यों मिलता है। सम्भवतः इनकी गद्दियाँ इन्हीं के नाम पर अब तक चलती रहीं।[३]

३ दे० मिलिन्द प्रश्न- अनुवाद भिक्षु जगदीश काश्यप की टिप्पणी।

चाहे जो हो, परन्तु यह स्पष्ट है कि राजगृह ईस्वी पूर्व छठीं शताब्दी से ही भारत का एक प्रमुख दार्शनिक केन्द्र रहा है। हिन्दू धर्म के विकास का एक केन्द्र वाराणसी भी कहा गया है; परन्तु दार्शनिकों के अखाड़े तो हमें राजगृह में ही देखने को मिलते हैं। जिस प्रकार मगध का इतिहास भारतीय इतिहास का एक उज्वल पृष्ठ है, उसी प्रकार मगध की यह आदि राजधानी—राजगृह भारत के सांस्कृतिक, धार्मिक इतिहास में अपना प्रमुख महत्व रखती है। राजगृह की पहाड़ियाँ, उसकी प्रत्येक गुफायें, उसके उपवन तथा उपत्यकायें ऐसे महान दार्शनिकों, ऋषियों के निवास स्थल हैं जिन्होंने हमारे बौद्धिक ज्ञान को उर्वर बना कर संसार के सम्मुख हमें समुन्नत रक्खा। राजगृह का यह महत्व अतुलनीय है।

आह्वान

श्री रामचन्द्र लाल

हे सिद्ध बुद्ध भगवान,
दया के धाम,
धरा पर धाओ,
सब हाहाकार मिटाओ।
कोमल करुणा बरसा दो,
हिंसा की आग बुझा दो,
दो दया-प्रेम का दान,
करो कल्यान,
न देर लगाओ,
आँसू पर बहते आओ।
ममता, मद, मोह मिटा दो,
समता का पाठ पढ़ा दो,
बन रही भूमि श्मशान,
मचा कुहराम,
सुधा ढरकाओ,
आओ करुणाकर आओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयप्रायद्वीप के बौद्ध अभिलेख

डाक्टर एन० पी० चक्रवर्ती

बुकिट मरियाम के निकट खेडा में एक प्राचीन भवन में जो केवल १० वर्ग फीट के ही लगभग था, उसके भग्नावशेषों में से, कर्नल जेम्स लो को एक प्रकार की स्लेट जैसी सिल्ली मिली, जिस पर बौद्ध धर्म-पद्धतियां खुदी हुई थीं। शायद यह छोटा सा भवन, जहां यह सिल्ली प्राप्त हुई, किसी बौद्ध भिक्षु का झोपड़ा रहा होगा। श्री कर्ण का, जिन्होंने इस संस्कृत अभिलेख को पढ़ा, कहना है कि यह अभिलेख उस अन्य अभिलेख से पुराना नहीं हो सकता जिसे लो ने, वेलेजली प्रदेश के उत्तरी ज़िले में रेतीले भाग की ओर प्राचीन खण्डहरों की खुदाई करते समय प्राप्त किया था। खुदा हुआ पत्थर किसी स्तम्भ का टूटा हुआ ऊपरी भाग मालूम पड़ता है। इस की एक प्रति पर स्तूप के चिह्न भी दीखते हैं। दोनों [illegible] एक पंक्ति लिखी है जिस पर वही दोहा है जो खेडा शिला पर। मीनार के किनारे के पास एक खण्डित अभिलेख है, जिससे पता चलता है कि यह समुद्र-व्यापारी पावन बुद्ध-गुप्त का जो रक्तमृत्तिका[1] नामक स्थान में रहता था, एक मन्दिर को दान करने का स्मारक था। लिखाई की दक्षिण भारतीय शैली, चम्पा और दक्षिणी जावा की और पल्लव-प्रकार की लिपि से पूर्णतया मिलती है, और इसी से कर्ण ने इसकी अनुमानित तिथि ४०० ईस्वी निश्चित की है। कर्नल लो भी स्वयं हाथी पर चढ़ कर चेराक तोकुम की ग्रेनेहिट चट्टान के ढालूभाग की ओर सात अभिलेखों की अनुकृति लेने गया। चेराक तोकुम वेलेज़ली प्रदेश के मध्य के पास वाले भाग में स्थित है। वे पुरालिपि में सम्मिलित होने के अतिरिक्त और किसी उपयोग के नहीं हैं, क्योंकि वे बहुत छोटे और अस्पष्ट हैं। पहला तो ठीक बुद्धगुप्त वाले अभिलेख जैसे अक्षरों में है। दूसरे के अक्षर कर्ण ने छठीं शताब्दी से पूर्व के नहीं बताए, और जो पश्चिमी दक्खिन में पट्टदाकल के और भववर्मन के प्राचीन कम्बुज अभिलेखों जैसे हैं। कुछ बिखरी हुई मिट्टी की टिक्कियां खेडा में एक गुहा के फर्श के ९ फीट नीचे, १०वीं या ७वीं शताब्दी ईस्वी की उत्तर भारतीय नागरी लिपि से लिखे, कुछ अभी तक बिना पढ़े अभिलेख भी मिले हैं। त्रांग की पांच प्रतिज्ञात्मक टिक्कियों का सम्बन्ध महायान बौद्ध धर्म के चिह्नों से जोड़ा जा चुका है, जो ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चिमी समूह की हैं, और जिसके अक्षर कर्णदेव के बनारस दानपत्र और कन्नौज के राठौड़ों के दानपत्रों के अक्षरों से मिलते हैं। दूसरी ओर बुद्ध और बोधिसत्व हैं।

सिंहपुर नदी के मुख पर एक बड़ी उत्कीर्ण चट्टान मिली थी जिसके अक्षर पढ़े नहीं जा सके। बाद में यह पाषाण जन-निर्माण विभाग ने गिरवा दिया। इसके कुछ टुकड़े कलकत्ते भेजे गये। जो अभी तक ज्ञात हो सका वह इस प्रकार है कि इसकी लिपि वह है जो चौदहवीं शताब्दी के मध्य में मजपहित राज्य में प्रयोग की जाती थी।

क्योंकि इन बाद के अभिलेखों का पता नहीं चलता, इनके मूलपाठ को यहां देना सम्भव नहीं है।

यहां सभी अभिलेख मलय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट

१ रक्तमृत्तिका—इस स्थान को शायद कर्णस्वर्ण (मुर्शिदाबाद) के 'रक्तमृत्तिका विहार' से मिलाया जा सकता है जिसका उल्लेख ह्यूनत्सांग ने 'लो-तो-मो चिह्न' कह कर किया। वाटर्स का अनुवाद 'रक्तमृत' अशुद्ध है। देखिये वाटर्स II पृ० १९२ और चटर्जी—कम्बुज में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव—लेखक।

श्री बहादुर चन्द्र छाबड़ा ने भी इसे रांगामाटी (रक्तमृत्तिका) ही माना है। प्रो० हेनरी कर्ण ने इसकी पहिचान स्याम की खाड़ी में चिन्तु बन्दरगाह से की थी, जो अशुद्ध है। देखिये 'इतिहास', वृहत्तर भारत अंक में छाबड़ा जी का लेख 'सुदूरपूर्व में भारतीय उपनिवेश'-अनु०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर मिले हैं। परन्तु चौथी शताब्दी में पुरालिपि के अवशेष पूर्वी तट पर मिलते हैं (देखिये फिनोट—बुलेटीन कुमे-मारेक १९१० पृ० १५२–१५४)।

१. खेडा अभिलेख

ये धर्म्मा हेतुप्रभवा तेषां(हेतुं) तथागतो (ह्यवदत् ?)।
तेषां च यो निरोधो एव (ं) वादी महाश्रमण(:)॥
अज्ञानाच्चीयते कर्म जन्मद (:) कर्मकारणम्।
ज्ञानान्न क्रियते कर्म्म कर्माभावान्न जायते॥

अर्थात्—ये नियम (धर्म) कारण से ही उत्पन्न होते हैं, ऐसा तथागत ने कहा है; और इनके निरोध का उपाय क्या है, यह भी इस प्रकार महाश्रमण ने कहा है।

अज्ञान से कर्म्म सञ्चय होता है, और कर्म्म जन्म (पुनर्जन्म) का कारण है। ज्ञान से कर्म्म नहीं रहता, और कर्म्म के अभाव से जन्म नहीं होता।

ऊपर की दो पंक्तियों में से पहली बौद्ध-धर्म में पर्याप्त प्रसिद्ध हैं।

२. उत्तर वेलेजली प्रदेश का अभिलेख

इस अभिलेख में खेडा अभिलेख की पुनरावृत्ति है और अन्त में निम्नपंक्ति और है—

महानाविक (स्य) बुद्धगुप्तस्य रक्तमृत्तिकावास (स्य?)·····(दानम् ?)

अर्थात्—रक्तमृतिका निवासी महानाविक बुद्धगुप्त का (दान)। अनुवादक—बाबूराम वर्मा।

कामना

सुश्री कुमारी विद्यावती

नवगुंजित हो पुनः विश्व में, करुणा का जय गान!
सरल स्नेह, मैत्री सौरभ से, पुलके जनमन प्रान!!

अधिकारों से भरी लालसा भावुक मन की हार।
सदा जगाती विजय तृषा को, करती हाहाकार॥
शरद-इंदु-कमनीय कान्ति सी, मंजु भावना त्याग।
सोते कितने लाल धरा के, होता नर संहार॥

शुचि शीलों की मृदु वीणा से, हो मंजुल स्वर संधान।
नव गुंजित हो पुनः विश्व में, करुणा का जयगान!!

चमक उठे स्मिति की लेखा, जीवन बने उदार।
करुणा कलित मृदुल भावों से, हो नित नव शृंगार॥
तृण वीरुध लतिका लतिका में, बिखरे नव उल्लास।
महाकारुणिक की करुणा! तुम पीयूष-सी मधुधार॥

कर दो संसृति का कल्याण, सत्यपूर्ण उत्थान॥
नव गुंजित हो पुनः विश्व में, करुणा का जय गान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र संख्या—१

बौद्धयोगी के पत्र

[हमारे पाठकों की बहुत दिनों से माँग रही है कि ध्यान-भावना सम्बन्धी लेख 'धर्मदूत' में प्रकाशित किए जायँ। विषय की गम्भीरता के कारण अबतक ऐसा नहीं किया जा सका। प्रसन्नता की बात है कि हमारे 'बौद्ध योगिराज" ने यह भार अपने सिर पर ले लिया है और प्रतिमास हमारे पाठकों को पत्र भेजते रहने का संकल्प किया है। हमने उनसे प्रार्थना की है कि वे अपने पत्र सरल भाषा में दिया करें, जिससे हमारे विदेशी पाठक भी पूर्णरूप से लाभ उठा सकें। उनका पहला पत्र यहाँ दिया जा रहा है। आशा है पाठक इसे अच्छी तरह पढ़ेंगे और यदि अपनी शंकायें लिख भेजेंगे, तो 'योगिराज' उनका निवारण भी करेंगे।—संपादक]

शील-पालन

प्रिय जिज्ञासु,

तुम्हारा पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम योग की विधियाँ जानने के लिए उत्सुक हो। योग को साधारण-जन जैसा गम्भीर और कठिन [illegible]ते हैं, वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। तुम कह सकते [illegible] तब तो सभी लोग योगी हो सकते हैं। हाँ, योगी सब हो सकते हैं, आखिर मनुष्य ही तो योगी होता है, किन्तु, जब वह सांसारिक-बन्धनों से अवकाश पाये।

सांसारिक-बन्धनों से अवकाश पाने के लिए पहले शील का पालन करना बहुत आवश्यक है। शील को पालन करने से ही योगाभ्यास का काम आगे बढ़ सकता है। प्रायः देखा जाता है कि लोग शील-पालन की ओर ध्यान न देकर झट ध्यान करने बैठ जाते हैं, और किसी भी प्रकार की प्रगति न पाकर उदासीन हो सदा के लिए ध्यान करना छोड़ देते हैं। ऐसे लोगों पर मुझे बहुत तरस आता है। जब कभी मैंने ऐसे लोगों को पाया है, तब शील-पालन की ओर उनके मन को लगाया है और उन्हें ध्यान-भावना में सफल होते पाया है। इसलिए योगी को सबसे पहले अपने शील पर ध्यान देना चाहिए।

मैं जानता हूँ कि 'शील क्या है?' इसे तुम अच्छी तरह जानते हो, किन्तु तुम्हें पञ्चशील मात्र का ही ज्ञान है। धर्म-ग्रन्थों में शील कई प्रकार का बतलाया गया है और उसकी बड़ी लम्बी-चौड़ी व्याख्या की गई है। मैं इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि गृहस्थ और प्रव्रजित, सबको अपने-अपने शीलों का पालन करना चाहिए। इन्द्रियों में संयम रखना चाहिए और ग्रहण किए हुए शील का शरीर और वाणी से उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

'शील' का शाब्दिक अर्थ प्रतिष्ठा, या ठहराव (= शीलन) होता है। काय-कर्म आदि का संयम, या ठहरने के लिए आधार की भाँति कुशल-धर्मों को धारण करना तात्पर्य है।

शील-पालन में भिक्षुओं को विशेष ध्यान देना होता है, क्योंकि उन्हें अधिक शीलों का पालन करना पड़ता है। प्रातिमोक्ष, इन्द्रिय, आजीविका और प्रत्यय—इन चारों में संयम रखना परम आवश्यक है। भिक्षुओं के लिए जितने शिक्षा-पद (= नियम) हैं, उनका पालन करना प्रातिमोक्ष में संयम रखना कहा जाता है। आँख, कान, नाक, जीभ और काय—इन इन्द्रियों में संयम रखना इन्द्रिय संयम कहा जाता है।

अपनी आजीविका के लिए लोगों को आश्चर्य में डालना, ठगबाजी, अपने को या दाता को चढ़ा-बढ़ाकर कहना, जिससे कि वह कुछ दे, संकेत करना, अपने लाभ के लिए दूसरों को बुरा-भला कहना, लाभ से लाभ ढूँढ़ना इत्यादि, इस प्रकार के बुरे कामों के अनुसार होनेवाली मिथ्या आजीविका से विरत रहना आजीविका के प्रति संयमशील होना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीवर, भिक्षान्न, शयन-आसन और पथ्य (ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य) ये चार प्रत्यय कहे जाते हैं। इनमें संयम रखना प्रत्यय सम्बन्धी शील का पालन करना है।

उक्त इन चारों प्रकार के शीलों को नियमानुसार एवं श्रद्धापूर्वक भलीभांति पूर्ण करना चाहिए। कहा है—

"किकी व अण्डं चमरी व वालधिं,
पियं व पुत्तं नयनं व एककं।
तथेव सीलं अनुरक्ख-मानका,
सुपेसला होथ सदा सगारवा॥"

जैसे टिटहरी अपने अण्डे की, चमरी अपनी पूँछ की, माँ इकलौते प्रिय पुत्र की, काना अपनी अकेली आँख की रक्षा करता है, वैसे ही शील की भलीभाँति रक्षा करते हुए (शील के प्रति) सर्वदा प्रेम और गौरव करने वाले होओ।

इस प्रकार जानकर आदर के साथ शील का पालन करना चाहिए। शील-पालन के लिए धुताङ्गों का पालन भी आवश्यक होता है। बिना धुताङ्ग-पालन के शील-पालन कठिन होता है।

पत्र लम्बा हो गया। मुझे डर है कि कहीं तुम्हारा जी ऊबने न लगे। अच्छा देखो, अब मेरे चंक्रमण करने का भी समय हो गया। आज इतना ही बस। योगिराज के आशीर्वाद।

तुम्हारा—
योगी

इसिपतन मिगदाय
१—२—५३

बौद्धप्रदेश लाहुल के संस्मरण

लामा अंगरूप लाहुली

लाहुल प्रदेश जिला कांगड़ा और हिमालय की कुक्षि में स्थित अपने ढंग का एक निराला प्रदेश है। इसकी पूर्वी सीमा तिब्बत और पश्चिमी सीमा जम्मू-कश्मीर से मिली हुई है। यहाँ के निवासी अधिकतर बौद्ध हैं। इस प्रदेश के तिब्बत के निकट होने के कारण यहाँ महायान बौद्धधर्म का प्राधान्य है। लोगों के रीति-रिवाज में तिब्बतीपन एवं भारतीयता दोनों का मिश्रण है। आश्चर्य की बात तो यह है कि लाहुल की जनसंख्या लगभग १५,००० है, और चार-चार मील पर ही भाषायें बदलती जाती हैं। छोटे-से लाहुल प्रदेश में इस समय कुल सात भाषायें बोली जाती हैं। इन भाषाओं की न तो लिपि है और न तो साहित्य ही, वे केवल बोलचाल की ही भाषा है। स्कूलों में हिन्दी, उर्दू और अँगरेजी की शिक्षा दी जाती है।

सन् १९४८ में मैं अध्ययनार्थ सारनाथ आया, और लगातार ४ वर्ष रहकर गत वर्ष जून में तीन मास के अवकाश-काल में घर गया। देखा, लाहुल में काफी परिवर्तन हो गया है। लाहुलवासियों की पहाड़ी प्रवृत्तियाँ तथा अन्धविश्वास धीरे-धीरे उठते जा रहे हैं। शिक्षा [illegible] और अधिक झुकाव है। वे बौद्ध-संसार से भी सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं और लाहुल में सच्चे बौद्धधर्म का प्रसार भी।

लाहुल के पड़ोस में स्पित्ति नामक एक और बौद्ध प्रदेश है, वहाँ की जनसंख्या लगभग १०,००० है। वहाँ की सारी जनता बौद्ध है। किन्तु, शिक्षा का बड़ा भारी अभाव है। गत निर्वाचन में पंजाब सरकार ने इन दोनों प्रदेशों के साथ अन्याय किया। पंजाब सरकार की भूल तथा कुल्लू के अधिकारीगण की मनमानी से लाहुल के १३,००० तथा स्पित्ति के ९,००० व्यक्ति वोट देने से वंचित रहे।

लाहुल प्रदेश में कन्या-पाठशाला एवं बौद्ध विद्यालय की बहुत बड़ी आवश्यकता है। हम महाबोधि सभा के अधिकारीगण तथा बौद्ध जगत् की दृष्टि इधर आकर्षित करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

अब मेरे अवकाश का दिन पूरा हो ही रहा था कि सुनने में आया कि पंजाब के प्रधान मंत्री माननीय श्री सच्चर जी कुल्लू पधारने वाले हैं। आप के आगमन पर अनेक तैयारियाँ होने लगीं। लाहुल में प्रति वर्ष आषाढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णिमा को नियमितरूप से लामाओं का ऐतिहासिक नाटक (छम) होता है जो दूसरे समय पर किसी भी दशा में नहीं किया जा सकता, किन्तु कुछ अधिकारी अपने खातिरदारी के लिए उक्त नाटक इस अवसर पर दिखलाने के लिये लामाओं को विवश कर रहे थे किन्तु श्री ठाकुर शिवचन्द (प्रधान मंत्री, हिमालय बौद्ध समिति) जैसे बौद्ध नेताओं के तीव्र विरोध से उस कार्यक्रम को रद्द कर दिया गया। बौद्धधर्म जैसे आदर्शपूर्ण धर्म के साथ इस प्रकार के नीच व्यवहार हर प्रकार से अनुचित हैं। आज संसार बौद्धधर्म को आदर की दृष्टि से देख रहा है किन्तु इन प्रदेशों के अधिकारीगण ऐसे प्रतिष्ठित ऐतिहासिक नाटक को किसी नेता को दिखा कर उसका अपमान करना चाहते हैं। जिससे लामागण तथा देश ही कलंकित नहीं हो सकता, बल्कि वह शास्त्र वर्जित भी है। १२ सितम्बर को जब मैं कुल्लू पहुँचा तो वहाँ पर भी कुछ बौद्ध सज्जनों से भेंट करने का संयोग प्राप्त हुआ, वे कुल्लू नगर में एक बौद्धविहार स्थापित करने की योजना बना रहे हैं। इसके लिए कुछ धन भी इकट्ठा हो गया है।

नालन्दा विश्वविद्यालय का पठन-पाठन

श्री सुमन वात्स्यायन

तक्षशिला के बाद नालन्दा विश्वविद्यालय ही भारत का प्राचीनतम अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र था। आर्य लोग भारत में उत्तर-पश्चिम से आए। इसलिए सर्व[illegible] और सबसे प्रमुख विश्वविद्यालय—तक्षशिला—[illegible] स्थापना भी उधर ही हुई। किन्तु राजनीतिक दृष्टि से मगध का स्थान भारत में सर्वोपरि रहा है। अतः नालन्दा-जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था का मगध में उदय होना स्वाभाविक ही था।

नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना कब और किसने की यह कहना आज कठिन है। किन्तु इस अनुमान में पूरी सचाई है कि इसका विकास कई सौ वर्षों में हुआ। भगवान् बुद्ध ने स्वयं अनेक बार नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में रहकर धर्मोपदेश दिया[1]। उनके प्रमुख शिष्य धर्म सेनापति सारिपुत्र का जन्म नालन्दा के पास ही नालक ग्राम में हुआ था। ऐसा जान पड़ता है कि बुद्ध के समय में ही नालन्दा महत्त्वपूर्ण स्थानों में गिना जाता था।

इतिहासकार तारानाथ के अनुसार सम्राट अशोक ने पहले-पहल वहाँ एक संघाराम (भिक्षुनिवास) बनवाया। प्रसिद्ध चीनी यात्री शुआन्-चाङ् के मतानुसार मगध-सम्राट शक्रादित्य (कुमार गुप्त प्रथम) ने एक तथा उसके लड़के तथागतगुप्त ने दो और संघाराम बनवाए। बालादित्य ने भी उत्तर-पूर्व की ओर एक संघाराम बनवाया[2]। सातवीं सदी में सम्राट हर्षवर्द्धन ने वहाँ अनेक भवन बनवाए और विश्वविद्यालय के खर्च का प्रबन्ध किया। पाल-राजवंश के समय में नालन्दा अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा। देश-देशांतर में उसकी कीर्ति फैली। सारे एशिया के छात्र वहाँ अध्ययनार्थ आने लगे। भारत के ही शासक नहीं, बल्कि अनेक विदेशी शासकों ने भी नालन्दा में अपने देश की ओर से संघाराम और विहार बनवाए। नालन्दा से प्राप्त एक ताम्रपत्र के अनुसार नवीं शताब्दी के मध्य में[3] सुवर्णद्वीप (जावा= इंडोनेशिया) के राजा समराग्रवीर के पुत्र महाराज बालपुत्र देव ने "नालन्दा में रहनेवाले गुणीवृन्द की ओर आकृष्ट होकर भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए सांसारिक संपत्ति को नाशवान् जान...नालन्दा में एक विशाल विहार बनवाया।"[4]

१—संयुत्तनिकाय ४०:१:९

२—रेकार्ड आफ दि रेस्टर्न वर्ल्ड—एस० बील, दूसरा खंड, बुक ८ पृ० १६८।

३—हिन्दू कालोनीज इन दि फार ईस्ट—मजुमदार।

४—नालन्दागुणवृन्दलुब्धमनसा भक्त्या च शुद्धोदने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नालन्दा का विकास संसार के अन्य प्राचीन विश्व-विद्यालयों की तरह ही एक धार्मिक संस्था के रूप में हुआ था। किन्तु यूरोपीय शिक्षण-संस्थाओं की तरह नालन्दा में कट्टरता नहीं थी। वास्तव में दूसरी-तीसरी सदी तक भारतीय "बौद्ध संस्थाएँ कुछ सीमा तक सार्वजनिक शिक्षण की जगह बन गई थीं।"[५] नालन्दा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का अनुशीलन करने पर इस विचार की पुष्टि होती है। नालन्दा का दरवाजा सभी सम्प्रदाय और सभी वर्ग के योग्य शिक्षार्थियों के लिए खुला था। गृही और संन्यासी— दोनों प्रकार के छात्र थे। ई-त्सिङ के अनुसार, "इस इच्छा से भी सफेद वस्त्रधारी गृही विद्यार्थी भिक्षुओं के पास पढ़ने के लिए आते हैं कि बाद में संन्यासी बनेंगे। ऐसे भी छात्र आते हैं जो सिर्फ लौकिक साहित्य ही पढ़ते हैं और संसार छोड़ने की उनकी कोई इच्छा नहीं रहती। इन दोनों प्रकार के छात्रों को अपना खर्च आप चलाना पड़ता है।"[१] इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि नालंदा विश्वविद्यालय में धार्मिक और लौकिक— दोनों प्रकार की शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। वहाँ गृहस्थ और भिक्षु— दोनों प्रकार के छात्र थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी। इसलिए प्रत्येक प्रवेशार्थी के लिए "संस्कृत भाषा का ज्ञान आवश्यक" था[२]। व्याकरण को 'शब्द-विद्या' कहा गया है। शब्दविद्या में पारंगत हुए बिना संस्कृत भाषा का पूर्ण ज्ञान असम्भव माना जाता था। इसलिए इस पर ज्यादा जोर देना स्वाभाविक ही था। प्राचीन विश्वविद्यालयों में जिन अठारह विद्याओं[३] की शिक्षा दी जाती थी वे इस प्रकार हैं— १. वेद (ऋक्, यजुः और साम), २. स्मृति, ३. व्याकरण, ४. छंदोविचिति, ५. निरुक्त, ६. ज्योतिष, ७. शिक्षा, ८. मोक्षज्ञान, ९. क्रियाविधि, १० धनुर्वेद, ११. हस्त-शिक्षा, १२. काम-तंत्र, १३. लक्षण, १४. पुराण, १५. इतिहास, १६. नीति, १७. तर्क और १८. वैद्यक।

कुछ विद्याएँ, उदाहरणार्थ धनुर्विद्या, चिकित्सा-विद्या— कभी भी सबके लिए नहीं थीं। यह आम रिवाज था कि क्षत्रिय विद्यार्थी धनुर्विद्या सीखते ही थे। यदि किसी को आयुर्वेद या और कोई विशेष विद्या सीखनी होती थी तो वह भी विश्वविद्यालय में सीख सकता था[४]। शुआन्-चाङ् कहता है "यदि कोई छात्र विश्वविद्यालय में दाखिल होना चाहता है तो उसके लिए प्राचीन और अर्वाचीन (ग्रन्थों) का गहरा अध्ययन आवश्यक है[५]।" यहाँ 'प्राचीन' का अर्थ स्पष्टतया वेद, वेदान्त, सांख्य, न्याय, वैशेषिक आदि से और 'अर्वाचीन' का तात्पर्य बौद्धग्रन्थों से ही है[६]। यही निष्कर्ष ई-त्सिङ्ग के इन शब्दों से भी निकलता है, "विद्यार्थी विनय, सूत्र और शास्त्रों का भी अध्ययन करते हैं[७]।"

नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रवेश पाना आसान नहीं था। छोटे-बड़े विभिन्न क्षेत्रीय विद्यालयों से अध्ययन समाप्त कर छात्र यहाँ आते थे। किन्तु यहाँ पर भी बिना परीक्षा लिए उन्हें प्रवेश नहीं करने दिया जाता था। वास्तव में नालन्दा विश्वविद्यालयों का भी विश्वविद्यालय था। नालन्दा में अध्ययन किये बिना ज्ञान अधूरा माना जाता था। देश के विभिन्न नगरों से बड़े-बड़े विद्वान यहाँ अपनी शंकाएँ दूर करने के लिए आते थे। यहाँ के स्नातकों का यश बहुत शीघ्र चारों ओर फैल जाता था। इसलिए कुछ नकली लोग नालन्दा के नाम का दुरुपयोग भी करते थे[८]।

बुद्ध्वा शैलसरित्तरङ्गतरलां लक्ष्मीमिमा क्षोभनाम्। यस्ते-नोन्नतसौधधामधवलः संघार्थमित्रश्रिया नानासद्गुणभिक्षुस-संघवसतिस्तस्यां विहारः कृतः॥

—नालन्दा से प्राप्त एक ताम्रपट्ट से।

५—एंशेंट इंडियन एजुकेशन

१—रेकार्ड आफ बुद्धिस्ट रिलिजन—अनु० तकाकुसू।

२—वही

३—सो सोलसवस्सुद्देसिको हुत्वा तक्कसिलायं सिप्पं उग्गण्हित्वा तिण्णंवेदानं पारं गन्त्वा अट्ठारसन्नं विज्जट्ठानं निप्फत्तिं पापुणि।—दुम्मेधजातकं।

४—श्रमण ली : पृ० ११३ संकालिया द्वारा उद्धृत।

५—रे० वे० व०—बील।

६—दि यूनिवर्सिटी आफ नालंदा—संकालिया।

७—रे० बु० रि०—तकाकुसू।

८—रे० वे० व०—बील।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश और विदेशों में नालन्दा विश्वविद्यालय की अत्यधिक प्रसिद्धि होने के कारण हजारों की संख्या में प्रवेशार्थी छात्र आते थे। इसलिए प्रवेश-परीक्षा काफी कठिन और कुछ विचित्र-सी होती थी। विश्वविद्यालय के प्रवेश-द्वार पर द्वारपंडित रहते थे। "प्रवेशार्थी से वे कुछ कठिन प्रश्न पूछते थे। इनमें से कितने ही उत्तर नहीं दे पाते थे और इस तरह वे वापस चले जाते थे। नवागत छात्र को अपनी योग्यता का परिचय शास्त्रार्थ में देना पड़ता था। सफलता प्राप्त करनेवालों की संख्या दस में सात या आठ होती थी[1]।"

ऐसा जान पड़ता है कि नालंदा विश्वविद्यालय में पढ़ाने की तीन पद्धतियाँ प्रचलित थीं। प्रथम, छात्र को मौखिक या पुस्तक से अर्थ और व्याख्या सहित पाठ दिया जाता था। विद्यार्थी उसका अभ्यास कर अपने अध्यापक को सुनाते थे; पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देते थे। अध्यापक कठिन अंशों की विशद व्याख्या करता था। दूसरी पद्धति थी व्याख्यान या लेक्चर की। एक विषय के छात्र एक स्थान पर एकत्रित होते और विद्वान् अध्यापक निर्धारित विषय की बारीकी की व्याख्या करते थे। व्याख्यान के बाद छात्र व्याख्याता से अपनी शंकाओं का समाधान भी करवाते थे। तीसरी और सबसे अधिक लोकप्रिय पद्धति थी शास्त्रार्थ की। शुआन्-चांङ् और ई-त्सिङ्ग इससे बहुत प्रभावित हुए थे।

शुआन-चाङ् के अनुसार "यहाँ (नालंदा में) कई हजार बड़े ही प्रतिभावान और योग्य भिक्षु रहते हैं। इनमें कई सौ तो ऐसे पंडित हैं जिनकी ख्याति दूर देशों तक पहुँच चुकी है। उनका चरित्र निर्मल और निष्कलंक है। भारतवर्ष उनका सम्मान करता है, उनका अनुसरण करता है। गम्भीर प्रश्नों के पूछने और उत्तर देने के लिए दिन का समय पर्याप्त नहीं होता। सुबह से लेकर रात तक वे शास्त्रार्थ में लगे रहते हैं[2]।" वास्तव में शास्त्रार्थ द्वारा विषय की बारीकी समझने में बड़ी सहायता मिलती थी। आज के विश्वविद्यालयों का शिक्षाक्रम इतना ऊँचा नहीं है कि शास्त्रार्थ से विषय की गहनता तक पहुँचा जा सके। परिस्थिति भी बदल गई है। फिर भी वाद-विवाद सभा तो आज भी है ही। "हमारे आज के स्कूलों के छात्रों की अपेक्षा नालंदा, विक्रमशिला और वलभी विश्वविद्यालयों में प्रवेश की इच्छा रखनेवाले छात्र अधिक सुशिक्षित होते थे[3]।"

शास्त्रार्थ एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था, किन्तु नियमित पाठ-अभ्यास और व्याख्यान का भी कम महत्त्व नहीं था। शुआन्-चाङ् ने योगशास्त्र के आचार्य शीलभद्र से और अनेक ग्रंथों के आचार्य जयसेन से अध्ययन किया था। नालंदा के सारे वातावरण के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रवेशिका परीक्षा तक की पढ़ाई की भी वहाँ समुचित व्यवस्था थी। "प्रवेशिका परीक्षा का संचालन विश्वविद्यालय स्वयं करता था। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए द्वार पंडित नियुक्त थे[4]।"

प्राचीन भारत में शिक्षा की स्थिति काफी अच्छी थी। उस समय की शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा पानेवाले छात्रों की संख्या से भी यही प्रकट होता है। ई० पू० के विश्वविद्यालयों में सबसे अधिक उल्लेख तक्षशिला का हुआ है। जातक कथाओं और अट्ठकथाओं में इस विश्वविद्यालय की अनगिनत बार चर्चा की गई है। यद्यपि यह नालन्दा-जितना सुसंगठित शायद नहीं था, फिर भी यहाँ के एक-एक आचार्य के पास पाँच-पाँच सौ छात्र अध्ययन करते थे।[1] फाशिएन के यात्रा-विवरण के अनुसार पाटलिपुत्र (पटना) में "हीनयान सम्प्रदाय का भी एक विहार है जिसमें लगभग छ-सात सौ भिक्षु रहते हैं। यहाँ संसार के सभी भागों के भिक्षु देखे जा सकते हैं। श्रमण और विद्वान् जो अध्ययन करना चाहते हैं, यहाँ एकत्रित हुए हैं। यहाँ के एक ब्राह्मण आचार्य का नाम मंजुश्री है।"[2] नालन्दा से तीन योजन (लगभग २०-२१ मील) पश्चिम "तिलडक का संघाराम है। इसमें चार बहुत बड़े-बड़े कमरे हैं। इसे बिंबिसार

(शेष २५८वें पृष्ठ के नीचे)

१—वहीं०
२—बु० रे० वे० व०

३—यू० ना०
४—वहीं
१—दिसापामोक्खो आचरियो हुत्वा पंचमाणवकसतानि सिप्पं वाचेति—जातकट्ठकथा।
२—बु० रे० वे० व०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये प्रकाशन

बुद्ध अर्चना (कविता)—लेखिका–कुमारी विद्यावती 'प्रभाकर'। प्रकाशक–महाबोधि सभा, सारनाथ। पृष्ठ १६। मूल्य =)

इस पुस्तक में सुश्री कुमारी विद्यावतीजी की १५ कवितायें हैं। इन कविताओं को निर्मात्री ने श्रद्धा की सुकोमल भावना से निर्मित किया है और उसमें इन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है। कवियत्री में कवित्व-शक्ति है, भावों में माधुर्य है, साथ ही सांस्कृतिक प्रेम भी।

भावुकता हृदय को छू देनेवाली है। एक कविता की ये पंक्तियाँ कितनी प्रभावोत्पादक हैं:—

अश्रु पलक के पार बह गये, रजनी भी रोई।
यह अस्पष्ट भाव से कहती, मुक्ताहार पिरोई॥
जाओ शाक्य-राज-कुल दीपक! हरणहेतु भव-भार।
वनवासी बन यशोधरा प्रिय, गये अनोमा पार॥

दूसरी कविता की इन पंक्तियों को देखिये:—

रत्न सौध के शयनकक्ष के वातायन से उन्हें निहार।
आँसू के दो बूँद बहाती रोते नील नयन सुकुमार॥

इसी, तरह सभी कविताएँ सुन्दर एवं सरल हैं। इस रचना के लिए कवियत्री जी बधाई की पात्र हैं।

—कौशल्या देवी भार्गव
विदिशा (भेलसा)।

श्रद्धा के फूल—(कहानी)–लेखिका–कुमारी विद्यावती प्रभाकर। प्रकाशक–महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस। पृष्ठ ४२। मूल्य ।=)

भाषा और शैली की दृष्टि से कहानियाँ रोचक हैं। विषय भी संस्कृति और समाज के आधार पर सरलता से जो कहानी का रूप दिया गया है, वह मर्मस्पर्शी है। कामना, हृदय की जीत आदि इसके सुन्दर उदाहरण हैं। सभी कहानियाँ उत्तम हैं। भावनापूर्ण कुशल चित्रण माधुर्यमय हैं।

कुमारीजी में प्रतिभा है। साहित्य-सृजन की शक्ति है। कहानी-कला के क्षेत्र में उनकी अपनी विशेष शैली है, जो पाठक के हृदय पर एक अमिट छाप लगा देती है। हम कुमारीजी की इस कृति के लिए उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं।

—रामगोपाल चौबे
अशोक नगर।

विश्व-शान्ति का प्रतीक मानव-धर्म—लेखक–साथी। प्रकाशक–रामशंकर साहू, शोषित साहित्य सदन, अहाता दरबारीलाल, कन्धारी बाजार, लखनऊ। पृष्ठ २०। मूल्य ।)

इस पुस्तिका में श्री साथी के दो लेख संग्रहीत हैं—(१) विश्व-शान्ति का प्रतीक बौद्ध-धर्म और (२) भारतीय विनाश के मूल में ब्राह्मणवाद। पहले लेख में बौद्ध-धर्म की विशेषतायें तथा भारत में उसकी आवश्यकता पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। लेखक ने जोरदार शब्दों में सकारण लिखा है—"चीन, जापान, बर्मा, स्याम, सीलोन, जर्मनी, इंगलैण्ड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि विश्व के सारे ही देशवासियों के साथ बिना रंग-भेद के सच्चा भ्रातृ-प्रेम स्थापित हो सकता है; पर, यह सभी बातें बौद्ध-धर्म के सदुपदेशों के अन्तर्गत रह कर ही सम्भव हैं, क्योंकि वह एक विश्व-मानव-धर्म है और विश्व-शान्ति का अनुपम प्रतीक है।"

दूसरे लेख में लेखक ने भारतवर्ष में सदियों से फैली हुई साम्प्रदायिकता एवं उसके दुष्परिणामों पर प्रकाश डालते हुए चेतावनी दी है—"सदियों तक इस वर्ण-व्यवस्था के चक्कर में पड़कर हम दास, गुलाम, शूद्र और शोषित बने रहे। अब हम इस मनोवृत्ति को जीवित रखने के बजाय उसे दफनाने में जमाने का साथ दें। ब्राह्मणिज्म का जनाज़ा निकल रहा है। पर जो लोग इस ब्राह्मणी धर्म के मुर्दे पर धर्म की चद्दर डाल उसके जिन्दा रहने का झूठा राग अलापते हैं, उन्हें मानवता का दुश्मन नम्बर एक समझें। वह हमें धोखे में रखना चाहते हैं।"

अन्त में लेखक ने 'चार आर्य सत्य' को मानव-धर्म की 'चार श्रेष्ठ बातें' बतलाकर आर्य अष्टांगिक मार्ग की व्याख्या की है तथा विश्व-शान्ति के लिए मध्यम-मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मार्ग कहा है।

लेखक की भाषा फड़कती हुई, जोशीली एवं सहज दर्द और शक्ति-भरी है। राहुलजी का कथन है कि 'रामराज्य परिषद्, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, हिन्दू सभा—यह तीन भारतीय मानवता के भयंकर शत्रु हैं, जिनसे लोहा शोषित ही ले सकते हैं।' श्री साथीजी "शोषित-सन्देश"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्पादक हैं। उनकी लेखनी की गति एवं उनकी विचार-धारा प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। हम हृदय से साथीजी की इस पुस्तिका का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि उनकी विचारधारा का अधिकाधिक प्रसार होगा।

—भिक्षु धर्मरक्षित

रजत-रश्मि—लेखक—डा० रामकुमार वर्मा। प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस। पृष्ठ संख्या १७५। सजिल्द मूल्य २॥)

इस ग्रन्थ में ५ एकांकी नाटक हैं—प्रतिशोध, तैमूर की हार, दुर्गावती, औरंगजेब की आखिरी रात और कलंक-रेखा। पाँचों नाटक ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण हैं। इन नाटकों में भारतीय संस्कृति का प्रबल पुट है। इतिहास एवं संस्कृति के सम्मिश्रण से पूर्ण ये नाटक बड़े ही रोचक तथा प्रभावोत्पादक हैं। लेखक ने बड़े ही कलात्मक ढंग से अपने भावों को व्यक्त किया है। इन एकांकी नाटकों को पढ़ते समय पाठक उस काल की चतुर्मुखी परिस्थितियों का भी अध्ययन करता जाता है। हिन्दी साहित्य में ऐसे एकांकी नाटकों की बड़ी ही आवश्यकता है। श्री वर्माजी इस दिशा में ख्याति-प्राप्त लेखक ही नहीं, प्रत्युत एकांकी नाटकों के जन्मदाता भी कहे जाते हैं। क्या मैं आशा करूँ कि उनकी लेखनी भारत के सांस्कृतिक दिग्विजयी वीरों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए चलेगी एवं भारत के उन धर्मवीरों का प्रकाश एकांकी नाटकों के रूप में साहित्य-जगत् में प्रगट होगा? लंका, बर्मा, नेपाल, तिब्बत, जापान, मंगोलिया, जावा आदि सभी एशियायी देशों में धर्मप्रचारार्थ जाने-वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में सरलता पूर्वक ऐसे एकांकी नाटक तैयार हो सकते हैं। श्री वर्माजी को 'रजत-रश्मि' की सफलता के लिए बधाई।

—भिक्षु धर्मरक्षित

धर्मोदय—(लुम्बिनी विशेषाङ्क)—सम्पादक—भिक्षु महानाम 'कोविद'। प्रकाशक—धर्मोदय सभा, ४, रामजी दास जेटिया लेन, कलकत्ता—७। वार्षिक मूल्य ३)। इस अंक का १)। पृष्ठ संख्या ८८

'धर्मोदय' नेवारी भाषा का मासिक पत्र है। प्रस्तुत अङ्क लुम्बिनी विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित हुआ है, जो हरएक प्रकार से सुन्दर है। इस अङ्क में लुम्बिनी सम्बन्धी कई दर्जन अन्वेषणात्मक लेख प्रकाशित हुए हैं। नेवारी भाषा-भाषी पाठकों को इससे लाभ उठाना चाहिए।

पृष्ठ का शेषांश

राजा के अन्तिम वंशज (शायद नागदासक) ने बनवाया था। यहाँ बहुत से पण्डित और विद्वान् देश-देशान्तर से आकर इकट्ठे हो गये हैं। यहाँ एक हजार भिक्षु हैं जो अध्ययन-अध्यापन करते हैं।"[३] शुआन्-चाङ के जीवन-चरित्र का लेखक श्रमण ली के अनुसार नालन्दा में, "आवासिक और नवागन्तुकों की संख्या सदा दस हजार तक रही है।"[४]

नालन्दा विश्वविद्यालय में छात्रों की इतनी बड़ी संख्या देखकर हम सहज ही वहाँ के अध्यापकों की संख्या और योग्यता का अन्दाज लगा सकते हैं। नालन्दा में लगभग १५०० अध्यापक थे। इन अध्यापकों की तीन श्रेणियाँ थीं। प्रथम श्रेणी में सिर्फ १० प्रमुख अध्यापक थे। ये पचास प्रकार के सूत्र और शास्त्रग्रन्थों के ज्ञाता थे। द्वितीय श्रेणी में पाँच सौ अध्यापक थे। जो तीस प्रकार के सूत्र और शास्त्रों के पण्डित थे। तृतीय श्रेणी में एक हजार अध्यापक थे जो बीस प्रकार के सूत्र और शास्त्र-ग्रन्थों में पारदर्शी थे। नालन्दा विश्वविद्यालय में सैकड़ों ऐसे अध्यापक हुए जिनकी प्रसिद्धि देश-विदेशों तक हुई। जिनमित्र, चंद्रपाल, ज्ञानचन्द्र, स्थिरमति, प्रभाकरमित्र, धर्मपाल, भद्रसेन, नागार्जुन, ज्ञानमित्र, शीलभद्र आदि ऐसे आचार्य थे जिनका ज्ञान अथाह माना जाता था[५]।

नालन्दा विश्वविद्यालय का पुस्तकालय भी बहुत विस्तृत था। यह तीन खण्डों में विभक्त था जिन्हें रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक कहते थे। इस पुस्तकालय में वैदिक साहित्य से लेकर तन्त्रयान तक के समस्त ग्रन्थ संग्रहीत थे। देश-विदेश के छात्र यहीं पर अपने अध्ययन के हेतु अथवा साथ ले जाने के लिए ग्रन्थों की नकल करते थे। मध्यएशिया, तिब्बत, चीन आदि देशों में कई हजार संस्कृत ग्रन्थ यहीं से नकल करके ले जाए गए।

भारतीय संस्कृति और ज्ञान के प्रसार में नालन्दा एक ऐसा प्रकाश-स्तम्भ था जिसकी ज्योति तत्कालीन समस्त विश्व पर पड़ती थी। नालन्दा के बिना भारतीय ज्ञान-विज्ञान का इतिहास बिलकुल छोटा हो जाता। पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि बिहार राज्य सरकार का ध्यान नालन्दा की ओर गया है और वहाँ नालन्दा-पाली-इंस्टीच्यूट नाम की एक संस्था काम करने लगी है। आशा है निकट भविष्य में ही यह संस्था एक अन्तर्राष्ट्रीय रूप ले लेगी।

३—वहीं।

४—दि लाइफ आफ शुआन्-चाङ्—सै० बील।

५—बौद्ध विद्यापीठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-जगत्

एशिया को बुद्ध की शरण लाना होगा

जापान में हुए विश्व बौद्ध महासम्मेलन ने इस बात की स्पष्ट घोषणा की कि एशिया में एकता लाने के लिए एशियाई राष्ट्रों को बुद्ध की शरण लाना होगा। इस महासम्मेलन का नारा ही था—'बुद्ध में एशिया को एक करो'। और सच तो यह है कि इस महासम्मेलन ने एशिया की आध्यात्मिक एकता की चेतना को प्रस्फुटित करने का प्रयास किया है।

महासम्मेलन में एशिया के विभिन्न देशों के बीच विद्वानों, कलाकारों, प्राध्यापकों आदि के पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए प्रस्ताव स्वीकृत किये गए हैं ताकि उन देशों के बीच आध्यात्मिक एकता की प्रतिष्ठा की जा सके।

बिहार के राज्यपाल बुद्धगया में—गत ३० दिसम्बर को बिहार प्रान्त के राज्यपाल श्री आर० आर० दिवाकर दर्शनार्थ बुद्धगया गये। महाबोधि सभा की ओर से भिक्षु एम० संघरत्न ने उनका स्वागत किया। उस अवसर पर लंका के बहुत से यात्री भी आए हुए थे। यात्री मण्डल के अगुआ श्री एच० पी० करुणारत्न ने राज्यपाल को माला पहनायी और श्रीमती एन० मुनसिंह ने बौद्ध धर्म की पुस्तकें प्रदान कीं। भिक्षुओं ने परित्रपाठ किया तथा राज्यपाल को आशिर्वाद दिया।

कालिम्पोंग की तरुण बौद्ध समिति—महाबोधि सभा की कार्यकारिणी सभा ने कालिम्पोंग की तरुण बौद्ध समिति की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उसे अब महाबोधि सभा का शाखा-केन्द्र समझा जायेगा। विगत कुछ वर्षों में समिति ने कालिम्पोंग में बड़ा ही महत्व-पूर्ण कार्य किया है। हम आशा करते हैं कि उत्साही मंत्री भिक्षु संघरक्षित की देखरेख में उसके कार्यों में और भी प्रगति होगी।

कम्बोडिया से दान—हमें यह घोषणा करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि कम्बोडिया से महाबोधि सभा को ४५,०४०) नक़द और बहुत बड़ी संख्या में बहुमूल्य जवाहरात प्राप्त हुए हैं। ये सब चीज़ें उस समय की पूजा हैं जब कि अग्रश्रावकों की अस्थियाँ कम्बोडिया गई थीं। इसका अधिकांश भाग साँची के कार्यों में व्यय होगा और शेष सभा के अन्य कार्यों में। इस दान के लिए कम्बोडिया नरेश एवं वहां की जनता को महाबोधि सभा हृदय से धन्यवाद देती है।

कम्बोडिया के प्रतिनिधियों का स्वागत—गत ११ दिसम्बर को कलकत्ते में महाबोधि सभा की ओर से कम्बोडिया से आए हुए उस प्रतिनिधि-मण्डल का स्वागत किया गया और चाय-पार्टी दी गई, जिसे कि कम्बोडिया नरेश ने साँची-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए भेजा था। प्रतिनिधियों का स्वागत करने के लिए डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी भी आए थे। उन्होंने स्वागत-भाषण करते हुए कम्बोडिया तथा भारत में सदा सद्भावना बने रहने की इच्छा प्रगट की।

सारनाथ में शीघ्र ही बिजली लगेगी—सारनाथ में बिजली लगने के सम्बन्ध में गत ९ जनवरी को बनारस के [illegible] के बँगले पर एक आवश्यक बैठक हुई, जिसमें सम्मिलित होने के लिए भिक्षु संघरत्न एवं भिक्षु सद्धातिस्स गए थे। आशा है सारनाथ में शीघ्र ही बिजली की लाइन आ जायेगी।

पूर्वी पाकिस्तान में बौद्ध-पर्व पर सार्वजनिक छुट्टियाँ—पूर्वी पाकिस्तान सरकार ने घोषित किया है कि बौद्धों के पर्वों पर भी सार्वजनिक छुट्टियाँ रहेंगी। तत्काल वैशाख पूर्णिमा, आषाढ़ पूर्णिमा एवं आश्विन पूर्णिमा—जो बौद्धों के महापुण्य पर्व के दिन हैं सार्वजनिक अवकाश की घोषणा हुई है, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय-जगत् के बौद्ध प्रसन्न हैं। स्मरण रहे पाकिस्तान सरकार बौद्धकार्यों में बौद्धों की सहायता में पीछे नहीं रहती है। विगत विश्व बौद्ध महासम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए पूर्वी पाकिस्तान के भिक्षु प्रतिनिधियों को ५०००) प्रदान किया था। उसका यह दूसरा ऐतिहासिक कार्य है।

बुद्धमूर्ति पर सोना—सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में स्थित भगवान् बुद्ध की मूर्ति पर सोना लग गया। सोना लगाने में २३७५) व्यय हुए, जिन्हें लंका के श्री नलिनसुनसिंह ने दान किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिक्षु संघ को भूमि प्राप्त—कुशीनगर भिक्षु संघ के प्रधान मंत्री भिक्षु धर्मरक्षित के सुझाव पर उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार ने उक्त संघ को कुशीनगर के पास ही कृषियोग्य ४० एकड़ भूमि प्रदान किया है।

कुशीनगर के बुद्धमन्दिर में चोरी—गत २४ जनवरी की रात्रि में कुशीनगर के महापरिनिर्वाण मन्दिर में भीषण चोरी हो गई। मन्दिर में भगवान् बुद्ध की मूर्ति के ऊपर जितने भी रेशमी, मखमली वस्त्र चढ़े थे, चोर उन सबको उठा ले गए। सोने-चाँदी के पूजा-पात्र

कोलियपुत्र श्री राहुल सुमन छावरा

भी शेष न बचे। बर्मा, लंका, स्याम, चीन, तिब्बत आदि देशों के श्रद्धालु बौद्धों द्वारा चढ़ाए गए बहुमूल्य चीवर चाँदी की थालियाँ, कटोरे, पुष्पदान आदि सभी चले गए। मन्दिर का दानपात्र भी तोड़ डाला गया और चढ़े हुए पैसे ले लिए गए।

२४ जनवरी की रात को लंका से आये हुए यात्री लगभग १० बजे रात्रि तक मन्दिर में पूजा करते रहे, जब वे सो गये और मन्दिर प्रदेश खाली पड़ा, तब चोरों ने मौका पाकर मन्दिर के सभी तालों को तोड़ डाला। विहारवासियों को इस चोरी का पता २५ जनवरी को प्रातःकाल लगा।

श्री राहुल सुमन छावरा—श्री राहुल सुमन छावरा बर्मा से वापस आ गये। आप वहाँ पालि भाषा एवं बौद्ध धर्म का अध्ययन करने गये थे। अपने कार्यक्रम के अनुसार आप गत जनवरी मास के अन्तिम सप्ताह में वापस आये। आप कोलिय बुद्धिष्ट एसोसियेशन, अजमेर के प्रधान मन्त्री हैं। आप एक उत्साही एवं कर्मठ बौद्ध उपासक हैं। आप से बौद्ध-जगत्—विशेषकर कोलिय जाति—को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

बुद्ध समिति गोंधा—बुद्ध सोसाइटी नागपुर के प्रधान मन्त्री श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी ने अभी हाल ही में मध्यप्रदेश के गोंधा नामक स्थान में "बुद्ध समिति गोंधा" नामक संस्था की स्थापना की है। मध्यप्रदेश में बौद्धधर्म की यह दूसरी समिति है।

साँची में बुद्ध-कीर्तन—गत माह के प्रथम सप्ताह में उज्जैन के चम्बलाश्रम नागदा से श्री नारायण प्रसाद चम्बल साँची गये। उन्होंने बुद्ध-पूजा की एवं श्री नंदलाल की अध्यक्षता में बुद्ध कीर्तन तथा बुद्धार्चन किया गया।

भारतीय बौद्ध-बन्धुत्व—इस समिति की ओर से यह सूचित किया जाता है कि एक बी० ए० तक पढ़े, उत्तरप्रदेशीय सरकार में सम्मानित पद पर लगभग ३००) मासिक पानेवाले प्रगतिशील २९ वर्षीय बौद्ध युवक के लिए एक पढ़ी-लिखी सुशिक्षित, गृहकार्य में दक्ष बौद्ध युवती की आवश्यकता है। युवक समाजसेवी और हिन्दी का एक प्रगतिशील लेखक है। पत्र-व्यवहार मार्फत सम्पादक 'धर्मदूत' पोस्ट बाक्स नं० १०, सारनाथ, बनारस से करें।

पाणिग्रहण-संस्कार—गत २१ जनवरी को अजमेर के श्री चौधरी यादराम छावरा की पुत्री सुश्री सुखदेवी का पाणिग्रहण-संस्कार श्री ठा० जोधाराम के पुत्र श्री अमर सिंह के साथ सम्पन्न हुआ। अजमेर में यह पहला पाणि-ग्रहण-संस्कार था जो बौद्ध संस्कार पद्धति से पूर्ण किया गया। इस उपलक्ष में श्री चौधरी यादराम जी ने 'धर्मदूत' को ५।) दान स्वरूप प्रदान किया है। हम वर-वधू की मंगल कामना करते एवं भिक्षु-संघ की ओर से आशीर्वाद देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धचर्य्या

भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों के सम्बन्ध में, भारतीय भाषाओं में जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें विशालता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'बुद्धचर्य्या' सभी से बढ़कर है। त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र सम्बन्धी जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, 'बुद्धचर्य्या' में उस सारी सामग्री का वैज्ञानिक संकलन कर, अविकल अनुवाद दिया गया है। 'बुद्धचर्या' को यदि समस्त सुत्तपिटक और विनयपिटक का सार कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

बीस वर्ष पहले उसका प्रथम संस्करण छपा था। बहुत दिनों से उसकी माँग रहने पर भी इस व्यय-साध्य ग्रन्थ का दूसरा संस्करण न हो सका। ग्रन्थ की विशालता और कागज आदि के दुर्लभ होने के साथ-साथ आज के प्रकाशक और पाठक की 'रुचि' भी इस विलम्ब के लिये उत्तरदायी हैं।

महाबोधि सभा ने ग्रन्थ के महात्म्य का ख्याल कर हिन्दी पाठकों की प्रामाणिक साहित्यप्रियता के भरोसे ही इसके प्रकाशन का व्यय-भार वहन किया।

किसी भी पुस्तकालय में और विशेषरूप से बौद्ध-साहित्य प्रेमी किसी भी भाई बहिन के पुस्तकालय में 'बुद्धचर्य्या' रहनी ही चाहिए।

बड़े आकार के छः सौ तीस पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८) है। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

मिलने का पता :—

१. महाबोधि पुस्तक भण्डार, [illegible] (बनारस)
२. महाबोधि पुस्तक भण्डार, ४ [illegible]क्रम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२
३. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धविहार, रीडिंग रोड, नई दिल्ली
४. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धगया (बिहार)

उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत

१. वर्द्धमान	१८००)	पुरस्कार	मूल्य ६)
२. शेरोसुखन	५००)	,,	,, ८)
३. शेरोशायरी	५००)	,,	,, ८)
४. पथचिह्न	१०००)	,,	,, २)
५. वैदिक साहित्य	६००)	,,	,, ६)
६. मिलनयामिनी	५००)	,,	,, ४)

सन् १९५२ के नवीन प्रकाशन

१. हमारे आराध्य (पं० बनारसीदास च०) मू० ३)
२. संस्मरण ,, ,, ३)
३. रेखाचित्र (प्रेस में) ,, ,,
४. रजतरश्मि (डा० रामकुमार वर्मा) ,, २॥)
५. आकाश के तारे:धरती के फूल (क० मिश्र) ,, २)
६. जैन जागरण के अग्रदूत (अ. प्र. गोयलीय) ,, ५)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस–५

सरल-पालि-शिक्षा : लेखक : भिक्षु सद्धातिस्स

यह ग्रन्थ स्वतः पालि सीखनेवाले लोगों के लिए एकमात्र पथ-प्रदर्शक है। इसकी बहुत ही थोड़ी प्रतियाँ अब शेष हैं। जिन्हें इस ग्रन्थ की आवश्यकता हो वे शीघ्र आर्डर भेजें। मूल्य १॥)

प्राप्ति स्थान :—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)
मज्झिम निकाय—,, ,,	८)
विनय पिटक— ,, ,,	८)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१॥)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १, २ ७॥),	७॥)
,, ,, (भाग ३)	१०)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५॥)
भगवान् बुद्ध कि शिक्षा—श्रि देवमित्त धर्मपाल	।-)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१॥)
बुद्ध और अनके अनुचर— ,,	१॥।)
बौद्धचर्य्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१॥)
बुद्धचर्य्या—राहुल सांकृत्यायन, सजिल्द	८)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	।)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)
बुद्ध र्चन— ,, ,,	।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	॥)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरंजन प्रसाद	-)
बुद्धदेव—शरत् कुमार राय	॥।)
थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक— ,,	१॥)
तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
कुशीनगर का इतिहास— ,, ,,	२॥)
पालि-पाठ-माला— ,, ,,	१)
जातिभेद और बुद्ध— ,, ,,	॥)
ब्राह्मण धम्मिय सुत्त— ,, ,,	=)
तेलकटाह गाथा— ,, ,,	।)
बौद्ध शिशु बोध— ,, ,,	।)
सारनाथ दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
कुशीनगर-दिग्दर्शन— ,, ,,	।)
लंका-यात्रा— ,, ,,	१॥)
पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२)
बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	॥)
बुद्ध-शतकम्— ,, ,,	।)
महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बुद्ध-अर्चना (कविता)—कुमारी विद्या	≡)
तिब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित	६)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३॥)
नवनीत टीका— ,, ,,	२॥
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,,	२॥)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,,	।)
पालि-पाठ-माला—	१)
चरियापिटक—डा० विमलाचरण लाहा	५)
सुत्तिनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
धम्मसंगणी—श्र वापिट	८)
अत्थसालिनि— ,,	८)
पातिमोक्ख— ,,	१)
सिङ्गाल सुत्तं—भिक्षु ऊ कित्तिमा	॥)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मदूत

सारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

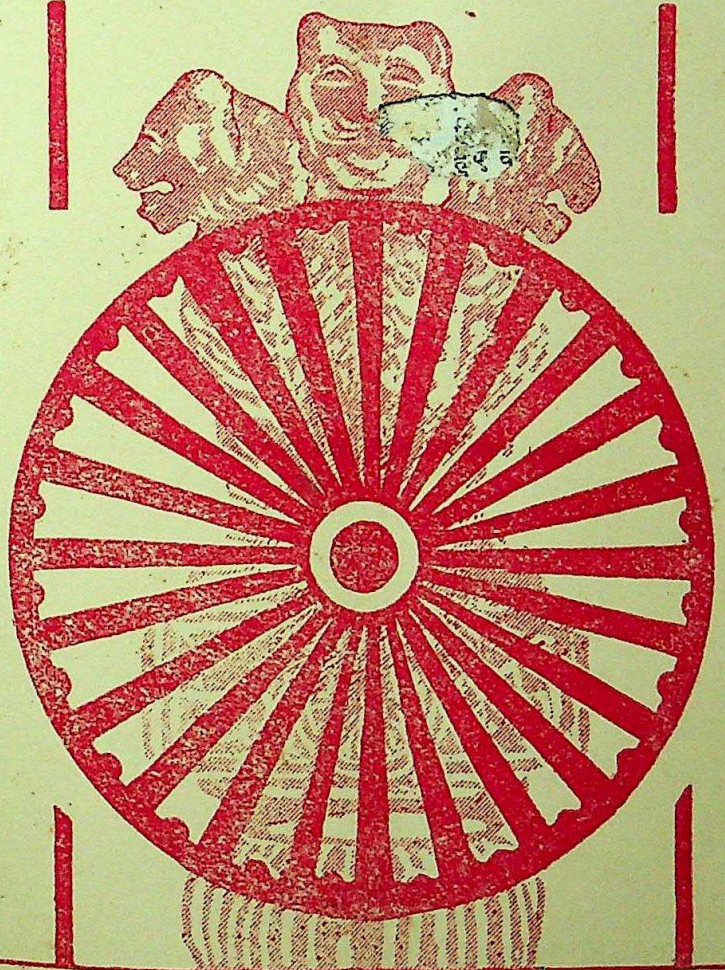

मार्च

१९५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनामृत—चाँद की तरह कुलों में जाना	...	२६१
२. रोगी का आश्वासन—श्री भरतसिंह उपाध्याय एम० ए०	...	२६२
३. श्री नालन्दा महाविहार—श्री भाष्करनाथ मिश्र	...	२६४
४. जब अकाल पड़ा था—स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर	...	२७०
५. शान्ति-दाता—डा० प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ'	...	२७१
६. भक्ति-गान (कविता)—श्री रामचन्द्रलाल श्रीवास्तव	...	२७३
७. भारत-लंका का सांस्कृतिक सम्बन्ध—श्री सुमन वात्स्यायन	...	२७३
८. शान्ति-पर्व (कविता)—श्री हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ'	...	२७५
९. पारा के पुलिन पर—सुश्री कुमारी विद्या	...	२७७
१०. बौद्धयोगी के पत्र—श्री योगी	...	२७८
११. नये प्रकाशन	...	२८१
१२. बौद्ध-जगत्	...	२८३

'धर्मदूत' के नियम—

१—"धर्मदूत" भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मासिक मुखपत्र है ; जो प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिये।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख या कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—"धर्मदूत" का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक

"धर्मदूत" सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १७ | सारनाथ, मार्च | बु० सं० २४९६ / ई० १९५३ | अङ्क ११

बुद्ध-वचनामृत

चाँद की तरह कुलों में जाना

"भिक्षुओ! चाँद की तरह कुलों में जाओ। अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये अनजान के समान हुए। भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष पुराने कूयें, बीहड़ पर्वत, खतरनाक नदी को देखकर अपने शरीर और मनको समेटे रहता है, वैसे ही भिक्षुओ! चाँद की तरह कुलों में जाओ।

भिक्षुओ! जैसे आकाश में हाथ फेरने पर आकाश में नहीं लगता है, नहीं फँसता है, नहीं बझता है, वैसे ही जिस भिक्षु का चित्त कुलों में जाकर भी नहीं लगता, नहीं फँसता, नहीं बझता है; जो लाभकामी हैं वे लाभ करें, जो पुण्यकामी हैं वे पुण्य करें, जैसे अपने लाभ से सन्तुष्ट और प्रसन्न होता है, वैसे ही दूसरों के भी लाभ से। भिक्षुओ! ऐसा ही भिक्षु कुलों में जाने के लायक है।"

—संयुत्त निकाय १५, ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगी का आश्वासन

श्री भरतसिंह उपाध्याय एम. ए.

रोग दुःखात्मक अनुभव है। जानने वाले, देखने वाले, उन भगवान् ने दुःख को जीवन की पहली बड़ी सचाई के रूप में देखा था। जिस दुःख-पुंज को भगवान् बार-बार रागी मनुष्य की आँखों के सामने लाना चाहते थे, जिसे वह देखकर भी देखना नहीं चाहता, उसमें रोग का भी एक मुख्य स्थान है। जन्म, जरा, मरण, शोक, विलाप, रोग-पीड़ा, चिन्ता, मानसिक पीड़ा और इच्छा की पूर्ति न होना सब कुछ दुःख-रूप है, जिससे मानव की मुक्ति खोजने के लिये भगवान् बुद्ध का आविर्भाव हुआ था। रोगी मनुष्य का देखना स्वयं भगवान् बुद्ध के लिये उन निमित्तों में से एक था जिसके कारण उन्हें सांसारिक जीवन से निर्वेद हुआ था। संवेदनशील [illegible] जाने कितने रूपों में दुःख रूप प्रथम आ[illegible] को मानव-जीवन में व्याप्त देखा था जिससे छटपटाकर वह अपनी और मानव-मात्र की विमुक्ति के लिये घर से निकल पड़ा। मानवता का सबसे बड़ा आश्वासन यही है कि उसे अपने प्रयत्न में सफलता मिली और उसने दुःख विमुक्त का जो मार्ग छोड़ा है उसके वारिस हम बन सकते हैं। पर हमारे अन्दर उनका-सा वैराग्य कहाँ? सत्य के लिये उनकी-सी कष्ट-सहिष्णुता कहाँ? दुःख का वह दर्शन कहाँ? सचमुच रोग भी धन्य और अभिनन्दनीय है यदि वही हमें अपनी वास्तविक स्थिति का अनुभव करा कर उस प्रकृत आरोग्य की ओर अभिमुख कर दे, जिसका दूसरा नाम निर्वाण है।

सत्यदर्शी ने इस शरीर को फोड़ा कहा है। इसके नव द्वारों से मल रसते रहते हैं। इसको सुन्दर कहने वालों की सौन्दर्य-बुद्धि पर तरस आता है। सच्चा सौन्दर्य तो सत्य है और सत्य रूप में देखने पर यह काया क्या है? रोग के इस आलय में बैठा हुआ मनुष्य अपने को सुखी मानता है। इसके स्पर्श से उत्पन्न होने वाले सुख को सुख समझता है। पर काया अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकती और मनुष्य दुःखी होता है। प्रत्येक रोग के मूल में कोई न कोई पाप होता है, ऐसा कुछ लोगों का कहना है। पर यह बात एकांशवादी है। कुछ रोग दुष्कर्म के, दुश्चेतना के परिणाम स्वरूप होते हैं, परन्तु प्रत्येक रोग के मूल में दुश्चेतना या दुष्कर्म हो ही, ऐसा नहीं कहा जा सकता। धातु-दोष से भी यह शरीर पीड़ा सहता रहता है। यदि आत्म-पर्यवेक्षण करने पर किसी बुरी चेतना या बुरे कर्म के परिणाम स्वरूप अपनी बीमारी जान पड़े तो रोगी को पीड़ा सहते हुए यह अनुभव करना चाहिये कि मैं यह तप तप रहा हूँ। दुष्कर चर्या के द्वारा मेरे पूर्व दुष्कृत भस्म होंगे और आगे संयम के द्वारा मैं उन्हें उत्पन्न न होने दूँगा। इस प्रकार वेदनाओं को सहन कर उसे वेदना के शमन का प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु यदि रोग के कारण-स्वरूप अपना कोई दुष्कृत स्मरण नहीं आता तो चित्त को विषाद में नहीं डालना चाहिये। बुद्ध-शासन अनुताप को हटाने के लिये है, अनुताप को पैदा करने के लिये नहीं, विषाद को दूर करने के लिये है, विषाद को बढ़ाने के लिये नहीं। पीड़ा काया का धर्म है, ऐसा समझ कर उसे कायानुपश्यना करनी चाहिये और चित्त को शांति में डुबोना चाहिये।

यही बात तो निश्चित है कि इस शरीर को क्षण भर के लिये भी पूर्ण स्वस्थ समझना भारी मूर्खता है। यह वस्तुतः कभी स्वस्थ नहीं रहता। परन्तु शरीर के अस्वस्थ रहते भी चित्त को स्वस्थ रक्खा जा सकता है। चित्त का स्वस्थ रहना ही वास्तव में शरीर का स्वस्थ रखना है। शारीरिक रोग की अवस्था में, चाहे वह किसी कारण से उत्पन्न हो, मानसिक अरोगता की वृद्धि करनी चाहिये। भगवान् ने ऐसा उपदेश एक जगह दिया है, जिसका उद्धरण देना यहाँ आवश्यक होगा। भगवान् एक बार सुंसुमारगिरि (चुनार) के भेसकलावन मृगदाव में विहर रहे थे। वहाँ गृहस्थ नकुलपिता भगवान् के समीप आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। नकुल पिता ने भगवान् से निवेदन किया, "भन्ते! मैं वृद्ध, निर्बल आदमी हूँ। मेरी आयु काफी बढ़ चुकी है। मैं अब मृत्यु के समीप हूँ। मैं सदा ही बीमार और पीड़ा ग्रस्त रहता हूँ। भन्ते! इस निर्बलता में मुझे आपके और पूज्य भिक्षु-संघ के दर्शन भी कम ही मिल पाते हैं। आप कृपा कर मुझे सान्त्वना दें जो चिरकाल तक मेरे लिये सुख और हित के लिये हो।" भगवान् ने नकुलपिता को शांति देते हुए कहा, "गृहपति यह ठीक है कि तुम्हारा शरीर निर्बल और पीड़ा ग्रस्त है। जिसके शरीर है, वह यदि क्षण भर के लिये भी स्वस्थ रहने का दावा करे तो यह उसकी मूर्खता ही होगी। इसलिये गृहपति! तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिये—यद्यपि मेरा शरीर रोगी है। पर मेरा मन रोगी नहीं होगा।" इस प्रकार शारीरिक रोग की अवस्था में मनकी अरोगता का उपदेश भगवान् ने दिया है, जो चिकित्सा-शास्त्र के सिद्धान्तों से सर्वथा सम्मत और समर्थित है।

बीमार होने पर बहुधा अपने सम्बन्धियों की याद आती है, माता-पिता की याद आती है। परन्तु भगवान् ने कहा है कि माता-पिता या अन्य सम्बन्धी या मित्र-गण मनुष्य को दुःख से त्राण नहीं दिला सकते। पटाचारा से दुःखी जीवन और किसका होगा? उसको भगवान् ने यही कहा था कि तेरे माता-पिता तेरे शरण नहीं हो सकते, तेरे पति और बच्चे तेरे शरण नहीं हो सकते। तू अपने शील का शोधन कर। वही तेरा उत्तम शरण होगा। इसलिये बीमार होने पर यदि अकेले हैं और माता-पिता और अन्य सम्बन्धियों की याद आती है तो उस इच्छा का प्रहाण करना चाहिये और अपने शील और सुकृत को याद कर शान्ति ग्रहण करनी चाहिये और आगे उनकी वृद्धि कर उन्हीं की शरण जाऊँगा, ऐसी भावना करनी चाहिये।

बुद्ध भगवान् का जीवन, उनका शान्त, ध्यानस्थ रूप, त्रिपिटक के रूप में उनका वाङ्मय रूप, क्या इससे भी बड़ा कोई आश्वासन रोगी मनुष्य को चाहिये? उसे ध्यान करना चाहिये कि भगवान् बड़े चिकित्सक हैं, वैद्य हैं, रोगी मनुष्यों को रोग-विमुक्त करने के लिये ही उनका आविर्भाव हुआ था और जिन्हें रोग-विमुक्त करने का उन्होंने संकल्प लिया था उनमें वह भी सम्मिलित हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है कि मैं इस जगत् का वैद्य हूँ। रोगी को उन्हें मानसिक प्रणाम करते हुए स्मरण करना चाहिये कि वे भगवान् पूर्ण, विमुक्त पुरुष, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, मैं उनकी शरण जाता हूँ। मैं स्वस्थ होकर उनके दिखाये मार्ग के अनुसार अपने शील का शोधन करूँगा जो मेरे लिये उत्तम शरण होगी। इस प्रकार बुद्धानुस्मृति से रोगी के मन को सान्त्वना और शान्ति मिलती है।

शरीर में आत्म-बुद्धि का होना दुःख का मूल है, ऐसा बौद्ध और वेदान्त दर्शनों का समान अभिप्राय है। शरीर को, इन्द्रियों को मन और प्राण को हम अपना समझते हैं। इसलिये उनमें विपरिणाम होने पर हम अनुभव [illegible] कि यह विपरिणाम मुझ में हो रहा है। इसलिये शरीर में जब रोग है, सारी देह जब जल सी रही है, तो साधक रोगी को अनुभव करना चाहिये कि वह शरीर नहीं है, मन नहीं है, प्राण नहीं है, इन्द्रिय नहीं है। उसे सोचना चाहिये कि तत्त्वतः मैं चक्षु नहीं हूँ रूप नहीं हूँ, चक्षु और रूप से उत्पन्न विज्ञान नहीं हूँ, उनसे पैदा हुई वेदना नहीं हूँ। वे मेरे नहीं हैं, मेरा उनमें आत्मा नहीं है। मैं क्यों उन्हें ग्रहण करूँ? यह ध्यान उच्च कोटि के साधक के लिये ही सम्भव है। धर्म सेनापति सारिपुत्र ने इसका उपदेश मरणोन्मुख अनाथपिण्डिक को दिया था जिसे सुनकर आध्यात्मिक उल्लास में वह कृतज्ञ उपासक रो पड़ा था। दृश्यमान जीव के लिये जिनका आकर्षण अभी बाकी है उनके लिये यह ध्यान कठिन प्रतीत होगा। हमें भगवान् बुद्ध के स्मरण के द्वारा रोग की अवस्था में, जैसे कि स्वस्थ अवस्था में, आश्वासन ग्रहण करना चाहिये। उनके जीवन और उपदेश स्वयं आरोग्य-स्वरूप हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नालन्दा महाविहार

श्री भास्कर नाथ मिश्र

भारत की सांस्कृतिक गौरव गाथा इतनी विशद और बहुमुखी है कि उसके असली रूप को पहिचानने के लिए सतत चेष्टा और अकथ परिश्रम अत्यन्त आवश्यक है। पुरातत्व विभाग ने इस दिशा में स्तुत्य कार्य किया है। तो भी भारती के अंचल में अभी भी कितने ऐसे-ऐसे कण भरे पड़े हैं जिनके प्रकाश में आने पर हमें अपने इतिहास को नए सिरे से लिखना होगा। नालन्दा भी इसी इतिहास का सुपुष्ट किन्तु जाज्वल्यमान पृष्ठ था जो अब विश्व के सामने शनैः शनैः खुलता जा रहा है।

नालन्दा का प्रादुर्भाव वस्तुतः कब हुआ, यह बताना अभी कठिन है। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि गौतम-बुद्ध (६२३-५४३ ई० पू०) के समय में [illegible] को के पड़ोस में स्थित थी। १ कौटिल्य के [illegible] में नालन्दा को राजगृह की 'बाहिरिका' कहा गया है जो परम ऐश्वर्य्यवाली, समृद्धिशालिनी और अनेक भवनों से युक्त सुन्दर उपस्थली थी। २ जैन ग्रन्थ 'सूत्रकृतांग' में भी नालन्दा का ऐसा ही वर्णन है। जब कभी बुद्ध राजगृह (राजगह) से पाटलिग्राम (पाटलिपुत्र) जाते या लौटते थे तब रास्ते में वे नालन्दा के पास पावारिक नामक श्रेष्ठी (वणिक) के आम्रवन में ठहरा करते थे। समय-समय पर वे नालन्दा भी जाते थे और इच्छुक व्यक्तियों की शंकाओं का समाधान करते थे। भद्रबाहु के 'कल्पसूत्र' से ज्ञात होता है कि जैनियों के २४ वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने नालन्दा में १४ चौमासे (अर्थात् १४ वर्ष) व्यतीत किये थे। ३ शुङ्गकाल (१८४-७२ ई० पू०) से लेकर चौथी शती ई० स० तक हमें नालन्दा के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। अभी तक विद्वानों को यह बात अमान्य थी कि फाहियान (३९९–४१४ शती ई० स०) नालन्दा गया था। उसकी भारत-यात्रा का अनुवाद डा० लेग्गी ने किया था, जिसमें हमें 'नालो' शब्द मिलता है। इस 'नालो' को लेकर नालन्दा की अटकल अबतक लगाई जाती है। किन्तु कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के चीनी-भाषा के प्रोफेसर एच० ए० जाइल्स ने जो अनुवाद विश्व के सामने प्रस्तुत किया उसकी ओर किसी ने शायद ध्यान ही नहीं दिया। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि फाहियान नालन्दा गया था। वहाँ उसने एक स्तूप खड़ा देखा था। ४ यही नहीं, बौद्ध धर्म की महायान शाखा के प्रबल पोषक नागार्जुन के प्रिय शिष्य आर्यदेव नालन्दा के आचार्यों में से थे। इन्हें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (चौथी शती ई० स०) का समकालीन माना जाता है। सम्भव है चौथी शती में नालन्दा का वह रूप न रहा हो जो उसे बंगाल के पालवंशीय राजाओं (८ वीं शती-१२ वीं शती ई० स०) की छत्रछाया में प्राप्त हुआ; किन्तु उसका संस्थापन गुप्त-काल के प्रारम्भिक युग में हुआ, यह निर्विवाद है। चन्द्रगुप्त की नीति नालन्दा के प्रति क्या थी, वह हम नहीं जानते; किन्तु उसके पुत्र और उत्तराधिकारी कुमारगुप्त प्रथम जिसे ह्यूनसांग (६२९ शती-६४५ शती ई० स०) ने शक्रादित्य के नाम से सम्बोधित किया है ५ की एक स्वर्ण मुद्रा नालन्दा के विहार सं०४ के सब से निचले स्तर में मिली है। श्री जे० ए० पेज का कथन है कि या तो यह स्तर इस मुद्रा के इसमें आने से बहुत पहले बनाया गया होगा या बाद में उनकी समझ में यह स्तर बाद में अर्थात् कुमारगुप्त के ही समय में अथवा उनके उत्तराधिकारियों द्वारा ही बनाया गया होगा। ६ किन्तु इसी विहार के अन्तर में एक अत्यन्त प्राचीन इमारत का पता चला है, जो कुमारगुप्त के समय से पहले ही निर्माण हो गई होगी। ७ ह्यूनसांग ने लिखा है कि शक्रादित्य, बुद्धगुप्त, तथागत गुप्त, बालादित्य, वज्र और मध्य भारत के एक राजा ने नालन्दा में बारी-बारी से विहारों का निर्माण कराया। ८ प्रथम पांच शासकों को गुप्तवंशीय समझा गया है; किन्तु इस दिशा में काफ़ी हेरफेर की आवश्यकता है। तत्पश्चात् महाराज हर्ष ने भी एक विहार और एक मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीतल के पत्तरों की सहायता से निर्माण कराया। ९ हर्ष के बाद मौखरिवंशीय राजा ईशानवर्मन और शर्ववर्मन आदि का युग आता है। इन राजाओं की मिट्टी की मुहरें नालन्दा की खुदाई में प्राप्त हुई हैं। इसी वंश के कन्नौजराज श्री यशोवर्म्मदेव (८ वीं शती ई० स०) के एक प्रस्तर लेख में नालन्दा का सुन्दर वर्णन है। मौखरि-युग के बाद पाल राजाओं ने नालन्दा की समृद्धि में अपना योग-दान दिया और उन्हीं के साथ-साथ नालन्दा का भी लोप हो गया।

नालन्दा के भग्नावशेष आज भी अपनी रही-सही परम्परागत सम्पदा को समेटे राजगृह और विहार शरीफ के बीच विद्यमान हैं। उत्तर में बेगमपुर के टीले, पूर्व में बिहार-शरीफ और पावापुरी, दक्षिण में राजगिर और पश्चिम में नूपुर और जगदीशपुर व जोआफर के टीले हैं। इन भग्नावशेषों के चारों ओर स्थित अनेक टीलों की उपस्थिति इस बात की द्योतक है कि नालन्दा-महाविहार का बिस्तार राजगृह से लेकर बिहारशरीफ तक है। इस विशाल क्षेत्र के खननकार्य में युग लगेंगे। तब कहीं सम्पूर्ण नालन्दा की झाँकी देखने को मिलेगी। यहाँ की इमारतों में विहारों की संख्या अधिक है। अबतक ११ विहार प्रकाश में आ चुके हैं। ये ही विद्यालयों और छात्रावासों का काम देते थे। इनका आकार-प्रकार समचतुरश्र है। प्रवेश-द्वार से यात्री विहार के आँगन (परिवेण) १० में प्रवेश करता है। यह आँगन चारों ओर मुड़ेरे से घिरा हुआ है। मुड़ेरे के चारों ओर विस्तृत बरामदा है। आंगन तो सदैव खुला रहता था किन्तु बरामदा छतदार होता था। इस छत को सम्भालने के लिए बहुत-से स्तम्भ होते थे जो मुड़ेरे पर खड़े किये जाते थे। इनकी नींव के अवशेष अभी तक विद्यमान हैं। विद्वानों ने स्तम्भों के बीच की दूरी को समान माना है। किन्तु यह दूरी ४', ५' या और भी अधिक है। सबसे ऊँचे स्तम्भ की ऊँचाई ७' के लगभग है। इसका अर्थ यह है कि छत बहुत ऊँची नहीं होती थी। इन स्तम्भों का उपयोग किस प्रकार होता था इसका अन्दाजा विहार सं० ११ को देखकर लगाया जा सकता है। बरामदे के चारों ओर छात्रों की कोठरियाँ हैं। प्रवेशद्वार के ठीक सामने प्रधान पूजा-गृह एवं मन्दिर होता था, जिससे विहार में प्रवेश करते ही भिक्षु की दृष्टि सर्वप्रथम मंदिर की बुद्ध-मूर्ति पर ही पड़े और उसका हृदय बुद्धधर्म की महिमा से परिप्लावित हो जाए, वह श्रद्धालु हो उठे, और उसके रोम-रोम से 'ओ३म् नमो बुद्धाय' की ध्वनि प्रस्फुटित हो उठे। विहार के आंगन में भी पूजा के उपगृह हैं जो यह बताते हैं कि पूजा करने वालों की संख्या बहुत होती थी और परिणामस्वरूप उपगृहों का निर्माण किया गया। कोठरियों की बनावट से जान पड़ता है कि विहार एक समय में एक ही मंजिल वाला होता था। वैसे कहने को तो यहाँ तक कहा गया है कि कम-से-कम चार मंजिलें इन विहारों में हैं ही। ११ कोठरियों की छत को सम्भालने के लिए लकड़ी के शहतीर होते थे। इनके लिए कोठरी की दीवार में आमने-सामने २,४,६ अथवा कभी-कभी ९ चौकोर छेद बनाए जाते थे। इन छेदों को देखकर [illegible] निकालना कि कोठरी पर कोठरी होगी, [illegible]। कुछ विद्वानों का कथन है कि विहारों के कोनों में बने हुए जीने दूसरी मंजिल पर जाने के लिए थे; किन्तु साथ ही यह भी सम्भव है कि कोठरियों की छत पर जाने के लिए इन जीनों का प्रबंध हो। तिब्बती ग्रंथों का मत है कि नालन्दा का एक पुस्तकालय भवन 'रत्नोदधि' नौमंजिला था। १२ किन्तु इस कथन की पुष्टि वर्तमान अवशेषों से नहीं होती। सम्भव है प्राचीनकाल में नालन्दा की इमारतें मंजिलों वाली रही हों और कालान्तर में उनकी खुदाई तब हुई जब वे ईंटों और मिट्टी का ढेर बन चुकी थीं।

७ वीं–८ वीं शती में सम्भवतः छात्रों को चारपाइयाँ या लकड़ी की तिपाइयाँ दी जाती थीं। ये ३' चौड़ी और ६' लम्बी होती थीं। इसी माप के अनुसार चारपाई पर बिछाई जाने वाली चटाई भी होती थी। चूँकि कोठरी में अधिक स्थान न होता था इसलिए चारपाइयों को कोठरी के एक कोने में या बाहर लाकर रख दिया जाता था। कोठरी की फर्श को गाय के गोबर से लीपा जाता था। तब उसमें कुर्सियाँ, लकड़ी के तख्त, छोटी-छोटी चटाइयाँ आदि सजायी जाती थीं। तत्पश्चात् अपनी योग्यतानुसार भिक्षुगण कोठरी में रहते या उठते-बैठते थे। कोठरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अलमारियों या ताखों में बर्तन इत्यादि रखे जाते थे। १३ किन्तु ९ वीं शती में जब नालन्दा-दहन हुआ तब काष्ठ या ऐसी अन्य प्रकार की वस्तुएँ जलकर राख हो गईं। भिक्षुगण जब महाविहार का पुनरुत्थान करने वापस आए तब उन्होंने कंकरीट के चबूतरे ही अपने बैठने, सोने के लिए उपयुक्त समझकर बनवाए। विहार सं० १,४ और ७ में उपरले स्तर में ये चबूतरे देखे जा सकते हैं। इनका आकार समचतुरक्ष है। सं० १ में तो एक बिछावन व दो बिछावन वाली कोठरियाँ हैं। आज पाश्चात्य या भारतीय छात्रावास शायद इसी पद्धति पर चल रहे हैं। चबूतरों की लम्बाई चौड़ाई ६'-७" × ३'-६", ६'-२" × ३'-८" और कहीं-कहीं ६'-९" × २'-७" है। इन पर चटाई बिछाकर सुविधापूर्वक छात्रगण विश्राम कर सकते होंगे। सं० १ की कोठरियों में लम्बे-लम्बे ताखे या आले हैं। इन आलों में पुस्तकें, मूर्तियाँ इत्यादि व उनकी पूजा करने के लिए [illegible] पुष्पादिक वस्तुओं का संग्रह रहता होगा। [illegible] अनुमान है कि कोठरियों में खिड़कियाँ अवश्य [illegible] १४ परन्तु आश्चर्य है कि कोठरी जहाँ समूची मिली है वहाँ भी खिड़की या वातायन का कोई आभास नहीं। विनय ग्रन्थों में तीन प्रकार के वातायन रखने की आज्ञा दी गई है; किन्तु नालन्दा को इनसे क्यों वंचित रखा गया, यह समझ में नहीं आता। एक बात ध्यान में रखने की यह है कि आँगन इतना विस्तृत और खुला रहता था कि हवा और प्रकाश की सुविधा प्रत्येक कोठरी को मिलती रहती थी। दूसरे भिक्षु अपनी क्रियाओं का सार्वजनिक प्रदर्शन नहीं करना चाहते थे। तीसरे वे पहले से गुफाओं में रहने के अभ्यस्त होने के कारण वैसा ही बन्द-सा एकांत स्थान समाधिस्थ होने के लिए पसन्द करते थे। इन्हीं कारणों से ही वातायन नालन्दा के विहारों में नहीं हैं।

विहार सं० १ के दक्षिण-पूर्व वाली कोठरी के बाहरी पार्श्व पर बहुत-सा पलस्तर है। इस पलस्तर पर अनेक विध बेल-बूटे कढ़े हुए हैं। इस विहार के बाहरी पश्चिमी आँगन में एक मंदिर के निचले स्तर में भी प्राचीन चित्रकारी के विचित्र दर्शन होते हैं। ज्ञात होता है कि सभी विहारों पर पलस्तर होता था और पलस्तर पर चित्र-विचित्र आकृतियों, लताओं, त्रिकोणों और अन्य मंगलकारी प्रतीक-चिन्हों का अंकन किया गया था। चुल्लवग्ग (६।२।१-२) में विहार को सफेद, काले और गेरुए रंगों से चित्रित करने की अनुमति बुद्ध द्वारा दी गई है।

विहारों के प्रवेश-द्वारों के दोनों ओर दो कोठरियाँ स्थित मिलती हैं। ये कोठरियाँ भण्डारों के रूप में जान पड़ती हैं। इनमें भीतर प्रवेश करने के लिये इनसे लगी हुई कोठरी के अतिसंकीर्ण मार्ग से होकर जाना पड़ता था। विहार की सामग्री और जनता द्वारा दान की गई वस्तुएँ इन्हीं भण्डारों में रखी जाती थीं।

जान पड़ता है कि नालन्दा के विहार दो बार अग्नि से ध्वस्त हुए थे। एक दो नवीं शती के उत्तरार्द्ध में और दुबारा ग्यारहवीं शती में। इन दोनों अग्नि-काण्डों में १५०-२०० वर्षों का अन्तर-लगता है। नालन्दा के विहारों को ही इस विनाश का सामना नहीं करना पड़ा। पहाड़पुर (जिला राजशाही, पूर्वी पाकिस्तान), सारनाथ (बनारस) विक्रमशिला और उदण्डपुरी (बिहारशरीफ) आदि को भी इस विपदा ने नहीं छोड़ा। नालन्दा में जिस समय अग्निकाण्ड हुए उस समय तक इस्लामपंथियों का आगमन चाहे भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में हो गया हो किन्तु विहार में न हुआ था। सम्भवतः भारतीय राजे-महाराजों ने धार्मिक द्वेष और असहिष्णुता के वशीभूत होकर अथवा राजनीतिक दाव-पेंचों के फलस्वरूप महाविहार को नष्ट करने का बीड़ा उठाया था। वे यह जानते हुए भी कि नालन्दा न केवल बौद्धधर्म का केन्द्र था बल्कि यहाँ वेद, उपनिषद् आदि हिन्दू ग्रन्थों का पठन-पाठन भी होता था और साथ ही विष्णु, शिव-पार्वती, गजलक्ष्मी; कुबेर, सरस्वती, गणेश तथा सूर्यादिक की पूजा भी होती थी, ऐसा अपकर्म कर बैठे। किन्तु ये बातें ७ वीं ८ वीं शती की लगती हैं। बाद में बौद्ध भिक्षु तंत्रमंत्रयान के फेर में पड़कर, असहिष्णु हो उठे और हिन्दू ग्रन्थों व देवी-देवताओं का अपमान करने लगे। साथ ही नालन्दा को धीरे-धीरे राजकृपा से भी वंचित होना पड़ा। विक्रमशिला महाविहार की ८ वीं शती में प्रतिष्ठापना इसका प्रमुख कारण थी। १० वीं ११ वीं शती तक जनता विहार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैले अन्धविश्वासों और अनाचारों से भी उकता उठी थी। जब हिन्दुओं ने देखा कि धार्मिक असहिष्णुताने बौद्ध शिल्पियों को पथ भ्रष्ट कर दिया है तो वे भी द्वेषी हो उठे। इस प्रकार की असहिष्णुता के प्रमाण नालन्दा में मिले हैं। एक उदाहरण में बुद्ध, ब्रह्मा और इन्द्र को परिचरों के रूप में दाएँ-बाएँ लिए त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से उतरते हुए दिखाए गये हैं। दूसरे में अपराजिता नामक बौद्धदेवी गणेश को कुचलती हुई प्रदर्शित की गई हैं। तीसरे में अनन्तविजय नामक बौद्धदेव शिव और पार्वती को गदा से कुचलते और पैरों से रौंदते हुए दिखाये गये हैं। ऐसे वातावरण का परिणाम अच्छा नहीं हुआ और महाविहार के पतन का एक प्रमुख कारण हुआ।

विहारों की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि वे प्राचीन विहारों के अवशेषों पर ही बनते चले गये। उत्तरोत्तर प्राचीन टीलों पर बनते बनते वे इतने ऊचे हो गये कि उनकी स्थिति सामान्य धरातल से कई फुट ऊँची हो गई। विहार सं० १अ०, १ब, ४, ५, ६ और ७ प्राचीनतम विहारों पर स्थित हैं। इन सातों में विभिन्न कालों के कई स्तर हैं। सं० १ और ४ में क्रमशः ८ और ६ स्तर हैं। अन्य विहार दो अथवा तीन स्तरों वाले हैं। अधिकांश विहारों में कुएँ हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार बाद में ऊँचा कर लिया गया। ये कुएँ या तो वृत्ताकार हैं या अठकोठी। जल प्रायः सभी में विद्यमान है। सं० ६ का कुआँ ही अब काम में लाया जाता है। जिन विहारों में कुएँ नहीं थे वे सम्भवतः अपने पड़ोसी विहार पर निर्भर करते थे। कई विहारों में लम्बे लम्बे चूल्हे भी हैं। ये चूल्हे छात्रों का भोजन पकाने के काम में आते थे। इस बात की पुष्टि चीनी यात्री इत्सिंग भी करता है। इसका कथन है कि 'संघाराम एवं विहार वास्तव में संघ के भिक्षुओं के रहने का स्थान होता है' किन्तु उसे हम सांघिक-पाकशाला भी कह सकते हैं, १६ अस्तु विद्वानों का यह मत कि यह चूल्हे भिषग्शाला विज्ञानशाला अथवा ऐसी ही अन्य शाला का बोध कराते हैं, अनुकूल नहीं बैठता। नालन्दा की वह विज्ञानशाला जहाँ धातु को पानी की भाँति गला-गलाकर मूर्त्तियों का रूप दिया जाता था स्वयं एक स्वतन्त्र इमारत है और चैत्य सं० १० के ठीक उत्तर में स्थित है। विहार सं० १ के आंगन में उत्तर की ओर कुएँ के पास दो ऐसे गुफाकार कमरे हैं जो निर्माणकला की दृष्टि से अद्भुत हैं। उनके प्रवेश-द्वार के उपरले सिरों की ईंटों को क्रमशः पास-पास लाकर त्रिभुजाकार रूप दिया गया है जिससे शिरदल की आवश्यकता ही न पड़े। इस प्रकार के पटाव का प्रमाण विहार सं० ४ के प्रमुख पूजागृह के प्रदक्षिणा-पथ की छत से भी मिलता है जो देखते ही बनता है। गुफाकार कमरों की भीतरी बनावट अर्ध-चन्द्राकार है। ईंटों को सुविधा से तराशकर मिट्टी के गारे की सहायता से ऐसा जोड़ दिया गया है कि वे जमकर रह गई हैं। बहुत सम्भव है कि ये कमरे नालन्दा के नामी-गामी उपाध्यायों के लिये समाधि लगाने के एकान्त स्थल हों। विहार सं० १० की कोठरियों के द्वारों की मेहराब भी अर्ध-चन्द्राकार हैं। दूसरी विशेषता कोठरियों के द्वारों पर शिरदल के ऊपर की ओर दीवारों के बहिर्मुखों की छाजन है। सं० ५ के गुप्तकालीन कोठरियों के [illegible] प्रमाण हैं। पालकालीन विहारों में सं० १ और [illegible] इसी छाजन के लिए प्रसिद्ध हैं। दीवारों की छाजनें संख्या १, ४, और ११ में हैं। दीवारें कहीं-कहीं सादी भी हैं। प्रत्येक विहार के आँगन में उसकी अपनी नाली है जिससे बरसाती पानी निकल जाता था। ये नालियाँ आज भी पुरातत्व विभाग द्वारा काम में लाई जाती हैं। सं० १ और ४ की नालियाँ देखने योग्य हैं क्योंकि इनकी प्रत्येक नाली युग-विशेष की द्योतक है। ज्यों-ज्यों विहार का धरातल ऊँचा होता गया त्यों त्यों नाली भी ऊँची होती चली गई।

विहारावली के ठीक समानान्तर नालन्दा के पंचायतन आकार के चैत्य खड़े है। सं० १२, १३ और १४ के चैत्य भीमाकार हैं। इन सभी के निर्माणों में दो-दो स्तरों का पता लगा है। प्राचीन चैत्य अत्यधिक अलंकृत और सुधामयी मूर्त्तियों से सुसज्जित थे। किन्तु उनके अवशेषों पर बाद में बनने वाले चैत्य कुछ साधारण से रहे। इन चैत्यों में बुद्ध की विशाल सुधामयी मूर्त्तियाँ थीं। ऐसी मूर्त्ति सं० १२ के दक्षिण में स्थित छोटे चैत्य में देखी जा सकती है। बुद्ध की मूर्त्ति के अगल-बगल अन्य मूर्त्तियाँ भी हैं, जिनमें अधिकांशतः बोधिसत्व और हिंदू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता हैं। सं० १४ की बुद्ध मूर्त्ति पर तथा इसके अन्तराल की दीवारों पर चित्रकला के अवशेष अबतक विद्यमान हैं।

चैत्यावली के दक्षिण और विहार सं० १ ब के पश्चिम में नालन्दा स्तूप सं० ३ है। इसके चारों ओर अनेक स्तूप और चैत्य विद्यमान हैं। यह स्तूप सात स्तरों वाला है। प्रथम स्तूप को इतना पवित्र और मंगलमय माना गया है कि विभिन्न युगों में उसे छै बार दीवारों और चबूतरों से मढकर उसी के अवशेषों पर नये नये स्तूप बनते गये। इनमें प्रथम तीन स्तूप तो भीतर दबे पड़े हैं, किन्तु बाद के चारों स्तूपों के अवशेष दृष्टिगत होते हैं। प्रत्येक स्तूप के चारों कोनों पर कोण स्तूप होते थे, इसका प्रमाण चौथे और पाँचवें स्तूप के कोणस्तूपों से लगता है। पाँचवें स्तूप के कोणस्तूप विशाल और अनेक विधि अलंकरणों से विभूषित हैं। इस स्तूप के स्तर वाले एक श्रद्धाभिव्यंजक स्तूप में से एक ऐसी ईंट निकली है, जिसपर [illegible] छठी शती का 'प्रतीत्यसमुत्पाद' मंत्र उ[illegible] आधार पर इस स्तर को भी तत्कालीन मान लिया गया है। विद्वानों का यह अनुमान बहुत कुछ सही है कि इस स्तूप के अन्तर में छिपे प्रथम चार स्तूप कमसे कम दो शती पहले के अवश्य होंगे। इस प्रकार प्रथम स्तूप की तिथि चौथी शती ठहरती है। यही समय गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का भी है। बहुत सम्भव है कि फाहियान ने इसी स्तूप को नालन्दा में देखा हो। अथवा यदि तारानाथ का यह कथन हम स्वीकार करते हैं कि सम्राट ने इस स्तूप को बनवाया होगा, तो फाहियान ने पहले स्तूप पर खड़े हुए दूसरे अथवा चौथे स्तूप को देखा होगा। यह प्रथम स्तूप बहुत छोटा और चौकोर था। इसका निर्माण गुप्तकाल की ईंटों जिनकी नाप १८′ × १४′ × ४′ है, से हुआ था इस स्तूप में धातुगर्भ का स्थान तो देख पड़ा है किन्तु किसी प्रकार के धातु की प्राप्ति नहीं हुई है। सम्भव है कि ह्यूनसांग ने नालन्दा में जो स्तूप देखा था और जिसमें बुद्ध के बाल और नख सुरक्षित थे वह यही स्तूप हो। ह्यूनसांग ७वीं शती ई० सं० पूर्वार्द्ध में नालन्दा आया। तब उसने सम्भवतः ५वां अथवा छठवां स्तूप ही देखा होगा। अस्तु इसका यह कथन कि स्तूप में बुद्ध के 'धातु' थे, केवल सुनी हुई बात ही प्रतीत होती है। यह जनश्रुति कहां तक व्यवहार्य हो सकती है, हम नहीं कह सकते। इस स्तूप सं० के पांचवें छठवें और सातवें स्तरों को उत्तरी भाग में अधिक स्पष्ट किया गया है। पाँचवें स्तर की सीढ़ियाँ छठवें स्तर की सीढ़ियों के पेटे में और छठवें की सीढ़ियाँ सातवें के पेटे में जाती हुई दीख पड़ती हैं। सातवें स्तर में सीढ़ियाँ रही अवश्य होंगी, किन्तु उसका आभास अब एक दीवार देती है। नालन्दा अपनी सीढ़ियों की सुघरता के लिए प्रसिद्ध है। इस स्तूप की चोटी पर एक मन्दिर है। पाचवें स्तूप की सीढ़ियों के पूर्व में भी एक स्तूप से सम्बंधित मंदिर है। स्तूप और मंदिर का यह मेल अद्भुत है। सं० ३ के मंदिर से राजगृह और गिद्धयक तथा विहारशरीफ की पहाड़ी तथा मीलों में फैले हुए नालन्दा के स्तूप, विहार और इत्यादि देख पड़ते हैं।

नालन्दा की इमारतें ईंटों की बनी हैं। ईंटों की बनावट विशेष महत्त्व की है। चिकनी मिट्टी में गुड़, धान की भूसी, गोबर और गंगट चूने का पुट देकर इन्हें पाथा जाता था। वे इतनी चमकदार होती थीं कि प्रकाश पाकर झलमलाने लगती थीं। ये ईंटें इतनी सटाकर जमाई गई हैं कि उनके बीच की संधियाँ बड़ी बारीक देख पड़ती हैं। डॉ० स्पूनर तो इन्हें आधुनिक ईंटों से बढ़कर मानते हैं। १७

ह्यूनसाँग का कथन है कि उसके समय में नालन्दा के प्रमुख विहारों के चारों ओर ईंटों का बना एक परकोटा था, जिसमें एक प्रवेश-द्वार था। १८ किन्तु वह परकोटे के दक्षिणी द्वार का वर्णन भी करता है। १९ प्रतीत होता है कि इस परकोटे में कई प्रवेश द्वार थे। परकोटे को प्रकाश में लाने का प्रयत्न पुरातत्त्व विभाग ने किया था परन्तु यत्र-तत्र अश्रृंखलाबद्ध अवशेषों के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगा। २० अनुमान किया जाता है, कि आसपास की बस्तियों के निवासियों ने परकोटे की ईंटों से अपने मकान बनवा लिए।

नालन्दामहाविहार के दर्शन करने या यहाँ शिक्षाग्रहण करने के नाते बहुत से यात्री आया करते थे। प्रसिद्ध यात्री ह्यूनसाँग के आगमन की सूचना पाकर नालन्दा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यभिक्षु संघ ने अपने चार योग्य व्यक्तियों को उसका स्वागत करने भेजा। यात्री के साथ सहस्रों उत्सुक जन चल रहे थे। सब लोग यात्री के गुणगान करते हुए हाथों में यश पताकाएँ लिए नालन्दा की ओर बढ़े। महाविहार में पदार्पण करते ही सम्पूर्ण संघ ही यात्री के चारों ओर आ उपस्थित हुआ। तब महाविहार के उपाध्यक्ष (कर्म-दान) को घण्टा बजाने की आज्ञा हुई। तत्पश्चात् २० विद्वज्जन ह्यूनसांग को प्रधान कुलपति शीलभद्र के पास ले गए। २१ योगशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित इन्हीं शीलभद्र से यात्री ने इस शास्त्र की शिक्षा पाई।

महाविहार में प्रवेश पाने की अभिलाषा लेकर चीन, कोरिया, जावा, सुमात्रा, तिब्बत, नेपाल, मध्य एशिया और सिंहलद्वीप तक के छात्र आते थे। इन सभी को प्रवेश परीक्षा में बैठना पड़ता था। यह परीक्षा नालन्दा के 'द्वार-पण्डित' लेते थे। द्वार-पण्डित उनसे शास्त्रार्थ करता था। बहुधा प्रति दस छात्रों में सात-आठ छात्र असफल होकर स्वदेश लौट जाते थे। उत्तीर्ण छात्रों को अपनी उन्नति करने की सभी सम्भव सुविधाएँ दी जाती थीं। जब वे अपना प्रगाढ़ पाण्डित्य सिद्ध कर दिखाते थे तब उन्हें महाविहार के विशेषज्ञों में गिना जाता था। ह्यूनसांग लिखता है—यह महाविहार अपनी उच्च शिक्षा के लिए इतना प्रख्यात है कि बहुत से लोग इसमें बिना शिक्षित हुए ही अपने आपको नालन्दा महाविहार का विद्यार्थी बताते हैं और सर्वत्र आदर के भागी होते हैं। २२

प्रतिदिन विहारों में १०० व्याख्यान होते थे। पढ़ाए जाने वाले विषयों में बौद्धधर्म, बुनियादी तालीम, कृषि, तंत्रमंत्रशास्त्र, शब्दविद्या (व्याकरण), हेतुविद्या (दर्शन), योगशास्त्र, शिल्पस्थान-विद्या, चिकित्सा-विद्या, अध्यात्म-विद्या, सांख्यवाद, साहित्य, धर्म, वेद, आगम तथा उप-निषदादि थे। विद्यार्थी को पहले व्याकरण का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। पढ़ने-पढ़ाने की विधि शास्त्रार्थ ही थी। शास्त्रार्थ करते-करते दिन-मान का पता न लगता और भूख-प्यास की सामयिक अड़चनें भी प्रबल न होतीं। विद्यार्थी और उनके आचार्य परस्पर गूढ़ विषयों पर सम्भव-असम्भव तरीकों से बातचीत करते थे और कुछ-न-कुछ समुचित हल निकाल लेते थे। प्रत्येक आचार्य एक समय में ५-६ छात्रों से अधिक को न पढाता था। इसी कारण वह प्रत्येक छात्र की कचाई निकाल पाता था। इत्सिंग ने लिखा है कि "भारतीय व्याख्यानशालाओं और भोजनालयों में छोटी-छोटी लकड़ी की कुर्सियां होती थीं। इन्हीं पर बैठकर विद्यार्थी व्याख्यान सुनते या भोजन करते थे। २३" यह कार्य विहार के आंगन में ही सम्भव जान पड़ता है।

महाविहार के संस्थापकों और आचार्यों में नागार्जुन, आर्यदेव, आसंग, वसुबंधु, राहुलभद्र, दिङ्नाग, सुविष्णु, धर्मपाल और शीलभद्र सभी अपने-अपने समय के माने हुए विद्वान थे। ह्यूनसांग के समय नालन्दा के उपाध्यायों और अन्तेवासियों की संख्या बहुत थी। 'युवान च्वाँग' में लिखा है कि महाविहार में कुछ हजार व्यक्ति ऐसे थे जो महा प्रज्ञ थे; कई सौ ऐसे थे जिनकी योग्यता की बड़ी ख्याति थी। विहार के सभी व्यक्ति अपने सम्प्र-[illegible]यों के इतने निष्ठ पालक थे कि समग्र भारत [illegible] हुए वहाँ आकर उनका अनुसरण करता था। २४ ह्यूनसांग ने लिखा है कि 'विहार के भिक्षुओं और अन्य व्यक्तियों की संख्या १०,००० तक सदैव जा पहुँचती है।···एक सहस्र पुरुष ऐसे हैं जो सूत्रों व शास्त्रों के २० संग्रह ग्रन्थों की व्याख्या कर सकते हैं; ५०० ऐसे हैं जो ३० संग्रह-ग्रन्थों की व्याख्या करने की क्षमता रखते हैं। १० पुरुष ऐसे हैं जो ५० संग्रह-ग्रन्थों को सुलझाने में समर्थ हैं। इन्हीं में ह्यूनसाँग भी है। और शीलभद्र ही एक ऐसे हैं जो सम्पूर्ण ग्रन्थों का पारायण कर चुके हैं·····। २५' इस प्रकार १,००० + ५०० + १० + १ अर्थात् १५११ उपाध्याय हुए और ८४८९ छात्र, जिनमें अन्य व्यक्ति भी शामिल हैं। इत्सिंग (६७१–६९५ शती ई० स०) जो ह्यूनसांग के लगभग ३५ वर्ष बाद भारत आया, केवल ३,००० की संख्या देता है। २६ किन्तु यह संख्या केवल भिक्षुओं की है। इसमें उपाध्यायगण और अन्य व्यक्ति भी शामिल हैं या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। ऐसी दशा में नालन्दा महाविहार के छात्रों की गणना का अनुमान लगाना कठिन प्रतीत होता है। एक और संख्या बहुत बढ़ाकर कही गई है; क्योंकि विहार में रहने वालों की संख्या सदैव १०,००० ही रहे, यह कैसे हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। दूसरी ओर संख्या बहुत घटाकर बताई गई है। एक विद्वान ने वर्तमान ११ विहारों को नालन्दा मान कर उसमें १०,००० छात्रों को बसाने की चेष्टा की है। प्रत्येक विहार उनके कथनानुसार यदि चौमंजिला मान लिया जाय तो ४०० छात्र एक मंजिल में आ सकते हैं। इस प्रकार चौमंजिले विहार में १६०० छात्रों के लिए स्थान हुआ। सात विहारों में लगभग ११,२०० या १०,००० छात्र आसानी से बस गए। १७ परन्तु प्रश्न यह है कि एक तो विहार दुमंजिले भी मुश्किल से प्रतीत होते हैं, दूसरे वे इतने विशाल नहीं हैं कि १६०० छात्रोंको स्थान दे सकें और तीसरे अभी तो ४ विहार और बाकी हैं, जिन्होंने कुछ-न-कुछ रहने की सुविधा छात्रों को अवश्य दी होगी और चौथे अभी अनेक टीले खोदे भी नहीं गये हैं। इन कठिनाइयों को देखते यह कहना बड़ा कठिन है कि कितने छात्र एक विहार में रहते थे। साथ ही सबसे बड़ी समस्या कोठरियों की संख्या है। विहार सं० १ में १४, सं० ४ में [illegible] ५ में २१ और सं० १ अ में २८ कोठरियाँ [illegible] सं० १, ६, ७, ८, ९, १० और ११ में क्रमशः २९, २४, ३५, ३७, ३५, ३५ और ३२ कोठरियाँ हैं। यह सही है कि आरम्भ से लगाकर अन्त तक कोठरियों की संख्या एक रही है, किन्तु कुछ विहारों में बाद के युगों में बरामदे के कोनों को भी छेक लिया गया है और उन्हें कोठरियों का रूप दे दिया गया है। यह छात्रों की बढ़ती हुई संख्या का द्योतक है।

नालन्दा महाविहार की स्थापना इसलिए नहीं हुई थी कि प्रतिवर्ष सहस्रों अधकचरे और अपरिपक्व स्नातक तैयार किये जाते बल्कि इसलिए हुई थी कि संस्कारवान ज्ञान-पिपासु वहाँ आते, सम्भव-असम्भव की परीक्षा करते, ज्ञान-भण्डार की वृद्धि में योग देते, देश-देशान्तरों में जाकर ज्ञानाञ्जन शलाका से अन्ध व्यक्तियों के ज्ञान चक्षु खोलते और बुद्ध के सदुपदेशों के सहारे जग का कल्याण करते।

नालन्दा के पुस्तकालय भवन अद्वितीय थे। उन्हें क्रमशः रत्नोदधि, रत्नसागर और रत्नरंजक की संज्ञाएँ दी गई थीं, जिससे उनकी विपुलता और गाम्भीर्य का बोध होता है। 'रत्नदधि' तो नौ-मंजिला था, यद्यपि अब इसका कोई चिह्न शेष नहीं रह गया। इन नामों के आरम्भ में 'रत्न' शब्द के जुड़ने का अर्थ है—बुद्ध, धर्म और संघ। तीनों पुस्तकालय बुद्ध के जीवन, उनके धर्मोपदेश और उनके प्रतिष्ठापित संघ पर लिखे गये सहस्रों ग्रन्थों और पाण्डुलिपियों से परिपूर्ण थे। पाण्डुलिपियाँ विभिन्न भाषाओं में लिखी होती थीं। बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धालु व्यक्ति इन ग्रन्थों को अपनी मातृभाषा में उतारना चाहते थे। अस्तु उन्हें विभिन्न भाषाओं का ज्ञानार्जन करना पड़ा। परिणाम यह होता था कि त्रुटि या संदेह की गुंजाइश उनके अनुवादों में कम आने पाती थी। इस दिशा में विदेशियों की अभिलाषा कितनी उत्कट थी इसका प्रमाण फाहियान, ह्यूनसांग और इत्सिंग के भारत-आगमन की कठिनाइयों से मिलता है। फाहियान ने लिखा है कि उसे लगभग ३० ऐसे देश पार करने पड़े थे जहाँ उसकी मृत्यु अनिवार्य हो गई थी। ह्यूनसांग का कथन है कि साधनों के अभाव में अपना शरीर और प्राण खपाते हुए वह भारत की ओर बढ़ा, अकेले ही उसने बहुत निर्जन वन पार किये, अनुमान से भी परे ऊँचे पहाड़ों को लाँघा, बर्फीली हवाओं की ठिठुरन सही और अपरिमित तुषार पर विजय प्राप्त की। इत्सिंग जलयान से ताम्रलिप्ति (तामलुक-उड़ीसा) बन्दरगाह पर आकर उतरा और नालन्दा की ओर वहाँ के कुछ आचार्यों के साथ चला। थके होने के कारण वह उनका साथ नहीं दे सका। अस्तु, रास्ते में दस्युओं ने उस पर आक्रमण किया। एक बार तो उसे तालाब के कीचड़ से अपनी देह ढँकनी पड़ी और वह उस दशा में तब तक पड़ा रहा जब तक कि दस्युगण हताश होकर वहाँ से हट नहीं गये। ये ही अद्भुत जीवट के यात्री भारत से सैकड़ों ग्रंथ, लेख, मूर्तियाँ व अनेकानेक आश्चर्यजनक वस्तुएं स्वदेश ले गये। ह्यूनसांग तो जब सिन्धु नदी पार करने लगा तब बहुत से ग्रन्थ नदी में गिर कर सदा के लिए लुप्त हो गये।

इसी प्रकार जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारतीय विद्वान विदेशों में जाते थे और वहाँ भारतीय विचारधारा का प्रतिपादन करते थे। स्वदेश को छोड़ कर विदेश को अपना घर बना लेने और वहीं अपने जीवन को स्वदेश की और विश्व की खातिर होम देने का कार्य कितना महान था। आचार्य वसुबन्धु की जीवनी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवादक परमार्थ, कुमारजीव, सुभाकर सिंह (८ वीं शती ई० स०) और धर्मदेव (१० वीं शती ई० स०) आदि ने चीन में रहकर ११८ बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। सैमुएल बील ने 'दि लाइफ आव ह्यूनसांग' के अपने प्राक्कथन में इस प्रकार के यात्रियों का बड़ा ही मार्मिक और सर्वाङ्गीण चित्र खींचा है।

भारत के तत्कालीन विहारों की भाँति नालन्दा महाविहार में भी समय का अनुमान जलयंत्र से लगाया जाता था। इत्सिंग के कथनानुसार महाविहार के हितैषी राजाओं ने यह यंत्र और इसकी देखरेख करने वाले कुछ लड़के भेज दिये थे। यह यंत्र साधारण क्रिया वाला किन्तु बड़ा उपयोगी था। तांबे का एक बड़ा तसला होता था। इसे जल से भर दिया जाता था और इस जल में तांबे की एक हल्की, पतली और छोटी-सी ऐसी प्याली तैराई जाती थी, जिसके पेंदे में सूई के छेद का-सा सूराख होता था। इसी सूराख से जल धीरे-धीरे प्याली में भरता चला आता था। और दो प्रस्थ (जल नापने की तत्कालीन माप) जल भरते ही प्याली तसले के जल में डूब जाती थी। प्रातःकाल से दूसरे प्रातःकाल तक प्याली के जल में डूबने की क्रिया आठ बार होती थी। अर्थात् चार पहर दिन के और चार पहर रात के होते थे। प्रातः काल प्याली के प्रथम बार डूबते ही ढोल पर एक चोट की जाती थी, दूसरी बार ढोल पर दो और तीसरी बार तीन चोटें की जाती थीं। परन्तु प्याली के चौथी बार डूबने पर ढोल पर चार चोटें की जाती थीं, दो बार शंख-ध्वनि होती थी और ढोल पर एक चोट और की जाती थी। यह पहला पहर होता था। इस पहर में सूर्य पूर्व दिशा के क्षितिज में दिखाई देने लगता था। प्याली की चार बार डूबने की क्रिया दुबारा पूरी होने पर दूसरा पहर होता था। इस समय ढोल पर चार चोटें, एक-बार शंख-ध्वनि और ढोल पर दो चोटें फिर होती थीं। यह मध्याह्न का समय होता था। इसी प्रकार की क्रिया मध्याह्न के बाद भी चलती थी। चीनी यात्री आगे कहता है कि इस जलयंत्र के कारण घटाटोप मेघों वाले दिनों अथवा बरसात की ऋतुओं में भी अपने कार्यों के नियमित रखने में त्रुटि नहीं होने पाती थी। २८

प्रातः घंटा बजते ही भिक्षुगण दल बाँधकर नालन्दा के चारों ओर लहराते हुए तड़ागों की ओर चल देते थे। ह्यूनसांग ने लिखा है कि ये तालाब गहरे और निर्मल होते थे। जल की सतह पर नील कमल और कुछ-कुछ ललाई लिए हुए कनक पुष्प हिलोरें मारा करते थे। जहाँ-तहाँ आम्रकुंज भी जल में अपनी साया डालते थे। २९ इत्सिंग ने लिखा है कि इन तड़ागों की संख्या १० से अधिक थी। ३० आज भी ये तड़ाग नालन्दा की शोभा बढ़ा रहे हैं। किन्तु अब उनमें केवल रक्त-कमल होते हैं; अरसा हुआ नील कमलों का लोप हो गया।

स्नानादि से निवृत्त होकर छात्रगण अध्ययन में जुटते थे। मध्याह्न होते ही भोजन किया जाता था। ह्यूनसांग को प्रति दिन १२० जम्बीर (एक प्रकार का फल) २० पूग (अखरोट) २० अन्य फल, एक औंस तेल, और एक तश्तरी महाशालि चावलों का भात मिलता था। ...१०। यह चावल मगध में पैदा होता था और कहीं नहीं। यह [illegible]ों या चोटी के धर्मतत्त्वविज्ञों को ही परोसा [illegible] यात्री को 'नित्य प्रति आवश्यकतानुसार मक्खन और प्रति मास तीन बार तेल दिया जाता था। ३२ ह्यूनसांग ने लिखा है कि 'देश का शासक (हर्ष) भिक्षुओं का समादर करता है। उसने उन्हें १२० गांव निःशुल्क दान कर दिए हैं। इन गांवों के २०० परिवार पारी-पारी से नित्य प्रति कई सौ विकूल (१ विकूल = १३३⅓ पौण्ड) साधारण चावल, कई सौ कट्टी (१ कट्टी = १६० पौण्ड) दूध व मक्खन लाकर महाविहार में जुटाते हैं। छात्रों को इतना अधिक खाने को मिलता है कि उन्हें अपनी चारों आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, बिछावन और औषधि) के सम्बन्ध में चिन्ता करने की दरकार नहीं होती'। ३३ वह लिखता है कि 'शीलादित्यराज (हर्ष) ने राजा होते ही पशु बलि रोक दी और अपने राज्य की प्रजा से मांस त्याग देने को कहा।' ३४ इत्सिंग के समय में महाविहार के अधिकृत गाँवों की संख्या २०० से अधिक बढ़ गई थी। ३५ यह परिवर्तन ३५-४० वर्ष के अन्तर में ही हुआ। इससे-महाविहार की तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का भान होता है। इत्सिंग ने ध्यान से देखा था कि भारत में किसी प्रकार की लहसुन या अभक्ष्य सब्जियाँ नहीं खाई जीतीं। इसीलिए भारतवासी कब्जियत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग से पीड़ित नहीं रहते और उनके अवयव स्वस्थ रहते हैं, उनमें कड़ेपन या पीड़ा की शिकायत नहीं होती। ३६

यशोवम्मदेव के लेख से विदित होता है कि ७वीं शती की भाँती ८वीं शती में भी महाविहार के निवासियों को भोजन की त्रुटि न होती थी। उन्हें इस शती में घृत, दधि, नाना प्रकार के व्यञ्जन और चार प्रकार की सुगंधियों से सुवासित किया हुआ जल मिलता था। यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि महाविहार का प्रत्येक व्यक्ति अपनी श्रेणी और प्रतिष्ठा के हिसाब से प्रत्येक वस्तु का भागी होता था।

महाविहार की भूमि जोतने-बोने के लिए संघ का कृषि-विभाग भी था। प्रत्येक गाँव को 'आरामिक' की देख-रेख में दिया जाता था, जो उस गांव की उपज और उस की खपत का पूरा ब्यौरा रखता था।

नालन्दा की खुदाई में जो वस्तुएँ मिली हैं उनमें से मिट्टी की मुहरें, प्रस्तर-लेख, सिक्के और [illegible] मूर्तियाँ बड़े महत्त्व की हैं। मुहरें और लेख [illegible] भारतीय इतिहास (ललित युग से मध्य युग तक) के लिए अनमोल देन हैं। बिना इनकी सहायता के इतिहास का यह युग अधूरा ही लिखा जाता। किन्तु समय-समय पर छात्रों के नालन्दा छोड़कर चले जाने और अग्निकाण्डों के कारण आज ऐसा कोई साधन हमें उपलब्ध नहीं है जिससे हम नालन्दा के गौरव की सम्पूर्ण गाथा सुन सकें। यदि चीन, तिब्बत, लंका, आदि की अनेक पाण्डु-लिपियों का अनुवाद कर लिया जाए तो सम्भव है उन्हें मथकर काम की बात निकाली जा सके, नालन्दा और इसका महाविहार कैसा था, इसका असम्बद्ध इतिहास हमारे सामने है, किन्तु वह ध्वस्त और श्री-हीन नालन्दा है। ७ वीं शती की नालन्दा कैसी थी, यह ह्यूनसांग से सुनिए—'नालन्दा संघाराम के बीच आठ बड़े-बड़े शाला-गृह हैं। इनके स्तम्भ सुसज्जित और स्वप्न-खचित मीनारों की चोटियाँ ऊंची उड़ान भरती दिखाई पड़ती हैं। महा-विहार की वेधशालाएँ प्रातः कालीन कुहासे में खोई-सी जान पड़ती हैं। इनके उपरले कमरे मेघों को भी लांघे जा रहे हैं और इनकी खिड़कियों से मेघों की नानाविध आकृतियों एवं सूर्य और चन्द्रमा की संधि के दिव्य दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं।

संघाराम से बाहर भिक्षुओं के आवासगृह हैं। ये चौतल्ले हैं। प्रत्येक तल्ला सर्पाकृतियों, रंगदार छाजनों, मोतियों कीसी आभा वाले अलंकृत स्तम्भों और सुन्दर चौघेरों से विभूषित है। इनकी छतें ऐसी खपरैलों से पटी हैं, जो सहस्रों प्रकार की चमक फैलाती हैं। इन सबके योग से संघाराम का दृश्य मनोरम बन पड़ा है। भारत में वैसे तो अनगिनत संघाराम हैं किन्तु विपुलता और वैभव में यह महाविहार सर्वश्रेष्ठ है।, अब ८वीं शती की नालन्दा देखिए—

यासाबूर्जितवैरिभूप्रविगलद्दानाम्बुपानोल्लस —
न्माद्यदभृङ्गकरीन्द्रकुम्भदलनप्राप्तश्रियाम्भुभुजाम्-
नालन्दो हसतीव सर्व्वनगरीः शुभ्राभ्रमौरस्फुर-
च्चैत्याशुप्रकरैस्सदागमकलाविख्यातविद्वज्जना ॥
यस्यामम्बुधरावलेहिशिखरश्रेणीविहारावली-
माले वोर्ध्वविराजिनी विरचिता धात्री मनोज्ञा भुव।
नानारत्नमयूखजालखचितप्रासाददेवालया
सद्विद्याधरसंघरम्यवसतिर्धत्तेसुमेरोः श्रियम् ॥

अर्थात् 'नालन्दा अपने शुभ श्वेत चैत्यों की धवल किरणों के प्रकाश से देदीप्यमान थी। वह उन नगरियों के प्रति उपेक्षापूर्वक हँसती थी, जिनके स्वामियों ने मधुमक्खियों से घेरे गए मदमाते कुंजरों (अर्थात् राजाओं) के मस्तकों को विदीर्ण कर यश और धन का अपरिमित अर्जन किया था। उसकी विहारावली की शिखरश्रेणियाँ अम्बुधर मेघों की स्पर्धा करती थीं, मानो स्वयं विश्वकर्म्मा ने उन्हें इस जगतीतल पर खड़ा किया था। उसके प्रासाद अपने नाना प्रकार के रत्नों द्वारा प्रगट की गई रश्मिजा-लियों के बीच जगमग कर रहे थे। ऐसी यह नालन्दा धुरन्धर विद्वानों का आवास-स्थल थी और उस सुमेरु की समता करती थी जो विद्याधरों का प्रिय क्रीड़ास्थल है।'

ऐसे नालन्दा महाविहार द्वारा कैसे स्नातक तैयार किये जाते थे, यह इत्सिंग से सुनिए:—

'वे छात्र) अपनी प्रतिभा के तेज की परीक्षा करने की अभिलाषा लेकर राजदरबार जाते हैं, वहाँ अपना चमत्कार प्रदर्शित कर अपने जीवन के चरम लक्ष्यों और अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्यता के सामञ्जस्य की भावना प्रस्तुत करते हैं, जिससे दरबार उन्हें राष्ट्र-सेवा में ले ले।

'जब वे वाक्प्रतियोगिता में भाग लेते हैं तो अपनी वाक्पटुता और बुद्धिचातुर्य के बूते सर्वोच्च आसन ग्रहण करते हैं। जब वे विधर्मियों की मान्यताओं का खण्डन करने लगते हैं तब विधर्मियों की वाणी को काठ मार जाता है और वे चित्र-लिखे से देखते रह जाते हैं।

'और तब उनकी यशकीर्ति भारत के पंच कुलपर्वतों को सहलाती हुई चतुर्दिक्मण्डलों में व्याप जाती है। पुरस्कार में उन्हें मिलती है भूमि और प्रतिष्ठा और उनके शुभ नाम गगन चुम्बी द्वार-तोरणों पर श्वेताक्षरों में अंकित किये जाते हैं। फिर वे अपनी इच्छानुसार किसी कार्य को चुनकर उसे ही अपने जीवन का परम-ध्येय बना लेते हैं।

१२ वीं शती के पूर्वार्द्ध तक नालन्दा और उसके छात्रों एवं यात्रियों का लेखा हमें मिलता है। किन्तु तदनन्तर इस महाविहार का पतन हो गया। इसके चार प्रमुख कारण जान पड़ते हैं (१) ८ वीं शती से विक्रमशिला महाविहार का प्रादुर्भाव (२) नालन्दा पर से उसके हितैषियों का वरद-हस्त उठ जाना (३) महाविहार की इमारतों का खण्डहरों के रूप में परिवर्तित होना; क्योंकि अब उनमें पहले का आकर्षण न था। और (४) इस्लामपंथियों का बिहार में पदार्पण। सब ले-देकर नालान्दा महाविहार की विशाल अट्टालिकाएँ अबलाओं की भाँति रसातल में समा गईं और मगध के गर्भ में तबतक पड़ी सिसकती रहीं जबतक कि भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा उनका पुनरुद्धार न हो गया।

संक्षेप में नालन्दा की यही अमर गाथा है जो हमें युग-युगान्तरों तक उत्साहित और अनुप्राणित करती रहेगी और हमारे राष्ट्र को इतना समर्थवान बनाएगी कि वह इसकी श्रेणी के विश्वविद्यालयों की नींव डाल सके। हर्ष का विषय है कि निकट भविष्यमें नालन्दा चीनी, तिब्बती, सिंहल, [illegible] नेपाली आदि भाषाओं के पठन-पाठन का [illegible] है।

---

(१) शास्त्री—नालन्दा ऐण्ड इट्स एपिग्राफ़िक मैटीरियल—पृ० १०-११ (२) वही—पृ० १४ (३) वही—पृ० ९ (४) जाइल्स-ट्रैविल्स आव फाहियान (१९२३)—पृ० ४९ (५) वाटर्स-युवानच्वांग (खण्ड २)—पृ० १६४; बील—लाइफ़ आव ह्यूनसांग—पृ० ११० (६) ए० एस० आई० ए० आर० (१९२८—२९)—पृ० १४५ (७) देखिए ए० एस० आई० ए० आर० (१९२४—२५) प्लेट सं० २९ (८) वाटर्स युवान च्वांग (खण्ड २)—पृ० १६४—६५; बील-लाइफ़ आव ह्यूनसांग—पृ० ११०—११ (९) बील—लाइफ़ आव ह्यूनसांग—पृ० १५८—५९; वाटर्स-युवान च्वांग-पृ० १७१ (१०) चुल्लवग्ग (६।२।९) (११) जे० बी० ओ० आर० एस० (जून १९४४)—पृ० १३८ (१२) शास्त्री—नालन्दा ऐण्ड इट्स एपिग्राफ़िक मैटीरियल, —पृ० ७; (१३) ताकाकूसू—ए रिकार्ड आव दि बुद्धिस्त प्रैक्टिसेज़ इन इण्डिया—पृ० १११—१२ (१४) शास्त्री—नालन्दा ऐण्ड इट्स एपिग्राफ़िक मैटीरियल—पृ० २१ (१५) वर्तमान भागलपुर से २४ मील पूर्व और चम्पानगर से २८ मील पूर्व कोलगंग और पाथरघाटा पर्वत मालाओं की उपत्यका में गंगा के दाहिने कूल पर स्थित महाविहार (१६) ताकाकूसू—ए रिकार्ड आव दि बुद्धिस्त प्रैक्टिसेज़ इन इण्डिया—पृ० ८४ (१७) (१७) ए० एस० आई० ए० आर० (१९१६—१७)—पृ० २ (१८) बील—लाइफ़ आव ह्यूनसांग—पृ० १११; वाटर्स-युवान च्वांग पृ० १६५ (१९) वही पृ० १७१ (२०) ए० एस० आई० ए० आर (१९२२-२३) पृ० १०६ (२१) बील—लाइफ़ आव ह्यूनसांग—पृ० १०५—६ (२२) वाटर्स—युवान च्वांग—पृ० १६५ (२३) बील लाइफ़ आव ह्यूनसांग पृ० १२३—२४ (२४) वाटर्स—युवान च्वांग—पृ० १६५ (२५) वही—पृ० ११२ (२६) ताकाकूसू ए रिकार्ड आव दि बुद्धिस्त प्रैक्टिसेज इन इण्डिया—पृ० १५४ (२७) जे० बी० आर० एस० जून १९४४—पृ० १३८ (२८) ताकाकूसू—ए रिकार्ड आव दि बुद्धिस्त प्रैक्टिसेज़ इन इण्डिया, पृ० १४४—४६ (२९) बील—लाइफ आव ह्यूनसांग—पृ० १११ (३०) ताकाकूसू-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब अकाल पड़ा था !

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर

"तुम लोगों में से कौन ऐसा है, जो इन भूखों को खिलाने का भार अपने ऊपर ले सकता है ?" जब श्रावस्ती में अकाल पड़ा तो भगवान् बुद्ध ने अपने अनुयायियों से पूछा।

रत्नाकर जो कि बहुत ही धनी था, अपना सिर झुकाकर बोला—"मुझे जो कुछ भी है वह इन लोगों के लिये अपर्याप्त है। इन्हें उससे ज्यादे की जरुरत है।"

जयसेन जो कि राजा की सेना का प्रधान था, बोला—"मैं इनके लिये अपने शरीर का रक्त भी दे सकता हूँ; लेकिन मेरे घर में पर्याप्त भोजन नहीं है।"

"धर्मपाल जो कि जमीन के एक बहुत बड़े हिस्से का मालिक था, उस्सांसें भर कर बोला—"अनावृष्टि के चलते हमारे खेत सूख गये हैं। मैं राज्य-कर किस तरह दूँगा, समझ में नहीं आता।"

तब सुप्रिया एक भिखारी की लड़की सामने आई। वह सबके सामने नतमस्तक होकर नम्रतापूर्वक बोली—"इन्हें मैं खिलाऊँगी।"

"कैसे ?" सभी आश्चर्यचकित हो उठे। "तुम अपनी प्रतिज्ञा कैसे पूरी कर सकोगी ?" "मैं सबसे गरीब हूँ," सुप्रिया ने कहा—"यही मेरी ताकत है। मेरा भंडार तुम सबके घर में है।"

(रवीन्द्र के 'द्दे न फेमिन रेज्ड' का स्वतन्त्र भावानुवाद। अनुवादक श्री श्यामसुन्दर 'अशान्त')

भक्ति-गान

इन्द्रलाल श्रीवास्तव

हमें दो भक्ति हे भगवन् ! तुम्हारा ही कहाऊँगा,
तुम्हारा प्रेम पाने को सदा आँसू बहाऊँगा।
निरखकर हंस को घायल दयामय आप धाये थे,
उसी करुणा की धारा में सदा मैं भी नहाऊँगा।
मृतक, रोगी औ' बूढ़ा देख प्रभु ने राज्य-सुख त्यागा,
दुखों से मुक्त होने की वही लौ मैं लगाऊँगा।
अधिक सुख या तपस्या व्यर्थ कहि शुभ मार्ग बतलाए,
उसी पथ पर कदम अपना हे मनमोहन बढ़ाऊँगा।
लपककर दलित दीनों को हृदय ज्यों प्रभु लगाते थे,
उसी विधि में अनाथों को सदा अपना बनाऊँगा।
भ्रमण कर ज्ञान का अमृत यथा भगवन् पिलाते थे,
उसी विधि मैं तेरा उपदेश जनता को सुनाऊँगा।

ए रिकार्ड आव दि बुद्धिस्त प्रैक्टिसेज इन इण्डिया—पृ० १०८ (३१) बील—लाइफ़ आव ह्यूनसांग—पृ० १०९ (३२) वही—पृ० १०९ (३३) वही—पृ० ११३ (३४) वही—पृ० ८३ (३५) ताकाकूसू ए रिकार्ड आव दि बुद्धिस्त प्रैक्टिसेज़ इन इण्डिया पृ० ६५ (३६) वही—पृ० ४४—४५ (३७) बील—लाइफ़ आव ह्यूनसांग—पृ० १११—१२ (३८) ताकाकूसू—ए रिकार्ड आव दि बुद्धिस्त प्रैक्टिसेज़ इन इण्डिया—पृ० १७७-७८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति-दाता

डा० प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ'

ऋतुराज आगया। नवीन पल्लवों को धारण कर राजोद्यान की वनश्री निखर उठी। रंग-बिरंगे सुन्दर फूल लताओं में विहँस उठे। गुंजारती मकरंदावली मधुपान करने के लिये कुसुम परागों से अठखेलियाँ करने लगी। भ्रमरमाला का गुंजारगान सुनकर कोकिल से न रहा गया और आम्र मंजरी पर बैठकर कुहू-कुहू शब्द से वाटिका को गुंजायमान कर दिया। मंद मलयानिल मचल उठा। कलिकाएँ लताओं की लोरियाँ खाकर लाल पल्लवों पर झूमने लगीं। लताओं का परस्पर आवेष्ठन-गुम्फन, बिछुड़न-पृथक्करण एवं पुनः सहवास ग्रंथन-प्रथक्करण पुष्पों की आभा को छिटका कर मालाकार रंग-बिरंगे आकारों में उद्भासित करने लगा। सुकोमल पुष्प और कलिकाएँ इस कठोर यातना से पतनभूत होकर भूमिपर बिखर गईं। दूर तक वायुमंडल सौरभ से भर उठा।

उपवन के चित्रमय दृष्य से सुकुमार बालायें सिहर उठीं। सुगन्धित समीर के झोंकों में खो देना यह कुसुमाकर का राग-व्यापार है। रागभार से विकल उनका सौंदर्य पुष्प कानन को दिग्दर्श करने लगा। सुरा की मुर्छना में मार-लोक साकार हो उठा। राजभवन की रमणियों का यह वसन्तोत्सव था।

उद्यान भवन में रंगीन पर्दे लहराकर फहरा रहे हैं। बन्दनवार की मुक्ता-मालायें चित्रित कपाटों को चूमने लगीं.....।

उद्यान पालिका ने सूचना दी महाराज पधार रहे हैं।.....अस्तव्यस्त दृष्य। महाराज चकित, स्तंभित और क्षणमात्र में क्रोध से कांपने लगे। गंभीर किन्तु कठोर स्वर में महाराज ने आज्ञा दी—राजमर्यादा को नष्ट करने वाली इन तरुणियों का शीघ्र वध कर दिया जाय। जो आज्ञा कहकर अमात्य ने महाराज को अभिवादन किया। दूसरे ही क्षण वासन्ती समीर में रक्त की फुहारें फैलने लगीं। सब समाप्त। अनन्त अम्बर में उदासी के साथ वायु इह लोक में मंडरा रही थी। निस्तब्धता की व्यापक छाया। फिर आतंक का व्योम प्रसार हो रहा था।

× × ×

राज-प्रासाद में आज फिर आतंक फैल उठा। अमात्य ने कड़कती आवाज में कहा—अमुक २ तरुणियों, शीघ्र वधस्थल की ओर चल पड़ो।

किस लिये—एक बालिका ने पूछा।

मरने के लिये—अमात्य ने उत्तर दिया।

क्यों ?

महाराज की आज्ञा है।

[illegible] में कुहराम मच उठा। घटनास्थल पर [illegible] देखा अमात्य का चेहरा तमतमा रहा है। रक्तवसन धारण किये हाथ में तोमर लिये विक्षिप्त-सा। महारानी ने गम्भीर आवाज से पूछा—क्या है अमात्य। महारानी की आवाज से ससंज्ञ स्तब्ध होकर अमात्य ने उन्हें प्रणाम किया और पुनः राज-आज्ञा को दुहरा दिया।

अमात्य शिरोच्छेद के लिये कारण क्या है।

देवी शिरोच्छेद नहीं अग्नि शिखाओं द्वारा भस्म कर देना।

पूछती हूँ इस हत्या का कारण क्या है ?

देवी ! अनाचार ही इसका कारण।

अमात्य मैं आज्ञा देती हूँ इन्हें छोड़ दो।

भद्रे राजाज्ञा उल्लंघन का अपराध।

और राजमहिषी चुप हो गई। अमात्य तरुणियों को लेकर चला गया। महारानी का हृदय न रुक सका, आँचल से आँसुओं को पोंछती अपने प्रासाद में चली गई। पुनः वही उदासी और घोर आतंक का साम्राज्य।

× × ×

महारानी आजकल उदास कैसी रहती हो—महाराज ने अनुराग से पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ! चित्त की खिन्नता इसका कारण है—महारानी ने उत्तर दिया।

खिन्नता का भी कोई कारण है ?

हाँ महाराज।

क्या ?

यही कि स्त्री-स्वभाव कोमल होता है। मर्मस्थल में चोट पहुँचने से वह खिन्न हो जाती है।

देवी ! मैं तुम्हारे इस काव्य को न समझ सका।

न समझ सकोगे महाराज ! इसलिये कि आप पुरुष हैं।

तब क्या पुरुष स्त्रियों को नहीं समझ सकते ?

महाराज स्त्रियाँ स्नेह से द्रवित हो उठने वाली ममत्व मूर्त्ति एवं सगुण नारी हैं। यद्यपि वे अजेय हैं परन्तु नारीत्व गुण विशेष के कारण ही वे पुरुषों द्वारा विजित हैं।

महारानी ! मेरा प्रश्न तो अन्य है न ?

हाँ महाराज ! इसीलिये स्त्रियाँ महान [illegible] को भी क्षमा कर सकती हैं। पुरुष ही इसक [illegible]

महारानी !

देव !

क्या कारण है ?

महाराज ! समझने की चेष्टा करेंगे।

× × ×

वह दिन दूर नहीं जब हमारी पताका समस्त एशिया खण्ड पर उड़ती दिखायी देगी। हमारे शत्रु तुम्हारे चरण चूमते दिखाई देंगे, मेरी महारानी ! क्या कारण है जब हम तुमको विजय सम्वाद सुनाते हैं, तुम अधिक खिन्न होने लगती हो। हमारी तलवार ने कितने वीरों का गर्व चूर कर दिया, कितने राजमुकुट हमारे पदाघात से चूर्ण हो गये यह ज न कर तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये। महाराज ने कहा।

महाराज ! राजमुकुट चरणों से ठुकराने की वस्तु नहीं। नरेशों के उत्तमांग का भूषण ठुकराना नरेश का काम नहीं। कैसा उच्छृंखल कार्य है। अविनयी होकर राज मर्यादा का उल्लंघन करना। राज पुरुषों को अपमानित करके उनकी राजश्री वैभव को हड़प कर जाना, निरपराधों का नाश, देश के देश उजाड़ना, यही विजय-गौरव है तो मानव की पराजय और क्या होगी। महाराज को इस पर आत्मगर्व है और मुझे आत्मग्लानी। महारानी ने उत्तर दिया।

तुम स्त्री हो राजनैतिक धर्म को नहीं जानतीं।

क्षमा करें महाराज ऐसा धर्म मुझे भयभीत करता है।

स्त्री जो ठहरी।

हाँ महारज, परन्तु स्त्री हृदय कापुरुष नहीं होता।

क्या महारानी ?

देव ! यही स्त्री का हृदय।

\+ \+ \+

महारानी ! देखो यह भ्रमर कमल-पारग पर कैसा सुशोभित हो रहा है।

हाँ महाराज ! यह दुष्ट कमल-मधु को बरबस चूस रहा है।

दुष्ट क्यों ? वह तो उसकी भोज्य-वस्तु है न।

पराग-मधु कमल का पोषक है, वह उसमें स्वतः इस लिये उत्पन्न है, मधुकर के चूसे जाने पर यह सूखकर गिर जायगा।

परन्तु फूलों के ही मधु पर भ्रमर का जीवन अवलम्बित है, महारानी ! 'हाँ, राजा और दस्यु की भाँति। वे भी, पराई कमाई के धन पर अवलम्बित हैं। जिस भाँति भ्रमर फूलों का पराग-मधु लेकर उनका वध करता है, राजा और दस्यु भी पराया धन लेकर उनका वध करते हैं।

महारानी ! स्पर्धा न करो। राजा का प्रति कार्य न्याय है।

महाराज ! मर्मस्थल में चोट खाई नारी के लिए अधिक न्याय की आवश्यकता नहीं।

यह क्या ?

यह नारी-हृदय है जो क्षमा करना जानता है।

यह मर्मस्थल में चोट कैसी ?

निरपराधों का वध।

सापराध।

हृदय से विचार करो महाराज बहुश्रुत होकर।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरुणी ! तुम जानती हो हमारे शासन में तुम्हारे कृत्य का क्या दंड है ? महाराज ने कड़क कर कहा।

जानती हूँ महाराज ! दंड है मृत्यु।

क्या पहले की स्त्रियों के वध से तुमने शिक्षा प्राप्त नहीं की ?

की महाराज !

फिर अब ?

अब मरने को तैयार हूँ।

तुम्हें अपने कृत्य पर पश्चात्ताप है क्या ?

नहीं महाराज ! मुझे मृत्यु का भय नहीं फिर पश्चात्ताप कैसा ? नारी का हृदय भयभीत नहीं होता। अपने दायित्व को समझकर किया कार्य हृदय की वस्तु है।

क्या यह धारणा हृदय से दूर नहीं कर सकती ?

मृत्यु पर्यन्त नहीं महाराज।

और कुछ कहना चाहती हो ?

कुछ नहीं महाराज ! यही बहुत है कि पहले की अपेक्षा दायित्व के प्रति आज आपने मुझे पूछकर मेरे लिए न्याय तो किया।

महाराज यह सुनकर विचार में पड़ गये। नारी का हृदय ! पुरुष का हृदय ! राजा का हृदय ! विचारक का हृदय ! क्या अधिकार है किसी को कि किसी के हृदय को आघात पहुँचाये। और राजधर्म ? वह तो डाकूधर्म है, महारानी का विचार। मर्मस्थल में चोट। नारी का हृदय ! राजा का हृदय ! ओफ मैं ही अपराधी हूँ। नारी हृदयों से विजित हत्या का भागी, अपराधी, नारकीय, मुझे धिक्कार है। अरे इस नारी को बन्धनमुक्त कर दो।.....देवी तुम मुक्त हो ! तुम्हारी स्वेच्छा का, तुम्हारे हृदय का न्याय करने का मुझे कोई अधिकार नहीं। मैं आज अपने पूर्व कृत्यों पर दुखी हूँ। पश्चात्ताप है, इसका प्रायश्चित करना होगा।

महाराज विचारवान बनें, महाराज की जै हो। परन्तु बन्धन-मुक्त होकर मुझे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप है। स्त्री-हृदय को कुछ और ही अभिष्ट होना चाहिए। महाराज ! आपके न्याय ने मेरे चक्षु खोल दिये। नारी हृदय का क्या कर्तव्य है, जानने की चेष्टा करूँगी—पश्चात्ताप के साथ प्रायश्चित करना है।

× × ×

यह मलिन भेष, मुण्डित शीश, भिक्षा पात्र को लिये नीचे निगाह किये कुछ मुहुर्त ठहर कर चल देते हैं, कुछ मिले या न मिले। लोग इन्हें श्रमण कहते हैं, सुना है कि इन्होंने संसार का परित्याग किया है, ज्ञान-प्राप्ति के लिए, मुक्ति पाने के लिए यह ज्ञान और मुक्ति क्या इसी प्रकार मिलती है, भिक्षा माँगकर खाने से। मुँह से कुछ न कहना, निची निगाहें रखकर माँगना, इनका यह तौर तो ऐसा विदित होता है जैसे की इन्हें कोई आत्मग्लानि हो। यही सही तब भी तो अच्छा है कि आत्मग्लानि के मारे यह सिर नहीं उठाते। मेरी ही भाँति आत्मग्लानि से भरकर सम्भव है कि यह प्रायश्चित करते हों, अच्छा है। आत्मग्लानि और पश्चात्ताप से जलती मैं भी इसी भाँति क्यों न प्रायश्चित करूँ। हाय कितना अच्छा होता कि महाराज मेरा वध करवा देते, परन्तु आज की ग्लानि, अशान्ति और मानसिक वेदना तो अब सहन नहीं की जाती।

[illegible] पात्र लेकर नगर से बाहर जा रहा है। कहीं [illegible] बैठकर भोजन करेगा। अच्छा होगा कि तब इससे ऐसे ही बाहर एकान्त स्थान में इसका अभिप्राय पूछूँ। अपना अभिप्राय प्रकट करूँ। हो सकता है यह मेरे लिए उचित होगा।

× × ×

भन्ते ! प्रणाम।

सुखी रहो भद्रे।

भन्ते ! भद्रा किस विरते पर कहते हैं। कलंकिनी हूँ आत्म ग्लानि की ज्वाला से दग्ध हो रही हूँ। जीवन भार है।

जानता हूँ भद्रे, कुछ अविदित नहीं।

सो किस प्रकार भन्ते ?

मनोयोग द्वारा।

आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत, तब क्या मेरे लिए कोई प्रायश्चित है, क्या शांति पा सकती हूँ ?

मार्ग है।

भन्ते ! मुझ दुखिया को राह लगाइये। आपके शरण हूँ।

त्रि-रत्न की शरण में कल्याण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भन्ते ! एक दो तीन बार त्रि-रत्न की शरण हूँ। भन्ते, मार्ग बतलायें, गुरुदेव कृपा करें।

अच्छा यह भगवान् बुद्ध का अष्टांगिक आर्य मार्ग है—भगवान् ने देशना की है.....शिक्षा पद आर्य विनय.....मध्यम मार्ग है। इस पर चलकर आर्य-जन अक्षय शांति प्राप्त करते हैं।

आश्चर्य भन्ते ! शांति है, सुलाभ है.....विरज चक्षु भन्ते आकुलता भार से मुक्त हूँ। उपकार भन्ते। दया की आभारी हूँ।

आगे बढ़ने की चेष्टा करो। यह मार्ग अप्रमादियों का है। जलते संसार पर तथागत का अमृत उपकार आश्चर्य नहीं कि शीघ्र ब्रह्मचर्य का फल प्राप्त होगा।

सजग हूँ भन्ते ! प्रणाम।

सुखी हो फल प्राप्त करो।

नौका रिक्त है। वह तिर रही है, आकांक्षाओं से रिक्त। हलका जीवन स्फूर्ति प्राप्त करता है, हर्ष [illegible] की धारा छोड़ वहाँ अन्य कुछ नहीं। [illegible] सब शून्य, कुछ अपना नहीं। निरात्मभाव प्रशस्त विश्व। भासित लोक। चक्रवाल दिग्दर्शक, सर्वत्र गमन, प्रकाश पुंज, प्रज्ञा...कल्याण, साक्षात् कल्याण।

विश्व का कल्याण हो। लोक धातुओं में दुख का लेश न रहे। सब प्राणी सुखी हों। आश्चर्य है तथागत की महिमा। हे लोकनाथ शाक्य सिंह। भगवान् बुद्ध ! विश्व कल्याण कर्त्ता ! महा कारुणिक ! आपके उपकार का चक्रवाल ऋणी है मुझ पतिता ने गति पाई। हे सुगत। प्रणाम है सब ओर शिर से प्रणाम करती हूँ। बार २ प्रणाम है हे मारजित वीर ! आपके स्मृति चरणों को शिर पर धारण करती हूँ। हे भवनिकन्दन ! आपकी दया से मैं अघ-मुक्त हुई। अपना कार्य शेष नहीं। जगत् के प्राणियों की सद्गति के लिये प्रयत्न ही अवशेष है।

प्रणाम आर्ये !

महाराज सुखी हों। जनता सुखी हो।

आर्ये ! क्या कारण है, मानव-अशान्ति का ?

महाराज ! भवबन्धन का स्वभाव तृष्णा।

इससे मुक्ति कैसे मिलती है आर्ये !

महाराज ! इसके स्वरूप को जान लेने के बाद।

इसका उपाय क्या है आर्ये।

तथागत निर्मित अष्टांग आर्य मार्ग राजन् !

क्या आर्ये ! यह सब ऐसा आपने जाना है ?

तथागत की कृपा से। तथागत की पुत्री बिना जाना प्रलाप नहीं करती ? बुद्ध का मार्ग विशुद्ध है।

आर्ये ! हम बहुकरणीय राजपुरुष त्याग नहीं कर सकते। अशान्त हृदय मानसिक वेदना से दग्ध, मैं विचलित हो रहा हूँ। मानव हत्याओं के पाप से तापित राजमद के अविवेकी कृत्यों से पश्चातापित दुखित हूँ। क्या मेरी आत्म-शांति का भी कोई उपाय है ?

महाराज ! भविष्य के लिये सावधान रहें। समस्त पापों का न करना और प्राणियों का हित करना आत्म-तुष्टि के लिये भगवान् का ऐसा उपदेश है।

धन्य हो आर्ये ! मैं आपकी शरण हूँ, भगवान् बुद्ध की धर्म की संघ की शरण हूँ। बार बार शरण हूँ।

महाराजा त्रि-रत्न की शरण और पंचशील को धारण करें। वह महाराज को सुलभ और पुण्य का कारण होगा।

यह ऐसा ही धारण करता हूँ आर्ये। अच्छा प्रणाम।

सुखी हों महाराज ! महाराज शान्ति प्रदान करें।

ओह ! मैं मत्त नरेश। निरंकुश, विश्व का अपराधी अनेक मानव हत्याओं का भागी, रक्त-तर्पण कर्ता। मानव-जगत् के सुन्दर उद्यान का विनष्टकर्ता। मेरे पापों का अन्त नहीं। मानसिक वेदना का शिकार पश्चाताप की ज्वाला से जलने वाला अशान्त नारकीय हे स्त्री जाति। वीरांगना, क्षमा तेज की मूर्ति ! धात्री। मात्र जाति, मात्र भू ज्योति ! उज्ज्वल और पवित्र ! तुझे बार बार प्रणाम है।

हे महारानी ! तुमने मुझे मानवता की ओर आकर्षित किया। तुम्हारा उपकार मानता हूँ, तुम पूजा के योग्य हो।

आर्ये ! भिक्षुणी आर्ये ! शान्ति दायक गुरु आर्ये ! यद्यपि मैंने तब तुम्हें क्षमदान दिया था। तुमने अब मुझे जीवनदान दिया है। श्रीधन का अमर उपदेश दिया है। मैंने स्वयं को जाना। हे तथागत ! हे करुणाधाम ! हे बुद्ध सत्य ही तुम जगत् का उपकार और पापियों का उद्धार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने आये थे। तुम्हारे पावन चरणों से प्रवाहित हुई संसार में मानवता। हे हृद् मन्दिर के प्रकाश! इस लोक अन्धकार के तुम्हीं प्रदीप हो। प्राणियों का हित चिन्तन करता हुआ कामना करता हूँ कि सुमार्ग प्राप्ति के लिये संसार आपको सिर पर धारण करे।

बुद्ध सरणं गच्छामि।
धर्म्मसरणं गच्छामि।
संघ सरणंगच्छामि।

भारत-लंका का सांस्कृतिक सम्बन्ध

श्री सुमन वात्स्यायन

आज से लगभग २५ सौ वर्ष पूर्व बंगाल के एक राजा के घर एक लड़की पैदा हुई। वह अत्यन्त रूपवती थी; पर थी दुश्चरित्रा। उसने अपनी कामुक प्रवृत्ति के कारण राजकुल को लज्जित किया। अन्त में स्वच्छन्द जीवन के सुख की इच्छा से वह अकेली घर से निकल पड़ी और मगध जानेवाले व्यापारियों के कारवाँ के साथ हो ली। समय पाकर उसे दो जुड़वाँ बच्चे—एक लड़का और दूसरी लड़की हुये। लड़का का सिंहबाहु और लड़की का सिंहसीवली नाम पड़ा।

लड़का जब सोलह वर्ष का हुआ तब एक रोज उसने अपनी माँ से अपने पिता के बारे में पूछा। माता ने सारी कहानी कह सुनाई। तरुण सिंहबाहु को बड़ी लज्जा हुई। एक दिन वह अपनी माँ और बहन के साथ बंग देश की सीमापर आ पहुँचा। बंगराज का सेनापति (जो राजकुमारी का ममेरा भाई था) सीमान्त को ठीक करवाने आया था। वह राजकुमारी के रूप पर मोहित हो गया। परिचय होने पर वह उसे बंग नगर ले जा अपनी स्त्री बनाया।

बंगराज्य के सीमान्त प्रदेश में एक सिंह ने बड़ा उपद्रव मचा रखा था। राजा ने सिंह को मारनेवाले को तीनहजार रुपये इनाम देने की घोषणा की। सिंहबाहु उस सिंह को मारने के लिये रवाना हुआ। सात दिन बाद वह सिंहको मारकर उसका शिर लिये राजधानी में पहुँचा। बंगराज को मरे उस समय एक सप्ताह हो चुका था। उसके कोई सन्तान न थी। उत्तराधिकार का सवाल उठा। पर जब मंत्रियों ने सिंहबाहु की वीरता, उसका वंश परिचय (क्योंकि वह राजा का नाती था) जाना तो सबों ने एक मत हो उसे ही राजा बनाना स्वीकार किया। सिंहबाहु ने राज्य ग्रहण करके अपनी माता के पति को दे दिया और खुद सिंहसीवली को लेकर अपनी जन्मभूमि को चला आया। वहाँ उसने सिंहपुर (काठियावाड़ में वाला के पास आधुनिक सिहोर) नाम का नगर बसा वहीं राज करने लगा।

सिंहबाहु ने अपनी बहन सिंहसीवली को ही रानी [illegible] कर रानी को अनेक पुत्र हुये, जिनमें सबसे [illegible] विजय हुआ। राजा ने विजय को युवराज बनाया। पर विजय बहुत उद्दंड था। उसके सैकड़ों साथी थे जो सबके सब विजय के समान ही उच्छृंखल थे। ये सब मिलकर विजय के नेतृत्व में प्रजा को बहुत तकलीफ देते थे। प्रजा ने राजा से शिकायत की। राजा ने विजय को कई बार समझाया। पर उसने एक भी नहीं सुनी। अन्त में राजा ने विजय और उसके सात सौ साथियों को आधा सिर मुंडवा, जहाज में डालकर समुद्र में छुड़वा दिया। जहाज समुद्र में तैरते-तैरते सुप्पारक पट्टन पर जा लगा। यह स्थान बम्बई से ३७ मील उत्तर जिला थाना का सोपारा है। किन्तु यहाँ भी विजय के साथी शान्त नहीं रहे। उनकी उद्दण्डता के कारण फिर विजय को समुद्र-यात्रा करनी पड़ी। इस बार जहाज लंका द्वीप जा कर लगा। जब विजय और उसके आदमी नाव से पृथ्वी पर उतरे तो थकावट के कारण धरती पर हाथ टेक कर बैठ गये। ताँबे के रंग की मिट्टी उनके हाथ में लग गई। इसलिये उस प्रदेश और द्वीप का नाम ताम्रपर्णी हुआ।

सब लोग भूखे-प्यासे और थके तो थे ही। उन्हें कहीं कोई गाँव-घर नजर नहीं आ रहा था। अकस्मात वहाँ एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुतिया दिखाई पड़ी। विजय के मना करने पर भी उसका एक साथी उस कुतिया के पीछे हो लिया। उसने सोचा कि जहाँ गाँव-घर होता है वहीं कुत्ते भी होते हैं। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि एक वृक्ष के नीचे बैठी एक स्त्री सूत कात रही है। नजदीक जा कर उसने पास के तालाब में पानी पीया। किन्तु उस स्त्री ने उसे वहीं अटका दिया। उस एक आदमी की खोज करने के लिये विजय ने अनेक साथियों को भेजा। लेकिन कोई वापस आता नजर नहीं आया। अन्त में वह खुद गया। उस स्त्री के पास जाकर राजकुमार ने अपने साथियों के बारे में पूछा। स्त्री बोली "राजपुत्र! नौकरों से क्या लेना है, पानी पीओ और स्नान करो।" पर विजय उसकी मधुरवाणी से वशीभूत होने के बदले उलटे उसे मारने को तैयार हो गया। वह स्त्री डर कर बोली, "स्वामी! मुझे जीवन दान दो। मैं आपके लिये स्त्री-कृत्य और आप के इच्छानुसार सब काम करूँगी, मैं आपको राज दूँगी।" स्त्री ने विजय को उसके साथियों से मुलाकात करा दी। सबों ने उस स्त्री के [illegible] खाद्यान्न ला भोजन बना कर खाया।

उस समय लंका द्वीप में सभ्य लोगों की आबादी नहीं थी। उन्हें पुरानी किताबों में यक्ष कहा गया है। उल्लिखित स्त्री उसी यक्ष जाति की थी और उसका नाम था कुवर्णा। राजकुमार विजय ने अपने भविष्य का ख्याल करके ही उसे स्वीकार किया। समय पाकर उस यक्षणी कुवर्णा से विजय को एक लड़का और एक लड़की भी हुई। कुवर्णा की मदद से ही विजय अपने मुट्ठी भर साथियों को लेकर लंका द्वीप को विजय कर सका। एक रात आदिवासियों के प्रधान के घर शादी थी। सारे लोग इकट्ठे हो खूब उत्सव मना रहे थे। इसी समय कूवर्णा की मदद से विजय ने उन पर हमला कर दिया। लड़ाई के लिये आदिवासियों की ओर से कोई तैयारी नहीं थी। इसलिये वे हार गये। उनके अधिकांश आदमी मारे गये। इस तरह राजकुमार विजय ने द्वीप के बड़े भूभाग पर अधिकार कर लिया। जहाँ ये लोग उतरे थे वहाँ ताम्रपर्णी नगर बसाया गया। अनेक स्थानों पर विजय के अमात्यों ने नगर और गाँव बसाये। अनुराध ग्राम (वर्त्तमान अनुराधपुर) उसी के किसी मंत्री ने बसाया था।

देश को बसा चुकने पर, मंत्रियों ने राजकुमार विजय से राज्याभिषेक कराने का अनुरोध किया। किन्तु बिना एक क्षत्रिय पटरानी के राजकुमार ने राज्याभिषेक कराने से इन्कार कर दिया। मंत्रियों ने निश्चय कर मधुरा (आधुनिक मदुरा) के पाण्डुराज के पास बहुमूल्य भेंट के साथ दूत भेज कहलाया कि वहाँ से राजकुमार के लिये एक राजकुमारी और अमात्यों तथा अन्य लोगों के लिये दूसरी लड़कियाँ भेजें।

मधुरा के पाण्डुराज ने राजकुमार विजय के लिये अपनी पुत्री तथा अन्य लोगों के लिये दूसरी लड़कियाँ और उपयुक्त हाथी, घोड़े, रथ एवं एक हजार शिल्पी परिवार भेजा। राजकन्या का आगमन सुन विजय ने कुवर्णा को उसके एक पुत्र और पुत्री समेत चले जाने को कहा। कुवर्णा रोती-कलपती अपने पुत्र-पुत्री को नगर के बाहर बैठा खुद यक्ष नगर में गई। यक्षों ने उसे पहचान लिया और जान से मार दिया। कुवर्णा के पुत्र-पुत्री भागकर सुमनकूट (वर्त्तमान ऐडमपीक) चले गये। उन दोनों से जो सन्तान पैदा हुई उन्हें ही आज कल वेद्दा (संस्कृत-व्याध) कहते हैं। ये मध्यवर्ती पहाड़ी भाग जंगलों में रहते हैं।

पाण्डुराज के दूतों ने राजकुमारी तथा अन्य कन्याओं को विजय कुमार को अर्पण किया। सब अमात्यों ने मिलकर विधिवत् विजय कुमार का अभिषेक किया। अपने पहले के दुष्ट आचरण को त्याग, धर्मपूर्वक लंका पर शासन करते हुये, विजय नरेन्द्र ने ताम्रपर्णी नगर में अड़तीस वर्ष राज्य किया।

राजकुमार विजय को कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये बूढ़े होने पर उन्होंने सोचा कि इतने कष्ट से बसाया हुआ यह राज्य मेरे बाद नाश हो जायगा। इसलिये मैं अपने भाई सुमित्र को बुलाऊँगा। मन्त्रियों से परामर्श कर विजय ने अपने भाई के पास वहाँ आने के लिये पत्र भेजा। सुमित्र खुद बूढ़ा हो चुका था। इसलिये उसने अपने लड़के पाण्डु वासुदेव को बत्तीस अन्य तरुणों के साथ लंका भेजा। दूत के सिंहपुर (काठियावाड़) आने और राजकुमार पांडु वासुदेव को लंका पहुँचने में एक वर्ष लग गया। इस बीच राजा विजय की मृत्यु हो चुकी थी पांडु वासुदेव के लंका पहुँचने पर मंत्रियों ने उसे गद्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बैठाना चाहा। पर क्षत्रिय पटरानी के अभाव में यह संभव नहीं था।

कोशल देश का राजा विडूडभ जब शाक्यों का समूल नाश करने में लगा था तब पाण्डु शाक्य नाम का एक तरुण अपने आदमियों को लेकर गंगा पार भाग आया। उसकी लड़की भद्रकात्यायनी अत्यन्त रूपवती थी। गड़बड़ी में वह अपनी सहेलियों के साथ नाव पर गंगा में छोड़ दी गई। बहुत दिनों बाद नाव बहते-बहते लंका के गोण-ग्राम नामक बन्दरगाह पर आ लगी। राजपुरुषों ने आकार पूछताछ की और सबको उपतिष्य ग्राम ले जाकर राजा पाण्डु वासुदेव को समर्पित किया। राजा ने भद्रकात्यायनी को पटरानी के पद पर अभिषिक्त कर उसके साथ आई हुई अन्य कुमारियों को अपने साथियों के साथ ब्याह दिया। इस तरह पाण्डु वासुदेव का राज्याभिषेक पूरा हुआ।

पाण्डु वासुदेव के बाद अशोक का समकालीन देवानांप्रियतिष्य बहुत प्रभावशाली राजा हुआ। महावंश के अनुसार, देवानांप्रियतिष्य और धर्म्माशोक दोनों राजा एक दूसरे को न देखने पर भी चिरकाल से मित्र चले आ रहे थे। देवानांप्रियतिष्य ने अशोक के दरबार में अपने भानजे महारिष्ठ, प्रधान मन्त्री, पुरोहित, मन्त्री और गणक इन चार जनों को दूत बना कर बहुमूल्य रत्न, तीन जाति की मणि, आठ जाति की मोती देकर सेना सहित पाटलिपुत्र (पटना) भेजा। नाव से सात दिनों में ये लोग ताम्रलिप्ति (बंगाल) बन्दरगाह पहुँचे और फिर एक सप्ताह बाद पटना। धर्म्माशोक यह भेंट देख कर बहुत प्रसन्न हुआ।

सम्राट अशोक ने अपने अमात्यों से सलाह करके बदले की भेंट—पगड़ी, तलवार, छत्र, जूता, मुकुट, बहुमूल्य वस्त्र, मानसरोवर और गंगा का जल, वर्धमाना कुमारी, बहुमूल्य दवाएँ और अभिषेक का सब सामान देकर दूतों को देवानांप्रियतिष्य के पास भेजा। महाराज अशोक को देश जीतने की अपेक्षा लोगों का हृदय जीतना ही अच्छा लगता था। इसलिये उसने अपनी भेंट के साथ सद्धर्म की भेंट भी भेजी—"मैंने बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण की है और शाक्य पुत्र के शासन (धर्म) में उपासक हूँ। हे राजा (देवानांप्रियतिष्य)! आप भी आनन्दपूर्वक श्रद्धा के साथ इन उत्तम रत्नों (बुद्ध, धर्म, संघ) की शरण ग्रहण करें।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मौर्यों के दक्षिण विजय के साथ-साथ भारत और लंका का राजनैतिक सम्बन्ध बहुत मजबूत हो जाता है। भारतीय लेख और लंका के प्राचीन इतिहास दोनों ही से सिद्ध है कि इन दोनों देशों में राजदूतों की अदला-बदली सदा से होती रही है। देवानांप्रियतिष्य की प्रार्थना पर सम्राट् अशोक ने बुद्ध-गया के बोधिवृक्ष की एक शाखा लंका भेजी। उसकी रक्षा के लिये उसने अठारह क्षत्रिय परिवार, देवकुल, अमात्यों, ब्राह्मणों और व्यापारियों के आठ-आठ परिवार, ग्वालों, बढइयों और इसी प्रकार जुलाहे, कुम्हार तथा अन्य शिल्पियों के परिवारों को भेजा।

भारत के पांड्य, चोल और केरल राज्य, जो लंका के सामने और पड़ोस के थे, अनेक घटनाओं द्वारा लंका से सम्बद्ध रहे हैं। लंका और भारत के बीच सबसे निकट [illegible] दूरा और पांड्यकपाट से है। यह वही रा[illegible] हुए [illegible] होकर आचार्य बुद्धघोष लंका गये थे। लेकिन रामायण और तामिल कथा के अनुसार पहले भी मध्यभारत से पांड्य तक स्थल-मार्ग था जो कावेरी के किनारे मैसूर तक फैला था। राजनैतिक, सैनिक और वैवाहिक सम्बन्ध ने लंका और द्रविड़ राज्यों को काफी घनिष्ठ बना दिया था। सदा से लंका में द्रविड़ राज्य-वासियों की संख्या काफी रही है।

१८७ ई० पू० में सूरतिस्स राजा को कैद कर बाईस वर्ष तक सेन-गुत्तक नामक द्रविड़ों ने लंका पर राज किया। १४१ ई० पू० में चोल देश का द्रविड़ राजा एलार ने लंका को जीत कर चव्वालीस वर्ष तक शासन किया। लंका के प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है, "वह शत्रु-मित्र में समान भाव रखता था। उसने अपने शयनासन के सिरहाने की ओर रस्सी सहित एक घंटा लटकवाया, जिसको न्याय चाहनेवाले बजा सकें।" एलार को लंका से मार भगानेवाला राजा दुष्टग्रामणी बड़ा तेजस्वी पुरुष था। जब वह आठ-दस वर्ष का था तब एक रोज हाथ-पाँव सिकोड़ कर बिस्तर पर पड़ा था। माँ ने कहा "बेटा हाथ-पाँव फैलाकर क्यों नहीं सोते"। उसने जवाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया, "माता, नदी के पार द्रविड़ लोग हैं और इधर समुद्र है। फिर शरीर फैला कर मैं कहाँ सोऊँ?" माता-पिता ने पुत्र का अभिप्राय समझ लिया। बड़े होने पर दुष्टग्रामणी ने एलार पर हमला किया। यह युद्ध एलार की मृत्यु के बाद भी चलता रहा और एक के हारने पर दूसरी भारतीय फौज जहाज से पहुँचती रही। महावंश के लेखक ने लिखा है, "तीन खाइयों से और ऊँचे प्राकार से घिरे हुये उस नगर का लोह-निर्मित द्वार दृढ़ और शत्रुओं द्वारा अटूट था। नगर-द्वार पर स्थित द्रविड़ों ने अनेक हथियार चलाये। गर्म लोहे के गोले फेंके।" पता नहीं इस 'गर्म लोहे के गोले' से क्या अभिप्राय है।

दुष्टग्रामणी के समय में बौद्धधर्म की वहाँ उन्नति, हुई। प्रजा की भलाई के लिए भी उसने बहुत काम किया। अनेक देशों से उसने राजनैतिक सम्बन्ध कायम किया। उसने एक महास्तूप बनवाया जिसके उत्सव में भारत के काशी, कोशल, मगध, वैशाली कोशाम्बी, उज्जयनी, कश्मीर आदि देशों के [illegible]

और सुदूर अलेक्जेंड्रिया (अलसन्दा) तक के भिक्षु निमन्त्रित होकर आये थे। इससे उसके प्रभाव का ज्ञान होता है।

लंका पर समय-समय पर पड़ोसी राज्य द्रविड़ों का हमला होता रहा। पूर्वी भारत के लोगों ने भी वहाँ शासन किया। लम्बकर्ण वंश ने, जिनके पूर्वज पूर्वी भारत से आकर बसे थे, अनेक बार राज्य पर अधिकार किया और सफलतापूर्वक शासन किया। लंका के राजा विजयबाहु प्रथम (१०५५–१११४) ने कलिंग राज की राजकुमारी तिलोक सुन्दरी से विवाह किया और उसे अपनी पटरानी बनाया। बंगाल के एक लेखक के अनुसार तिलोक सुन्दरी के पिता सिंहपुर (कलिंग) के राजवंश के सामलवर्मन की लड़की थी। सिंहली लेखक के अनुसार सिंहपुर (कलिंग) के गोपराज के दो पुत्र निस्संकमल्ल और साहसमल्ल १२०० ई० में सिंहल की गद्दी पर बैठे थे।

शान्ति-पर्व

श्री हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ'

शान्तिपर्व साकार पुनः यह
व्यंगमयी भाषा है,
शान्ति मनुज की चरमोन्नति की
अन्तिम परिभाषा है।

शान्ति अमिय की धार, हृदय में
प्यार जगा जाती है,
शान्ति मनुज के स्वप्नों का
संसार जगा जाती है।

शान्ति विश्व का निर्विकार
उद्धार जगा जाती है,
शान्ति प्राण की सुप्त वीण के
तार जाग जाती है!

शान्ति नहीं सुरपुर विहारिणी
वह रहती भूतल पर,
अंकित करती कथा प्रेम की
जन के भग्न-पटल पर।

(अप्रकाशित "आनन्द" से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुताङ्ग

प्रिय जिज्ञासु,

मैं आज ही तीर्थयात्रा से लौटा हूँ। तुम्हारा पत्र मेरी अनुपस्थिति में यहीं पड़ा रह गया। यही कारण है कि विलम्ब से उत्तर जा रहा है। बुरा न मानना।

तुमने धुताङ्गों के सम्बन्ध में जो अटकलबाजी की है, वह ठीक नहीं है। धुताङ्ग गृहस्थों के लिए नहीं, केवल प्रव्रजितों के लिए हैं। प्रव्रजित ही धुतांगों का पालन कर सकते हैं। तुम कह सकते हो कि जब प्रव्रजित ही धुतांगों का पालन कर सकते हैं, तब गृहस्थों को तो निर्वाण प्राप्त करना कठिन है; किन्तु ऐसी बात नहीं। भगवान् के समय में असंख्य देवता और गृहस्थ बिना धुतांगों का पालन किये ही, गृहस्थ जीवन के सभी कामों को भोगते हुए निर्वाण पा लिये थे। इससे यह न समझना कि तब तो प्रव्रजितों का धुतांग-पालन निरर्थक है। धुतांग-पालन से योगी में अनेक गुण आ जाते हैं, जिनसे वह सरलता-पूर्वक निर्वाण प्राप्त कर सकता है। जो कामभोगी घरवासी गृहस्थ परम शान्त निर्वाण-पद पाते हैं, उन्होंने अपने पहले जन्म में अवश्य ही धुतांगों का पालन किया होगा। वे अपने पहले जन्मों में शील और आचार को शुद्ध करके ही आज यहाँ गृहस्थ रहते हुए भी निर्वाण पा लेते हैं।

धुतांग १३ प्रकार के होते हैं—(१) पांशुकूलिकांग, (२) त्रैचीवरिकांग, (३) पिण्डपातिकांग, (४) सापदान-चारिकांग, (५) एकासनिकांग, (६) पात्रपिण्डिकांग, (७) खलुपच्छाभत्तिकांग, (८) आरण्यकांग, (९) वृक्ष-मूलिकांग, (१०) अभ्यवकाशिकांग, (११) श्मशानिकांग, (१२) यथा संस्थारिकांग और (१३) नैसद्यकांग।

चूँकि इन्हें ग्रहण करने से भिक्षु के क्लेश (=राग, द्वेष, मोह) नष्ट हो जाते हैं और भिक्षु परिशुद्ध (=धुत) हो जाता है, इसलिए परिशुद्ध भिक्षु का अंग होने के कारण इन्हें धुताङ्ग कहते हैं, अथवा क्लेशों को धुन डालने से ये धुतांग कहे जाते हैं।

धुतांगों का पालन सभी भिक्षु नहीं कर सकते। इनका पालन वही भिक्षु कर सकते हैं (१) जो श्रद्धालु हैं, (२) पापकर्म करने में सकुचाते हैं, (३) धैर्यवान होते हैं, (४) झूठी दिखावट नहीं रखते, (५) अपने उद्देश्य में लगे रहते हैं, (६) निर्लोभी होते हैं, (७) सीखने को सदा तैयार रहते हैं, (८) दृढ़ संकल्पवाले होते हैं, (९) किसी बात से चिढ़ नहीं जाते और (१०) जो मैत्री-भाव रखने वाले होते हैं।

अब मैं प्रत्येक की संक्षेप में व्याख्या करूँगा, जिससे कि तुम इन्हें भली प्रकार समझ सको।

१. पांशुकूलिकांग

पांशु का अर्थ धूल है। सड़क, श्मशान, कूड़ा-करकट के ढेर अथवा जहाँ कहीं पर भी धूल के ऊपर पड़े हुए वस्त्र को पांशुकूल कहते हैं। जो उसे धारण करते हैं उसे पांशुकूलिक कहा जाता है। पांशुकूलिक का अंग ही पांशुकूलिकांग है।

जो भिक्षु पांशुकूलिकाङ्ग व्रत ग्रहण करता है, वह—"गृहस्थों द्वारा दिये गये चीवर को त्यागता हूँ, अथवा पांशु-कूलिकाङ्ग ग्रहण करता हूँ" इन दोनों वाक्यों में से किसी एक का अधिष्ठान करता है। जो भिक्षु इस प्रकार धुतांङ्ग ग्रहण करता है वह श्मशान में पड़े हुए वस्त्र, दूकान के सामने पड़े हुए चीथड़े, पुष्प चाहने वालों के द्वारा खिड़की से मार्ग में फेंके हुए वस्त्र, कूड़ा-करकट फेंकने की जगह पर फेंके हुए वस्त्र, गर्भ के मल को पोंछ कर फेंके हुए वस्त्र, [illegible] छोड़े हुए वस्त्र, नहाने के घाट पर छोड़े हुए वस्त्र-खण्ड, श्मशान में स्नान करने के बाद छोड़े हुए वस्त्र, आग से जले हुए फेंके वस्त्र, गाय, दीमक, चूहा आदि से नष्ट किए हुए वस्त्र, मार्ग में गिरे हुए वस्त्र, समुद्र की लहरों से स्थल पर लाए हुए वस्त्र आदि दोष रहित वस्त्रों को ही चीवर बनाने के लिए ग्रहण करता है।

उपसम्पदा के समय भिक्षु को निश्रय बतलाते हुए कहा जाता है—"पांशुकूल चीवर के सहारे प्रव्रज्या है।" अतः जो भिक्षु उक्त प्रकार के वस्त्रों को ले चीवर बना पांशुकूलिक होता है वह निश्रय के अनुरूप आचरण करता है। उस भिक्षु में चीवरों की रक्षा करने के दुःख का अभाव भी होता है क्योंकि फटे-पुराने वस्त्रों के प्रति उसे ममत्व नहीं होता। उसमें दूसरे के कब्जे से बाहर रहने की वृत्ति होती है। वह चोरों के भय से निडर होता है। पहनने-ओढ़ने की तृष्णा का भी उसमें अभाव होता है। उसकी गुदड़ी श्रमण-जीवन के अनुरूप होती है। यही कारण है कि भगवान् ने भी "वे थोड़े किन्तु सुलभ और निर्दोष हैं" कहकर प्रशंसा की है। पांशुकूलिक के गुणों की पुराने योगिराज ने भी इस प्रकार प्रशंसा की है—

मारसेन विघाताय पंसुकूलधरो यति।
सन्नद्धकवचोयुद्धे खत्तियो विय सोभति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांशुकूल धारण करनेवाला भिक्षु मार की सेना को नाश करने के लिए युद्ध में कवच पहन कर तैयार क्षत्रिय के समान शोभता है।

पहाय कासिकादीनि वरवत्थानि धारितं।
यं लोकगुरुना को तं पंसुकूलं न धारये।

काशी आदि के बने सुन्दर वस्त्रों को छोड़कर लोकगुरु (भगवान्) ने भी जिसे धारण किया, उस पांशुकूल को कौन नहीं धारण करेगा ?

तस्मा हि अत्तनो भिक्खु परिञ्ञं मनुस्सरं।
योगाचारानुकूलम्हि पंसुकूले रतो सिया॥

इसलिए भिक्षु अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करते हुए योगाचार के अनुकूल पांशुकूल धारण करने में लगे।

२. त्रैचीवरिकाङ्ग

संघाटी, उत्तरासङ्ग और अन्तरवासक—भिक्षु के ये तीन वस्त्र हैं। जो भिक्षु केवल इन्हीं को धारण करता है, इनसे अधिक वस्त्र नहीं ग्रहण करता, उसे त्रैचीवरिक कहते हैं और उसका वह धुताङ्ग-व्रत त्रैचीवरिकाङ्ग है। इस धुताङ्ग का पालन करनेवाला [illegible] (=एक कन्धेवाली बंडी) पहन सकता है। वह चौथे चीवर में नहीं गिना जाता, किन्तु वह भी चौड़ाई में एक बालिश्त और लम्बाई में तीन हाथ ही होना चाहिए।

तीन चीवर धारण करनेवाला भिक्षु शरीर ढँकने के काम में आनेवाले चीवर से सन्तुष्ट होता है। उसे इस धुताङ्ग के पालन से चिड़िया की भाँति लेकर ही जाना, थोड़े कामवाला होना, कपड़ों को एकत्र करने का त्याग, बोझरहित वृत्ति, अधिक चीवर के लिए लालच का न होना, अल्पेच्छता आदि गुणों की प्राप्ति होती है। कहा है :—

"तीन चीवर को धारण करनेवाला धीर योगी अधिक वस्त्र रखने की तृष्णा को छोड़कर चीवर इकट्ठा करने को त्याग, सन्तोष सुख के रस का जाननेवाला होता है। इसलिए अपनी पाँखों के साथ विचरण करनेवाले पक्षी के समान चीवर के ही साथ सुखपूर्वक विचरने की इच्छावाला उत्तम योगी चीवर के नियम में मन लगाये।"

३. पिण्डपातिकाङ्ग

भिक्षा के रूप में जो अन्न प्राप्त होता है उसे पिण्डपात कहते हैं। दूसरों से दिये गए पिण्डों का पात्र में गिरना ही पिण्डपात है। जो पिण्डपात के लिये घर-घर घूमता है, उसे पिण्डपातिक कहते हैं। पिण्डपातिक का ही अङ्ग पिण्डपातिकाङ्ग है।

पिण्डपातिक भिक्षु द्वारा सांघिक-भोजन, कुछ भिक्षुओं को उद्देश्य करके दिया गया भोजन, निमन्त्रण, 'इतने भिक्षु आवें' कह कर दिया गया शलाका भोजन, पखवारे का भोजन, उपोशथ का भोजन, प्रतिपदा का भोजन, आगन्तुक भोजन, गमिक-भोजन (=जानेवाले को दिया जानेवाला भोजन), बीमार भिक्षु के लिए भेजा गया भोजन, बीमार भिक्षु की सेवा-टहल करने वालों को दिया जानेवाला भोजन, विहार में दिया जानेवाला भोजन, घर में दिया जानेवाला भोजन, भाँजा से दिया जानेवाला भोजन—ये चौदह प्रकार के भोजन नहीं ग्रहण करने चाहिए।

यदि "सांघिक-भोजन ग्रहण कीजिये" आदि प्रकार से न कहकर "हमारे घर में संघ भिक्षा ग्रहण करता है, आप भी भिक्षा ग्रहण कीजिये" इस प्रकार कहकर दिये गए होते हैं तो उन्हें ग्रहण करना चाहिए। संघ द्वारा दवा-दारू आदि की शलाका और विहार में पकाया हुआ भात भी ग्रहण करना ठीक ही है।

"पिण्ड-पिण्ड करके मिले हुए ग्रास से सन्तुष्ट, स्वतन्त्र रोजीवाला, आहार की लोलुपता से रहित भिक्षु चारों दिशाओं में जानेवाला होता है। वह आलस को छोड़ता है, उसकी आजीविका परिशुद्ध होती है, इसलिए प्रज्ञावान भिक्षु कभी भी भिक्षाटन की अवहेलना न करे।"

"दूसरे का पालन-पोषण न कर केवल अपना भरण करनेवाले (मन, काय, वाणी तीनों में) एक जैसे पिण्डपातिक भिक्षु को देवता भी चाहते हैं, यदि वह लाभ, प्रशंसा को चाहने वाला नहीं होता।"

पत्र बहुत लम्बा हो गया। सब धुतांगों का परिचय भी नहीं दिया जा सका। यदि सबकी व्याख्या इसी पत्र में देने का प्रयत्न करूँ तो भय है कि पत्र बैरंग हो जाय और तुम उसे न छुड़ा सको। पत्र लम्बा होने से तुम्हें पढ़ने में भी अरुचि उत्पन्न हो सकती है। अच्छा, शेष अगले पत्र में। योगिराज के आशीर्वाद।

कुसिनारा
१५-३-५३

तुम्हारा—
योगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये प्रकाशन

जातकमाला—(आर्य शूर-कृत) मूल संस्कृत तथा हिंदी अनुवाद सम्पादक और अनुवादक—श्री सूर्यनारायण चौधरी। प्रकाशक—संस्कृत भवन, कठौतिया, जिला पूर्णिया (बिहार) पृष्ठ २८८, मूल्य ३) अजिल्द।

बौद्ध धर्म के सर्व प्रमुख पालि वाङ्मय त्रिपिटक के अन्तर्गत सुत्तपिटक के पांच निकायों में अन्तिम खुद्दक-निकाय १५ ग्रंथों में विभक्त है जिसमें जातक का स्थान दशम है। प्राचीन परम्परा में बुद्ध वचन के नौ उपभेदों में जातक सातवां है। अशोक के 'भाब्रू' शिलालेख में सात बुद्ध वचनों का उल्लेख है। जातक का अर्थ है 'जन्म सम्बन्धी' अर्थात् जातक—भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म सम्बन्धी कथाओं का संग्रह है। पालि जातक में बोधि-सत्व के ५४७ जन्मों का वर्णन है। तथागत के पूर्व जन्मों को 'बोधि सत्व' के नाम से सम्बोधित किया जाता है अर्थात् (बुद्धत्व प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील) प्राणि।

पालि जातक के अतिरिक्त संस्कृत बौद्ध-साहित्य में 'जातकमाला' नामक एक ग्रंथ है जिसके रचयिता आर्य-शूर हैं। इस 'जातकमाला' में केवल ३४ कथायें हैं जिनका हिंदी अनुवाद श्री सूर्यनारायण चौधरी जी ने प्रस्तुत पुस्तक—'आर्यशूर कृत जातकमाला' के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। पालि अथवा संस्कृत बौद्ध-साहित्य के हिंदी भाषा में अनुवाद की अब अत्यधिक आवश्यकता है और इस दिशा में चौधरी जी का प्रयास महत्त्वपूर्ण तथा प्रशंसनीय है।

पालि जातक, पंचतंत्रादि ग्रन्थों की भांति 'जातक-माला' भी संस्कृत में गद्य-पद्य मिश्रित शैली में लिखी है। कहीं-कहीं तो गद्य-वाक्य एवं समासादि अत्यधिक लम्बे हैं किन्तु उनका अर्थ उतना ही सरल है। श्री चौधरी जी के अनुसार संस्कृत 'जातकमाला' का चीनी अनुवाद ९६०-११८७ के बीच हुआ तथा इसमें केवल १४ ही जातक हैं। चीनी यात्री इत्सिंग के स्मृति लेखों के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ७ वीं शती के लगभग 'जातकमाल' हमारे देशकी एक सर्व-प्रिय पुस्तक थी।

श्री चौधरी जी ने अपनी प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने में अथक परिश्रम किया है जिसकी सार्थकता पुस्तक देखने मात्र ही से स्पष्ट हो जाती है। मैक्समूलर, लैन मैन आदि कतिपय विद्वानों ने 'जातक माला' का अनुवाद बहुत पूर्व ही आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस से प्रकाशित किया है जिसका भी पूर्ण उपयोग अनुवादक महोदय ने किया है। पूर्व ग्रंथों की प्रामाणिकता के बारे में कुछ भी सन्देह नहीं, इससे प्रस्तुत पुस्तक में भी किसी प्रकार की त्रुटियों के होने की आशा कम ही है।

चौंतीस में से प्रथम बीस जातकों का (व्याघ्री, शिवि, [illegible] श्रेष्ठि, अविषह्य-श्रेष्ठि, राश, अगत्स्य, मैत्री-बल, विश्वन्तर, यज्ञ, शक्र, ब्राह्मण, उन्मादयन्ती, सुपा-रग, मत्स्य, वर्तका-पोतक, कुम्भ, अपुत्र, विस तथा श्रेष्ठि-जातक) प्रस्तुत संकलन बौद्ध-धर्मानुरागी एवं साहित्य प्रेमियों के लिये महत्त्वपूर्ण है। बायें पृष्ठ पर संस्कृत मूल एवं दाहिनी ओर उनका हिन्दी अनुवाद देने से अध्ययन की दृष्टि से सरल तथा पाठ्यमूल्य की दृष्टि से सुगम हो गया है। यही इसकी विशेषता है।

अनुवाद क्रम संस्कृत छन्दों के अनुरूप ही लंबे हो गये हैं, परन्तु पढ़ने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती, न ही अस्वाभाविकता झलकती है और न वाक्यों का रूप ही खटकता है। भाषा सरल, स्पष्ट एवं छपाई भी साफ तथा आकर्षक है। पुस्तक का "गेट अप" और भी सुन्दर हो सकता था। अन्य दृष्टियों से भी पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक ही प्रतीत होता है। ऐसे तो सुन्दर वस्तुओं में भी सौन्दर्य-चिह्न होते ही हैं। पाठ्य-भेद को स्पष्ट एवं सुगम बनाने के लिये पुस्तक के अन्त में परि-शिष्ट के ६ पृष्ठ भी हैं।

आशा है श्री चौधरी महोदय शेष १४ जातक कथाओं का भी अमूल्य संकलन प्रकाशित कर बौद्ध-साहित्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भण्डार की वृद्धि करेंगे जिससे बुद्ध, धर्म, संघ के प्रति जिज्ञासुओं की श्रद्धा बढ़े तथा उनका ज्ञान-वर्धन भी हो। बौद्ध-साहित्य की सेवा के लिये बौद्ध-जगत् श्री चौधरी जी का ऋणी है।—विजय श्रीवास्तव

धम्मपद—(कथाओं के साथ पालि और हिन्दी अनुवाद) अनुवादक एवं सम्पादक त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित। प्रकाशक मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, संस्कृत बुक डिपो, कचौड़ी गली, बनारस—१, पृष्ठ ३२३+१४+२४=३६१, मूल्य २॥)

'धम्मपद' पालि-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। बौद्ध-संसार में इसका उसी प्रकार प्रचार है, जिस प्रकार कि हिन्दू-संसार में 'गीता' का। यद्यपि गीता का एक ही कथानक है और श्रोता भी एक ही; किन्तु 'धम्मपद' के विभिन्न कथानक और विभिन्न श्रोता हैं। गीता का उपदेश अल्पकाल में ही समाप्त किया गया था, किन्तु धम्मपद तथागत के पैंतालीस वर्षों के [illegible] संगृहीत है।

'धम्मपद' में कुल ४२४ गाथायें हैं (भ्रम से ४२३ की ही गणना होती है), जिन्हें भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति के समय से लेकर परिनिर्वाण-पर्यन्त समय-समय पर उपदेश देते हुए कहा था। 'धम्मपद' एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी प्रत्येक गाथा में बुद्धधर्म का सार भरा हुआ है। जिन गाथाओं को सुनकर आजतक विश्व के अनगिनत दुःख-सन्तप्त प्राणियों का उद्धार हुआ है। इन गाथाओं में शील, समाधि, प्रज्ञा, निर्वाण आदि का बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन हुआ है, जिन्हें पढ़ते हुए एक अद्भुत संवेग, धर्म-रस, शान्ति, ज्ञान और संसार-निर्वेद का अनुभव होता है। आज की विषम-परिस्थिति में इस ग्रन्थ के प्रचार की बहुत बड़ी आवश्यकता है, जितना ही इसका प्रचार होगा, उतना ही मानव-जगत् का कल्याण होगा।

चीनी, तिब्बती आदि भाषाओं के पुराने अनुवादों के अतिरिक्त, वर्तमान काल की दुनिया की सभी सभ्य भाषाओं में इसके अनुवाद मिलते हैं, अंग्रेजी में तो प्रायः एक दर्जन हैं, हिन्दी भी इस विषय में पीछे नहीं है। हमें यह लिखते हुए प्रसन्नता हो रही है कि हिन्दी में जितने 'धम्मपद' प्रकाशित हुए, उनकी प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक गईं। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी-जगत् 'धम्मपद' से अपरिचित नहीं है।

अर्थकथाचार्य भदन्त बुद्धघोष महास्थविर ने सिंहल भाषा में सुरक्षित 'धम्मपदट्ठकथा' का पालि में परिवर्तन किया था, जिसमें भगवान् बुद्ध ने जहाँ पर, जिसे, जिस सम्बन्ध में, जिस गाथा का उपदेश दिया था, उसका विस्तृत वर्णन दिया हुआ है। उसे बिना पढ़े 'धम्मपद' का अर्थ स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता। 'धम्मपदट्ठकथा' में प्रत्येक गाथा के उपदेश का वर्णन कथा का रूप धारण कर लिया है, जिन कथाओं को पढ़ते हुए मन नहीं ऊबता और उन्हें बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। 'धम्मपदट्ठकथा' में कुल ३०५ कथाएँ आई हुई हैं। यद्यपि धम्मपदट्ठकथा का अनुवाद प्रायः सभी समृद्ध भाषाओं में उपलब्ध है, किन्तु हिन्दी में अभी तक उसका अनुवाद नहीं हुआ है, यह बड़े खेद की बात है।

प्रस्तुत 'धम्मपद' से कुछ हद तक इस अभाव की पूर्ति हो जाती है। इसमें 'धम्मपदट्ठकथा' में आई हुई कथाओं को संक्षेप में देकर गाथाओं के साथ हिन्दी अर्थ दिया गया है। पाठक कथाओं के साथ गाथाओं का अर्थ भली प्रकार समझ सकते हैं। प्रत्येक गाथा के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए सम्बन्धित कथा दे दी गई है, जिससे धर्म-जिज्ञासुओं का बड़ा लाभ होगा। इस प्रकार के धम्मपद को प्रस्तुत करके हिन्दी में एक नवीन-पद्धति का निर्माण किया गया है। आशा है पाठक इस ग्रंथ को अपनाकर लाभ उठायेंगे।—अनन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल पांडव,
कुरुक्षेत्र जंक्शन

बौद्ध-जगत

बुद्धगया-मन्दिर का झगड़ा समाप्त

बुद्धगया के महन्त श्री हरिहरनाथ गिरि ने गत फरवरी मास में न्यायालय में आवेदन पत्र देकर उस मुकदमे को वापस ले लिया जिसमें उन्होंने बुद्धगया-मन्दिर के सम्बन्ध में कानून की वैधता को चुनौती दी थी।

इस प्रकार इस पुरातन तथा विश्वप्रसिद्ध महाबोधि मन्दिर पर अधिकार का प्रश्न लगभग ६४ वर्ष की लम्बी लड़ाई के पश्चात् समाप्त हो गया।

इस ऐतिहासिक मन्दिर का निर्माण ईसा के पूर्व तीसरी सदी में सम्राट् अशोक ने कराया था और यहीं पर २५०० वर्ष पहले भगवान् बुद्ध ने महाबोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया था। इस मन्दिर पर बौद्ध-धर्मावलम्बियों द्वारा अधिकार प्राप्त कराने के लिए महाबोधि सभा के संस्थापक स्वर्गीय अनागारिक धर्मपाल ने सन् १८९१ में आन्दोलन आरम्भ किया था और तब से समस्त संसार का ध्यान इस महान् मन्दिर की ओर केन्द्रित था।

बिहार के राज्यपाल ने १९ जून १९४९ को बुद्धगया व्यवस्था अधिनियम पर अपनी स्वीकृति दे दी थी और महन्त जी ने सन् १९५० के सितम्बर में इस कानून की वैधता को चुनौती दी थी। गत ३ फरवरी को उन्होंने उक्त मुकदमे को वापस लेने का आवेदन-पत्र न्यायालय में उपस्थित किया था। इस आवेदन-पत्र में प्रार्थी महन्त जी ने कहा है कि सरकार ने यह लिखित आश्वासन दिया है कि तीन समाधियाँ, हवनकुण्ड, विश्राम-गृह तथा पंच-पाण्डवों का मन्दिर प्रार्थी के ही अधिकार में माने जायेंगे, इसलिए प्रार्थी की इच्छा नहीं है कि वह मुकदमे को कायम रखे।

उपर्युक्त आश्वासन जिला मजिस्ट्रेट श्री विभूतिनाथ झा ने अपने १४ जनवरी के पत्र में दिया था जिसमें उन्होंने महन्त जी से यह भी अनुरोध किया था कि वे प्रबन्ध-समिति से इस्तीफा वापस ले लें और इस समिति को तथा सरकार को हर प्रकार की सहायता दें जिससे इस कानून का उद्देश्य सिद्ध हो सके।

स्मरणीय है कि इस लम्बे संघर्ष का समझौता गत १९ दिसम्बर १९५२ को हो गया था, जब कि राज्य सरकार के प्रतिनिधियों, प्रबन्ध समिति के सदस्यों तथा महन्त बुद्धगया के प्रतिनिधियों का सम्मेलन बुद्धगया डाक बँगले में हुआ, जिसमें बिहार के मुख्य मन्त्री डा० श्रीकृष्ण सिंह भी उपस्थित थे। मुख्य मन्त्री जी ने महन्त जी से अनुरोध किया कि वे अपने मुकदमे को वापस ले लें और उन्हें उपर्युक्त स्थानों का पूर्ण अधिकार दे देने का आश्वासन दिया।

बुद्धगया-मन्दिर व्यवस्था विधेयक १९४९ में स्वीकृत हुआ था। यह विधेयक समिति के सिफारिशों के आधार पर बनाया गया था, जिसमें डा० राजेन्द्रप्रसाद भी थे। महन्त जी ने इसकी वैधता को चुनौती दी और इसकी प्रबन्ध समिति के विरुद्ध इंजेक्शन लागू कर दिया गया। बिहार सरकार ने इस आदेश के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की है जो कि हाईकोर्ट में सुनी जानेवाली है।

विश्वस्त [illegible] ज्ञात हुआ है कि आगामी वैशाख पूर्णिमा के शुभावसर पर बुद्धगया-मन्दिर बुद्धगया-मन्दिर कमेटी को सौंप दिया जायेगा।

बुद्धजयन्ती महोत्सव—साँची में हुए अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध संमेलन में अनेक वक्ताओं ने यह प्रस्ताव रखा कि भगवान् के जन्मदिन को केन्द्रीय सरकार सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित करे। उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने इस सम्बन्ध में बोलते हुए कहा कि यह प्रस्ताव ऐसे समय में उपस्थित किया गया है जब कि यहाँ भारत के प्रधानमन्त्री भी उपस्थित हैं, फिर भी मैं इस बात की जानकारी भारत सरकार को कराऊँगा। इस वर्ष वैशाख पूर्णिमा आगामी २७ मई को पड़ रही है, जब कि एक साथ सारे संसार में बुद्धजयन्ती महोत्सव मनाया जायेगा। हम पूर्ण विश्वास के साथ सरकार से प्रार्थना करते हैं कि यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया जायेगा।

लखनऊ में बौद्ध रविवासरीय स्कूल—१ मार्च से लखनऊ के रिसालदार पार्क के बुद्ध विहार में बौद्ध बालकों को धर्म एवं सदाचार की शिक्षा देने के लिये एक रविवासरीय स्कूल खोला गया है। इसमें बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी धार्मिक या जातिगत भेदभाव के ५ वर्ष से १४ वर्ष तक के बच्चों को बौद्धधर्म एवं सदाचार की शिक्षा दी जाती है।

भदन्त बोधानन्द दातव्य औषधालय—स्वर्गीय भदन्त बोधानन्द महास्थविर की पुण्य स्मृति में उन्हीं के परिश्रम से उन्हीं के हाथों प्रतिष्ठापित लखनऊ के बुद्ध विहार में एक दातव्य औषधालय की स्थापना गत १५ फरवरी को की गई। इसका आरम्भ भदन्त शान्तरक्षित स्थविर द्वारा किया गया। उक्त अवसर पर डा० गुन्थर, वैद्याचार्य श्री श्रीनारायण विद्यार्थी, श्री जी० सी० लाल तथा श्री चन्द्रिकाप्रसाद 'जिज्ञासु' ने स्वर्गीय महास्थविर के विचारों पर प्रकाश डालते हुए जन-सेवा पर भगवान् द्वारा दिये गये उपदेशों को बतलाया तथा भैषज्य गुरु नागार्जुन आदि की कृतियों पर प्रकाश डाला।

इस औषधालय के कार्य में प्रतापगढ़ निवासी श्री श्रीनारायण विद्यार्थी एवं उनकी आयुर्वेद अनुसन्धान पीठ का सहयोग उल्लेखनीय है।

सात हिन्दुओं ने बौद्धधर्म अपनाया—गत मास में लंका के कैगल्ल नगर के अस्पताल के प्रधान डाक्टर के साथ उनके सात कर्मचारियों ने एक साथ बौद्धधर्म ग्रहण किया। दीक्षा-संस्कार बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया। ये सभी लोग तामिल जाति के हिन्दू थे।

मार्ग निर्माण-कार्य—कुशीनगर से मुकुट-बन्धन चैत्य (रामाभार) तक जाने के लिए एक पक्की सड़क के निर्माण के लिए उत्तर प्रदेशीय सरकार ने ५५०००) स्वीकृत किया था। उक्त सड़क का काम इस समय बड़ी तेजी से हो रहा है। आशा है दो महीने के अन्दर ही सड़क बनकर तैयार हो जायेगी।

सारनाथ में परीक्षार्थियों की भीड़—सारनाथ का महाबोधि हायर सेकेण्डरी स्कूल के हाईस्कूल तथा इण्टर मीडियट परीक्षाओं का केन्द्र होने के कारण आजकल सारनाथ में परीक्षार्थियों की काफी भीड़ है। जे० टी० सी० ट्रेनिंग कालेज सारनाथ के छात्रों की परीक्षा समाप्त हो गई है। उक्त परीक्षायें भी ७ अप्रैल तक समाप्त हो जायेंगी। आशा है महाबोधि जे० टी० सी० ट्रेनिंग कालेज को राज्य-सरकार से स्थायी-ट्रेनिंग की स्वीकृति प्राप्त हो जायेगी। इसका अगला सत्र जुलाई १९५३ से प्रारम्भ होगा।

आनन्द

उच्चकोटि की हिन्दी मासिक पत्रिका

[मध्य प्रदेश, त्रावणकोर, कोचीन, हैदराबाद, मद्रास तथा बिहार सरकार द्वारा विद्यालयों तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत]

आनन्द इसलिये पढ़ें कि

इसमें कविता कहानी के अतिरिक्त धर्म विज्ञान, दर्शन, कला, तत्त्वज्ञान आदि विविध विषयों पर अधिकारी विद्वानों द्वारा विवेचनात्मक एवं गवेषणापूर्ण लेख रहते हैं, जिनसे एक सुदृढ़ व्यक्तित्वमय समाज के निर्माण की प्रेरणा मिलती है।

वार्षिक मूल्य ६ रुपया : विदेशों के लिये १२ शिलिंग : एक अंक का १० आना

आनन्द प्रकाशन लिमिटेड, कमच्छा, बनारस–१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धचर्य्या

भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों के सम्बन्ध में, भारतीय भाषाओं में जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें विशालता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'बुद्धचर्य्या' सभी से बढ़कर है। त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र सम्बन्धी जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, 'बुद्धचर्य्या' में उस सारी सामग्री का वैज्ञानिक संकलन कर, अविकल अनुवाद दिया गया है। 'बुद्धचर्य्या' को यदि समस्त सुत्तपिटक और विनयपिटक का सार कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

बीस वर्ष पहले उसका प्रथम संस्करण छपा था। बहुत दिनों से उसकी माँग रहने पर भी इस व्यय-साध्य ग्रन्थ का दूसरा संस्करण न हो सका। ग्रन्थ की विशालता और कागज आदि के दुर्लभ होने के साथ-साथ आज के प्रकाशक और पाठक की 'रुचि' भी इस विलम्ब के लिये उत्तरदायी हैं।

महाबोधि सभा ने ग्रन्थ के महात्म्य का ख्याल कर हिन्दी पाठकों की प्रामाणिक साहित्यप्रियता के भरोसे ही इसके प्रकाशन का व्यय-भार वहन किया।

किसी भी पुस्तकालय में और विशेषरूप से बौद्ध-साहित्य प्रेमी किसी भी भाई बहिन के पुस्तकालय में 'बुद्धचर्य्या' रहनी ही चाहिए।

बड़े आकार के छः सौ तीस पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८) है। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

मिलने का पता :—

१. महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, (बनारस)
२. महाबोधि पुस्तक भण्डार, ४ ए बङ्किम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२
३. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धविहार, रीडिंग रोड, नई दिल्ली
४. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धगया (बिहार)

हिन्दी का धार्मिक मासिक पत्र "नाम माहात्म्य"

रियायती मूल्य

भगवन्नाम प्रचार के लिये सार्वजनिक पुस्तकालयों व वाचनालयों को 'नाम माहात्म्य' एक वर्ष तक १=) में दिया जायगा। अतः शीघ्र ही मनिआर्डर भेज कर ग्राहक बन जाइये—वी० पी० नहीं भेजी जायगी। यह रियायत केवल एक महीने के लिये है।

व्यवस्थापक—

नाम माहात्म्य कार्यालय

वृन्दावन, यू० पी०

(मथुरा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)
मज्झिम निकाय—,, ,,	८)
विनय पिटक— ,, ,,	८)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१॥)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १, २ ७॥),	७॥)
,, ,, (भाग ३)	१०)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।-)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर— ,,	१॥।)
बौद्धचर्य्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१॥)
बुद्धचर्य्या—राहुल सांकृत्यायन, सजिल्द	८)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१॥)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)
बुद्धार्चन— ,, ,,	।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	॥)
धम्मपद (कथाओं के साथ)—भिक्षु धर्मरक्षित	२॥)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरंजन प्रसाद	-)
बुद्धदेव—शरत् कुमार राय	१॥।)
थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक— ,,	१॥)
तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
कुशीनगर का इतिहास— ,,	२॥)
पालि-पाठ-माला— ,,	१)
जातिभेद और बुद्ध— ,,	॥)
ब्राह्मण धम्मिय सुत्त— ,,	=)
तेलकटाह गाथा— ,,	।)
बौद्ध शिशु बोध— ,,	।)
सारनाथ दिग्दर्शन— ,,	।)
कुशीनगर-दिग्दर्शन— ,,	।)
लंका-यात्रा— ,,	१॥)
पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२)
बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	॥)
बुद्ध-शतकम्— ,, ,,	।)
महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बुद्ध-अर्चना (कविता)—कुमारी विद्या	≡)
श्रद्धा के फूल (कहानी संग्रह)— ,,	।=)
तिब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित	६)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३॥)
नवनीत टीका— ,, ,,	२॥)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,,	२॥)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,,	।)
पालि-पाठ-माला— ,,	१)
चरियापिटक— डा० विमलाचरण लाहा	५)
सुत्तिनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
खुद्दकपाठ— ,,	।)
धम्मसंगणी—श्रीवापिट	८)
अत्थसालिनि— ,,	८)
पातिमोक्ख— ,,	१)
सिङ्गाल सुत्तं—भिक्षु ऊ कित्तिमा	॥)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५३/५१०

धर्मदूत

सारनाथ महाबोधि सभा का मासिक पत्र

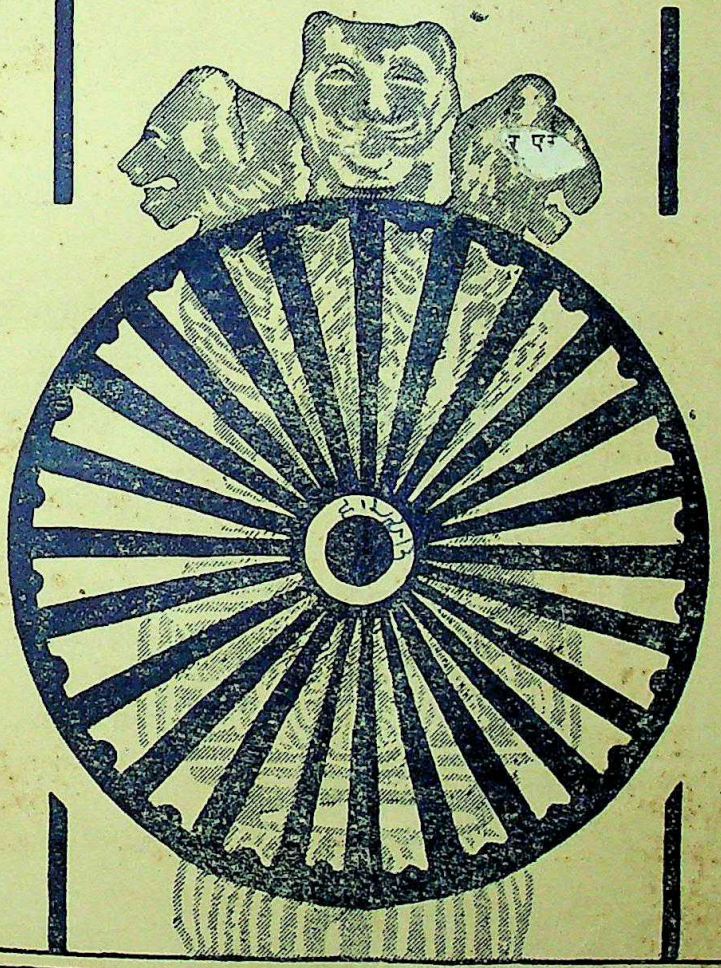

अप्रैल

१९५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष-१७ • अंक-१२

वार्षिक-३) एक अंक का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१.	बुद्ध-वचनामृत—बुद्धों का प्राचीन मार्ग ...	२८९
२.	आचार्य बुद्धघोष और उनका साहित्य—प्रो० चन्द्रिका सिंह उपासक एम० ए० ...	२९०
३.	दुःखों के कम करने का मनोवैज्ञानिक उपाय—श्री लालजीराम शुक्ल ...	२९३
४.	शान्त क्रान्तिकारी (कविता)—श्री रामचरण लाल एम० ए० ...	२९५
५.	चित्र जो सुधर न सका (कहानी)—श्री विजय ...	२९६
६.	कर्मयोगी कृपाशरण - भिक्षु धर्मरक्षित ...	२९८
७.	नेपाली बौद्धों के जीवन-संस्कार—भिक्षु अश्वघोष ...	३००
८.	सागलकुमारी क्षेमा— (कविता) सुश्री कुमारी विद्या ...	३०२
९.	सिद्धार्थ और कंथक—डा० प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ' ...	३०३
१०.	जापानी कला का रूप—श्रीविजय श्रीवास्तव ...	३०७
११.	बौद्धयोगी के पत्र—श्री योगी	३०९
१२.	बौद्ध-जगत्	३१३

'धर्मदूत' के नियम—

१—"धर्मदूत" भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मासिक मुखपत्र है ; जो प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है ।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे ।

३—पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो ।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिये ।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है । बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगे । जिस अङ्क में जिनका लेख या कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा ।

६—"धर्मदूत" में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे ।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है ।

८—"धर्मदूत" का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है ।

व्यवस्थापक

"धर्मदूत" सारनाथ, बनारस ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १७ | सारनाथ, अप्रैल | बु० सं० २४९६ / ई० सं० १९५३ | अङ्क १२

बुद्ध-वचनामृत

बुद्धों का प्राचीन मार्ग

भिक्षुओ! कोई पुरुष जंगल में घूमते हुए एक पुराना मार्ग देखे, पूर्वकाल के लोगों का इस्तेमाल किया। वह पुरुष उस मार्ग को पकड़कर आगे जाय और एक पुराने राजधानी नगर को देखे, जहाँ पूर्व-काल में लोग रहा करते थे, जो आराम, वाटिका, पुष्करिणी और सुन्दर चहार-दिवारी से युक्त हो। भिक्षुओ! तब वह पुरुष राजा या राजमंत्री को जाकर कह दे—भन्ते! जानते हैं मैंने जंगल में घूमते हुए एक पुराना मार्ग देखा। भन्ते! अच्छा होता कि उस नगर को फिर बसावें।

भिक्षुओ! तब राजा या राजमन्त्री उस नगर को फिर भी बसावे। वह नगर कुछ काल के बाद बड़ा गुलजार, समृद्ध और उन्नतिशील हो जाय। भिक्षुओ! वैसे ही मैंने पुराना मार्ग देख लिया है, जिस मार्ग पर पूर्व के सम्यक् सम्बुद्धों से चला गया वह पुराना मार्ग क्या है? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग; जो कि सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि है। उस मार्ग पर मैंने चला। उस मार्ग पर चलकर मैंने जरामरण को जान लिया, जरामरण के समुदय को जान लिया, उसके निरोध और निरोध के मार्ग को भी जान लिया।

उसे जान मैंने भिक्षुओं को, भिक्षुणियों को, उपासकों को और उपासिकाओं को उपदेशा। भिक्षुओ! यही ब्रह्मचर्य इतना समृद्ध और उन्नतिशील है, विस्तारित है, बहुजनों से भर गया है, मनुष्यों और देवताओं में भली प्रकार से प्रकाशित है।

—संयुत्त निकाय १२. ७. ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य बुद्धघोष और उनका साहित्य

प्रो० चन्द्रिकासिंह उपासक एम० ए०

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के अध्ययन में पालि-वाङ्मय का अपना विशिष्ट स्थान है। इस साहित्य को प्रायः दो भागों में बाँटा जाता है—त्रिपिटक साहित्य और अनुपिटक साहित्य। त्रिपिटक के तीन भाग हैं—(१) सुत्त पिटक, (२) विनय पिटक और (३) अभिधम्म पिटक। ये ही बौद्ध धर्म के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं और इनमें भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्यों के उपदेश संग्रहीत हैं। परम्परा से ये ग्रन्थ "बुद्ध-वचन" माने जाते हैं। सुत्त पिटक में साधारण बातचीत के ढंग पर दिये गये उपदेश हैं। यह पाँच निकायों में विभक्त है—(१) दीघ निकाय (२) मज्झिम निकाय (३) संयुत्त निकाय (४) अंगुत्तर निकाय (५) खुद्दक निकाय। खुद्दक [illegible] के अन्तर्गत ये १५ ग्रन्थ हैं:—(१) खुद्दक पाठ (२) धम्मपद (३) उदान (४) इतिवुत्तक (५) सुत्तनिपात (६) विमानवत्थु (७) पेतवत्थु (८) थेरगाथा (९) थेरी-गाथा (१०) जातक (११) निद्देस (१२) पटिसम्भिदामग्ग (१३) अपदान (१४) बुद्धवंस और (१५) चरियापिटक। विनय-पिटक में भिक्षुओं के नियम-उपनियम संग्रहीत हैं। इसके ५ भाग हैं—(१) महावग्ग (२) चुल्लवग्ग (३) पाराजिका (४) पाचित्य (५) परिवार। अभिधम्म पिटक में बौद्ध दर्शन अपने पारिभाषिक शब्दों में वर्णित है। इसके अंतर्गत सात ग्रन्थ हैं—(१) धम्मसंगिणी (२) विभंग (३) धातु-कथा (४) पुग्गल पञ्ञति (५) कथावत्थु (६) यमक (७) पट्ठान। उपरोक्त इन्हीं त्रिपिटक ग्रन्थों पर पालि में अनेक टीकायें, अट्ठकथायें आदि लिखी गई हैं। ये ग्रन्थ ही 'अनुपिटक साहित्य' के अन्तर्गत आते हैं।

अनुपिटक साहित्य में सबसे प्रमुख भाग अट्ठकथा साहित्य का है। 'अट्ठकथा' का अर्थ है 'अर्थ-कथा'। पालि त्रिपिटक के ग्रन्थों पर जो 'अर्थ कथायें' या टीकायें लिखी गई' वही अट्ठकथायें हैं। संस्कृत साहित्य में भी ग्रन्थों पर भाष्य लिखे गये हैं। परन्तु पालि की अट्ठकथाओं की समता में ये भाष्य कुछ भी नहीं हैं। संस्कृत भाष्यों में अर्थ की व्याख्या पर विशेष जोर दिया गया है और यही कार्य उनकी टीकायें भी करती हैं। इसके विपरीत पालि अट्ठ-कथायें अर्थ की व्याख्या के साथ साथ उसकी पृष्ठभूमि को भी विवृत करती हैं। किसी भी संस्कृत भाष्यकार ने ऐसा विवेचन किया हो, हम नहीं कह सकते। कौन-सा सिद्धान्त कब उत्पन्न हुआ अथवा वह किन-किन का था, इसकी गवेषणा वहाँ नहीं होती है बल्कि वहाँ तो केवल सिद्धान्त का ही विवेचन किया जाता है। पालि की अट्ठकथाओं में तो पूरे विवरण दिये हुए हैं। कौन सुत्त कब कहा गया, भगवान् बुद्ध ने किस स्थल पर तथा किस प्रकरण में उसकी चर्चा की है, इसका पूरा विवेचन दिया हुआ है। इसी तरह भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्यों का जीवन-वृत्त आदि का भी यथा-तथ्य वर्णन मिलता है। सुत्तों का अर्थ विवेचन तो है ही। अट्ठकथा की यह विशे-षता भाष्यों की कोटि में अनुपम है।

बौद्ध अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक पुत्र स्थविर महेन्द्र और उनके साथी भिक्षु त्रिपिटक के साथ-साथ उसकी अट्ठकथा भी भारत से लंका ले गये। यह सभी साहित्य मौखिक रूप में था। प्रथम शताब्दि के सिंहल नरेश वट्टगामिनी ने पालि त्रिपिटक मात्र को लेखबद्ध कराया। यह विचारणीय है इस समय हम मूल पालि त्रिपिटक को ही लेखबद्ध होते पाते हैं—अट्ठकथा को नहीं। अतः यह सन्देह होता है कि सम्भवतः स्थविर महेन्द्र के साथ मूल त्रिपिटक ही गया, अट्ठकथायें नहीं। हमें पालि अट्ठकथाओं के अतिरिक्त सिंहली भाषा में लिखी गई अट्ठकथाओं का उल्लेख मिलता है। यद्यपि इन सिंहली भाषा की अट्ठकथाओं के ग्रन्थ अब नहीं हैं परन्तु विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि ये सिंहली अट्ठकथायें बारहवीं शती तक किसी न किसी रूप में अवश्य वर्तमान थीं। इन्हीं सिंहली अट्ठकथाओं के आधार पर आचार्य बुद्धघोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने चौथी शताब्दि में उनका पालि रूप प्रदान किया। ऐसा कहा जाता है कि ये सिंहली अट्ठकथायें अनुराधपुर के महाविहार के भिक्षुओं की परम्परागत सम्पत्ति थीं जिनका भरपूर उपयोग आचार्य बुद्धघोष ने किया। ऐसा प्रतीत है कि सर्वप्रथम इन अट्ठकथाओं का पालि स्वरूप था फिर इनका सिंहली में रूपान्तर हुआ और तदनन्तर इनको पालि में प्रतिष्ठापित किया गया।

पालि-साहित्य के तीन बड़े-बड़े अट्ठकथाकार हैं—(१) बुद्धदत्त (२) बुद्धघोष (३) धम्मपाल। इनमें सबसे अग्रणी आचार्य बुद्धघोष हैं। आचार्य बुद्धघोषने सद्धर्म की अपने साहित्य एवं अध्यवसाय से जो सेवा की है वह आकार एवं महत्व दोनों दृष्टियों से इतना महान् है कि उसे देखकर उनकी प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। परन्तु अत्यन्त दुःख होता है जब ऐसे महान् व्यक्ति के जीवन-वृत्त के विषय में अत्यन्त अल्प प्रामाणिक ज्ञान पाते हैं। यद्यपि उनके प्रारम्भिक जीवन अध्ययन, लंका-गमन आदि के विषय में परवर्ती साहित्य में यत्र-तत्र उल्लेख मिल जाता है परन्तु उन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थों में वैयक्तिक जीवन पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। महापुरुष यह अन्य भारतीय मनीषियों की भाँति सद्धर्म की सेवा में ही इतना लीन था कि उसे भला अपने वैयक्तिक जीवन की क्या फिकर। भारतीय परम्परा ही यही रही है। निश्चित है कि उनका कार्य-काल चौथी शती का अन्त और पाँचवीं शती का प्रारम्भ था। बारहवीं शती की एक पुस्तक 'बुद्धघोसुप्पत्ति' तथा अन्य कुछेक परवर्ती साहित्य में उनके जीवन के विषय में कुछ ज्ञात होता है। इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जाता है कि बुद्धघोष का जन्म बुद्धगया के पास एक ब्राह्मण-कुल में हुआ था। बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि होने के कारण बाल्यावस्था में ही शिल्प तथा तीनों वेदों में पारंगत हो गये और तब शास्त्रार्थ के लिये सारे भारतवर्ष में घूमने लगे। एक दिन रात्रि में किसी बौद्ध विहार में पहुँचे जहाँ उन्होंने पातंजल पर बड़ा ही अच्छा प्रवचन किया। परन्तु रेवत स्थविर नामक एक बौद्ध भिक्षु ने उन्हें पराजित कर दिया। बुद्धघोष उनकी प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए और उन्हीं से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् वहीं रहकर रेवत स्थविर द्वारा त्रिपिटक का गम्भीर अध्ययन किया। यहीं उन्होंने एक पुस्तक ञाणोदय (ज्ञानोदय) की रचना की और अभिधम्म के एक ग्रन्थ धम्मसंगिनी पर अट्ठसालिनी नामक अट्ठकथा लिखी। इस अट्ठकथा के लिखने पर ही उनके मन में सम्पूर्ण त्रिपिटक पर अट्ठकथा लिखने का संकल्प हुआ। परन्तु रेवत स्थविर द्वारा यह ज्ञात होने पर कि महेन्द्र स्थविर द्वारा ले गई पालि अट्ठकथाओं का सिंहली रूपान्तर लंका में वर्तमान है जो प्रामाणिक भी है और यदि उनका अध्ययन करके पालि में अट्ठकथाओं को लिखा जाय तो विशेष हितकारी होगा; तब उन्होंने सिंहल जाने का निश्चय किया। इस प्रकार गुरु की आज्ञा पाकर बुद्धघोष चौथी शती के सिंहल नरेश महानाम के राज्यकाल में सिंहल आये। यहाँ आकर उन्होंने अनुराधपुर के महाविहार नामक विहार में रहकर सिंहली अट्ठकथाओं तथा स्थविरवाद का अध्ययन किया। अध्ययन पूरा होने पर उन्होंने इन सिंहली अट्ठकथाओं का मागधी रूपान्तर करने की इच्छा प्रकट की और महाविहार के भिक्षु से इसके लि[illegible]ना की; "मैं अट्ठकथाओं का मागधी (पालि) रूपान्तर करना चाहता हूँ, मुझे अपनी पुस्तकों (सिंहल अट्ठकथाओं) को देखने की अनुमति दें।" इस पर भिक्षु-संघ ने उनकी परीक्षा के निमित्त संयुक्त निकाय की दो गाथाओं की व्याख्या के लिये दिया। बुद्धघोष ने व्याख्या स्वरूप 'विसुद्धि मग्ग' नामक अनुपम ग्रन्थ ही रच डाला। विसुद्धि मग्ग की गम्भीरता एवं विद्वत्ता देखकर वहाँ का भिक्षु-संघ इतना प्रभावित हुआ कि उन्हें साक्षात् भगवान् मैत्रेय (भावी बुद्ध) ही मान लिया और उन्हें अपनी सभी पुस्तकों को देखने के लिये दे दिया। अनुराधपुर के ग्रन्थकार नामक विहार में बैठकर उन्होंने सिंहली अट्ठकथाओं का पालि रूपान्तर किया। इसके बाद वे भारत लौट आये और बोधिवृक्ष की पूजा की। बर्मी परम्परा की यह मान्यता है कि बुद्धघोष लंका से बर्मा आये और यहाँ धर्म-प्रचार किया। परन्तु इस तथ्य की पुष्टि में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। आचार्य बुद्धघोष के अन्तिम काल के विषय में बहुत अल्प ज्ञात है; किन्तु कम्बोडिया निवासियों का यह विश्वास है कि उनका परिनिर्वाण उनके ही देश में हुआ था। वहाँ 'बुद्धघोस विहार' नामक एक अत्यन्त प्राचीन विहार आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक उनकी स्मृति को खंडहर के रूप में खड़ा रहकर बनाये हुए है। यह कहाँ तक सत्य है निश्चित नहीं कहा जा सकता। हो सकता है बुद्धघोष बर्मा गये और वहाँ से चारिका करते-करते कम्बोडिया पहुँच गये जहाँ उनका देहान्त हो गया। कम्बोडियावासियों के इस विश्वास के लिये कोई ऐतिहासिक पुष्टि नहीं है फिर भी उनके इस विश्वास में सन्देह करने का कोई कारण नहीं दिखाई दिया।

आचार्य बुद्धघोष को कुछ विद्वानों ने उत्तरी भारत का निवासी न मानकर दक्षिण भारतीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह सिद्धान्त कहाँ तक युक्तियुक्त है नहीं कहा जा सकता है।

आचार्य बुद्धघोष रचित पालि के प्रायः १८ ग्रन्थों का पता चलता है। सर्वप्रथम इन्होंने ञाणोदय की रचना भारत में की थी। दूसरी रचना 'विसुद्धि-मग्ग' है। यह इनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसे बौद्धधर्म का 'विश्वकोष' ही समझना चाहिये। [illegible], दर्शन तथा साधना सम्बन्धी कोई ऐसा विषय नहीं है जिसका विस्तृत एवं प्रामाणिक विवेचन इस ग्रन्थ में न हुआ हो। संयुक्त निकाय की दो गाथाओं की व्याख्या स्वरूप ज्ञान एवं दर्शन पर ऐसा अनुपम सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है कि उसकी समता में पालि साहित्य क्या संस्कृत में भी कोई ग्रन्थ नहीं।

बुद्धघोष रचित शेष ग्रन्थ अट्ठकथायें हैं जो त्रिपिटक के भिन्न-भिन्न ग्रन्थों पर लिखी गई हैं। 'समन्त पासादिका' विनय पिटक की अट्ठकथा है।

'कंखा वितरणी'—पातिमोक्ख की अट्ठकथा।
सुमंगल विलासिनी—दीघनिकाय की अट्ठकथा।
पपञ्चसूदनी—मज्झिम निकाय की अट्ठकथा।
सारत्थ पकासिनी—संयुत्त निकाय की अट्ठकथा।
मनोरथ पूरणी—अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा।
परमत्थ जोतिका—खुद्दक निकाय के दो ग्रन्थ—खुद्दक पाठ और सुत्त निपात की अट्ठकथा है।
अट्ठसालिनी—धम्मसंगिणी की अट्ठकथा।
पञ्चप्पकरणट्ठकथा—अभिधम्म के पाँच ग्रन्थ—धातुकथा, पुग्गल पञ्ञत्ति, कथावत्थु, यमक और पट्ठान पर लिखी गई अट्ठकथा।
सम्मोह-विनोदनी—विभंग की अट्ठकथा।
जातकट्ठवण्णना—जातक की अट्ठकथा।
'धम्मपदट्ठकथा'—धम्मपद की अट्ठकथा।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त 'पिटकत्तय लक्खण गन्थ' नामक ग्रन्थ के भी रचयिता बुद्धघोष माने जाते हैं। परन्तु अब यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। 'पद्य चूड़ामणि' नामक ग्रन्थ जिसमें भगवान् बुद्ध की जीवनी है जिसे मद्रास सरकार ने प्रकाशित कराया है—आचार्य बुद्धघोष द्वारा ही रचित कहा जाता है।

आचार्य बुद्धघोष द्वारा रचित ग्रन्थ विशालता एवं गम्भीरता दोनों दृष्टियों से महान् हैं। 'पालि साहित्य में वे एक 'युग-विधायक' हैं जिसका प्रभाव अभी तक निःशेष नहीं हुआ है।' उनकी अट्ठकथा लिखने की परम्परा अभी तक जीवित है उनके लिखे ग्रन्थों में 'विसुद्धि मग्ग' अद्वितीय है ही परन्तु अट्ठकथाओं का महत्व भी कम नहीं। उनमें जो महान् ऐतिहासिक, भौगोलिक, धार्मिक तथा दार्शनिक तत्व पिरोये गये हैं वे किसी भी भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के विद्यार्थी के लिये निरन्तर उपयोग की अक्षय निधि हैं। इन अट्ठकथाओं में प्राचीन इतिहास की अमर झलक मिलती है। बौद्ध-कालीन देश एवं काल की सजीवता यदि किसी प्रकार अभी तक स्थापित हो सकी है तो इन अट्ठकथाओं द्वारा। प्राचीन स्थान लुम्बिनी, सारनाथ, कौशाम्बी, कपिलवस्तु आदि की स्मृतियों को आज भी इन अट्ठकथाओं के सहारे सजीव ही नहीं नवीन भी बनाया जा सकता है। दर्शन की परिपूर्णता तथा भारतीय इतिहास की गवेषणा के निमित्त ये अट्ठकथायें अपना अक्षुण्ण महत्व रखती हैं। और पालि साहित्य के मूल्यांकन के लिये भी इन अट्ठकथाओं की महत्ता कम नहीं है। वास्तव में आचार्य बुद्धघोष की सद्धर्म-सेवा महान् है और उनका सृजन उससे भी महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुखों के कम करने का मनोवैज्ञानिक उपाय

श्री लालजीराम शुक्ल

मनुष्य के दुःख दो प्रकार के होते हैं—एक शारीरिक और दूसरे मानसिक। प्रकृति के अन्य प्राणियों के अधिक दुःख शारीरिक ही होते हैं, परन्तु मनुष्य के अधिक दुःख मानसिक होते हैं। जिस प्रकार मनुष्य अपनी कल्पना से सामान्य झोपड़ी को राज्य प्रासाद बना ले सकता है, उसी प्रकार वह अपनी कल्पना से अपने महल को जेल खाना और यंत्रणा-भवन मान सकता है। मनुष्य की सुन्दर कल्पना उसके सुख का कारण होती है और उसकी असुन्दर कल्पना उसके दुःख का। धन से सम्पन्न लोग निर्धन हो जाने के भय के कारण सुख की नींद नहीं सो सकते। वे ठीक से खा-पी भी नहीं सकते और निर्धन लोग भी भली भाँति खाते-पीते और सुख की नींद सोते हैं। दूसरे लोगों द्वारा तिरस्कृत होने की भावना, दूसरों से धन, यश, मान कमाने की होड़ में पीछे रह जाने की भावना मनुष्य को दुखी बनाये रखती है।

जिस प्रकार मनुष्य केवल मानसिक दुःखों से प्रतिकूल कल्पना के कारण पीड़ित रहता है उसी प्रकार वह शारीरिक क्लेशों से भी विपरीत कल्पना के कारण पीड़ित रहता है। कितने ही लोग अपने साधारण से शारीरिक रोग को अभद्र कल्पना के द्वारा भयावना बना लेते हैं। कई एक नवयुवक स्वप्नदोष के बार बार होने से इतना घबड़ा जाते हैं कि वे समझते हैं कि उससे उनकी मृत्यु ही हो जावेगी। इस कल्पना के कारण उन्हें अनिद्रा का रोग हो जाता है। फिर कुपच और कोष्टबद्धता भी हो जाती है। अकारण ही सिर का दर्द हो जाता है। इस प्रकार उनकी डर की मनोवृत्ति उनके रोग को बेहद बढ़ा देती है। यदि वे अपने रोग के विषय में किसी प्रकार चिन्तन करना छोड़ दें और किसी रचनात्मक कार्य में अपना मन लगा लें तो उनका रोग सरलता से ही नष्ट हो जाय। परन्तु अपने विचारों पर इस प्रकार नियन्त्रण प्राप्त करना बड़ा ही कठिन कार्य है।

अपने दुःख का कम करने का एक सरल उपाय दूसरे लोगों के उसी प्रकार के दुःख की निवृत्ति का उपाय सोचने लगना और उनकी सहायता करने लग जाना है। मनुष्य जितना ही अधिक अपने धन की कमी के बारे में सोचेगा वह उतना ही अधिक दुःखी होगा। ऐसी अवस्था में उसका ध्यान सदा अपने आपसे अधिक धनी लोगों की ओर जावेगा। अपने आपसे अधिक धनी लोगों का चिन्तन सदा दुःखमूलक होता है। धनी लोग गरीब लोगों की अनेक प्रकार से उपेक्षा कर देते हैं। इससे मन को दुःख ही होता है। धन की कमी के भाव से मुक्त होने का उपाय अपने आपसे अधिक गरीब लोगों की अवस्था पर सोचने [illegible] और उन्हें सहायता करने के उपाय निकालना है। दूसरे व्यक्ति की सहानुभूतिपूर्वक धन की कमी का चिन्तन अपनी धन की कमी को भुला देता है। हम संसार में चाहे जितने गरीब क्यों न हों, संसार में हमसे गरीब भी लोग रहते हैं। इन गरीबों की सहायता करने से ही मनुष्य अपने आप की गरीबी के भाव से मुक्त होता है।

धन की कमी को हटाने के लिये धन का संग्रह करना अच्छा है। इस प्रकार का उपाय थोड़ी दूर तक लाभकारी होता है; परन्तु धन संग्रह करना जब एक आदत का रूप धारण कर लेता है तो मनुष्य को चाहे जितना धन क्यों न हो उसे सन्तोष नहीं होता। कितने ही लोग धन-संचय को स्वयं लक्ष्य बना लेते हैं। उनके न तो बाल-बच्चे होते हैं जिनपर वे उस धन को खर्च करें और न वे उसे दान में ही देते हैं। ऐसे व्यक्ति चाहे लखपती और करोड़पती क्यों न हो जावें मानसिक दृष्टि से गरीब ही हैं। जब तक मनुष्य धन-संचय का हेतु उसे किसी भले काम में खर्च करना नहीं बना लेता उसकी धन की पिपासा नहीं जाती। जब मनुष्य अपने अहंकार की पूर्ति अथवा शरीर रक्षा के लिये नहीं वरन् दूसरे लोगों की सहायता के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनके भरण-पोषण के लिये धन-संग्रह करने लगता है तो वह धनलोलुपता से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार गरीबों की सहायता में अपने संचित धन को खर्च करने लग जाना—अपनी गरीबी से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय है। देने की भावना ही पूर्णता की द्योतक है, लेने की भावना गरीबी की द्योतक है।

प्रत्येक मनुष्य को अपने परिवार की चिन्तायें खाये डालती हैं। वह जितना ही अधिक इन चिन्ताओं को हटाने की चेष्टा करता है वे उतनी ही अधिक बढ़ जाती हैं। चिन्तायें इस प्रकार कभी भी कम न होंगी। चिन्ताओं को कम करने का सर्वोत्तम उपाय अपने आपके विषय में चिन्ता न कर दूसरे लोगों के विषय में चिन्ता करने लग जाना है। जो व्यक्ति दूसरे लोगों की चिन्ता से अपने आप चिन्तित होता है उसे अपनी चिन्तायें नहीं खाती। चिन्ता एक प्रकार की दुःखद मनोवृत्ति है। कितने ही मनुष्यों को चिन्ता करने की आदत सी हो जाती है। यह मानसिक दुर्बलता की परिचायक है और इससे मन और भी दुर्बल हो जाता है। चिन्ता का विषय कभी वास्तविक और कभी झूठा ही होता है। परन्तु दुर्बल मन अवास्तविक चिन्ताओं से उसी प्रकार दुःखी होता है जिस प्रकार वह वास्तविक चिन्ताओं से दुःखी होता है। मनुष्य जितना ही अधिक अपने स्वार्थ को भुलाता है उसकी चिन्तायें उतनी ही कम होती हैं। अपने स्वार्थ को भुलाने का सर्वोत्तम मनोवैज्ञानिक साधन दूसरे व्यक्ति के स्वार्थ में अपने स्वार्थ को देखने लग जाना है।

चिन्ता की मनोवृत्ति से जो काम किया जाता है उसमें असफलता मिलती है। जो काम प्रसन्न मन से किया जाता है उसमें ही सफलता मिलती है। चिन्ता मानसिक शक्ति की विनाशक है और प्रसन्नता उसकी उत्पादक है। अतएव चिन्तायुक्त किये गये काम में अनेक प्रकार की भूलें हो जाती हैं। प्रसन्नता से किये गये काम में अनुपम सौंदर्य अकस्मात् आ जाता है। अतएव भले काम से जितना ही अधिक चिन्ता को अलग कर दिया जाय उतना ही अच्छा है। चिन्ता का अलग करने का उपाय चिन्ता को भुलाना नहीं है। एक प्रकार की चिन्ता भुला देने से दूसरे प्रकार की चिन्ता आ जाती है। चिन्ता को अलग करने का उपाय किसी दूसरे व्यक्ति की भलाई के काम में अपने आप को लगा देना है। जो व्यक्ति दूसरों के कल्याण में अपने आप को भुला देता है उसकी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति सरलता से कर देती है।

जीवन की बहुत सी समस्यायें उनके विषय में चिन्ता करने से ही जटिल हो जाती हैं। उन्हें जितना ही अपने आप पर सुलझने के लिये छोड़ दिया जाता है वे उतने जल्दी ही सुलझ जाती हैं। किसी विषय में अत्यधिक प्रयत्न करना उसकी सफलता को बिगाड़ना है। अतएव अपनी अतिरिक्त शक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति की भलाई में लगा देना न केवल दूसरे व्यक्ति के स्वार्थ की दृष्टि से हितकर है वरन् अपने आपकी स्वार्थ की दृष्टि से भी हितकर है।

कितने ही लोग साधारणतः आरोग्यवान् होते हैं, परन्तु वे अपने आपको रोगी ही समझते रहते हैं। इससे उनका रोग बढ़ता जाता है। वे जितनी ही अधिक रोग की दवा कराते रोग उतना ही बृहत् रूप धारण करता है। रोग के विषय में चिन्तन करना रोग को शरीर में स्थिर बनाये रखना है। जब ये लोग अपने रोग के विषय में चिन्ता करना छोड़कर दूसरे लोगों के स्वास्थ्य के विषय में चिन्ता करने लगते, हैं तो उनका रोग अपने आप ही चला जाता है। किसी भी प्रकार का दुःख चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक उसके विषय में चिन्तन करने से बढ़ता है और उसके विषय में चिन्तन न करने से वह घट जाता है। पर वास्तविक शारीरिक क्लेश की स्मृति साधारण विधि-से भुलाई नहीं जा सकती है। इसके लिये मैत्री भावना का अभ्यास करना आवश्यक होता है। अर्थात् दूसरे व्यक्ति के किसी प्रकार के दुःख में सहायता करने से उसी प्रकार का अपने आपका दुःख सरलता से कम हो जाता है।

मनुष्य की आत्मा ही उसे सुखी और दुःखी बनाती है। जो व्यक्ति जितना ही अपने आपको सुखी बनाने में संलग्न रहता है, उसे अकारण ही बाहर से दुःख आ जाते हैं। सुख की अधिक इच्छा करने वाला व्यक्ति दुःखों से डरता है और जो व्यक्ति जिस बात से डरता है उसे वही बात भोगनी पड़ती है। डर की मनो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्ति ही उसके पास उस दुःख को ले आती है। सुखों की इच्छा न रखनेवाला व्यक्ति, दुःखों के आने से डरता भी नहीं है अतएव ऐसे व्यक्ति के पास दुःख नहीं आते। भगवान् बुद्ध ने संसार के सभी लोगों के दुःखों को अपने ऊपर लेने का संकल्प किया। इसके परिणाम-स्वरूप वे संसारिक दुःखों से मुक्त हो गये। हम दूसरे लोगों के दुःखों से कोई मतलब नहीं रखते, केवल अपने ही दुःखों से बचने के उपाय सोचने में सदा चिन्तित रहते हैं अतएव हमारे साधारण दुःख भी बड़े भयावने बनकर हमारे सामने आते हैं।

संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं—एक अपने सुख के लिये दूसरों को दुःख देते हैं और दूसरे दूसरों को सुखी बनाने के लिये अपने आप अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं। पहले प्रकार के लोगों को परिणाम में दुःख मिलता है। उन्हें इस दुख के भोगने का अभ्यास न रहने के कारण वे जितने दुःखी होना चाहिये उससे भी अधिक दुःखी होते हैं। दूसरे प्रकार के लोग दुःख के जीवन से पहले से ही अभ्यस्त रहते हैं। अतएव उनके जीवन में थोड़ा सा भी आराम मिल जाना उन्हें भारी सुख दे देता है। वे सुख की खोज नहीं करते। उनका कष्टमय जीवन ही उन्हें सुखद बन जाता है।

सुख और दुःख मनुष्य की आदतों पर बहुत कुछ निर्भर करता है। हम जैसी दृष्टि से किसी घटना को देखने का अभ्यास कर लेते हैं वह वैसी ही दिखाई देने लगती है। अपना सामान बाजार से ले आना, अपना भोजन बना लेना, अपने कपड़े धो लेना, अपना कमरा साफ करना आदि काम कितने कष्टदायक उन लोगों को प्रतीत होते हैं जिन्हें इनका अभ्यास नहीं है। परन्तु जो इन कार्यों का अभ्यास रखता है उसे ये सरल और भले लगते हैं। धनी मनुष्य एक ओर अपने सुखों की संख्या को बढ़ाने की चेष्टा करते हैं तो दूसरी ओर उनके दुःखों की संख्या अपने आप ही बढ़ जाती है। उनका अभ्यास ही उनका बन्धन बन जाता है। यदि मनुष्य कष्ट भोगने का अपने आपको आदी बना ले तो उसके लिये संसार अनेक दुःखों का अस्तित्व ही न रहे।

मनुष्य अपने आत्म-निर्देश से भी सुख को दुःख में और दुःख को सुख में परिणत कर देता है। यदि किसी को पेट में दर्द हो रहा है, अथवा उसकी आँख आई है और वह अपने आपको शान्त मन होकर निर्देश देवे कि उसका पेट के [illegible]ा आँख का दर्द उसे दुःख न देगा तो थोड़े ही काल में उसका दर्द हलका हो जावेगा। जो लोग आँख और पेट की पीड़ा होने पर खूब चिल्लाते हैं उनका दर्द सचमुच में भयानक हो जाता है। दुःख से घबड़ाने से दुःख घटता नहीं वरन् बढ़ता है। उसका शान्त भाव से सामना करने से वह कम हो जाता है। यदि मन निर्बल है तो दुःख भयंकर दिखाई देता है और यदि मन बलवान है तो दुःख सरल हो जाता है।

शान्त क्रान्तिकारी

श्री रामचरण लाल एम० ए०

शुद्धोदन की ज्योति-नयन,
शुद्ध-बुद्ध की ज्योति-नयन;
माया के विशुद्ध-बन्धन,
माया में विशुद्ध-बन्धन;
यशोधरा के मूर्त्त-मयन,
यशस्धरा के मूर्त्त-मयन;
राहुल के किलकन-क्रन्दन,
राहु-केतु के किल क्रन्दन॥

कपिलवस्तु-भू-धन्य-जनम,
बुद्धगया बुद्धत्व-रमण;
सारनाथ शुभ-सार-"धरम—
चक्र-प्रवर्तन" हाथ-भ्रमण;
सकल विश्व में सार-वहन,
कुशीनगर-निर्वाण-गमन;
"क्षण-भंगुर-दुखपूर्ण-भुवन,"
सिंहनाद सुन शाक्य-सुवन॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखमुक्ति-भव-पार-गमन,
सिरजन मध्य-मार्ग-सुवरन;
जन्म-ब्रह्म—अभिमान-दलन,
वर्ण—वर्ग-अन्तर-विदलन;
सुरवाणी-सुरलोक-गमन,
जनवाणी-बुद्धत्व-गमन;
सत्य-अहिंसा-शान्ति-वचन,
हिम-आसेतु-अशोक-अंकन ॥

आज एशिया-नव-जागृत,
बुद्धवाद-दिशि-दिशि-पूरित;
संस्कृति-साम्य-सुधा-सिंचित,
साँची-सम्मेलन-प्रेरित,
बुद्धवाद-शुभ-मार्क्स-निहित,
अमर-क्रान्ति-वर, रक्त-रहित,
पी-पी बुद्ध-वचन-अमृत,
वेदान्तोपनिषद्-मिश्रित ॥

चित्र जो सुधर न सका !

श्री विजय

सड़क के किनारे, दाहिनी ओर पेड़ों की कटी-फटी छाया के नीचे बैठी एक बुढ़िया ने धीमी आवाज में पुकार लगाई—बेटा ! तोहार टोपी बनी रहै । उसके सामने एक मैला-कुचैला चीथड़ा पड़ा हुआ था जिस पर वह अपना झुर्रीदार हाथ फिराकर कुछ टटोल [illegible] करती । उसका यह क्रम चलता रहता । पता नहीं दिनभर में वह कुल कितने पैसे इकट्ठा कर पाती होगी ?

वहीं पास ही में एक कुँआ था, सड़क के दूसरी ओर। एक छोटी सी छावनी भी पड़ी थी वहीं पर और एक दो जन वहाँ सदा ही दिखाई पड़ते—गगरा डोल लिये । आस-पास थी खेतों की लहलहाती हुई हरियाली जिससे थोड़ा हटकर शहर की पक्की सड़क जाती थी । वह बुढ़िया वहीं सड़क के किनारे, मोड़ पर कच्ची पटरी पर अपने दीन अथक स्वर में आने-जानेवालों को आशीर्वाद दिया करती—बेटा, तोहार बच्चा जिये !

मैंने उस बुढ़िया को उसी एक स्थान पर बैठे देखा है जब कभी भी उधर से गुजरा हूँ । जब कभी भी मैं ध्यान में निमग्न उस स्थान को पार कर गया हूँ तब एकाएक ऐसा लगता कि कोई वस्तु पीछे छूट गई हो । साइकिल की चाल धीमी पड़ जाती और पीछे मुड़कर देख लेता—वही बुढ़िया और वही कटी-फटी छाया । हृदय तनिक हल्का हो जाता । अक्सर ऐसा भी होता जब वह स्थान खाली पड़ा रहता और तब मन किसी अज्ञात से प्रश्न पूछ बैठता कि वह आज आई क्यों नहीं । साधारण सी बीमारी में लोग घर-अस्पताल एक कर देते हैं पर यह बेचारी न जाने कहाँ पड़ी होगी—निरीह और असहाय । राह में कुछ दूर तक उसी के विचारों का जाल हृदय को खींचे रखता ।

बुढ़िया भी तो आखिर मनुष्य है । उसके शरीर में और उन महा-जनों के शरीर में, जो उसी राह पर मोटर से अपने पीछे धूल उड़ाते उल्का की भाँति इधर से उधर निकल जाया करते हैं, क्या विशेष अन्तर है ? अथवा उनमें जो पीछे रिक्शे पर तने बैठे रहते हैं और एक नर-कंकाल उनको खींचता हुआ, अपना खून पसीने की बूँदों के रूप में बहाते चलता जाता है । उन्हीं रक्त-स्वेद कणों की चमक लाल उस कंकाल के चमड़े में मनुष्य अपनी विकृत छाया निरख एक कटुहास्य करता है और अपनी शर्म छिपाने के लिये गरज उठता है—अबे, जोर से नहीं चलाते बनता ! उस बेचारी बुढ़िया की ऐसी स्थिति हुई कैसे ? वह सोचती भी होगी क्या और कैसे ? रात्रि के आगमन के साथ ही उसकी दिनभर की आवाज अन्धकार में विलीन हो जाती । प्रातः सूर्योदय के साथ ही उसके मन में नया उत्साह जगता और वह आकर राज-मार्ग के किनारे बैठ जाती···दोपहर का आगमन होता···और पुनः सायंकाल का मौन संवेग बुढ़िया के फैले हुये आशाओं की शृंखला को फिर से बटोर उसके चीथड़ों में बाँधकर इसे रातभर के लिये बिदा कर देता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ असमंजस में पड़े रहने के कारण मैं कभी भी वहाँ रुक न सका और जब कभी भी हाथ जेब के निकट जाता तो साइकिल फर्लांग भर आगे निकल गई होती। फिर लौटकर वहाँ तक आने में तनिक संकोच लगता। छावनी पर बैठे या राह चलतों की आँखें वैसे घूरने लगतीं—बड़ा दाता बना है। पता नहीं कोई कुछ कहता अथवा न कहता, पर एक विचार आता है जो दुर्बल मन की भयानक कमजोरी होती है। बहुत ही बड़ी मानसिक दुर्बलता है यह जो मनुष्य को बेकार के दुविधे में डालकर उसे क्रियाशीलता के मार्ग से ढकेल देती है।

उस दिन भी मैं उसी राह से इसिपत्तन (ऋषि पतन) की ओर जा रहा था। सड़क का मोड़ घूमते ही दृष्टि उस बुढ़िया पर पड़ी और मन में आया कि उतर कर आज एक पैसा दे दूँ उस बुढ़िया को। एक पैसे में होगा ही क्या उसका? कितना उपकार हो जायगा उसका? मन में आया क्यूँ न एक आने दूँ और फिर दूसरे ही क्षण विचार आया कि रास्ते में साइकिल कहीं खराब हो गई; पहिया ही कहीं पंचर हो गई...और इसी उधेड़-बुन में मैं बहुत आगे निकल गया। बुढ़िया के थके-अ-थके मुँह से निकले शब्द आकाश के शून्य में समा गये। मन में तनिक अशान्ति का आभास हुआ, इसमें संदेह नहीं।

× × ×

सायंकालीन सूर्य की गाढ़ी, तेजहीन, म्लान रक्तिम किरणें पेड़ों के पीछे छिप रही थी। मैं पुनः उसी रास्ते लौट रहा था—सारनाथ (ऋषि पत्तन से)। पथ भी प्रायः थकने लगा था और लगता था जैसे वह भी अब विश्रांति का इच्छुक है। मन की अशान्ति अभी तक मिटी न थी। लगता था कि मृगदाव के उपवन में कुछ छूट गया हो। मैं मन को स्थिर नहीं कर पा रहा था कि एकाएक एक झटका-सा लगा। हृदय भी अपना स्पन्दन एक क्षण के लिये भूल गया। मैं सारनाथ से बिना तथागत के दर्शन किये ही लौट रहा था। सारनाथ जाने-आने की स्मृति में यही प्रथम अवसर था जब मैं वहाँ से महाश्रमण के दर्शन किये बिना ही लौटा था। यह सर्वथा असंभव-सा जान पड़ा, पर था तो सत्य ही। मन उद्वेलित हो उठा। सिर चकरा-सा गया। गतिशील वायु इधर-उधर दौड़ रही थी पर माथे पर कुछ स्वेद कण निकल ही पड़े थे। यह एक भयंकर भूल थी। भूल भी होती है पर मनुष्य की स्मृति फिर उसका मार्जन भी तुरन्त कर देती है जिससे भूल का सुधार तत्काल हो जाता है। पर यह तो वैसी भूल न थी। यह तो पूर्णतया एक विस्मरण-सा था, सम्मोहन-सा, कि मन्दिर के अंतर्गृह में जाने की सुध ही न आई। पर सभी विवेचन बेकार था क्योंकि अब बहुत विलंब हो चुका था। कैसी विस्मृति थी यह। क्या मस्तिष्क इतना विकृत हो गया था?

झिलमिलाते अँधेरे में वह पेड़ दीख पड़ा जहाँ वह बुढ़िया बैठी थी। जेब का पैसा जेब में ही पड़ा था, पर अब बुढ़िया को पाता कहाँ? उसी क्षण विचार उठा—आज तथागत अवश्य रुष्ट हुये और इसी से उन्होंने अपने दर्शन से आज विमुख भी कर दिया। यह एक दण्ड था जो मुझे सम्मा संबुद्ध ने उस दीन-हीन बुढ़िया की उपेक्षा और निरादर के फलस्वरूप दिया था। मेरा मस्तक ग्लानि से नत हो गया। अपनी मूर्खतापूर्ण भूल पर अब केवल पश्चात्ताप ही करना रह गया था। अवसर तो हाथ से निकल ही गया था। अब यह एक साधारण सी परीक्षा थी मेरी जिसमें मैं उत्तीर्ण न हो पाया। ऐसे अनेक उपाख्यान स्मरण हो आये जिनमें याचकों के रूप में देवगण मनुष्यों की परीक्षा लिया करते। गुरुवाणी के अनुसार—अवसर खोजते रहने से नहीं प्राप्त होता, वह तो स्वतः उपस्थित हो जाता है। इसी से मनुष्य को सर्वदा क्षण प्रतिक्षण जागरूक रहना चाहिये कि कहीं वह अवसर आकर निकल न जाय। खोया हुआ अवसर दुबारा नहीं आता; गुरुवाणी दुबारा नहीं सुनाई पड़ती।

वह बुढ़िया फिर न दिखाई पड़ी वहाँ पर। परन्तु वह रिक्त स्थान उस बुढ़िया की आत्मा के दर्द भरे स्वर को अभी भी प्रतिध्वनित किया करता है।

बेटा! तोहार बच्चा जिये।

और उस दीन की, विश्व के साथ आत्मसात् की भावना समस्त विश्व को करुणा और मैत्री के मूकवाणी से गुंजरित कर देती है।

भवतु सब्ब मंगलं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोगी कृपाशरण

भिक्षु धर्मरक्षित

बंगाल प्रदेश के बौद्धों की दुरवस्था को देख कर जिनका हृदय करुणा से भर आता था, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन बंगाल में बौद्धधर्म के उत्थान में ही लगा दिया, उन कर्मयोगी कृपाशरण महास्थविर के नाम से कौन ऐसा बंगाली बौद्ध है, जो परिचित न हो ?

कृपाशरण जी का जन्म चटगाँव के उनैनापुरा नामक गाँव में सन् १८६५ ई० में हुआ था। उनके पिता का नाम आनन्द कुमार बरुआ तथा माता का नाम आराधना देवी था। वे जब ९ वर्ष के हुये, तभी पिता का देहान्त हो गया। विधवा माता ने बड़े लाड़-प्यार के साथ उनका पालन पोषण किया। वे बचपन से ही साधु-प्रवृत्ति के थे। मन्दिर में जाना, बुद्ध वन्दना करना, पुष्प धूप आदि चढ़ाना और श्रद्धापूर्वक भिक्षु लोगों के दर्शन करना ही उनके कार्य थे। माता ने बालक कृपाशरण की इस बलवती श्रद्धा को देख सन् १८८१ में वैशाखी पूर्णिमा को श्री सुदनचन्द महास्थविर के पास प्रव्रजित करा दिया। यहीं से उनके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

विहार में रहकर कृपाशरण ने पढ़ना लिखना प्ररम्भ किया। उनकी बुद्धि तीव्र थी। वे किसी भी पाठ को सरलता पूर्वक और शीघ्र याद कर लेते थे। विहार में रहते समय उन्होंने छोटे-छोटे बौद्ध-ग्रन्थों का अध्ययन किया और कुछ ज्ञान होने के पश्चात् चटगाँव के बौद्ध-तीर्थों के दर्शन कर कलकत्ता के लिये प्रस्थान किया। इन्हीं दिनों उनकी माता का भी देहान्त हो गया।

कलकत्ता आने पर उन्होंने भदन्त महावीर का सत्संग करना प्रारम्भ किया। उनके पास पढ़ना और धर्म-सीखना भी। उनके ऊपर महावीर बाबा का बड़ा प्रभाव पड़ा। वे उन्हीं को अपना मार्ग-प्रदर्शक गुरु मानते थे। भदन्त महावीर के ही प्रोत्साहन से उनमें धर्म-प्रचार की जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उन्होंने इसी निमित्त धन संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। जब थोड़ी पूँजी एकत्र हो गई तब उन्होंने सन् १८९१ में आश्विन मास की पूर्णिमा को कलकत्ता में "बौद्ध धर्माकुर सभा" की स्थापना की।

भदन्त महावीर कुशीनगर जाते समय अपने शिष्य को भी साथ लेते गये। शिष्य कृपाशरण पर कुशीनकर की परिनिर्वाण मूर्ति का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। वे लखनऊ होते हुये कलकत्ता लौट आये और धर्म कार्य में संलग्न हुए। यद्यपि बौद्ध धर्म के उत्थान की भावना उनके हृदय में बनी हुई थी, फिर भी उनका मन एकाकी में उदास रहने लगा। गृहस्थ-जीवन का आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करने लगा। जब भदन्त महावीर को इस बात का पता लगा, तब वे उन्हे कुशीनगर बुलाये और प्रेम-पूर्वक संसार के आकर्षणों के दुष्परिणामों को बतला कर उन्हें बुद्धगया ले गये तथा बोधिवृक्ष के नीचे बैठाकर उपदेश देते हुये उस करुणामूर्ति गुरु ने अपने आज्ञाकारी शिष्य से प्रतिज्ञा कराई—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन-पर्यन्त बौद्ध धर्म के प्रचार-कार्य में लगा रहूँगा।

यह प्रतिज्ञा क्या थी ? भिक्षु कृपाशरण जी के जीवन की नई रूपरेखा थी, नया कार्य-क्रम था। वे अब 'बौद्ध-धर्माकुर सभा' के कार्यों को बढ़ाने लगे। चन्दा एकत्र कर विहार बनवाये। कलकत्ते के बौद्धों में धर्म-चेतना जागृत कर वे लखनऊ और प्रयाग भी गये और उन स्थानों में भी बहुत कार्य किया। लखनऊ के गौतम बुद्ध रोड का बौद्ध-विहार उन्हीं का बनवाया हुआ है।

यद्यपि उनके कार्यों का उपहास भी किया जाता था, छोटे दिल के लोग उनकी निन्दा भी करने से नहीं हिचकते थे, फिर भी वह नरसिंह अपने कार्य में नहीं डिगा। उनके कार्यों की सफलता एवं महत्व को देखकर चकमा राज्य के संघ गुरु ने अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया और तब से वे महास्थविर कृपाशरण कहे जाने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महास्थविर कृपाशरण को स्वर्गीय सर अशुतोष मुखोपाध्याय से बड़ी सहायता मिलती थी। वे हर एक प्रकार से बौद्ध धर्मांकुर सभा की उन्नति चाहते थे। कृपाशरण जी ने अक्याब, बर्मा आदि देशों का परिभ्रमण कर सभा और विहार के लिये बहुत कुछ जुटाया। वे जब-जब कुशीनगर आते थे, तब-तब कुछ न कुछ ले ही जाते थे। भदन्त महावीर को बहुत कुछ चीजें मिला करती थीं। वे निस्पृह महात्मा उनमें थोड़ी भी आसक्ति नहीं रखते थे। जब कृपाशरण जी उन वस्तुओं को देखते और कहते—"यह बहुत अच्छी है" तब वे झट बोल उठते—"अच्छा, अच्छी है तो ले लो।" कृपाशरण जी उन्हें ले अपनी सभा को सौंप देते। इस प्रकार धीरे-धीरे उन्होंने बौद्ध-धर्मांकुर सभा की समृद्धि की।

कृपाशरण जी ने बंगाली बौद्धों में धर्म के प्रचारार्थ 'जगज्योति' नाम का एक मासिक-पत्र भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया, जो कुछ दिनों तक ही जीवित रह सका, किन्तु अभी हाल ही में उनके शिष्यों ने पुनः उसका प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया है।

वे सन् १९०९ में बर्मा गये। वहाँ उनका रंगून, मौलमीन आदि में सर्वत्र स्वागत हुआ। इधर आनागारिक धर्मपाल जी के आग्रहण से अगले ही वर्ष—सन् १९१० में उन्हें लंका जाना पड़ा। वहाँ भी कोलम्बो में उनके स्वागत के लिये एक भव्य एवं विशाल जुलूस निकला और पश्चिमी लंका के संघ नायक श्री सुमंगल महास्थविर की अध्यक्षता में एक विराट् सभा भी हुई जिसमें कृपाशरणजी ने भारतीय बौद्धधर्म के उत्थान की ओर लंकावासियों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने कुछ दिन वहाँ रहकर लंका के प्रायः सभी तीर्थ स्थानों के दर्शन किया और लांकिक बौद्ध संस्कृति से प्रभावित हो यह सोचते हुये भारत लौट आये—"लंका की भाँति भारत में भी बुद्ध मन्दिर एवं बौद्धों का उत्थान करना है।"

कर्मयोग कृपाशरणजी बैठे रहनेवाले व्यक्ति न थे। वे सदा ही बौद्धधर्म के प्रचार के कार्यों में व्यस्त रहा करते थे। उन्होंने सन् १९१७ में भूटान आदि की यात्रा की। आसाम में धर्मप्रचार का कार्य हाथ में लिया, किन्तु जलवायु के विषम होने के कारण स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, जिससे उन्हें कलकत्ता लौट आना पड़ा। जब स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ तब उन्होंने पुनः यात्रा प्रारम्भ कर दिया, दार्जिलिंग, राँची, टाटानगर, शिलाङ्ग, त्रिपुरा आदि स्थानों के बौद्धों में धर्म-चेतना जागृत करते हुये अपने गुरु भदन्त महावीर के दर्शनार्थ कुशीनगर गये और गुरुवर के श्रीचरणों का अन्तिम प्रणाम कर कलकत्ता लौट आये।

सन् १९२५ में कृपाशरणजी ने एक भिक्षु-सीमा भवन एवं स्तूप की स्थापना का आयोजन किया, जिसमें सम्मिलित होने के लिये प्रायः प्रत्येक देश से भिक्षु आये थे। इस कार्य में उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ा। एक तो वे पहले से ही दुर्बल हो चले थे, इससे इतना बड़ा कार्य-भार सिर पर आ पड़ा। सीमा स्थापन कार्य तो भली-भाँति सम्पन्न हुआ, किन्तु उनका स्वास्थ्य बहुत ही गिर गया और बहुत दवा करने पर भी सुधर न सका। उन्हें अपने कार्यों के लिये चिन्ता बनी रहती थी, इसी कारण स्वास्थ्य खराब होने पर भी वे आराकान गये और वहाँ से बहुत कुछ चन्दा एकत्र कर लाये, किन्तु उनके शरीर में बल नहीं रह गया था। उनकी शरीररूपी गाड़ी बाँध-बूँधकर चलने के सदृश ही आगे रही बढ़ रही थी।

श्रावण का महीना था। सूरज डूबने ही वाला था। सायंकाल की मधुर रक्ताभा आकाश को रक्तानन बना रही थी, चन्द्रमा की शीतल किरणें धीरे-धीरे पृथ्वी तल पर फैल रही थीं। उस समय महास्थविर कृपाशरणजी की पलङ्ग की चारों ओर उनकी शिष्य-मण्डली, बौद्ध उपासक एवं भिक्षु संघ बैठकर मन ही मन उनकी शान्ति की कामना कर रहा था कि इतने में वे एक टक नीलाम्बर की ओर देख, अपनी दुर्बल भुजाओं को उठा मानों सब को आशीर्वाद देते हुये सदा के लिये शान्त हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपाली बौद्धों के जीवन-संस्कार

भिक्षु अश्वघोष

संस्कारों से मानव-जीवन का स्तर सुसंस्कृत होकर ऊपर उठता है—मानव समाज का अति प्राचीन काल से ऐसा विश्वास चला आता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश एवं प्रत्येक जाति में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त कुछ-न-कुछ संस्कार प्रचलित हैं। ये संस्कार जीवन की आवश्यकताओं एवं अवस्थाओं के अनुसार ही होते हैं और उनका अपने समय में बहुत बड़ा महत्व होता है। इन संस्कारों से मनुष्य प्रभावित होकर कल्याण-मार्ग का ही अनुगमन करता है। इनसे उसका अहित नहीं होता। यद्यपि कुछ रूढ़ियों के समावेश हो जाने से उनमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं और कभी-कभी हित के स्थान पर अहित होने लगता है, किन्तु यथार्थतः संस्कारों का गुण मानव-जीवन को सुधारना ही है। जब संस्कारों से अकल्याण-भाव की दशा उत्पन्न होने लगती है, तब उन्हें संस्कार न कहकर कुसंस्कार कहा जाता है। व्यक्ति को ऐसे कुसंस्कारों से बचाना ही सद्-संस्कार का प्रयोजन है।

विभिन्न देशों के जीवन-संस्कार भी विभिन्न होते हैं। जलवायु, स्थिति, भोजन, धर्म, संस्कृति आदि सभी का प्रभाव जीवन-संस्कार पर पड़ता है। देखा जाता है कि देश, जाति, जलवायु एवं स्थिति की भिन्नता से एक ही धर्मावलम्बियों की विभिन्न संस्कृतियाँ एवं नाना प्रकार के संस्कार होते हैं।

बौद्धधर्म में धार्मिक रूप से संस्कारों के लिए कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है, फिर भी सामाजिक व्यवस्था एवं प्रचलन के अनुसार प्रायः दस संस्कार प्रचलित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) गब्भ मङ्गल (२) नामकरण (३) अन्नपासन (४) केसकप्पन (५) कण्णविज्झन (६) सिप्पारम्भ (७) विवाह (८) पब्बज्जा (९) उपसम्पदा (१०) मतक।

नेपाली बौद्धों में भी दस ही संस्कार होते हैं, किन्तु उक्त संस्कारों से इनमें कुछ भिन्नता है। उक्त संस्कारों में से पब्बज्जा और उपसम्पदा लंका, बर्मा, स्याम आदि बौद्ध देशों में प्रचलित भिक्षु संस्कार हैं। नायकत्व भी एक अन्य प्रकार का संस्कार है। यह भी भिक्षुओं में ही होता है, किन्तु विचित्र बात यह है कि ये भिक्षु-संस्कार भी नेपाल के बौद्ध-गृहस्थों में ही प्रचलित हैं।

नेपाल में इन संस्कारों के नाम नेवारी भाषा में हैं, किन्तु उनका तात्पर्य वही है जो कि बौद्ध देशों में अन्य भाषाओं में प्रचलित नामों का है। वहाँ क्रमशः उनका परिचय संक्षेप में दिया जा रहा है।

१. मचाबू ब्यंकेगु

नेपाल में गर्भाधान संस्कार नहीं होता, जैसा कि दूसरे बौद्ध देशों में होता है। जातकर्म-संस्कार होता है। जातकर्म को ही नेपाल में मचाबू ब्यंकेगु कहते हैं। बच्चा के उत्पन्न होने के वक्त 'समय' तो प्रत्येक देश में जाना जाता है। नेपाल में भी ऐसा किया जाता है। बच्चा के उत्पन्न होने के तीन दिन के बाद मचाबू ब्यंकेगु (जातकर्म) उत्सव होता है। पहले देवपूजा की जाती है, उसके बाद दान से उत्सव समाप्त होता है।

२. नां छीगु

पिता की परम्परा के अनुसार नाम रखने का बहुत से देशों में प्रचलन है। नेपाल में भी अधिकतर यही प्रथा है। नेपाल में नामकरण संस्कार को ही नां छीगु कहते हैं। बच्चे का नामकरण पूज्य गुरु वज्राचार्य नामधारी विशेष उच्च जाति के व्यक्तियों द्वारा होता है। नेपाल के बौद्धों में इनका ब्राह्मणों की भांति सम्मान एवं स्थान है। नामकरण संस्कार के समय कोई बड़ा उत्सव नहीं होता।

३. न्हेपंप्वाखनेगु

कर्ण-वेध संस्कार को ही न्हेपंप्वाखनेगु कहते हैं। नेपाल में बालक-बालिका दोनों का कर्ण-वेध होता है, क्योंकि अन्नप्रासन के दिन कान में कुण्डल पहनाया जाता है।

४. जंकु

पाँच महीने की अवस्था होने पर अन्नप्रासन उत्सव किया जाता है। इसे ही नेपाल में जंकु कहते हैं, उस दिन गुरुजी बुलाए जाते हैं। बिना गुरुजी के कोई भी संस्कार नहीं किया जाता है। वज्राचार्य गुरुजी सपत्नीक निमंत्रित किए जाते हैं। उस दिन जिस घर में उत्सव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है, उस घर में लाल मिट्टी और गोबर से जमीन परिशुद्ध और सुशोभित की जाती है। गुरुजी के आने पर निर्दिष्ट स्थान पर चूने से मण्डल बनाया जाता है। उसमें चारों तरफ चावल आदि कई तरह के धान्य रक्खे जाते हैं। पैसा भी रक्खा जाता है। उसके बाद मंत्र-पाठ से पूजा होती है। पूजा के बाद बच्चे को भात खिलाया जाता है। उसके बाद बच्चे को उसका मामा उठा लेता है। उसके बाद जुलूस के साथ सम्बन्धी बच्चे को साथ लेकर चलते हैं। इस प्रकार अन्नप्रासन उत्सव समाप्त होता है।

५. आखस्यनेगु

पाँच-छः वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ होता है। प्रथम सरस्वती की पूजा होती है। उसके बाद गुरु पूजा के साथ-साथ विद्यारम्भ या अक्षर का परिचय कराया जाता है। पहले नेपाल में स्कूलों का प्रबन्ध तो था ही नहीं। घर ही स्कूल था। जो कोई ठीक से पढ़ लिख सकता था, वही अध्यापक हो सकता था। अब इस दुर्दशा में सुधार हो गया है। विद्यारम्भ संस्कार को ही नेपाल में आखस्यनेगु कहते हैं।

६. बरछीगु

दो तीन वर्ष के बाद किसी भी अवस्था में चूड़ा कर्म किया जा सकता है। यह कर्म सब बौद्धों में नहीं होता है। शाक्य वंशीय बौद्धों में ही होता है। शाक्यों में चूड़ा कर्म के बिना विवाह या किसी भी जातीय रिवाज में शामिल होने का नियम नहीं है। इसमें बहुत धन व्यय करना पड़ता है। इस काम के लिए चार-पाँच दिन उत्सव मनाया जाता है। इसलिए इस कर्म को करने के लिए गरीबों को अपना खेत भी रेहन रखना पड़ता है।

चूड़ा कर्म, एक केन्द्रस्थान मन्दिर में होता है। चूड़ा-कर्म करनेवाले भी वज्राचार्य ही होते हैं। केवल चार दिन के लिए प्रव्रज्या ग्रहण करनी पड़ती है। चारदिन तक भिक्षा के लिए भी जाना पड़ता है। दिन में एकबार निरा-मिष भोजन होता है। चारदिन के बाद एक बड़ी देव पूजा के बाद पीला वस्त्र छोड़ कर घर जाना होता है। थेरवाद (हीनयान) से इस प्रथा में बहुत अन्तर है। चूड़ा-कर्म संस्कार को ही नेपाल में बरछीगु कहा जाता है।

७. देखा

देखा संस्कार को पालि भाषा में उपसम्पदा कहते हैं और लंका, बर्मा आदि देशों में यह उपसम्पदा नाम से ही जाना जाता है। थेरवाद में श्रामणेरों की बीस वर्ष की अवस्था में उपसम्पदा होती है। नेपाल में भी जो चार दिन तक प्रव्रज्या ग्रहण करता है उसी को दीक्षा दी जाती है। इसे धनी ही ले सकते हैं। गरीबों को भी मना नहीं है, लेकिन गरीब इसके लिए उत्सुक नहीं होते हैं। इसमें गुरुपूजा और देवपूजा में अधिक धन व्यय होता है। दीक्षा पाने के बाद बिना नित्य पूजा किए खाना नहीं खा सकते। 'पद्मसम्भव स्मरण' करके "ॐ मणिपद्मे हुँ" का १०८ बार जप करना पड़ता है। प्रतिदिन ऐसा नहीं किया जाय, तो महान दोष होता है। और जिस व्यक्ति ने गुरु के पास दीक्षा नहीं ली है उससे दीक्षा का रहस्य बतला देने पर बज्रनरक जाना पड़ेगा, ऐसा गुरुजी लोगों का कहना है। यह दीक्षा गुप्त रूप में दी जाती है।

८. विवाह

चूड़ाकर्म के बाद जिस अवस्था में भी चाहे शादी की जा सकती है। इसके लिए कोई निश्चित अवस्था नहीं है। विवाह प्रथा तो भारतीय प्रथा से बहुत मिलती-जुलती मालूम पड़ती है। माता-पिता की इच्छा से ही शादी की जाती है। गुरुजी के बिना शादी नहीं होती है।

९. नायोल्वीगु

नेपाल में हरएक गाँव में दस नायक होते हैं। राज-नीति या सरकार के प्रतिनिधि के रूप में नहीं। धार्मिक और ज्येष्ठ के रूप में होते हैं। कम अवस्था वाले या धनी होने से भी नहीं हो सकते। बड़ी अवस्था वालों को ही नायकत्व दिया जाता है। दसों को विभिन्न नाम से नायकत्व की पदवी दी जाती है, जैसा कि मन्त्रिमण्डल में प्रधान मन्त्री, खाद्यमन्त्री, यातायात मन्त्री आदि। इसे एक ग्राम-सम्वर्धन संस्था कह सकते हैं। लेकिन यह आज-कल नाममात्र है। विहाराधीन जितनी वस्तुएँ होती हैं उनका उपभोग ये ही करते हैं। नायक पदवी पाने के बाद उनलोगों का वस्त्र बदल जाता है। देखने में मालूम पड़ता है कि ये देवरूप या नाटक के पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०. दूब्यंकेगु

नेपाल में मृतक को जलाने का नियम है। जमीन पर या नदी में नहीं फेंका जाता है। जलाने के लिए लंका या बर्मा की तरह चिता नहीं बनायी जाती। भारत की तरह साधारणतः नदी के किनारे जलाया जाता है। मरने के बाद लंका-बर्मा आदि देशों की तरह दो तीन दिन प्रदर्शन नहीं किया जाता है। जिस दिन मृत्यु होती है उसी दिन अन्तिम संस्कार किया जाता है। गुरुजी के साथ घनिष्ठ सम्बन्धी भाई-बन्धु आदि मृतक के साथ श्मशान में जाते हैं। वहाँ गुरुजी कुछ मन्त्र पाठ करते हैं। उसके बाद तीन बार पानी पिलाया जाता है, उसके बाद आग दी जाती है। इसी अन्त्येष्टि संस्कार को नेपाल में दूब्यंकेगु कहा जाता है।

फिर, सातवें दिन मृत व्यक्ति के पुण्यार्थ दान दिया जाता है। डेढ़ मास बीतने पर एक बहुत बड़ा दान दिया जाता है। पुनः तीसरे, छठें मास में भी दान देने की प्रथा है। वार्षिक श्राद्ध वर्ष के अन्त में किया जाता है। संक्षेप में यही नेपाल के बौद्धों के जीवन-संस्कार का परिचय है।

सागलकुमारी-क्षेमा

सुश्रीकुमारी विद्या

कंकण किंकिणि से शोभित तन, कल्पना-परी सी सुकुमार।
रूप गर्व से मानस पुलकित, थी मंजुल सुषमा साकार॥
सागल की वह राजनन्दिनी, मगध राज की थी रानी।
भूल सकी ना निज जीवन में, वह मंगलमयी कहानी॥
कंचन महलों में होते थे, करुणा मैत्री के मृदुगान।
नत थे स्वयं प्रजेश वहाँ के, सुन नित नव पावन आख्यान॥
जाते स्वजन सभी रानी के, करने उपदेशामृत पान।
किन्तु उसे होता सदैव था, अपना क्षणिक रूप अभिमान॥
उल्लास निखरता था सदैव, तृण तृण वीरुध पुंजों में।
मृदु मानवता थी बिखरी, मंजु वेणुवन कुञ्जों में॥
रम्य वनश्री की शोभा में, नव पराग सी वह आई।
देखी ज्योति-पुंज शास्ता को, एक अप्सरा मन भाई॥
सुरभित समीर व्यंजन करती, वह रूप राशि अद्भुत नारी।
किन्तु काल परिवर्तन वश, अप्सरा गर्भ से थी हारी॥
कान्ति हीन थी अस्थिमात्र थी, जर्जर हुई देह सारी।
"हाय यही परिणाम रूप का" सिहर उठी लख सुकुमारी॥
निरख विकल कातर निरीह, उनकी करुणा प्लावित थी।
दुख का तिमिर नष्ट करनेको, ज्ञान माधुरी विकसित थी॥
कल्याणी वाणी शास्ता की, कर दी मानस में आलोक।
शरण त्रिरत्न हुई नत रानी, प्रज्ञा से भूली सब शोक॥
शतदल दल सी झूम उठी थी, मुग्ध माधुरी सी प्रतिमा।
आलोकित हिय जान चुका था, शुभ शुचि करुणा की महिमा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धार्थ और कंथक

डा० प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ'

१

हवा से होड़ लगाये कंथक द्यु-चापल्य गति से कुमार सिद्धार्थ की अश्वगति विजय का मूल्य चुका रहा था। उच्च श्रवा की भाँति अपने समय का यह भारत विख्यात शाक्य मांगलिक अश्व तब प्रखर वेग से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सम्भवतः वह भूमि के ऊपर आकाश-वायु में अपने श्वेत रंग की एक श्वेत धारा सी पीछे छोड़ता जा रहा था—गति की यही प्रधानता थी कि अश्व का पूर्ण रूप दिखाई न देता था। और सिद्धार्थ ? उनके रत्न जटित मुकुट की आभा सूर्य किरणों में प्रखर होकर चमत्कृत आभा को फहराते उत्तरासंग के पीत रंग में घोलकर श्वेत अश्व धारा में स्वर्णाभ लता सी लहराकर मात्र स्थिरता का बोध करा रही थी—श्वेत गंगा में भासित स्वर्ण वल्लरी की कल्लोल शिखा।

सिद्धार्थ ने पीछे मुड़कर देखा—बहुत पीछे अश्वारोही दल भागा आ रहा है अजा झुण्ड सा। हल्की मुस्कान के बाद—इस बार दौड़ते कंथक के चेहरे पर दृष्टि डाली, ध्यान उस ओर गम्भीरता से आकर्षित हो उठा, वायुगामी अश्व के नासापुटों से जोर-जोर से निश्वास निकल कर वायु-संगीत ध्वनिवत् शीघ्र शीघ्र पीछे की वायु में विलीन हो रही है, निर्निमेष नेत्र रोष से प्रज्वलित हो रहे हैं, दोनों कान सतर्क सामने की वायु को काटकर जैसे छोटे अविचल पक्ष बन गये हैं। श्रमकण से गर्दन भीग गई है परन्तु वायुगामी रज जैसे इतनी दूर पीछे छूटती है कि उस आद्रता को स्पर्श नहीं कर पाती। उसकी गम्भीर गति उसकी जैसे मनोभाव को बता रही है—उद्देश्य अभीष्ट है उसे विजय ! कुमार ने जैसे अश्व के मनोभाव को अपने मनोभाव से तौला, फिर उसके श्रम मूल्य का अंकन किया। परिणाम में केवल वाहवाही के और तो कुछ भी नहीं—वे गंभीर हो गये। सहसा उनके मुख से निकला—यह वृथाश्रम, रुक जाओ कंथक ! मनोरंजन का मूल्य सचमुच बहुत मँहगा होता है। न, न, हम आगे इसे अधिक नहीं चुकाना चाहते। कंथक ने वाणी के साथ अपनी गर्दन पर कुमार के हाथ का स्पर्श पाकर जैसे उनके इङ्गित को समझ लिया और वह धीरे-धीरे अपनी गति को मन्द करता हुआ निकट के एक वृक्ष की छाया में जा खड़ा हुआ। कुमार शीघ्र नीचे उतर पड़े और उत्तरासंग से कंथक के पसीने को पोंछकर उसे दुलारने लगे।

थोड़ी देर के बाद पिछले जन आ गये और कुमार को खड़ा देखकर किंचित रुककर बोले—यह कैसा उपक्रम कुमार ! आप इस घुड़दौड़ की बाजी को जीतकर भी क्यों छोड़ने लगे। यह कंथक तो थका भी नहीं—कैसे अल्हड़ता से अटखेलियाँ करता समस्त अश्व समूह की उपेक्षा करता जान पड़ता है—तब क्या कारण है कुमार ?

वे बोले—भाई, मैं जीवन की बाजी जीतना चाहता हूँ। बड़े श्रम के बाद नगण्य वाहवाही मुझे नहीं जीतना है—इसे आप जन जीतें।

मित्र सिद्धार्थ ! मैं आपके अभिप्राय को समझ गया। परन्तु यह तो पशु का श्रम है—यह मानवों के लिये प्रकृत है। माना कि वाहवाही न कुछ है, परन्तु फिर भी इस परिणाम के निकट तो यह आपकी बुद्धिमता नहीं पाता। सन्निकट विजय का परित्याग, नामवरी, संसार में यह भी प्राप्त श्रम से ही होती है, एक वयस्क मित्र ने कहा।

मित्र ! पशु की कृपा पर मानव का जीवन और सम्मान निर्भर है परन्तु इस जीवित प्राणी का तिरस्कार कर जड़ प्रकृति की कृपा से जोड़कर आप इस प्रकार प्रकृति का ही कौन सा उपकार कर रहे हैं—और क्या ही स्वयं का। न सही पशु जीवन के उपयोग की बात, वह पशु ठहरा। परन्तु मानव कहे जानेवालों की मनुष्यता यहाँ पशु के प्रति लज्जित होती है। हाय, मानव पशु की उपेक्षा कर उसकी पशुता अपनी मनुष्यता से बदल रहा है, गन्दे आदान, सिद्धार्थ तुम्हारी उपेक्षा करता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र ! पशु की जीती बाजी पर मैं अपना नाम नहीं छपवाना चाहता। यह जिसे रुचे, ले—मैंने इसका परित्याग किया।

वे पुनः गम्भीर होकर कंथक को दुलराने लगे। सुखद छाया में मन्द समीर उसे स्फूर्ति दे रहा था।

(२)

धनुर्विद्या में कुशल संसार का योग्यतम धनुर्धर जिसके गले में विश्व-विजय माल सहज ही पड़ सकती हो—नन्हें नन्हें पशुओं का बध करने में ऐसे योधा को कौन शोभा प्राप्त हो सकती है ? न, न, मैं आखेट के दुष्कर्म को कदापि सहन नहीं कर सकता। पिता जी भी इसे कुल-रीति कहकर वंश परम्परा में सुरक्षित रखना चाहते हैं, परन्तु मुझे यह रीति नहीं जँचती। छन्नक ! पिता जी से कहो कि सिद्धार्थ निर्दय कर्म को नहीं कर सकता।

कुमार ! आपके ऐसे निश्चय को मित्र लोग कायरता कहते हैं। आपने एक बार भी मृगया-विजय का प्रदर्शन नहीं किया, यह बात महाराज को दुखित करती है।

दुखित ! हिंसा न करना दुखित करता है छन्नक ?

कुमार ! आपका अभिप्राय पवित्र है परन्तु जाति कुल वाले कायर कहकर निन्दा करते हैं—यही बात महाराज को दुखित करती है। भला कौन ऐसा नरेश होगा जो दीर्घ विजयी के स्थान पर अलक्ष्यभेदी पुत्र को सहन कर सके।

छन्नक ! पिता जी को मेरा लक्ष्य वेध और हस्तकौशल किसी संग्राम भूमि अथवा राज-प्रदर्शिनी में देखने का अवसर समय पर मिल सकता है। जाति कुल वाले तब मुझे कायर न कहेंगे। परन्तु मृगया में तो वीरता का तथ्य नहीं पाता। सरासर वीर-शिल्प का दुरुपयोग है नन्हे पशु पर लक्ष्य वेध।

'कुमार ! एक बार उपक्रम करो जाति वालों के अपशब्दों से बचने को। पिता के आत्मसम्मान की रक्षा में कुल परम्परा का निर्वाह करना क्षत्रिय कुमार का कर्तव्य है। आत्म-कर्कशता का यह प्रमाण ही युद्ध प्रवृत्ति का प्रथम आवाहन है। तर्क न करो कुमार ! मैं विनय करता हूँ।

'हिंसा के लिये विनय ! छिः मानव !

'महाराज की आज्ञा भार के प्रति यह ऐसा अपने कर्तव्य का दायित्व ऐसी विनय का विवश कारण है कुमार !

'समझा छन्नक ! मैं तुम्हें दुखी नहीं करना चाहता। अच्छा तो जंगल भूमि में चलना ही है, जाओ तब अश्व लेकर आओ। तब तक मैं शस्त्रास्त्र धारण करता हूँ।

कुछ क्षणों के बाद अठखेलियाँ करता पीठपर कुमार को गति से थिरकाता कपिलवस्तु के प्रधान राजपथ पर गमन करने लगा। कुमार आज मृगया को जा रहे हैं। कवच से सजा अंग मुकुट के स्थान पर शीर्ष-त्राण, पीठ पर भारी तूणीर, कंधे पर धनुष, कमर में कृपाणधारी राजकुमार का चेहरा इस प्रकार मुस्करा रहा था जैसे शान्ति ने वीर सज्जा के साथ रौद्र रूप धारण करने का उपक्रम किया हो। करुणा की कोमलता पर कठोर लौह आवरण का भार क्या उसे स्वभाव से च्युत भी कर सकेगा ? दृश्य हृदय ऐसा मानने को तैयार न था। शनैः शनैः राजपथ से अनेक अभिवादन पाता राजकुमार अन्य प्रदेश की दिशाओं में अन्तर्धान हो गया। परन्तु शान्ति मचलकर कह रही थी—आप गौरव ! विश्व विजय के साथ संसार का अभिमान बनने वाले, मूक पशु प्राणी पर आज विजय पाये बिना ही वापस लौटो। करुणा सरोवर श्रोत ! कहाँ तो तुम और कहाँ नन्हे पशुओं का प्राण ! न, न, तुम दया का आँचल कदापि अपवित्र नहीं कर सकते।

और उधर कानन क्रीड़ा में रत मृग छौना प्रमोदमत्त हैं। कोमल हरित दूर्वा में कलोल करनेवाके मृगशावक प्रकृति के अंक में अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। कुमार ने धनुष की प्रत्यञ्चा को चढ़ाकर मूर्वीटंकार की। वाम हस्त में धनुष और दक्षिण में बाण जैसे इन मृगों को अभयदान करने आया है। कुमार ने एक तरुण रुरु (मृग) पर अनुसंधान का उपक्रम प्रत्यञ्चा रव करते हुए किया। शब्द से मृग चौकन्ना हो मुँह मे दुर्वाकण दबाये पीछे मुड़कर कुमार की ओर देखने लगा। कैसा करुण वात्सल्य दृश्य था। कुमार विहँस पड़े, सुन्दर प्राणी प्रकृति अंचल की शोभा निर्वैर प्रिय पशु ! तुम अवध्य हो। तुम पर मानव का अभिशाप। अरे नहीं, नहीं, मैं तुम्हें अभय करना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। जघन्य कर्म हत्या सिद्धार्थ के हृदय से अत्यन्त दूर की वस्तु है। विचरो! आनन्द से खेलो मैं तुम्हारा मित्र हूँ, मैं प्राणी मात्र का मित्र हूँ—कुमार के मुख से निकल पड़ा।

कंथक ने स्वस्थ चित्त से फर्राहट लेते हुए व्यक्त किया—मेरी पीठ पर दया मुर्ति है जिससे प्राणियों का अहित नहीं हो सकता, जिसका उद्देश्य ही प्राणी मात्र का हित है। मैं भी कितना धन्य हूँ कि उसी करुणावतार का वाहन हूँ। संसार के मनुष्यों! पशुओं के उपयोग पर यह दृश्य चित्र स्मरण रखना यह सब तुम्हारे मित्र सहायक हैं।

जो निरर्थक पशुओं का विनाश करता है, मूक स्थिर वनस्पति का भी विनाश करता है, वह संसार के उपयोग का विनाश करता है। उचित आवश्यकता को तो सब शक्य है परन्तु शाक्य सिद्धार्थ को निरर्थक व्यापार प्रिय नहीं। वह कंथक की पीठपर से भूमिपर आ गये और बोले—कंथक! निरर्थक श्रम हुआ। थोड़ा स्वस्थ हो लो, हम घर वापस चलते हैं। मानवता के विपरीत, उसे लज्जित करने वाला यह आर्यों का धर्म नहीं।

(३)

कोलिय राजकुमारी यशोधरा का स्वयंवर! घोषणा है कि ऐसी सुन्दरी विदुषी त्रैलोक्य में नहीं। उसे प्राप्त करने वाला भी त्रैलोक्य मनस्वी वीर हो, अन्यथा उस नारी रत्न का दुरुपयोग ही होगा। समाज तू बड़ा कृतघ्न है कि उसे अपना साथी चुनने की भी स्वतंत्रता नहीं दे रहा है। पिता और ज्ञाति कुलवाले चयन करेंगे उसका वर! शायद इस समय धूर्त भी कौशल के बल पर उपयुक्त हो सके। हा, रे समाज के विधान? मुझे नारी समाज पर करुणा है, परन्तु व्यक्त करता हूँ तो वह उपहास का कारण होगा। यदि स्वयं का उपयोग करता हूँ तो भी कामुक से अधिक सम्मान नहीं। मैं दुविधा में पड़ा हूँ क्या करूँ? छन्नक, यह निमन्त्रण तो मुझे जँचा नहीं।

क्यों कुमार!

इसका उद्देश्य है कुमारी—स्त्री विजय।

हाँ, श्रीमन्! परन्तु विक्रम प्रदर्शन और लोक में ज्ञाति-ख्याति इसका प्रधान उद्देश्य है।

ठीक, परन्तु इसे मैं कोई महान उद्देश्य नहीं मानता।

क्या कहते हैं कुमार! यदि इस बार भी आप विरक्त रहे तो महान अनर्थ होगा।

कैसा?

ज्ञाति कुल के विपरीत अभीतक के आपके कार्य तो महाराज सहन करते आये, परन्तु इस बार वे सहन न कर सकेंगे।

कैसे? क्या मुझे दंड देंगे?

नहीं वे स्वयं दंडित होंगे आत्मग्लानि में डूबकर निर्जन शोक-सेवी बनकर।

क्यों छन्नक?

आपने बार-बार कहा है—किसी राज प्रदर्शिनी में मेरा कौशल देखा जा सकता है। यदि यह समय टलता है तो आप प्रलापी मात्र कहलायेंगे और तब आत्म-गौरव के स्थान पर महाराज इसे सहन नहीं कर सकेंगे समझे!

परन्तु छन्नक और वह राज-कन्या मुझे न चाहे तो?

यहाँ भी न्याय आपके पक्ष में है त्रैलोक्य सौंदर्य-वसुधा कुमारी यशोधरा का अन्तर्तम आपका आकर्षण करता है वह कोलिय राज के पत्र से प्रगट है।

यदि ऐसा ही था तो राजकुमारों के कौशल की होड क्यों?

ज्ञाति कुल रीति की हत्या वीर और वीरांगनाओं को अ-आवाहनीय है। कुमारी को भी आप पर विश्वास है जिसे रंगशाला में अनेकों राजकुमारों के बीच वह खोना नहीं चाहती।

फिर भी मैं वैसा न कर सकूँ तो क्या होगा?

दो जीवनों की दयनीय दशा!

कौन-सी दो?

महाराजा शुद्धोदन और कोलिय कुमारी यशोधरा।

हुँः संसार विचित्र है, संसार को पढ़ना होगा छन्नक! तो जाओ तैय्यारी करो। ...तुम वर्तमान हो; न जाने भविष्य कैसा हो। सारा साज पहले से तैयार था छन्नक ने सजे हुए कंथक को कुमार के सामने ला उपस्थित किया। कुमार ने कंथक को देखा संग्राम भूमि को मंथन करने वाला, बली कंथक अठखेलियों के साथ मुस्करा रहा था, वह उतावला था अश्व-वीर कला को प्रदर्शित करने के लिये।

प्रिय कंथक! मनुष्यों के प्रणय उत्सव में तुम्हें अपार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट सहना है, कहते हुए सिद्धार्थ कुमार कंथक के पृष्ठारोही बने। अश्व कलागति से कंथक राम गाँव के पथपर नृत्य करने लगा।

❀ ❀ ❀

समर राग में पवित्र नारीत्व विलीन था। कुमारी यशोधरा का लावण्य उसे गति दे रहा था। रंगशाला वीरों की शक्ति चूम रही थी, नारी महिमा उसे तौल रही थी। वासना में क्षत्रियत्व विलीन होकर रंगशाला में राज-कला का प्रदर्शन कर उठा।

कोशल, मगध, अंग, वंग, कलिंग, मालव, मत्स्य, मद्र के कुमार तक्षशिला के शिल्प की पुनः गुरुदक्षिणा चुका कर भी नत-मस्तक रहे। काशी, मल्ल, वैशाली भी श्रमित हो चुकी--अब शाक्य कुमार की बारी थी।

लोह वर्म और शीर्ष-त्राण में सिद्धार्थ की सिद्धी प्रकट हुई। रण कौशल का हस्तलाघव शाक्य कुमार पर साकार हो उठा। विद्युत् शक्ति चापल्य कथंक के रोम-रोम में प्रस्फुटित था। अश्वेतर रण-कलाओं पर विजय नर्तन करता हुआ वह राज-सभा द्वारा घोषित हो उठा—राज-अश्व धन्य! कंथक की समानता का कोई अश्व नहीं—शाक्य कुमार ही रंगशाला विजयी हैं। त्रैलोक्य शक्ति नापने वाली धनुष प्रत्यञ्चा का गर्व खर्व हुआ। चक्रवाल की रण-कौशल-शक्ति जैसे विजित होकर नत मस्तक हो सिद्धार्थ के चरणों को देखने लगी। प्रकम्पित रण-कला शनैः शनैः उनके चरणों पर झुक रही थी, रंगशाला का चिर विजयी दुन्दुभि गति के साथ चरणों से स्तुत्य हो रहा था। जनपद कल्याणी की चिर साधना निधि, कौमार्य व्रत कुमार सिद्धार्थ की विजय का उपहार बनकर स्वयं उनके समर्पण हुआ--हर्षातिरेक से। अन्यक्षण दृश्य था—यशोधरा का हृदय पुष्पमाला के रूप में कुमार के हृदय का आलिंगन करने लगा। संसार धारा में प्रवाहित हृदय की उल्लास गति को यशोधरा की हृदय सीमा ने ही जाना।

गम्भीरभाव से कुमार ने लावण्य की स्वर्गीय छटा यशोधरा को देखा—और फिर देखा पार्श्ववर्ती कंथक को—कि जिसपर राज-बालायें विजय आरती उतार रही थीं। धीरे से उनके मुँह से निकला—उचित; यह किसकी विजय है?

(४)

आषाढ़ मास की पूर्णिमा का चाँद बादलों से आँख-मिचौनी कर रहा था। नक्षत्रमाला श्वेत श्याम घनों से झाँक रही थी। प्रकृति की शान्ति में उत्सुकता थी, भीति थी। राज प्रासाद के सुगन्धित तैल प्रदीपों की लौ मध्य रात्री का परिवर्तन कर रही थी। विनोद-बालायें, निद्रा-थकित वाद्य यन्त्रों पर शयन भार मग्न थीं। राजपलंग पर राहुल-शिशु माता के पार्श्व में निद्रा-विमग्न स्वर्ण दीपसा देदीप्त हो रहा था। शिशु पर अंचल बिखराये, खुली अलकों पलकें बन्द किये राजकिशोरी सुखद स्वप्न में तल्लीन थी। स्वर्ण की लावण्य राशि के निद्रीत होठों पर एक हास्य रेखा खेल रही थी।

राग के पूर्ण चित्र को सिद्धार्थ का विराग-हृदय देख रहा था। राग की ही जैसे विजय होगी—आतुर कुमार, राहुल को चूमना चाहते हैं। और संवेग बोल उठा—'यही है नश्वरता का चित्र!' क्षण अन्यथा—सिद्धार्थ धीरे-धीरे महल से बाहर हो गये। अश्वशाला के निकट जाकर क्षणस्थायी हो बोले—छन्नक!

सतर्क छन्नक वायु वेग से बोल उठा—महाराज कुमार! आज्ञा।

घोड़े को लाओ।

रात्रि के क्षणों में वह कैसा प्राकार?

प्रत्युत्तर और तर्क नहीं छन्नक! शीघ्रता करो।

अच्छा स्वामिन्, कहता हुआ छन्नक अश्वशाला में गया। कंथक जैसे बाट देख रहा हो—दूसरे ही क्षण वे दोनों कुमार के सम्मुख थे। कुमार ने कंथक की ग्रीवा पर हाथ स्पर्श करते हुए कहा—

मित्र कंथक! अपनी शक्ति और कला का श्रेय तूने यश रूप से सदा ही मुझे दिया है—अश्व मैं तेरा आभारी हूँ। परन्तु आज स्वयं श्रेय का समय है—आज तू मुझे तार दे। गर्म निश्वास फेंकता हुआ कंथक का सिर उनके चरणों पर जा रहा। कंथक को सम्हाल वे उस पर सवार हो गये। कुछ ही निमिष में कपिलवस्तु की राज-प्राचीर को कंथक की छलांग ने विसर्जन किया—छन्नक पूँछ पकड़े साथ था। प्राची की लालीमा से पहिले ही शाक्य सीमा को लाँघता कंथक अनोमा के तटकर पहुँच गया। वेगवती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनोमा की धारा कंथक को पार जाने की चुनौती देने लगी। परन्तु यह कंथक है—वायु गति पर आकाश मार्ग द्वारा दूसरे ही क्षण अनोमा के पार था। छन्नक भी पुच्छ विसर्जन करनेवाला नहीं था। कुमार घोड़े से उतर पड़े और कंथक के कंधे पर थपकी मारकर बोले—मूक पशु मित्र! मैं तेरा ऋणी हूँ! कहकर राजवस्त्रों का परित्याग कर, खंग से बालकाट तपस्वी वेश धारण कर छन्नक से बोले—मुक्त कामना और संसार का कल्याण इष्ट है ऐसा यह पिता से संदेश कहना और कंथक! जाओ अब मेरे पैर तुम्हारी गति का अनुसरण करेंगे।

कंथक के पशु हृदय को सिद्धार्थ का यह अनुसरण और वियोग सहन न हुआ, वह निर्जीव भूमिपर गिर पड़ा।

जापानी कला का रूप

श्री विजय श्रीवास्तव

[एशिया महाद्वीप के देशों की कला-शैली में अद्भुत समानता है और यही प्रमुख कारण है कि इन देशों को एक सूत्र में बाँधनेवाली कड़ी 'कला' की ही रही है। चीन आदि समीपवर्ती देशों की शैली का रूप बाद में चलकर, उनके रहन-सहन और अध्यात्म चिन्तन के कारण, भले ही बदल गया हो, परन्तु उसकी पृष्ठभूमि भारतीय कला-पद्धति ही रही है। जापानी-कला चीनी-कला का ही परिवर्जित रूप है, परन्तु वहाँ के 'साफराह' चेतना के कारण कला के रूप में भी अंतर आ गया और अपने ढंग की एक नवीन ही शैली कही जा सकती है। स्थानाभाव के कारण अतिसंक्षेप में ही इस कला के स्वरूप का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया गया है। जापान की कला भारतीय कला-परम्परा की तुलना में तो बिल्कुल ही नयी है, परन्तु इसी एक कारण से उसकी रोचकता और मौलिकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता—ले०]

जापानी कला की सबसे बड़ी विशेषता है—'एक कोन' शैली। मुख्यतः यह शैली चीनी कला की परम्परा रही है जिसका प्रारम्भ सुंगकाल के प्रमुख कलाकार बाचेन ने किया था। इस एक कोन शैली का रूप हम तभी समझ सकेंगे जब हमने कला की मूक भाषा का अध्ययन किया हो जो केवल रेखाओं द्वारा ही व्यक्त होती है। अन्यथा वे टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें केवल लकीरें ही मालूम पड़ेंगी। रेखा ही कला का शरीर है और इसकी कमी या अधिकता, हल्कापन अथवा गहराई से ही हम कला के द्वारा व्यक्त किये गये भावों की भंगिमाँ समझ सकते हैं। ये कुछ और अधिक रेखायें कम होते हुये भी यदि उपयुक्त स्थान पर हैं तो वे उतनी ही सारगर्भित एवं गहन होंगी जितनी एक दर्शन की पोथी अथवा एक महासागर। 'एक कोन' शैली का रूप यही है।

उदाहरण स्वरूप एक चित्र लें— 'एक सम्पूर्ण पृष्ठ में, एक किनारे बनी हुई एक नौका' जो इस तथ्य की ओर इंगित करने के लिये पर्याप्त होगी कि वह असीम जलराशि के मध्य, पवन के शान्त वेग के सहारे, उद्वेगहीन तैरती चली जा रही है। इसका अभिप्राय मनुष्यरूपी नौका का संसार के असीम क्षितिज की ओर बहते जाना भी हो सकता है। मूर्त मनुष्य की लघुता एवं अमूर्त विराट की विशालता के भाव का अर्थपूर्ण चित्रण इस साधारण से चित्र द्वारा अनायास ही प्रकट हो जाता है। "एक सूखे वृक्ष पर बैठा एक अकेला पक्षी" का चित्र भी मनुष्य को गम्भीर एवं ध्यानस्थ बना देगा। इस तरह के अनेक चित्रों के उदाहरण लिये जा सकते हैं जहाँ रेखाओं की कमी तथा उनके प्रयोग में संयमता के कारण वे अधिक भावपूर्ण तथा प्राणमय बन जाते हैं। इस प्रकार के चित्रों के लिये जापानी भाषा में **वाबी** शब्द का प्रयोग होता है जिसका अर्थ साधारणतः "दीनता" अथवा "निर्धनता" होता है। और भी व्यापक रूप में—सांसारिक वस्तुओं की इच्छा अथवा उसके प्राप्ति के लिये असहाय एवं असमर्थ होते हुये भी अपने भीतर उस महान् शक्ति का अनुभव करना जो संसार का नियन्त्रण तथा संचालन करती है और जो सांसारिक इच्छाओं का आधार भी है। "एक साधारण सी झोपड़ी, दो-चार चटाइयाँ अँटने भर का कमरा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ थोड़ा आहार, तरकारी एवं फल" दैनिक जीवन में वाबी का रूप है।

वाबी के अन्तर्गत छिपी हुई भावना ने जापान के आन्तरिक जीवन पर अपना प्रभाव पूर्णरूप से जमा लिया है। समस्त लौकिक इच्छाओं की पूर्ति होने पर भी मनुष्य का हृदय अतृप्त ही रह जाता है, उसकी दैन्य स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता अर्थात् इच्छाओं की पूर्ति के साथ ही साथ आन्तरिक निर्धनता, दैन्यता और भी बढ़ती जाती है। जीवन का स्वरूप उतना विकृत नहीं, उतना पेंचदार नहीं जितना उसे हम स्वयं बना देते हैं। यह तो ऊपरी आवरणमात्र ही है। जीवन की पहेली स्वतः तो बहुत ही सरल तथा साधारण है पर हमारी मानसिक प्रवृत्तियाँ, दिमागी दाँव-पेंच उसे और भी वीभत्स बना देते हैं तथा उसी बनाये हुये जाल में स्वयं फंसते भी जाते हैं और पुनः उसमें से निकलने के प्रयत्नों में अपनी शक्ति का ह्रास करते हैं।

दूसरी विशेषता जापानी कला की और भी विलक्षण है—साबी, अर्थात् 'अकेला-पन, एकान्तता'। इसके चित्र का उदाहरण होगा—निर्जन पथ पर एक ग्रामीण बाला। इसी एक चित्र के सम्मुख खड़े होकर, घंटों तक, अपने हृदय में उठती हुई भाव शृंखला के उद्वेग को ठौर नहीं दे सकते। शताब्दियों का इतिहास हम पढ़ जा सकते हैं कुछ ही क्षणों में; सृष्टि का क्रम उत्थान-पतन, शोक तथा हास सभी का समावेश एवं समन्वय यहाँ हो जाता है और जीवन की घड़ियाँ हमारी आँखों के सामने एक-एक कर छाया-चित्र की भाँति आने-जाने लगेंगी। हमको सुनाई पड़ता है जीवन का मूक एकान्त संगीत।

असन्तुलन तीसरी विशेषता है। जापान की कला की ओर एक नवीन कला के विद्यार्थी को यह बात कुछ बेतुकी सी लगेगी अवश्य। वस्तुओं का किसी एक क्रम में न रक्खा जाना, उनके वर्गीकरण में किसी वस्तु विशेष को प्रमुखता न देना अथवा कलाकार का कमरे में एक किनारे, कोने में बैठ कर, कार्य करना तथा मध्य को बिल्कुल ही खाली रहने देना। इसमें तथा एक कोन शैली के व्यक्तीकरण में विशेष रूप से समानता है। इसका कारण यह है कि जापानी कलाकार प्रत्येक वस्तु को स्वतः पूर्ण समझता है जो पूर्ण ब्रह्म का ही एक अन्य रूप है एवं उसे अपने में प्रतिबिंबित करता है। जापानी बौद्ध मन्दिरों, उद्यानों तथा चाय पीने के कमरों की बनावट और उनकी सजावट के ढंग में असन्तुलन शैली की प्रेरणा स्पष्ट रूप से मिलती है।

जातीय संस्कृति एवं कला के क्षेत्र में इस विचित्रता का क्या कारण हो सकता है और जापान के लोगों में इस भावना का स्वच्छन्द प्रवेश तथा उनका इसके विचार-वैचित्र्य से इतना अधिक प्रभावित होना विशेष महत्त्व रखता है। इसके उत्तर के लिये हमें चीन के इतिहास पर भी एक दृष्टि डालनी होगी। छठीं शती में भारतीय बौद्ध भिक्षु बोधिधर्म के चीन में आगमन से एक नये युग की सृष्टि हुई। आठवीं शती के प्रारंभिक काल तक (तांग काल) एक सर्वथा नवीन बौद्ध पद्धति का आविर्भाव हुआ जिसे "जेन" (ध्यान = झान=जेन) कहते हैं। यह एक अजीब पद्धति थी जिसका रूप उतना ही गूढ़ था जितना स्वयं इसका प्रवर्त्तक। अन्य शब्दों में हम इसे कह सकते हैं—बुद्ध-हृदय। शब्दों के हेरफेर, मानसिक विवेचनायें, तर्क अथवा दार्शनिक शास्त्रार्थ का इस पद्धति में कोई भी महत्त्व नहीं। इसकी विचित्रता का आभास एक अत्यन्त ही साधारण उदाहरण से लग जायगा। किसी जेन गुरु के पास एक भिक्षु ने जेन की परिभाषा पूछी (जानने की उत्सुकता प्रकट की)। गुरु ने बिना कोई उत्तर दिये भिक्षु के मुँह पर एक तमाचा जड़ दिया और चुपचाप अपने स्थान पर जा बैठे, पूर्ववत्। दूसरे ने, बुद्ध के बारे में पूछे जाने पर, अपने घर के बाहर एक खंभे की ओर इशारा कर दिया तथा अन्य दूसरे ने, ऐसे ही प्रश्न के उत्तर में, प्रश्न कर्ता को खुर्पी लेकर दौड़ाया।

चीन के लोगों के मन को इस नई दार्शनिक विक्षिप्तता ने अपने रंग में रंग दिया और तेरहवीं शती के आरम्भिक काल में एक बिल्कुल नई कला की शैली का प्रादुर्भाव हुआ जिसके अनेक चित्र जापान में, कामाकुरा काल में चीनी तथा जापानी बौद्ध-भिक्षुओं के साथ, पहुँची।

सांसारिक तथ्यों के प्रति जेन पद्धति के विचार भी किसी अन्य से मेल नहीं खाते। यहाँ वस्तु के बाह्य रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उतना महत्व नहीं जितना उसमें अन्तर्निहित मूल तत्व को; बाह्यरूप में किसी भी प्रकार की त्रुटियाँ कभी-कभी उसके अन्तर के प्रकाश को अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त करती हैं, क्योंकि वस्तु की सुन्दरता भी कभी-कभी उसके आन्तरिक सत्य को जानने के मार्ग में अवरोध ही सिद्ध होती है, बाधा उत्पन्न करती है। सत्य के स्पष्ट रूप का दर्शन बिना दिखावटीपन, अथवा पूजा पाठ के चक्कर में पड़े बिना ही हो सकता है। भौतिक बन्धनों के प्रति हमारा पृथकत्व का अर्थ है उससे हमारा बिलगाव अथवा उदासीनता तथा इसी पृथकता के द्वारा ही हम समस्त प्राणियों के साथ तद्रूपता (एकाकार) की भावना स्थापित कर सकते हैं। गीता के शब्द—यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति, से कितना साम्य रखता है।

जापानी कला को जेन दर्शन से प्रेरणा मिलने का अन्य कारण था कि कामाकुरा तथा मुरोमाची काल में जेन मन्दिर ही स्वाध्याय एवं कला के केन्द्र थे जहाँ के भिक्षु स्वयं भी ज्ञानी, विद्वान् एवं प्रसिद्ध कलाकार होते थे। ये मन्दिर विद्यालय भी होते थे। इस कारण जेन का प्रभाव मन्दिरों तक ही सीमित न रहकर समाज के अन्यान्य अंगों पर भी छा गया। तेंडई, शिंगोन, जोडो, शिन तथा निचिरेन आदि प्रमुख मठों की शिक्षा-प्रणाली ने जापान के लोगों में बौद्धधर्म के सिद्धान्तों के प्रति अत्यधिक आस्था उत्पन्न कर दी एवं वे उसकी शिक्षाओं के प्रति और भी अधिक जागरूक बन गये। उन्होंने कला को ही अपना प्रमुख साधन रक्खा जिससे मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, धातु तथा वस्त्र उद्योग आदि को अधिक से अधिक प्रोत्साहन मिला।

जेन कला-गुरुओं का जीवन बड़े कठोर संयम तथा नियमों द्वारा संचालित होता था (है)। उनके विहार पहाड़ों पर, झरनों के किनारे, प्रकृति की सुन्दरता के मध्य में होते जहाँ वे पशु पक्षियों के कोलाहल को समझने का प्रयत्न करते; फूलों द्वारा प्रकृति की मुखरित शोभा तथा उसके बदलते हुये रंगों के रहस्य का उद्घाटन करने का प्रयत्न करते और झरनों के अनवरत संगीत में असीम का गान सुनते। प्रकृति निरीक्षण द्वारा उनकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण हो जाती कि उनके जीवन के कार्य बिना प्रयास स्वतः ही संचालित होते रहते। कला की सुपुप्त भावना जागृत होकर उनके प्रकृति के मूक शब्दों को समझने की अज्ञात शक्ति भर देती जिससे वे सुन्दरतम् मौलिक रचनायें करने में सफल हो पाते एवं बुद्ध-हृदय के पीछे स्पन्दन करने वाले प्राण की ध्वनि में निज प्राणों की ध्वनि को मिलाकर एक विश्व-संगीत का सृजन करते।

बौद्धयोगी के पत्र—३

धुताङ्ग

प्रिय जिज्ञासु,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने सम्पूर्ण धुतांगों की व्याख्या करने के लिए जो आग्रह किया है, सो ठीक है। धर्म जानने के लिए उत्सुकता एवं जिज्ञासा का होना आवश्यक है। तुम्हारे मित्रों ने भी मेरे पत्र से बहुत लाभ उठाया—यह जानकर प्रसन्नता हुई। भविष्य में भी मेरे ऐसे पत्रों को अपने मित्रों को भी दिखाया करना, ताकि वे भी बौद्धधर्म का परिचय प्राप्त कर सकें।

मैंने अपने दूसरे पत्र में तीन धुतांगों का ही वर्णन किया था। समझा था कि पत्र बहुत लम्बा हो गया, किन्तु इस बार देखता हूँ कि बहुत कुछ लिखना शेष रह गया था और भय है कि कहीं यही पत्र बहुत लम्बा न हो जाय। खैर, जितना भी बड़ा हो, इसी पत्र में सब धुतांगों की व्याख्या करने का प्रयत्न करूँगा। तुम धैर्य के साथ पढ़ना। घबड़ाना नहीं।

४. सापदानचारिकांग

गाँव में भिक्षाटन करते समय बिना अन्तर डाले प्रत्येक घर से भिक्षान्न ग्रहण करने को सापदानचारिकांग कहते हैं। जो भिक्षु सापदानचारी होता है उसे चाहिए कि गाँव के बाहर ही खड़े होकर गाँव के विघ्न-बाधाओं का विचार कर ले। जिस घर, गली या गाँव में कुछ नहीं मिलता है, वहाँ गाँव न होने का ख्याल कर चला जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए, किन्तु जहाँ थोड़ा भी मिलता है उसे छोड़कर जाना ठीक नहीं। सापदानचारी भिक्षु को समय से ही गाँव में जाना चाहिए, ऐसा करने से उसे कष्ट न होगा, वह भिक्षा न मिलने वाले स्थान को छोड़कर अन्यत्र जा सकेगा। जो भिक्षु इस धुतांग को ग्रहण करता है, उसे चाहिए कि वह "लोलुप स्वभाव को त्यागता हूँ, सापदानचारिकांग को ग्रहण करता हूँ" इनमें से किसी वाक्य को कहकर दृढ़ संकल्प कर ले।

जो भिक्षु सापदानचारी होता है वह कुलों में नित्य नया बना रहता है, चन्द्रमा के समान समझा जाता है, कुलों की कंजूसी उसमें नहीं होती है, उसके हृदय में सब पर एक प्रकार की अनुकम्पा होती है, और वह अल्पेच्छ आदि गुणों से युक्त होता है। इसलिए लोलुप स्वभाव को त्याग, आँखें नीचे किये, चार हाथ तक देखने वाला हो, संसार में इच्छानुरूप विचरने का इच्छुक भिक्षु सापदानचारी बने।

५. एकासनिकांग

एक ही आसन पर बैठकर भोजन करने को एकासनिक कहते हैं। जो भिक्षु नाना प्रकार के भोजन को त्याग कर एक आसन पर के भोजन को ग्रहण करता है, उसका वह व्रत एकासनिकांग कहलाता है। ऐसा भिक्षु जब भोजन करना प्रारम्भ कर देता है, तब उसके पश्चात् दी गई भिक्षा को नहीं ग्रहण करता है। नाना आसनों पर भोजन करने के क्षण ही यह धुतांग टूट जाता है।

एक आसन पर भोजन करने में लीन हुए भिक्षु को भोजन के कारण रोग नहीं सताते, वह रस में अलोलुप हुआ अपने काम को नहीं बिगाड़ता है। इसलिए भिक्षु विशुद्ध-चित्त हो एक आसन पर भोजन करने में प्रेम करे।

६. पात्रपिण्डिकाङ्ग

भिक्षु के पास भोजन करने के लिये केवल पात्र होता है, उस पात्र में पड़ा भिक्षान्न पात्र-पिण्ड कहलाता है। जो पात्र-पिण्ड मात्र से जीवन-यापन करता है उसे पात्र-पिण्डिक कहते हैं। इस धुताङ्ग का पालन ही पात्रपिण्डिकाङ्ग कहलाता हैं। "दूसरे बर्तन को त्यागता हूँ, पात्रपिण्डिकाङ्ग को ग्रहण करता हूँ" इनमें से किसी एक वाक्य से इस धुतांग को ग्रहण किया जाता है। यहाँ, पर ध्यान देने की बात है कि दूसरे बर्तन को त्याग देने के कारण पेड़ का पत्ता भी लेना योग्य नहीं है।

७. खलुपच्छाभत्तिकाङ्ग

'खलु' इन्कार करने के अर्थ में निपात है। खा चुकने पर पीछे मिले भात का ही नाम पच्छाभत्त है। उस पीछे पाये भात का खाना पच्छाभत्त भोजन है। अट्ठकथा ग्रन्थों में कहा गया है—खलु एक पक्षी है वह मुँह में लिए फल के गिर जाने पर फिर दूसरा नहीं खाता है। वैसा ही यह धुतांगधारी भिक्षु होता है।

८. आरण्यकाङ्ग

अरण्य में रहना ही आरण्यकाङ्ग है। जो गाँव के शयनासन को छोड़ कर जंगलों में रहता है, वह आरण्यक कहा जाता है। इसी के धुतांग का नाम आरण्यकाङ्ग, है। इस धुतांग के पालन में बहुत गुण हैं। कहा है—

पविवित्तो अ संसट्ठो पन्तसेनासने रतो।
आराधयन्तो नाथस्स वनवासेन मानसं॥
एको अरञ्ञे निवसं यं सुखं लभते यति।
रसं तस्स न विन्दन्ति अपि देवा सइन्दका॥

एकान्त चिन्तन में लीन, संसर्ग रहित, एकान्त शयनासन में लगा, वन के वास से नाथ (बुद्ध) के मन को प्रसन्न करता हुआ, अकेले जंगल में रहनेवाला यति जिस सुख को पाता है, उसके रस को इन्द्र के साथ सभी देवता भी नहीं पाते।

पंसुकूलं च एसो व कवचं विय धारयं।
अरञ्ञसंगामतो अवसेसधृतायुधो॥
समत्थो नचिरस्सेव जेतुं मारं सवाहनं।
तस्सा अरञ्ञवासम्हि रतिं कयिराथ पण्डितो॥

यह पांशुकूल को कवच के समान धारण किये, आरण्य-संग्राम से अवशेष धुताङ्ग के हथियारों से सुसज्जित थोड़े ही दिनों में सेना के साथ मार को जीतने में समर्थ है। इसलिए आरण्य-वास में पण्डित रति करे।

९. वृक्ष मूलिकाङ्ग

वृक्ष के नीचे रहना ही वृक्षमूल है। जो भिक्षु इस व्रत को ग्रहण करता है वह वृक्षमूलिक कहा जाता है। वृक्षमूलिक का अङ्ग वृक्षमूलिकाङ्ग है। वृक्षमूलिक भिक्षु छाये हुए गृह आदि को त्याग कर केवल वृक्षों के नीचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रहता है। वृक्षमूलिक भिक्षु को चाहिए कि वह सांघिक सीमा के वृक्ष, देवी-देवताओं के चैत्य पर के वृक्ष, गोंद के पेड़, फले हुए पेड़, चमगीदड़ों वाला पेड़, घोंघड़ वाला पेड़, विहार के बीच खड़े पेड़--इन पेड़ों को छोड़ कर, विहार से दूर वाले पेड़ को ग्रहण करे।

भगवान् बुद्ध द्वारा प्रसंशित और निश्रय कहा गया एकान्त निवास के लिए वृक्षमूल के समान दूसरा क्या है? इस धुतांग के पालन से मठ सम्बन्धी कंजूसी दूर हो जाती है। देवताओं द्वारा परिपालित एकान्त में वृक्ष के नीचे रहता हुआ शीलवान भिक्षु लाल, नीले और पीले गिरे हुए पेड़ के पत्तों को देखते, नित्य होने के ख्याल को छोड़ देता है।

१०. अभ्यवकाशिकाङ्ग

छाये हुए स्थान को छोड़कर खुले मैदान में रहने के व्रत को ही अभ्यवकाशिकाङ्ग कहते हैं। इस धुतांगधारी को धर्म सुनने या उपोशथ करने के लिए उपोशथ-गृह में जाना चाहिए। यदि वहाँ जाने पर पानी बरसने लगे तो उस समय न निकल कर वर्षा बन्द होने पर निकलना चाहिए। भोजन-शाला अथवा अग्निशाला में जाकर सेवा-टहल के कार्य करने, भोजन-शाला में बूढ़े भिक्षुओं को भात देने के लिए, पढ़ने या पढ़ाने वाले को छाये हुए में जाना चाहिए। बाहर पड़ी हुई चौकी-चारपाई को भीतर रखना चाहिए। यदि राह चलते हुए अपने से बूढ़े भिक्षुओं का परिष्कार ग्रहण किया रहता है, तो वर्षा होने पर राह में स्थित शाला में जाना चाहिए। यदि कुछ नहीं लिया है तो "शाला में खड़ा होऊँगा" सोचकर तेजी से नहीं जाना चाहिए। स्वाभाविक चाल से जाकर घुसने पर, वर्षा के रुकने तक रहकर जाना चाहिए।

इस धुतांग के पालन से मठ में रहनेवाली बाधाएँ नहीं होती हैं। मानसिक और शारीरिक आलस्य नहीं होता है। भिक्षु मृग की भाँति बिना घर के विचरण करने से आलस्य रहित होता है। इस प्रकार के अनेक लाभ हैं।

११. श्मशानिकाङ्ग

श्मशान में रहने को ही श्मशानिकाङ्ग कहा जाता है। जो भिक्षु श्मशान में रहता है उसे चंक्रमण, मण्डप आदि बनवाकर, चारपाई-चौकी बिछाकर, पीने के लिए पानी रखकर, धर्म बाँचते हुए नहीं रहना चाहिए। यह धुतांग बहुत कठिन है, इसलिए उत्पन्न उपद्रव को मिटाने के लिए संघ के बूढ़े भिक्षु या राजकर्मचारी को जनाकर अप्रमाद के साथ रहना चाहिए। चंक्रमण करते समय, आधी आँख से मुर्दाघाटी (= मुर्दा जलाने के स्थान) को देखते हुए चंक्रमण करना चाहिए। श्मशान में जाते समय भी महामार्ग से उतर कर बे-राह जाना चाहिए। दिन में ही आलम्बन को भलीभाँति देखकर मन में बैठा लेना चाहिए इस प्रकार करने से उसके लिए वह रात्रि भयानक न होगी। अमनुष्यों के शोर करके घूमते हुए भी किसी चीज से मारना नहीं चाहिए। श्मशान नित्य जाना चाहिए। रात्रि के बिचले पहर को श्मशान में बिताकर पिछले पहर में लौटना चाहिए। अमनुष्यों के प्रिय तिल की मिट्टी (=तिल का कसार), उर्द से मिलाकर बनाया भात (खिचड़ी) मछली, मांस दूध, तेल, गुड़ आदि खाद्य-भोज्य को नहीं खाना चाहिए। लोगों के घरों में नहीं जाना चाहिए।

इस धुतांग के पालन में ये गुण हैं—मरने का ख्याल बना रहना, अप्रमाद के साथ विहरना, अशुभ निमित्त का लाभ, कामराग का दूरीकरण, हमेशा शरीर के स्वभाव को देखना, संवेग की अधिकता, आरोग्यता आदि के घमण्डों का त्याग, भय और भयानकता की सहनशीलता, अमनुष्यों का गौरवनीय होना, अल्पेच्छ आदि के अनुसार वृत्ति का होना।

१२. यथासंस्थरिकाङ्ग

'यह आसन तेरे लिए है' इस प्रकार पहले से बिछाये गए आसन को ही यथासंस्थरिक कहते हैं। जो भिक्षु इस धुतांग का पालन करता है उसे चाहिए कि जो आसन उसके लिए बिछा है, उसी का सेवन करे, दूसरे को न उठाये और न दूसरे के आसन का उपभोग करे। कहा है—

यं तद्धं तेन सन्तुट्ठो यथासन्थतिको यति।
निब्बिकप्पो सुखं सेति तिणसन्थरणेसुपि॥

जो पाया उसी से संतुष्ट रहने वाला यथासंस्थरिक भिक्षु बिछे तृणों पर भी निर्विकल्प सुख पूर्वक सोता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न सो रज्जति सेट्ठम्हि हीनं लद्धा न कुप्पति।
सब्रह्मचारि नवके हितेन अनुकम्पति॥

वह उत्तम पाकर उसमें राग नहीं करता और न तो हीन पाकर क्रोध ही। नये सब्रह्मचारियों की भलाई करने की अनुकम्पा करता है।

तस्मा अरिय सताचिण्णं मुनिपुंगव वण्णितं।
अनुयुञ्जेथ मेधावी यथासंघत रामतं॥

इसलिये आर्यजनों से बराबर सेवे गए, मुनिपुंगव (भगवान् बुद्ध) से प्रशंसित यथासंस्थर-विहार में प्रज्ञावान् जुटे।

१३. नैषद्यकांग

लेटने को त्याग कर बैठे रहने को ही नैषद्यकांग कहते हैं। नैषद्यक भिक्षु को चाहिए कि रात्रि के तीन पहरों में से एक पहर उठकर चंक्रमण करे। चार ईर्यापथों (=सोना, टहलना, खड़ा होना और बैठना) में केवल सोना ही न चाहिए। कहा है—

आभुजित्वान पल्लङ्कं पणिधाय उजुं तनुं।
निसीदन्तो विकम्पेति मारस्स हृदयं यति॥

शरीर को सीधा कर पालथी लगा बैठा हुआ योगी मार के हृदय को कँपाता है।

धुतांग-कथा को यहीं समाप्त करता हूँ। अगले पत्र में उस विषय की चर्चा करूँगा जिसके लिए कि तुम सदा से उत्सुक रहे हो और प्रायः सभी धर्म-जिज्ञासु रहा करते हैं। तुमने अपने पत्र में अपने आवास की चर्चा तो की थी किन्तु महास्थविर जी का समाचार नहीं लिखा था। ज्ञान-वृद्ध महास्थविरों की सेवा से विमुख न होना चाहिए। समय-समय पर धम्मसाकच्छा (=सत्संग) करनी चाहिए। इससे कल्याण ही होता है।

यह पत्र तुम्हें बड़ा ही रूखा जान पड़ेगा, किन्तु इसे गायब न करना। इससे अनेक धर्म-पिपासु जनों को लाभ होगा। बस, आज इतना ही, योगिराज के आशीर्वाद।

तुम्हारा—
योगी

इसिपतन मिगदाय
१५-४-५३

सूचना

'धर्मदूत' का अगला अंक बुद्धजयन्ती विशेषांक होगा। इसमें बौद्धधर्म-सम्बन्धी विभिन्न विषयों का गवेषणात्मक परिचय दिया जायेगा। भारत तथा बाह्य देशों के कई दर्जन प्रसिद्ध बौद्ध लेखकों के लेख इस अंक में प्रकाशित होंगे। कृपया पाठकगण धैर्यपूर्वक इस विशेषांक की प्रतीक्षा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-जगत्

वैशाख पूर्णिमा सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित

बहुत दिनों तक प्रयत्न करते रहने के बाद भारत सरकार ने वैशाख पूर्णिमा को सारे भारतवर्ष के लिए सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित कर दिया। स्मरण रहे कि साँची के अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन में महाबोधि सभा की ओर से उक्त प्रस्ताव रखा गया था, जिसके लिए भारत के उपराष्ट्रपति सर राधाकृष्णन ने आश्वासन दिया था कि भारत सरकार इस पर विचार करेगी। प्रसन्नता की बात है कि इसी महीने में भारत सरकार ने उक्त प्रस्ताव को स्वीकार कर अपनी विज्ञप्ति गजट में प्रकाशित कर दी है। इस प्रकार आगामी २७ मई को सारे भारतवर्ष में बुद्धजयन्ती के उपलक्ष में सार्वजनिक छुट्टी रहेगी। इस अवसर पर बड़े समारोह के साथ बुद्ध-जयन्ती मनाई जानी चहिए।

बुद्ध गया मन्दिर की व्यवस्था – बुद्धगया मन्दिर की व्यवस्था के लिए एक कमेटी बनाई गई है, जिसमें ९ व्यक्ति हैं। आगामी २८ मई को उक्त मन्दिर का सारा प्रबन्ध कमेटी को सौंप दिया जायेगा। गत २६ अप्रैल को इसी सम्बन्ध में गया में एक आवश्यक बैठक हुई थी, जिसमें तय हुआ कि मन्दिर के प्रबन्ध के लिए महाबोधि सभा की ओर से दो भिक्षु बुद्धगया में रहेंगे, जिनका सारा व्यय-भार बिहार सरकार वहन करेगी। उनके अधीन कुछ कर्मचारी भी रहेंगे तथा उनके ऊपर एक बौद्ध गृहस्थ सुपरिंटेण्डेण्ट रहेगा। कमेटी के आदेशानुसार ये लोग मन्दिर की देख-रेख करेंगे।

श्रीदेवप्रिय जी सारनाथ में—महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्रीदेवप्रिय जी बुद्धगया मन्दिर की प्रबन्ध समिति की बैठक में भाग लेने के बाद गत २७ अप्रैल को सारनाथ आए और यहाँ की सभी संस्थाओं का निरीक्षण कर २८ अप्रैल को भिक्षु संघरत्न के साथ एक आवश्यक कार्य से पटना चले गए।

बनारस में भिक्षु-सीमा-गृह—९ अप्रैल को बनारस में कैंट स्टेशन के पास एक नये भिक्षु सीमा-गृह की स्थापना हुई। सारनाथ में दो सीमा-गृह थे किन्तु बनारस में न होने से वहाँ के भिक्षुओं को सांघिक कार्यों के सम्पादन में कष्ट होता रहा है, किन्तु अब इस अभाव की पूर्ति हो गई। भिक्षु-सीमा गृह के स्थापनार्थ कमसे कम २० भिक्षुओं की आवश्यकता होती है। 'सीमा' एक ऐसा पवित्र गृह होता है जहाँ भिक्षु एकत्र होकर अपने सभी विनय सम्बन्धी कार्य करते हैं।

आनन्द विहार सभा को प्राप्त—डा० नेयर द्वारा निर्मित बम्बई का आनन्द विहार गत मार्च मास में महाबोधि सभा को प्राप्त हो गया। महाबोधि सभा के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रिय वलि सिंह ने वहाँ जाकर उक्त विहार का भार ग्रहण कर लिया।

भिक्षु सोमानन्द जी – भारतीय महाबोधि सभा के मद्रास केन्द्र के प्रचारक भिक्षु सोमानन्द जी गत मास में मद्रास से बुद्धगया आ गये। आपने बहुत दिनों तक मद्रास में रहकर बौद्धधर्म का प्रचार कार्य किया है। अब आप स्थायी रूप से बुद्धगया में रहेंगे।

लङ्का में सम्मिलित बुद्ध जयन्ती का आयोजन– इस वर्ष लंका में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई तथा बौद्ध सभी धर्मावलम्बी सम्मिलित रूप से बुद्ध-जयन्ती मनायेंगे। अभी हाल ही में कैण्डी में सभी धर्मावलम्बियों की एक विराट् सभा में यह निश्चय किया गया है।

मुक्तेश्वर में श्री छावरा का भाषण—श्री अकौन्थेन ने सूचित किया है कि गत २ मार्च को श्री आर० एस० छावरा ने अपने पिता एवं श्री धनसिंह के साथ मुक्तेश्वर का दौरा किया था। उन्होंने तीन दिनों तक पहाड़ी स्थानों एवं बौद्ध भाइयों का निरीक्षण किया। उन्होंने स्थानीय बौद्धों की सभा में भाषण देते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113429

कहा—"यहाँ विद्या की परम आवश्यकता है। अत्यधिक आर्थिक संकट होते हुए भी यहाँ के बौद्ध प्रगतिशील हैं। यदि यहाँ के बौद्धों को थोड़ी भी बाहरी सहायता मिल सके तो वे काफी उन्नति कर सकते हैं।" उन्होंने यह विश्वास दिलाया कि वे यहाँ के बौद्ध भाइयों के संकटों को बौद्ध जगत् के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

भारतीय बौद्ध बन्धुत्व—इस समिति की ओर से भारत में रहनेवाले सभी बौद्धों को सूचित किया जाता है कि मुक्तेश्वर (नैनीताल) में दो सुन्दरी बौद्ध युवतियाँ हैं, जिनकी आयु क्रमशः १९ और १७ वर्ष है। दोनों ने इस वर्ष हाईस्कूल की परीक्षा दी है। युवतियाँ गृहकार्य में दक्ष एवं स्त्री-सुलभ सभी गुणों से युक्त हैं। इनके योग्य दो तरुण बौद्धों की आवश्यकता है। विवाह सम्बन्ध में अन्तर्देशीय या अन्तर्राष्ट्रीय कोई प्रतिबन्ध नहीं है। कृपया मार्फत सम्पादक 'धर्मदूत', पोस्ट बाक्स नं० १०, सारनाथ, बनारस के पते पर पत्र-व्यवहार करें। इच्छुक तरुण बौद्धों के लिए अपेक्षित है कि वे अपने पूरे विवरण के साथ अपना फोटो भी भेजें।

हमारा निमन्त्रण

हम अपने कृपालु पाठकों को 'धर्मदूत' की सहायता कर पुण्यार्जन करने के लिए निमन्त्रण देते हैं। 'धर्मदूत' के ग्राहकों की संख्या बढ़ाकर आप इसकी सहायता कर सकते हैं। ध्यान रखें 'धर्मदूत' का प्रचार करना तथागत की अमरवाणी का प्रचार करना है, जिसके प्रचार की इस समय अत्यन्त आवश्यकता है। आपका यह प्रचार 'धर्मदान' होगा, जो सब दानों में श्रेष्ठ होता है।

"धर्मदूत" ही क्यों पढ़ें ?

क्योंकि :—

१. यह भगवान् बुद्ध का सन्देश घर-घर पहुँचाने वाला हिन्दी का एकमात्र पत्र है।
२. यह अहिंसा के बल पर उपार्जित स्वतन्त्र भारत और उसके बाहर नेपाल, लंका, बर्मा, लद्दाख, पूर्वी-पाकिस्तान आदि देशों में प्रतिमास अहिंसा, प्रेम और दया के मूल सिद्धांत को लेकर पहुँचता है।
३. इसमें देश तथा विदेश के बौद्ध विद्वानों के धर्म, संस्कृति, दर्शन, योग आदि विषयों पर लेख रहते हैं।
४. सारे संसार के बौद्धों की धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ इसमें पढ़ने को मिलती हैं।
५. सर्व-स्वातन्त्र्य का उपदेश देनेवाले भगवान् बुद्ध का विचार-दर्शन इसी में होता है।

व्यवस्थापक—'धर्मदूत', सारनाथ, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११३५२१

बुद्धचर्य्या

भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों के सम्बन्ध में, भारतीय भाषाओं में जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें विशालता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'बुद्धचर्य्या' सभी से बढ़कर है। त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र सम्बन्धी जितनी भी सामग्री उपलब्ध है, 'बुद्धचर्य्या' में उस सारी सामग्री का वैज्ञानिक संकलन कर, अविकल अनुवाद दिया गया है। 'बुद्धचर्य्या' को यदि समस्त सुत्तपिटक और विनयपिटक का सार कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं।

बीस वर्ष पहले उसका प्रथम संस्करण छपा था। बहुत दिनों से उसकी मांग रहने पर भी इस व्ययसाध्य ग्रन्थ का दूसरा संस्करण न हो सका। ग्रन्थ की विशालता और कागज आदि के दुर्लभ होने के साथ-साथ आज के प्रकाशक और पाठक की 'रुचि' भी इस विलम्ब के लिये उत्तरदायी हैं।

महाबोधि सभा ने ग्रन्थ के महात्म्य का ख्याल कर हिन्दी पाठकों की प्रामाणिक साहित्यप्रियता के भरोसे ही इसके प्रकाशन का व्यय-भार वहन किया।

किसी भी पुस्तकालय में और विशेषरूप से बौद्ध-साहित्य प्रेमी किसी भी भाई बहिन के पुस्तकालय में 'बुद्धचर्य्या' रहनी ही चाहिये।

बड़े आकार के छः सौ तीस पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८) है। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

मिलने का पता :—

१. महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, (बनारस)
२. महाबोधि पुस्तक भण्डार, ४ ए बङ्किम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२
३. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धविहार, रीडिंग रोड, नई दिल्ली
४. महाबोधि पुस्तक भण्डार, बुद्धगया (बिहार)

आनन्द

उच्चकोटि की हिन्दी मासिक पत्रिका

[मध्य प्रदेश, त्रावणकोर, कोचीन, हैदराबाद, मद्रास तथा बिहार सरकार द्वारा विद्यालयों तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत]

आनन्द इसलिये पढ़ें कि

इसमें कविता, कहानी के अतिरिक्त धर्म, विज्ञान, दर्शन, कला, तत्त्वज्ञान आदि विविध विषयों पर अधिकारी विद्वानों द्वारा विवेचनात्मक एवं गवेषणापूर्ण लेख रहते हैं, जिनसे एक सुदृढ़ व्यक्तित्वमय समाज के निर्माण की प्रेरणा मिलती है।

वार्षिक मूल्य ६ रुपया : विदेशों के लिये १२ शिलिंग : एक अंक का १० आना

आनन्द प्रकाशन लिमिटेड, कमच्छा, बनारस–१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन ६)
मज्झिम निकाय—,, ,, ८)
विनय पिटक— ,, ,, ८)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न २॥)
खुद्दकपाठ— ,, ।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण १॥)
जातक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १, २ ७॥), ७॥)
,, ,, (भाग ३) १०)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप ५॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल ।=)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन १॥)
बुद्ध और उनके अनुचर— ,, १॥।)
बौद्धचर्य्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर १॥)
बुद्धचर्य्या—राहुल सांकृत्यायन, सजिल्द ८)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स १॥)
बौद्ध कहानिय —व्यथित हृदय १॥)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान १॥)
बुद्धार्चन— ,, ,, ।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन ।८)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद ।॥)
धम्मपद (कथाओं के साथ)—भिक्षु धर्मरक्षित २॥)

भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरंजन प्रसाद
बुद्धदेव—शरत् कुमार राय १।
थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय १
बुद्ध और बौद्ध साधक— ,, १
तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित
कुशीनगर का इतिहास— ,, २
पालि-पाठ-माला— ,,
जातिभेद और बुद्ध— ,,
नेपाल यात्रा (सचित्र)— ,, ४
तेलकटाह गाथा— ,,
बौद्ध शिशु बोध— ,,
बुद्ध धर्म के उपदेश— ,,
कुशीनगर-दिग्दर्शन— ,,
लंका-यात्रा— ,, १
पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा
बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन
बुद्ध-शतकम्— ,, ,,
महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा १
बुद्ध-अर्चना (कविता)—कुमारी विद्या =
श्रद्धा के फूल (कहानी संग्रह)— ,, ।=
तिब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन १

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्ठकथा—भिक्षु धर्मरक्षित ६)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी ३॥)
नवनीत टीका— ,, ,, २॥)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— ,, ,, २॥)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा १।)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित ।)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— ,, ।)
पालि-पाठ-माला— ,, १)

चरियापिटक—डा० विमलाचरण लाहा
सुत्तिनिपात—भिक्षु धर्मरत्न २
खुद्दकपाठ— ,,
धम्मसंगणी—श्रीवापिट
अत्थसालिनि— ,,
पातिमोक्ख— ,,
सिङ्गाल सुत्तं—भिक्षु ऊ कित्तिमा

सूचीपत्र के लिए ८) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महा बोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल प्रेस, कबीर चौरा, बनारस।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

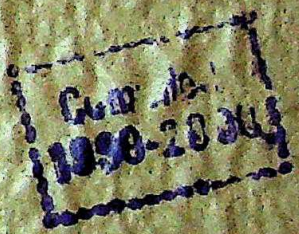

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar